भूमिका।

एक विख्यात कवि का कहना है—

यूनान, मिश्र, रोमा सब मिट गए जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

इस पद्यांश से कवि क्या कहना चाहता था, नहीं मालूम। इस पर भी जो कुछ इससे समझ में आता है वह एक अति गम्भीर सत्य है। न यूनान मिटा है, न मिश्र। रोम भी ज्यों का त्यों अभी बना है। इन देशों में मनुष्य अभी भी रहते हैं और अपने को यूनान आदि देशों का रहने वाला मानते हैं। उनमें अभी भी अपने देशों के लिए भक्ति और प्रेम की भावना विद्यमान् है। तो उक्त वाक्य के यदि शाब्दिक अर्थ लिए जायें तो पद्यांश निरर्थक-सा प्रतीत होता है। इस पर भी कवि के उक्त कथन में तथ्य है।

यूनान, मिश्र और रोम ये प्राचीन काल में महान् राष्ट्र थे। इन देश वालों ने भारी समर विजय किये थे और अपने देश की मान-मर्यादा, इसका प्रभुत्व और इसका दबदबा बहुत विस्तृत किया था। केवल यही नहीं, प्रत्युत इन देशों के रहने वालों ने अपनी सभ्यता और आचार-विचार का प्रचार और विस्तार किया था। ये देश अभी भूतल पर हैं। इनमें मनुष्यों का भी वास है, परन्तु वे विचार और सिद्धान्त नहीं रहे जिनको ये देश वासी मानते थे।

इसके विपरीत भारतवर्ष की बात इससे सर्वथा भिन्न है। भारत के रहने वाले भी अपनी एक सभ्यता रखते थे। इनकी भी एक संस्कृति थी। ये अपनी संस्कृति और सभ्यता की प्रेरणा वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि कथा-सागरों से लेते रहे हैं। भारत विजित हुआ। विदेशियों ने इसपर आक्रमण पर आक्र

मण किये और यहाँ के लोगो की स्फूर्ति के स्रोतो पर कुठाराघात करने का यत्न किया। उस विचार और आचार के लोगो ने, जिन्होंने मिश्र, यूनान तथा अफ्रीका के उत्तरी किनारे के साथ-साथ के सब देशो को पददलित कर वहाँ के आचार-व्यवहार को मलियामेट कर दिया था, भारत पर भी आक्रमण किया। यहाँ सात सौ वर्ष तक राज्य भी किया और कोई उपाय नही छोडा जिससे यहाँ के रहने वालो का आचार-विचार वैसा ही न बन जाये जैसा कि यूनान, मिश्र और ईरान इत्यादि देशो के विजित होने पर बन गया था। परन्तु वह प्रेरणा और स्फूर्ति जो भारत के रहने वाले लोगो को वेदो, पुराणो, उपनिषदो और प्राचीन साहित्यो और कथाओ से मिलती थी, अभी भी स्थिर है। आज भी ऐसे लोग विद्यमान् है जो वेदों को निर्भ्रान्त मानते है। रामायण और महाभारत में लिखी श्रेष्ठ बातो को श्रद्धा, भक्ति और आदर से देखते हैं और उन पर आचरण करने का यत्न करते हैं।

इसमे कवि का कहना कि यूनान इत्यादि जहान से मिट गए हैं पर हम अभी भी अपना नाम और निशान रखते है, सोलह आने सत्य है। एक विशेष विचारधारा है, जिसके अनुसार भारत की पूर्ण श्रेष्ठ जनता अपना आचरण बनाने में यत्नशील रहती है और वह विचारधारा वैदिक काल से आज तक अटूट चली आ रही है। इससे कवि के यह कहने का अभिप्राय कि 'हस्ती मिटती नही हमारी', मनुष्यो की हस्ती से नही, प्रत्युत भारत की भारतीयता से है।

जातियो का अस्तित्व भौगोलिक सीमाओ से नही बनता। यह विचार कि हिमालय से हिन्दमहासागर तक रहने वाले भारतीय है और इनका परस्पर गठबन्धन रहना ही चाहिये, इतिहास से और युक्ति से निमूलर सिद्ध हुआ है। यह न कभी रहा है और न रहेगा। इंग्लिस्तान, जर्मनी, फ्रांस इत्यादि छोटे-छोटे देशो में कभी यह विचार कि एक देश में रहने मात्र से एक हैं, कुछ काल के लिए चल सकता है न्तु भारत जैसे विशाल देशो और साम्राज्यो में लोग केवल मात्र

भौगोलिक बन्धनों से बँध नहीं सकते । लोगों को बाँधकर रखने के लिए तोप, बन्दूक अथवा अन्य शस्त्रास्त्र भी सफल नहीं होते। यदि विशाल देशों में लोग एक बन्धन में बँध सकते हैं तो वह अपने आचार-विचार और व्यवहार के नाते ही बँध सकते हैं। इसको सांस्कृतिक ऐक्य अथवा सांस्कृतिक गठबन्धन कहना चाहिए।

भारतवर्ष में संस्कृति वैदिक काल से अटूट चली आती है। नाम बदले, राज्य बदले और प्रजा भी बदली परन्तु संस्कृति ज्यू की त्यू चली आरही है। वैदिक काल में देश ब्रह्मावर्त नाम वाला था, पश्चात् आर्यावर्त हुआ। इसके पीछे भारतवर्ष, हिन्दुस्तान, अन्त में इंडिया बना। इसी प्रकार सूर्यवंशी राजा हुए, चन्द्रवंशी राजा हुए। हूण, सीदियन, मुसलमान इत्यादि आक्रमणकारी आये और या तो वापिस लौट गए अथवा इसी भारतीय स्थान में भारतीय हो गए। जो वस्तु स्थिर रही, वह वैदिक, भारतीय अथवा हिन्दू संस्कृति है। ऐसा क्यों सम्भव हुआ ? जब दूसरी संस्कृतियाँ काल का ग्रास बन गईं तो यह क्यों नहीं बनी ?

यह कोई चमत्कार नहीं है। न ही इसमें कोई अनहोनी बात है। इसमें भारतीय संस्कृति की विशेषता ही केवल कारण है। यह संस्कृति परमात्मा के विश्वास पर, कर्मफल मीमांसा पर, पुनर्जन्म सिद्धान्त पर अवलम्बित होने से सर्वश्रेष्ठ है ही, साथ ही राम, कृष्ण और अनेकानेक अन्य महाजनों के पावन चरित्रों से प्रेरणा प्राप्त कर भारतीयों को सत्य मार्ग पर आरूढ़ करने में सफल होती है।

ऐसी संस्कृति से एक निम्न प्रकार की संस्कृति से, एक छोटे से पारिवारिक क्षेत्र में संघर्ष की यह कथा लिख दी गई है। सब पात्र काल्पनिक हैं और यह उपन्यास है। सत्य है तो केवल विचारधाराओं में संघर्ष। एक ओर वे लोग हैं जो अपने प्रत्येक कर्म के फल की प्राप्ति का अनिवार्य मानते हैं। इस कारण प्रत्येक कार्य में अपने व्यवहार को ऐसा बनाने में लगे रहते हैं जैसा कि वे चाहते हैं कि लोग उनसे व्यवहार करें। दूसरी ओर वे हैं, जो यह मानते हैं कि वर्तमान जीवन में ही सब कुछ

इससे पूर्व और पश्चात् कुछ नहीं। इस प्रकार वे अपना जीवन अपने सुख और आनन्द के हेतु व्यतीत करते हैं। किसी दूसरे प्रकार से यदि वे कभी सद्व्यवहार करते हैं तो अपने ही हित की कामना से अथवा विवश होकर। एक भारतीय हैं, दूसरे अभारतीय।

—गुरुदत्त

प्रवंचना

भूमि

पंजाब यूनिवर्सिटी सिनेट हाल के बाहर विद्यार्थियों की भीड़ लगी थी। लड़के एक-दूसरे के कन्धे पर चढ़-चढ़कर एक लकड़ी के बोर्ड पर चिपकाये हुए पर्चे को देख रहे थे। इस पर पंजाब यूनिवर्सिटी की मैट्रिक परीक्षा का फल लिखा हुआ था।

लड़कों की भीड़ में एक सुकुमार लड़का जो तेरह-चौदह वर्ष से अधिक आयु का प्रतीत नहीं होता था, आगे जाकर अपना फल देखना चाहता था परन्तु दूसरे लड़के, जो उससे आयु में बड़े और शरीर में बलिष्ठ थे, उसको आगे जाने नहीं देते थे।

बालक प्रेमनाथ कई बार आगे जाने का यत्न कर चुका था परन्तु प्रत्येक बार पीछे धकेल दिया गया था। वे लड़के, जिनका नाम उत्तीर्ण लड़कों में होता था, कूदते-फांदते निकलते थे और जिनका नाम उन बोर्ड पर लगी सूची में नहीं होता था, मुंह लटकाये निकलकर चुपचाप चले जाते थे। कई लड़के ऐसे थे, जो देखने के लिये बार-बार भीड़ में घुसते थे, देखते थे, और बाहर आकर अनुत्तीर्ण होने वालों पर हंसी करते थे।

प्रात सात बजे का आया हुआ प्रेमनाथ मध्याह्न के ग्यारह बजे तक अपना नाम सूची में देखने में असफल हो हताश एक ओर खड़ा था। एक-दो ने उसको आकर कहा भी था कि वह उत्तीर्ण हो गया है पर वह अपनी आंखों से देखकर विश्वास करना चाहता था।

ग्यारह बजे के लगभग भीड़ कम हुई और वह बोर्ड के समीप पहुंचने में सफल हुआ। वहां अपना रोलनम्बर, नाम और प्राप्त अंक पढ़कर उसके चित्त को शान्ति हुई और घर की ओर चल पड़ा।

उसका घर शाहदरे में था। शाहदरा लाहौर से पांच मील के अन्तर पर एक छोटा-सा गांव है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने से उसका चित्त

हल्का और प्रसन्न था। चिरकाल से लदा बोझ मन से उतर गया प्रतीत हो रहा था। इस हल्के चित्त से चलते हुए उसकी, अपने होश सम्भालने से लेकर, जीवन-स्मृतियाँ जीवित हो उसके सन्मुख आने लगीं।

वह चार वर्ष का बालक था। यह उसकी पहली स्मृति थी। वह अपनी छोटी बहिन इन्द्रा के साथ अपने मामा की दुकान पर बैठा सरसों के तेल में बने 'अन्दरसे' खा रहा था। मामा ने उनको ये खाने को दिये थे और बहुत शोकग्रस्त मुख से उनकी ओर देख रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि कुछ बात हुई है जो उसके मामा को रुचिकर प्रतीत नहीं हुई।

उसका मामा शाहदरे में हलवाई की दुकान करता था। तेल की पूरी और तेल की मिठाई देहातियों के लिए बनती थी और बिकती थी। प्रेमनाथ और उसकी माँ पहले भी शाहदरा, मामा के यहाँ आया करते थे और उनके आने पर मामा का मुख खिल जाया करता था। परन्तु उस दिन, यह स्मृति १९०५ की थी, वह अपनी माँ और बहिन के साथ आया था। पहले की भाँति मामा ने उसको दुकान पर रखी चौकी पर बिठाया और चावल के आटे और गुड़ के तेल में तले अन्दरसे खाने को देकर गम्भीर हो उसके मुख पर देखने लगा था। उसकी माँ दुकान के ऊपर मामी के पास चली गई थी।

मामा को शोकग्रस्त देख प्रेमनाथ को कुछ ऐसा लगा था कि उस दिन उनका पहले से कुछ भिन्न प्रकार का स्वागत हो रहा है। इससे उसको उस दिन की बात आज भी याद थी। उसने पूछा था, "मामा! तुम क्या देख रहे हो, क्या हो गया है?"

मामा ने केवल यह कहा था, "अब तुम लोग वापिस लाहौर नहीं जाओगे।"

"क्यों?" प्रेमनाथ का प्रश्न था।

"भगवान् की ऐसी ही इच्छा है।"

प्रेमनाथ के मस्तिष्क में यह बात सर्वथा स्पष्ट अंकित थी कि व

इस पर रो पड़ा था। इससे उसके मामा ने उसको गोदी में बिठाकर अपने मैले, तेल लगे कुर्ते से उसकी आँखें पोंछकर कहा था, "प्रेम बेटा ! रोओ नहीं। जिस भगवान ने ऐसा विधान किया है कि तुम लोग शाहदरे में रहो उसने कुछ और भी प्रबन्ध किया होगा। वह बेमतलब और बिना विचारे कोई बात नहीं करता। अच्छा, देखो एक अन्दरसा और लोगे ?"

प्रेमनाथ को धुंधली-सी स्मृति उस घर की भी थी जिसमें वे शाहदरा आने से पहले रहा करते थे। एक बड़ा विशाल मकान था। उसमें कई कमरे थे। प्रेमनाथ और इन्द्रा घर वालों से पृथक एक कमरे में सोया करते थे। रात मां उनको सुला जाती थी और प्रात उनके जागने से पूर्व उनके पास आती और सिर पर प्यार दे, मुख चूम अथवा कभी गुदगुदी कर जगाया करती थी। बड़े-छोटे बहुत-से लोग घर में और भी रहते थे। किसी को वह बाबा कहा करता था, किसी को काका। कोई अम्मा थी और कोई चाची। अपनी मा को जो उन सब से अधिक स्नेह रखती थी, केवल मा कहकर पुकारा करता था।

यह मकान दो छत का था। मकान के सामने कुछ थोड़ा-सा स्थान खाली था जिसमें घास लगा था और फूलों के गमले और क्यारियां थीं। वह कई बार उन फूलों पर उड़ती रंग-रंग के पंखों वाली तितलियों को पकड़ने का यत्न किया करता था। कभी पकड़ पाता तो मां डांट कर छुड़ा देती थी। इससे छोड़ने की इच्छा न रहते हुए भी छोड़ दिया करता था।

घर में और बच्चे भी थे परन्तु वे प्राय. इससे खेलना पसन्द नहीं करते थे। इस कारण वह अपनी बहिन इन्द्रा से ही खेल सकता था। घर में एक वृद्ध व्यक्ति भी थे। उनकी लम्बी दाढ़ी और मूंछें उसको स्मरण थीं। वह वृद्ध अपनी दाढ़ी को सुजलाने का बहुत शौकीन था। और बात करते समय दाढ़ी खुजलाते हुए प्राय. कहा करता था, 'देखो न। मैं कहता हूं।'

इस पर प्रेमनाथ को हँसी भी आती परन्तु उससे सब घर वाले और विशेष रूप में उसकी माता घूघट करती थी और डरती थी। इस कारण मन में उसकी, 'देखो न, मैं कहता हूँ।' पर हँसता हुआ भी वह प्रत्यक्ष में कभी नहीं हँसता था।

एकाएक यह चित्र विलीन होगया, वह अपनी माता और बहन के साथ शाहदरा के छोटे से और गन्दे गांव में आकर रहने लगा। शाहदरा में एक प्राइमरी स्कूल था। उसमें उसको भरती करवा दिया गया। लड़कियो का कोई स्कल नहीं था। इस कारण इन्द्रा घर पर ही मां से पढने लगी।

जीवन एक साथ चलता गया और कोई ऐसी घटना नहीं घटी जो उसके मस्तिष्क पर किसी प्रकार का विशेष प्रभाव छोड सकी हो। हां, शाहदरा गांव के समीप ही एक विशाल इमारत थी जिसमें बड़े-बड़े लम्बे-चौडे घास के मैदान थे, फूलों की क्यारियां थीं और सगमरमर के एक विशाल चबूतरे पर लाल पत्थर की चौकोर इमारत थी। इस इमारत के चार कोनों पर चार मीनार थे और उन पर चढ़ने को सीढ़ियां बनी थीं। यह जहांगीर का मकबरा था। कभी-कभी उनकी मां उसको, इन्द्रा को और उसके मामा के लडके ज्योति को वहां ले जाया करती थी और खेलने का बहुत ही सुखप्रद अवसर मिलता था।

अगली घटना जो उसको स्मरण थी वह पाचवीं श्रेणी की पढ़ाई समाप्त कर स्कूल में सबसे अधिक अक लेकर पास करना था। इन्द्रा जो उसमे दो वर्ष छोटी थी वह हिन्दी की पाचवीं पुस्तक घर पर ही पढ़ती थी। गणित उसके बराबर जानती थी और भूगोल यद्यपि पढती नहीं थी पर मुख्य-मुख्य बातें उतनी ही जानती थी जितनी प्रेमनाथ जानता था।

यह स्कूल से जब पाचवीं कक्षा का परीक्षाफल सुन घर आया और उसने जब मा को बताया कि वह स्कूल में प्रथम रहा है और स्कूल कमेटी की ओर से उसको छठी श्रेणी में पढ़ने के लिये पांच रुपया वजीफा

मिलेगा, तो प्रसन्नता से फूलने के स्थान मां उसको गले लगा फूट-फूट कर रोने लगी थी।

इन दिनों वे मामा के घर के साथ वाले मकान में रहते थे। दो रुपये मासिक उसका भाड़ा देते थे। इस मकान में दो कमरे और रसोई थी; मकान बहुत छोटा और अँधेरा था पर इसका उनको अधिक कष्ट नहीं था। वे प्राय. मकान के बाहर ही खेलते रहते थे।

मां को रोते देख प्रेमनाथ को बहुत ही विस्मय हुआ था परन्तु मां के इस कहने पर विस्मय मिट गया था, "यहां तो स्कूल है ही नहीं, पढ़ोगे कैसे और वजीफा कैसे लोगे?"

"तो मां मैं लाहौर जाकर पढ़ूंगा।"

"वहां रहोगे कहां?"

"एक मकान था न वहां। बहुत बड़ा था। तो उसमें चलकर रहेंगे।"

"वह मकान अब नहीं है।"

"क्या हुआ है उसको?"

"छिन गया है बेटा।"

"किस ने छीना है?"

"भगवान ने।"

'यह भगवान कौन है? उसने क्यों छीना है मकान हमारा?"

"वह मकान तुम्हारा था, यह किसने बताया है तुमको?"

"प्रेमनाथ इस प्रश्न का उत्तर सोचने के लिए गम्भीर विचार में पड़ गया। वह उसमें रहता था, मां ने माना है। क्यों रहता था और फिर किसने वह उनसे छीन लिया है? इस समय उसको बूढ़े, श्वेत दाढ़ी-मूंछ वाले, आदमी की बात याद आई, जो कहा करता था, 'देखो न, मैं कहता हूं।' इस बात के स्मरण आते ही उसने मां से पूछा, "मां, एक थे न, बहुत बूढ़े। सफेद दाढ़ी वाले। मूंछें लम्बी-लम्बी थीं क्या वही भगवान् थे?"

मा की आसुओं में मुस्कराहट निकल आई। उसने कहा, "बेटा, नहीं, वह भगवान नहीं था। वह तो भगवान का बन्दा था। परन्तु अब वह नहीं है। पर मकान उसका दिया नहीं है और न उसने छीना था।

इतना कह मा ने एकाएक प्रेम को गोदी से उतारा और परनाले पर जा मुख धोकर आसू पोंछने लगी। प्रेमनाथ विस्मय में उसका मुख देखता रह गया।

अगले दिन जब वह उठा, माँ घर पर नहीं थी। उसकी मामी ने उसको जगाया और स्नान आदि करवाया। प्रेमनाथ ने मामी से पूछा, "मा किधर गई है?"

"लाहौर गई है। शाम तक आ जायेगी।"

प्रेम को समझ नहीं आया कि किस कारण वह वहा गई है। इस पर भी वह उत्सुकता से माँ की प्रतीक्षा करता रहा था। इन्द्रा तो दिन-भर रोती रही थी। जब मा लौटी तो सायंकाल होने वाला था।

प्रेम ने देखा, माँ का मुख बहुत उदास था। प्रेम ने जब पूछा, "माँ कहा गई थी?"

मा ने उत्तर दिया था, "रोटी खाई है प्रेम?"

"हा मा"

"इन्द्रा कहाँ है?"

"रोती-रोती सो गई है।"

"क्यो? रोई क्यों थी?"

"मा-मा करती थी।"

मा के मुख पर क्षीण मुस्कराहट की रेखा दिखाई दी और शीघ्र ही लोप हो गई। रात को जब प्रेम अपनी चारपाई पर लेटा हुआ था तो उसको सो गया समझ उसके मामा ने, जो वहाँ आया हुआ था, उसकी माँ से पूछा, "क्या हुआ, बहिन! वहाँ?"

"एक बने मकान में भेंट हुई। वे अपनी मेम को साथ ले मिलने आये, उसने मेरा परिचय कराया, पश्चात् मेरे वहा आने का कारण

पूछा। मैंने जब बताया कि लड़के को पढ़ाई के लिए लाहौर में भरती होना है और मेरे पास बोर्डिंग-हाऊस में भरती कराने के लिए खर्चा नहीं, तो वह बताने लगे कि उनके पास इस समय देने के लिए रुपया नहीं है। इस पर मैंने कहा कि लड़के को यहीं अपने पास रख लें। रोटी में रोटी खा लिया करेगा और कपड़ों में से कपड़े पहन लिया करेगा। फीस और पुस्तकों का प्रबन्ध मैं अपने खर्च में से कर दूंगी, तो उन्होंने कहा, "नहीं, यह ठीक नहीं। प्रेम तो बिगड़ेगा ही साथ ही दूसरे बच्चों पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।"

"मेरे लिए और कुछ कहने को नहीं था और मैं वापस लौट आई।"

"समय तो बहुत लगा है ?"

"हां, नदी किनारे बैठ विचार करती रही हूं कि क्या किया जाय?"

"तो क्या करोगी अब ?"

"प्रेम पढ़ेगा कैसे ? यह तो भगवान के अधीन है।"

प्रेम इस बात को सुन, समझने का यत्न करता रहा था कि वह कौन है जो मेम लेकर मां से मिलने आया था। उससे मां क्यों मिलने गई थी ? इत्यादि।

अगले दिन प्रेम ने मां से पूछा, "मां, मैं कैसे पढ़ने जाऊंगा ?"

"देखो प्रेम ! प्रातःकाल पांच बजे 'दीन' की टमटम में तुम शहर चले जाया करो। वह तुमको हीरामण्डी उतार दिया करेगा। वहां मैं तुम्हें दयालसिंह स्कूल में भरती करवा दूंगी। दोपहर को वह तुमको ले आया करेगा। वह एक स्थान बता देगा। तुम स्कूल के बाद वहां बैठे रहा करना, वहां से तुमको टमटम में बैठा लाया करेगा।"

प्रेम को स्मरण था कि इस प्रबन्ध से जो प्रसन्नता हुई थी उसको, पांच वर्ष पश्चात् आज भी, वह अनुभव करता था। पांच वर्ष तक शाहदरा से नित्य टमटम में बैठ हीरामण्डी के अड्डे पर जाना, वहां से स्कूल जाना और दोपहर के समय अथवा सर्दियों में चार बजे

हीरामण्डी के टमटमों के अड्डे पर पीपल की छाया में बैठ टमटम की प्रतीक्षा करना, तीन की टमटम में बैठ घर आना, स्नान कर भोजन करना और पश्चात् स्कूल का पाठ स्मरण करना। यह एकरस कार्य पांच वर्ष तक चलता रहा। इसमें एक दिन दूसरे के इतना समान था कि वह अब एक से दूसरे में भेद नहीं कर सकता था।

हां, एक दिन एक और घटना हुई थी। रविवार का दिन था, वह गाव के कुछ लडकों को साथ ले जहांगीर के मकबरे में गुल्ली-डण्डा खेल रहा था। उनके खेल से कुछ दूर एक पढे-लिखे परिवार के लोग सैर करने आये हुए थे। प्रेमनाथ के खेलने की बारी थी। एक बार उसने टुल इतने जोर से लगाया कि गुल्ली उन सैर करने वालों में जाकर गिरी। वह किसी को लगी अथवा नहीं, प्रेमनाथ ने देखा नहीं था, परन्तु वह यह देख रहा था कि गुल्ली बहुत दूर गई है। इससे वह प्रसन्न हो इन लोगो की ओर देखने लगा था। दूसरे लड़के जो इस समय प्रेम को खेला रहे थे, वहा से गुल्ली लाने में डरते थे, प्रेम ने कहा, "अब जाओ लाओ।"

"तुम ही ले आओ न ? वे मारेंगे।"

"क्यों मारेंगे ?"

"तो स्वय ही जाकर ले आओ न।"

प्रेम के हाथ में डण्डा था। वह उसको लिए हुए ही वहां जा पहुंचा। सैर करने वालों में गुल्ली गिरने से, कुछ विघ्न तो उनके मनोरजन में पडा था—यह वह उनके मुख पर क्रोध को देख, अनुभव कर रहा था। इस पर भी वह इसमें अपना कोई दोष नहीं समझता था। उसने जाकर कहा, "गुल्ली दे दीजिये।"

एक औरत जो गौर वर्ण की थी और अंग्रेजी ढंग का पहरावा पहने थी, प्रेम के पास आई और एक चपत उसके मुख पर लगाकर बोली, "भाग जाओ।"

चपत का बदला लेने के लिए अनायास ही उसका डण्डे वाला हाथ उठ गया, फिर तुरन्त ही उसका हाथ नीचे हो गया और उसने दूसरे

हाथ से गाल मलते हुए कहा, "औरत हो, नहीं तो मज़ा चखा देता। मेरी गुल्ली दे दो।"

इस समय एक पुरुष वहाँ आया और उसने उसको पीटने के लिये हाथ उठाया, प्रेम लपककर पीछे हटकर बोला, "शर्म नहीं आती ? इतने बड़े होकर बच्चे को मारने दौड़े हो।"

"तुमने गुल्ली क्यों यहाँ पर फेंकी है ?"

"आप को ज़रा दूर हटकर बैठना चाहिए था।"

"ओह ! तुम इस स्थान के मालिक मालूम होते हो ?"

"आप भी तो मालिक नहीं हैं ? हम पहले आये थे आप पीछे आये हैं। गुल्ली दे दीजिये और आप अपना सामान उठाकर ज़रा दूर ले जाइये फिर गुल्ली वहाँ नहीं आयेगी।"

"बहुत ही ढीठ और गँवार मालूम होते हो। किसके बेटे हो ?"

प्रेमनाथ ने दयालसिंह स्कूल में भरती होते समय अपने पिता का नाम लिखाया था। इससे बोल उठा, "श्री अमरनाथ चोपड़ा के।"

"कहाँ रहते हो ?" उस आदमी ने कुछ विस्मय से पूछा।

"शाहदरा में।"

"मेरा मतलब, तुम्हारा पिता भी वहाँ रहता है क्या ?"

"नहीं।" इतना कह प्रेमनाथ चुप कर गया। आदमी विस्मय में प्रेम का मुख देखता रहा। उस औरत ने भी इस उत्तर पर कुछ विस्मय प्रकट किया। पश्चात् वह आदमी अपने सामान में पड़ी गुल्ली उठा लाया और प्रेमनाथ को देकर बोला, "देखो ! । " वह आदमी कुछ सोचने लगा। पश्चात् बोला, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"इससे आपका क्या मतलब ? मेरे पिताजी का नाम जान लिया अब मेरा नाम पूछ रहे हैं ? मैं बताने की आवश्यकता नहीं समझता।" इतना कह वह जाने लगा परन्तु उस आदमी ने पुकारा, "हाँ ! प्रेमनाथ ! सुनो !"

प्रेम अपना नाम सुन विस्मय में पड़, लौटकर देखने लगा, "ज़रा दूर चले जाओ, यह गुल्ली किसी की आँख में भी लग सकती है।"

"तो आप ही, जरा पीछे हट जाइये। एक चपत मुफ्त में लगा ली है, और क्या चाहते हैं ?"

"अच्छा देखो !" उस आदमी ने कहा, "एक रुपया ले लो और थोड़ी दूर चले जाओ।"

"हम भीख नहीं लेते।। जब आप नरमी से कहते हैं तो हम पीछे हट जाएँगे।"

लड़के दूसरे घास के मैदान में चले गये। जब खेलते-खेलते थक गये तो बैठकर बातें करने लगे। एक लड़के ने कहा था, "उस मेम ने मारा था तो एक डंडा तो टिका देना था।"

"मेरा हाथ उठा तो था पर आदमी औरतों पर हाथ नहीं उठाते।"

"तुम आदमी हो क्या ? यह कह सब हँसने लगे, "तुम्हारी दाढ़ी-मूँछ कहाँ है ?"

प्रेम आदमी शब्द की यह विवेचना सुन लज्जा से लाल हो गया। वे अभी इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि वही औरत और दो बच्चे कागज में कुछ लपेटा हुआ लेकर इनकी ओर आते हुए दिखाई दिये। लड़के भयभीत होकर भागना चाहते थे कि प्रेम ने कहा, "बहादुर आदमियो ! अब भागते क्यों हो ? बैठे रहो और देखो वह क्या कहती है।"

वह औरत आई और कागज में लपेटा हुआ सामान सब लड़कों के बीच रख बोली, "ये तुम लोगों के खाने के लिये है।"

"हमको क्यों दे रहे हो ?" प्रेम ने पूछा, "हमको यह क्यों लेना चाहिये ?"

"तुम अच्छे लड़के हो, इसलिये। देखो प्रेमनाथ ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम औरतों का मान करते हो न ? इसलिये।"

सब लड़के ललचाई आँखों से मिठाई और फलों की ओर देख रहे थे। प्रेमनाथ ने अपना नाम पुन. सुन अचम्भे से पूछा, "आप मेरा नाम कैसे जानती हैं ? मैंने तो बताया नहीं।"

"मैं तुम्हारे बाप को जानती हूँ। इसलिये मुझे शोक है कि मैंने

तुमको मारा है। अच्छा अब खाओ। खाकर तुम अब उधर आना, हम तुमको ग्रमोफोन रिकार्ड सुनायेंगे।

इतना कह वह औरत और बच्चे चले गये। उन बच्चों में दो लड़के और एक लड़की थी। प्रेमनाथ और उसके साथी विस्मय से उस औरत को जाते देखते रहे। जब वे दूसरे लान में चले गये तो प्रेमनाथ ने मिठाई और फल सब में बांट दिये। पश्चात ग्रामोफोन के बजने की आवाज़ आई तो सब वहां जा पहुंचे।

रात जब प्रेमनाथ ने मां को यह कहानी सुनाई तो वह रोने लगी थी। प्रेमनाथ ने मां के गले में बाहें डालकर पूछा, "मां तुम रोती क्यों हो, हमको मिठाई नहीं खानी चाहिये थी न ?"

मां ने आंखें पोंछकर कहा, "यह मैंने नहीं कहा, प्रेम।"

"तो फिर तुम रोई क्यों हो ?"

मां ने बात बदल कर कहा, "अब सो जाओ। बहुत थक गये होगे। देखो, रविवार को बड़े लोग मकबरे में सैर करने आते हैं तुमको उधर खेलने नहीं जाना चाहिये।"

इसके उपरान्त मैट्रिक की परीक्षा में पास होने की घटना थी। यह सन् १९१५ था।

२

प्रेमनाथ को स्कूल में भरती कराते समय उसकी मां को इस सब खर्च का ज्ञान नहीं था, जो हुआ। इस पर भी उसने अपना पेट काटकर, पड़ोसियों के कपड़े सीकर और दिन-रात मेहनत से खरबूज़ों के बीजों से गिरियां निकाल कर, प्रेमनाथ को पढ़ाने का प्रबन्ध किया था। प्रेमनाथ इस बात को भली-भांति समझने लगा था।

इन्द्रा उसकी बहिन अब बारह वर्ष की हो गई थी। वह स्कूल नहीं जा सकी थी; मां से हिन्दी पढ़ वह रामायण पढ़ने लगी थी। प्रेमनाथ से अंग्रेज़ी पढ़ उसकी किताबें पढ़ने योग्य हो गई थी और फिर घर का काम-

काज भी करती थी।

इस सब कठिनाई तथा दरिद्रता के जीवन में एक बात अति-मधुर थी, जिसको प्रेमनाथ स्मरण कर पुलकित हो उठा करता था। मां यह सब मेहनत करते हुए हंसती रहती थी और रामायण में से चौपाई, दोहे, छप्पय आदि गाती रहती थी। उसका सबसे प्रिय दोहा था—

रघुपति राघव राजा राम।
पतित पावन सीता राम॥

फिर कभी गाती थी।

अवगुन तजि सबके गुन गहहिं।
विप्र धेनु हित संकट सहहिं॥
नीति निपुन जिन्ह कह जग लीका।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥

प्रेम भी अपनी मां की सगत में रहता हुआ यह श्लोक गाता रहता था।

शान्त शाश्वतमप्रमेयनघ निर्वाण शान्तिप्रदम्।
ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेव्यमनिश वेदान्त वेद्य विभुम्॥
रामाख्य जगदीश्वर सुरगुरु माया मनुष्य हरिम्।
वन्देह करुणाकर रघुवर भूपाल चूडामणिम्॥

जब इस प्रकार रामायण का पाठ अथवा कीर्तन करते थे तो मां, पुत्र और पुत्री अपनी निर्धनता तथा परिस्थिति भूलकर भगवान में लीन हो आनन्द-विभोर हो उठते थे। प्रेमनाथ के बाल्यकाल की यह घडियां अत्यन्त सुख की वेला होती थीं।

आज परीक्षा में अपने को फर्स्ट डिवीजन में उत्तीर्ण पा वह भावी-जीवन की रूपरेखा बांधते-बांधते अतीत काल की स्मृतियों में विलीन हो गया। सिनेट हाल से चलकर शाहदरा पहुंचने में तीन घंटे लग जाना एक साधारण बात थी और इस सारे समय में अपने विषम भूत को उज्ज्वल भविष्य में परिवर्तित करने की योजनायें सोचता चला आया था।

जब वह घर पहुँचा तो बाजार में उसके मामा ने उत्सुकता से पूछा, "प्रेम, परीक्षा फल निकला ?"

"हां मामा जी ! मैं पास हो गया हूँ ।"

"शाबाश बेटा । जाग्रो अपनी मां को बताग्रो, बेचारी तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी सूख रही है ।"

प्रत्यक्ष में तो मां ने उसके अनुत्तीर्ण होने की न तो आशंका की थी, और न ही चिन्ता । वास्तव में ऐसा नहीं था । आज मामा से यह सुन उसको अनुभव हुआ कि सत्य ही मां की हड्डियां और मांस पिघल-पिघल-कर उसकी पढ़ाई में लगा हुआ है । उसको अपने अनुत्तीर्ण हो जाने की आशंका पर कपकपी हो उठी । उसने सोचा कि कहीं वास्तव में ऐसा होता तो, मां का देहावसान ही हो जाता । इस सम्भावना के असत्य सिद्ध होने पर प्रसन्नता ने उसकी आंखों में आंसू भर आये ।

जब वह मां के सामने उपस्थित हुआ तो उसकी आंखें डबडबा रही थीं । मां ने उसको देखा तो उसका मुख विवर्ण हो उठा । उसे अपने तले से मट्टी खिसकती प्रतीत हुई । इस पर भी कांपते हुए उसने प्रेम को छाती से लगा मुख चूम लिया । चूमते समय उसके होंठ कांप रहे थे और पूर्ण शरीर शिथिल होता जाता था । इस समय प्रेम ने कहा, "मां ! मैं पास हो गया हूँ ।"

"पास हो गये हो ? अच्छा हुआ । भगवान को धन्यवाद दो ।" इस प्रकार हांफती हुई, मन की एक पराकाष्ठा की अवस्था से दूसरी पराकाष्ठा की अवस्था पर पहुँच रही थी ।

प्रेम की आंखों से अविरल आंसू बह रहे थे और मां भी लगभग अचेतनता की अवस्था से धीरे-धीरे चेतनता की ओर आ रही थी । एकाएक उसने प्रेम को अपने से पृथक कर कहा, "प्रेम, भगवान का धन्यवाद करो । उसने हमारी नाव डूबते-डूबते बचाई है ।" मां अपनी शक्ति और साहस की अन्तिम सीमा पर पहुँच गई थी ।

"मां ! हम बहुत निर्धन हैं न ?"

इस पर मां ने कहा, "हम लाखों में एक श्रेष्ठ हैं। धन श्रेष्ठता का लक्षण नहीं। चरित्र और चलन ही किसी मनुष्य के मूल्य आंकने में प्रमुख वस्तु होती है। चरित्र, विपरीत परिस्थितियों में भी अपने कार्य में संलग्न रहने को कहते हैं।"

अगले दिन से ही विचार होने लगा कि प्रेमनाथ कहीं नौकरी करने लग जाए तो मा को सुख मिलेगा। प्रेम के मामा ने कहा, "देखो बेटा प्रेम ! अब मां को और कष्ट न दो। ज्योति जो पाचवी श्रेणी से अधिक नहीं पढ सका अब मेरा बहुत आश्रय बना हुआ है।"

प्रेम नियमित रूप से नौकरी ढूंढने लगा। प्रात खाना खाकर घर से निकल जाता था और सायकाल घर लौट आता था। इस प्रकार लाहौर की सडकों पर मिट्टी छानते-छानते तीन मास व्यतीत हो गये।

इस काल में प्रेम को अपरिमित अनुभव प्राप्त हुआ। वह सैकडों अफसरों और बीसियो सेठों-साहूकारों से मिला। जहा भी किसी ने उसे टोह दी कि कोई स्थान रिक्त है, वह पहुंचता और यत्न कर अधिकारी से मिलता। लोग उसकी सूरत और कपडे देख यह सन्देह करते, कि वह मैट्रिक पास भी है अथवा नहीं। उनको विश्वास दिलाने पर वे समझते कि उत्तीर्ण किया भी होगा तो थर्ड डिवीजन में। जब प्रेमनाथ उनको विश्वास दिलाता कि वह फ़र्स्ट डिवीजन में पास हुआ है तो वह परीक्षा लेकर उसके कहने की सत्यता जानने का यत्न करते। जब वे जान लेते कि प्रेमनाथ की योग्यता किसी साधारण ग्रेजुएट के बराबर है तो कह देते कि उनके यहा स्थान तो रिक्त होने वाला है, उसका नाम और पता लिख लिया है और आवश्यकता पडने पर बुला लिया जायेगा।

कुछ भले लोग कह देते कि बिना सिफारिश नौकरी नहीं मिलेगी। वह उनसे प्रसन्न तो होता परन्तु जब कहता कि वे ही उसकी सिफारिश कर दें तो लोग हँस पडते। एक भद्र पुरुष ने तो यह भी कह दिया कि उसका लडका इस स्थान के लिये प्रार्थी है, भला वह उसकी सिफारिश

क्यों करे ?

"इसलिए कि मैं उससे अधिक योग्य हूँ।"

वह हँस पड़ा। उसने कहा, "लड़के, अभी संसार का ज्ञान प्राप्त करो। तुमको यहाँ नौकरी नहीं मिलेगी।"

एक दिन जिला कचहरी में डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय के बाहर एक 'नोटिस' लगा हुआ था। "बीस क्लर्क चाहियें। योग्यता कम-से-कम मैट्रिक सैकिंड डिवीजन, अंग्रेजी और उर्दू शुद्ध लिख सकता हो।"

प्रेमनाथ हाथ से लिखे प्रार्थना-पत्र सदैव अपनी जेब में रखता था। यह पढ़ उसने एक प्रार्थना-पत्र निकाला और डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में जाकर पेशकार से पूछने लगा, "जनाब, यह बाहर जो इश्तिहार लगा है उसकी अर्जी कहाँ दी जानी चाहिये ?"

"उसका वक्त निकल गया है।"

प्रेम उदास हो लौटने लगा था। फिर उसके मन में एक विचार आया और उसने कहा, "श्रीमान जी ! उस इश्तिहार पर तो यह बात नहीं लिखी।"

"तो क्या मैं झूठ कहता हूं ?" पेशकार ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा—

"जी नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। मैंने कहा है कि उस इश्तिहार लिखने वाले ने प्रार्थना-पत्र मांगने पर सीमा न बांध भूल की है। आइन्दा ऐसा न करिये। हम लोगों को, जो प्रार्थना-पत्र देने वाले हैं बहुत कष्ट होता है।"

"ओह ! साहब बहादुर की भी भूल निकालने लगे हो। जरूर नौकरी पा जाओगे। जाओ, निकल जाओ कमरे से बाहर।"

"प्रेमनाथ कमरे से बाहर निकल आया। वह अति उदास मन खड़ा था और अब मन में सोच रहा था कि किधर का चक्कर काटे कि उस समय कचहरी का चपरासी लाल वर्दी पहिने और उस पर सुनहरी चपरास लगाये हुए आया और प्रेमनाथ के कन्धे पर हाथ लगाकर बोला,

"ओ लड़के ! पेशकार साहब बुलाते हैं।"

"क्या कहते हैं ? ज़रा-सी बात पर कैद कर लेंगे क्या ?"

चपरासी ने प्रेम को बाज़ू से पकड लिया और कहा, "भाई चुपचाप चले आओ।"

प्रेमनाथ का मन काप उठा। विवश पुन अदालत के कमरे में चला आया। चपरासी ने उसको ले जाकर पेशकार के सामने खडा कर दिया। पेशकार ने उसको सिर से पांव तक देखा और कहा, "इस कठघरे के भीतर आ जाओ।"

प्रेमनाथ इसका अर्थ नहीं समझा। वह कापता हुआ कठघरे का किवाड खोल भीतर चला गया। पेशकार ने उसको एक स्टूल की ओर सकेत कर कहा, "बैठ जाओ।"

प्रेमनाथ बैठ गया। पेशकार ने कहा, "अपनी अर्ज़ी दिखाओ।"

कापते हाथों से प्रेमनाथ ने सुलेख में लिखा प्रार्थना-पत्र पेशकार के हाथ में दे दिया। पेशकार ने प्रार्थना-पत्र पढा और फिर प्रेमनाथ को सिर से पाव तक देख सिर हिलाकर पूछा, "अँग्रेज़ी लिख सकते हो क्या ?"

"हां जनाब ?"

"लिख सको या न लिख सको" पेशकार ने इतना धीरे से कहा मानो वह अपने-आपसे बातें कर रहा हो, "तुम नौकर तो हो गये हो।"

"मैं नौकर हो गया हूँ ?"

"हां ! यहां ही बैठो। मैं अभी मजूरी लिखवाकर लाता हूँ।" इतना कह पेशकार अपनी कुर्सी से उठ पीछे के कमरे में चला गया। दो मिनट में वह प्रेमनाथ की अर्ज़ी पर एक बडी-सी मुहर लगवा और उस पर किसी के अँग्रेज़ी में हस्ताक्षर करवा कर ले आया। आकर कुर्सी पर बैठ, उस अर्ज़ी को एक टीन के डिब्बे में रख, बोला, "तुम्हारी उमर कितनी है ?"

"चौदह वर्ष।"

"तुम नौकर कैसे हो सकते हो ? अट्ठारह वर्ष से कम उमर में
(कारी नौकरी नहीं मिल सकती ।"

"तो अर्जी वापिस कर दो ।"

"पर अर्जी तो मजूर हो गई है । साहब ने दस्तखत कर दिये हैं ।"

"तो उन्होंने आयु नहीं पूछी ?"

"अर्जी पर लिखी नहीं है। अच्छा ठहरो, इतना कह वह पुनः भीतर
कमरे में चला गया। अबकी बार एक ही मिनट में लौट आया और बोला,
चालीस रुपये महीना, और शाहदरा में कानूगो मुकर्रिर होगए हो—
हसीलदार के पास चले जाओ । यह परवाना यहा से लेते जाओ ।"

३

"शाहदरा में कानूगो । चालीस रुपया महीना। इतनी छोटी आयु में
ह भगवान के अतिरिक्त और कौन कर सकता है ।" प्रेमनाथ की मां
सको कह रही थी ।

"यह कैसे हुआ मा ! मैं समझ नहीं सका। पेशकार ने तो कमरे से
ाहर निकाल दिया था । जब चपरासी भीतर बुलाकर ले गया तो ऐसा
तीत होता था कि पेशकार को तो मेरी सूरत-शक्ल भी पसन्द नहीं,
रन्तु कोई अदृश्य शक्ति उसके गले में अंगुली देकर यह शब्द निकाल
'ही है कि मैं नौकर हो गया हूं ।"

"डिप्टी कमिश्नर को देखा है तुमने ?"

"नहीं मां, मुझको उसके सामने उपस्थित नहीं किया गया ।"

"परवाने पर क्या लिखा था ?"

"लिखा था, प्रेमनाथ वल्द अमरनाथ चोपड़ा, साकन हाल शाहदरा,
को कानूगो, २ जून १९१५ से मुकर्रिर किया जाता है । ट्रेनिंग पीरियड
तीन मास के बाद इम्तिहान होने पर नौकरी मुस्तकिल की जायेगी । नीचे
डिप्टी कमिश्नर लाहौर के कार्यालय की मुहर थी और अंग्रेजी में
हस्ताक्षर थे जो पढ़े नहीं जाते थे । इस परवाने के साथ एक बन्द

लिफाफे में चिट्ठी थी, जिस पर लाख की मुहर थी और ऊपर प्राइवेट लिखा था।

"मैं तहसीलदार के कार्यालय में पहुँचा और जब जाकर परवाना दिया तो तहसीलदार विस्मय में मुझे देखने लगे। माँ, एक तो मेरी दाढ़ी-मूँछ नहीं। सब मुझको बच्चा समझते हैं। दूसरे मेरी आयु अभी चौदह वर्ष की है। लोग कहते हैं कि अट्ठारह वर्ष से कम आयु वाले को नौकरी नहीं मिलती। तीसरे मेरे कपड़े आज बहुत मैले थे उन्हें देख मुझे स्वयं लज्जा आती थी।"

"तहसीलदार अभी सोच ही रहा था कि उस परवाने का क्या करे कि मैंने यह प्राइवेट चिट्ठी दे दी। उसने लिफाफा खोलकर पढ़ा। पढ़ते ही उसका विस्मय मुस्कराहट में बदल गया। उसने बिना एक भी शब्द कहे परवाने को अपने मुहर्रिर को दे दिया और मुझको यह नई चिट्ठी दे कर कहा कि "कल दो जून को, दिन के ग्यारह बजे शाहदरा के कानूगो से चार्ज ले लो।"

माँ यह सुनकर गम्भीर विचार में पड़ गई। प्रेमनाथ इसका अर्थ नहीं समझ सका, इससे उसने पूछा, "क्या है मा?"

"कभी कभी भगवान अपना कार्य सिद्ध करने के लिए विचित्र साधन बना लेता है। हमको तो उसका ही कृतज्ञ होना चाहिये। साधन एक निष्प्रयोजन वस्तु है।"

"माँ! तुम कभी-कभी इतनी असगत बातें करती हो कि उसका अर्थ समझ में नहीं आता।"

'देखो प्रेम! यह भगवद्गीता निकालो! वही हमारी इस नि सहाय अवस्था में आश्रय देने में सबल है।"

प्रेमनाथ मा की बात अगाध श्रद्धा और विश्वास से स्वीकार किया करता था। माँ के कहने पर उसने कभी विवाद नहीं किया था। इस पर भी ज्यों उसका अनुभव और ससार का ज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था। इससे उसके मन में अनेकानेक प्रश्न उपस्थित हो रहे थे। वह दिल मसोस

कर उठा, अलमारी में से भगवद्गीता गुटका उठा लाया और माँ को दे कर बोला, "माँ ! एक बात मुझको बता दो।"

"मैं जानती हूँ कि तुम क्या जानना चाहते हो। मैं चाहती थी कि अभी दो वर्ष और ठहरकर तुम को बताऊँ, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तुम समय की गति से अधिक गति से बुद्धि-शीलता प्राप्त कर रहे हो। इस कारण अब अधिक काल तक तुम को अंधकार में रखना तुम्हारे ही अहित में होगा। इससे सुनो।"

प्रेम की माँ ने एक हाथ गीता की पुस्तक पर रखे हुए, मानो वह विद्युत-प्रवाह की भाँति उस पुस्तक से साहस और स्फूर्ति प्राप्त कर रही हो, कहने लगी।

"जब मेरा विवाह हुआ था मैं बारह वर्ष की थी, हम जात के खन्ने थे। चोपड़ों के परिवार में मेरा विवाह मेरे सौभाग्य का सूचक माना गया था। उस समय मैं हिन्दी और कुछ संस्कृत पढ़ी थी।"

"यह सन् १८९५ की बात है। आर्यसमाज का प्रभाव लोगों पर आरम्भ हुआ ही था और पिताजी ने मेरे पढ़ने के लिए एक पंडित नियुक्त कर दिया था। मेरे श्वसुर, शायद तुमको याद होगा, एक वृद्ध श्वेत दाढ़ी-मूँछ वाले व्यक्ति थे। उन्होंने ही एक दिन मेरे विषय में कहीं से सूचना पा, आकर मुझको देखा, मुझसे प्रश्न पूछे, मुझसे रामायण सुनी और विवाह पक्का कर चले गये।"

"मेरे विवाह के समय तुम्हारे पिता मैट्रिक में पढ़ते थे। उस समय तो वे मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार करते थे, जब उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की तब तुम्हारा जन्म हुआ। यह सन् १९०० की बात है। इस समय तक उनके विचारों में अन्तर आना आरम्भ हो गया था। मुझको कभी कहते, 'अंग्रेजी पढ़ा करो।' मैं पूछती, 'किससे पढ़ूँ ?' तो वे चुप हो जाते। अपने पिता के सम्मुख उनको कुछ कहने का साहस नहीं होता था। एक दिन उनके पिता ने मेरी पुस्तकों में अंग्रेजी की पहली पुस्तक देख ली। मुझसे पूछा, 'यह तुम पढ़ती हो ?' मैंने सिर हिलाकर स्वीकार

गया। उस रात बाप बेटे में झगड़ा हो गया। मैं अपने कमरे में बैठी हुई बाप की बेटे को डांट सुनती रही। बाप ने कहा था, 'औरतें घर का भूषण होती हैं। उनको अपने धर्म-शास्त्र पढ़ने चाहिए। अंग्रेजी पढ़कर ये क्या करेंगी? नौकरी तो करेंगी नहीं।"

"बेटे ने कहा, "पिताजी! अंग्रेजी पढ़ने से संसार का ज्ञान हो जाता है।"

"मतलब यह कि अगर अंग्रेज यहाँ न आते और हमको विवश हो कर अंग्रेजी न पढ़नी पड़ती तो हम मूर्ख ही रहते।"

"हम जाहल तो हैं ही। यह बहू आपने लाकर दी है। मैं इसको अपने साथ कहीं ले जा नहीं सकता। यह किसी से बातें नहीं कर सकती और जब भी किसी को देखती है तो घूंघट निकाल लेती है।"

"तो तुम क्या चाहते हो? सबके सामने निर्लज्ज औरतों की भाँति बातें किया करे?"

"क्या क्या बातें बाप-बेटे में हुईं। मैं अपने मुख से कह नहीं सकती। परिणाम यह हुआ कि तुम्हारे पिता मुझ से नाराज होगये। मैंने बहुत कहा कि मेरा कुछ भी दोष नहीं है। मुझ को पढ़ाने वाली औरत ला दीजिये मैं अंग्रेजी पढ़ लूंगी अथवा आप पढ़ा दिया करें।"

"पर वे विलायत जाने वाले थे। इससे स्वयं पढ़ा नहीं सके। उनके पिता मेरे अंग्रेजी पढ़ाने के विरोधी थे। परिणाम यह हुआ कि वे विलायत चले गए और कभी पत्र भी नहीं लिखा।"

"सन् १९०३ में, जब तुम तीन वर्ष के थे, तुम्हारे बाबा मुझको ले, विलायत गये। उनको सूचना मिली थी कि तुम्हारे पिता वहाँ दूसरा विवाह करने वाले हैं। विवश हो उन्होंने मुझको समय के फैशन के अनुसार कपड़े पहिनने को कहा और मुझको घूंघट उठाकर विलायत चलने को कहा। मुझको अपने हाथों से उन्होंने शृंगार-प्रसाधन ला कर दिये।"

"मैं जब उनके साथ जाने को तैयार हुई तो उनकी आँखों से आँसू

टपक पड़े। गाड़ी में बैठे हुए उन्होंने मुझ को कहा, "बेटी, यह सब कुछ तुमको करने को मैं विवश कर रहा हूँ। इसका मुझ को बहुत दुःख है। वास्तव में मैं इस प्रकार के कपड़े पहिनने में हानि नहीं समझता, परन्तु जो तुमको यह पहिनने को कह रहा हूँ वह इस उद्देश्य से नहीं कि इससे तुम अधिक सुन्दर प्रतीत होगी अथवा तुमको इससे अधिक सुख-सुविधा मिलेगी, परन्तु उसका प्रयोजन केवल मात्र यह है कि तुम एक अंग्रेज महिला प्रतीत हो। अपने पुत्र की मानसिक दासता देख मेरी आत्मा उत्पीड़ित हो उठी है।"

"तुम्हारे बाबा स्वामी दयानन्द जी की संगत में रह चुके थे और देशभक्ति के भावों से ओतप्रोत थे। इसी से अंग्रेजियत से उनको घृणा थी। यह घृणा इतनी दूर तक चली गई थी कि अंग्रेजों की अच्छी बात को पहिले हिन्दुस्तानी जन्म और नाम दे देते और तब ग्रहण करते थे।"

"हम विलायत पहुंचे और लंदन के एक होटल में ठहरे। वहां उनकी पुत्र से भेंट हुई। बहुत बातें हुईं। मेरे सामने भी और परोक्ष में भी। तुम्हारे बाबा का कहना था कि उनके पुत्र को भारतीय आचार-व्यवहार का आदर करना चाहिये। उन्होंने उसको जापानियों, जर्मनों और संसार की अन्य महान् जातियों की स्त्रियों के उदाहरण देकर बताया कि वे अंग्रेजी न जानने से जाहिल नहीं हो गईं और फिर जब वह हिन्दुस्तान में आएगा तो जैसा भी चाहे मैं रहूँगी।"

"मुझको ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम्हारे पिता एक अंग्रेज़ लड़की से विवाह करने वाले थे, परन्तु हमारे समय पर पहुंच जाने से विवाह रुक गया। मैं तुम्हारे बाबा के साथ लन्दन तीन मास रही। तुम्हारे पिता बोर्डिंग हाउस में रहते थे। बीच-बीच में हम से मिलने आते रहे और उस समय उनका व्यवहार सभ्यता-पूर्ण और प्रेममय रहा।"

"हम जब लौटे तो वे हमको मारसेल्ज़ तक छोड़ने आये। मैं अति प्रसन्न थी। तुम्हारे बाबा भी अपनी युक्ति की सफलता पर प्रसन्न थे।

यहां से आकर इन्द्रा का जन्म हुआ।"

"१९०४ में तुम्हारे पिता आई० सी० एस० की परीक्षा में प्रथम रहे और भारतवर्ष में उनकी सरकारी नौकरी लग गई। उनकी नियुक्ति रावलपिंडी में डिप्टी कमिश्नर के पद पर हुई।"

वे लाहौर आये तो एक अंग्रेज बीवी को साथ ले आये। एक विकट समस्या यह उत्पन्न हो गई कि विलायत में विवाह के समय उन्होंने यह घोषित किया था कि उनका पहले विवाह नहीं हुआ। वहां पर एक पुरुष दो विवाह नहीं कर सकता। उनकी अंग्रेज बीवी तो यह जानती थी कि उनका एक विवाह पहले हो चुका था परन्तु वह यह धमकी दे रही थी कि यदि मुझको अपने पास रखेंगे तो वह सब भांडा फोड़ देगी और उनकी नौकरी चली जाएगी।"

"उनके पिताजी का कहना था कि नौकरी जाती है तो जाए पर विवाहित बीवी और बच्चों की मां को घर से निकाला कैसे जा सकता है। इस पर घर में वह ऊधम मचा कि मेरा वहां रहना असम्भव होगया।"

"एक दिन मैं तुम्हारे बाबा जी के पास गई और पांव पर सिर रख कर यहां शाहदरे आ जाने की स्वीकृति मांगने लगी। वे पूर्ण घर-भर को तुम्हारे पिता का पक्ष लेते देख सर्वथा निःसहाय अनुभव कर रहे थे। मेरे कहने को न तो स्वीकार कर सके और न ही विरोध कर सके। उनकी अवस्था श्रीराम के पिता दशरथ के समान देखकर मुझे दया आई, परन्तु अपनी, तुम्हारी और परिवार की भलाई का विचार कर तुम दोनों को ले, यहां चली आई। मेरे वहां से आने के दूसरे दिन तुम्हारे बाबा का देहान्त हो गया।"

"जब मैं आने लगी तो तुम्हारे पिता ने यह कहा कि वे मुझको बीस रुपये मासिक गुजारे के लिए भेज दिया करेंगे। मैंने इस विषय में कुछ नहीं कहा और अपने मन में दृढ़ संकल्प कर कि अब उनका मुख नहीं देखूंगी, यहां चली आई।"

'मैं समझती हूं कि एक दिन जहांगीर के मकबरे में तुमको एक

आदमी ने एक रुपया देने का यत्न किया था और फिर एक औरत ने तुम लोगों को फल और मिठाई खाने को दी थी। वे तुम्हारे पिता और विमाता थी। मेरा मन कहता है कि आज जिसने तुमको नौकरी दी है वे तुम्हारे पिता हैं। मेरे लिए अति विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। उस औरत की उपस्थिति में मैं अपने को उनकी स्त्री भी नहीं कह सकती। तुम्हारे बाबा के पश्चात् अब उस घर में हमारा कोई मित्र नहीं है और मैं समझ नहीं सकती कि इस नई परिस्थिति में क्या करना चाहिये।"

"मा!" प्रेम ने दृढ़ता से कहा, "यदि तुम कहो तो मैं नौकरी अस्वीकार कर देता हूँ। उनके तुम्हारे साथ किए व्यवहारके पश्चात् उनके अहसान में मैं रहना नहीं चाहता।"

इस समय मा ने प्रेम के मुख पर हाथ रखकर उसको कुछ और कहने से रोक दिया। पश्चात् कुछ सोचकर कहा, "मैं बीस रुपये मासिक उनसे अभी तक लेने पर विवश हूँ। अब उस बीस रुपये को लेन से इन्कार करने के लिए तुम्हारी इस नौकरी को स्वीकार करना आवश्यक हो गया है, यह भी एक विवशता है।"

"मैं यह कहती हूँ कि काम मेहनत और ईमानदारी से करना। उस पर यह चालीस रुपये उसका दाम होगा। इसमें तुम्हारे पिता का अहसान नहीं होगा।"

४

प्रेमनाथ को नौकरी देनेवाला, सत्य ही, मिस्टर ए० एन० चोपड़ा, आई० सी० एस० डिप्टी कमिश्नर लाहौर था। एक विख्यात बात है कि धनी-मानी आर्यसमाज के सदस्यों की सन्तान प्रायः नास्तिक और अभारतीय हुई है। कारण इसका कुछ भी हो, लोगों के मन में एक ओर तो यह विश्वास बैठ गया कि आर्यसमाज एक वागाडम्बर है, दूसरी ओर लोग यह समझने लगे कि पाश्चात्य सभ्यता भारतीय विचारधारा पर

एक सुधार है।

जब अमरनाथ मैट्रिक में उत्तीर्ण हुआ तो उसका विवाह शाहदरा के खन्ना परिवार की लड़की, शान्ता से हो गया। अमरनाथ पढ़ाई में बहुत ही प्रतिभाशाली सिद्ध हुआ। उसने गवर्नमेंट कालेज से प्रान्त में प्रथम रहकर बी० ए० किया और आई० सी० एस० के लिए विलायत चला गया।

विलायत जाने से पूर्व वह एक बालक का पिता हो चुका था। जाने से पूर्व ही उसको अपने पिता का प्रात उठकर वेद-मन्त्र-उच्चारण, सन्ध्या-हवन और प्रेम से सत्यार्थप्रकाश पढना अखरने लगा था। उसको शेक्सपियर, मिल्टन, बायरन और वर्ड्सवर्थ अधिक रुचिकर हो रहे थे। अपनी स्त्री को रामायण पढते देख वह नाक-भौं चढाता था।

आर्यसमाज ने रामायण और महाभारत पर अश्रद्धा तो उत्पन्न कर दी थी परन्तु उसके स्थान पर किसी अन्य पुस्तक पर विश्वास नहीं बनाया था। वेदों की बहुत महिमा थी परन्तु उनको पढ सकने की योग्यता किसी म नहीं थी। फिर जो लोग आर्यसमाज में आये वे अपनी सन्तान को अंग्रेजी शिक्षा देने में विवश थे। सामाजिक उन्नति उसके बिना असम्भव थी।

मिस्टर अमरनाथ गवर्नमेंट कालिज में पढकर न केवल नास्तिक हुआ प्रत्युत् पाश्चात्य रहन-सहन का भक्त भी हो गया। विलायत जाने से पूर्व ही उसको अपनी स्त्री को अपने साथ घूमने ले जाना बहुत पसन्द था परन्तु शान्ता कहती रहती थी, पिताजी नाराज होंगे।

विलायत जाकर तो अमरनाथ के विचारों में पूर्ण परिवर्तन हो गया। उसकी भारतीय पहिरावे, भारतीय भोजन, भारतीय भाषा और भारतीयता पर श्रद्धा सर्वथा लोप हो गई। वह शान्ता से घृणा करने लगा, जो श्वसुर और बड़ों के सामने घूंघट काढ़ती थी। इस पर उसका प्रेम अपने एक मित्र की बहिन से हो गया।

इसकी सूचना लाहौर पहुंची तो उसका पिता उसकी बीबी को

लेकर लन्दन जा पहुँचा। कुछ काल के लिए तो मुसीबत टल गई और शान्ता के एक लड़की उत्पन्न हुई। इस पर भी अमरनाथ के परीक्षा मे प्रथम रहने ने उसके मस्तिष्क में हलचल मचा दी। वह समझने लगा था कि उसका भारत के एक फ़र्स्ट क्लास ज़िला में डिप्टी कमिश्नर बनना निश्चित है। वहां पर अपनी पुराने विचारो की, अँग्रेज़ी से सर्वथा अनभिज्ञ, बीवी को रखकर कैसे निर्वाह कर सकेगा।

एमिली जान्सन, एक अन्य लड़की से विवाह पक्का हो गया और सिविल मैरिज हो गई। इस बात की सूचना लाहोर नहीं भेजी गई। कारण यह कि अमरनाथ को डर था कि वहां समाचार पाने पर भांडा फूट जायेगा और विवाह में विघ्न पड़ जायेगा।

लाहोर पहुंचकर जो परिस्थिति उत्पन्न हुई वह उसकी स्त्री एमिली चोपड़ा से छिपी नहीं रह सकी।

अमरनाथ का यह कहना था कि शान्ता चुपचाप अपने मायके चली जाये अन्यथा एमिली उससे विलायत जाकर झगड़ा करेगी और कम-से-कम उसकी नौकरी छूट जायेगी।

शान्ता मन में यह सोचती थी कि यदि वह उसका कहना नहीं मानती तो एमिली विलायत लौट जायेगी, अमरनाथ की नौकरी छूट जायेगी, और साथ ही वह उसका शत्रु बन जायेगा और उस अवस्था में भी वह उसके साथ रह नहीं सकेगी। साथ ही वह स्वयं भी अमरनाथ से घृणा करने लगी थी। इस कारण मन पर पत्थर रख वह शाहदरे चली आई। वह तो बीस रुपये मासिक भी स्वीकार नहीं करती परन्तु बच्चों का पालन और शिक्षण आवश्यक मान वह यह सहायता स्वीकार करने लगी।

जिस दिन शान्ता ने ससुराल छोड़ी, तो वह घर से सिवाय उन कपड़ों के जो वह स्वयं और बच्चे पहिने हुए थे और कुछ नहीं लाई थी। वह अपने भूषण भी उतारकर वहा छोड़ आई थी। एमिली को जब यह पता चला तो वह चकित रह गई।

वह अमरनाथ के साथ ही लन्दन से आई थी और अमरनाथ ने उसे नीडोज होटल में ठहराया था। अमरनाथ स्वय भी उसके साथ रहता था। जब शान्ता चली गई और यह समाचार अमरनाथ के पिता को मिला तो अमरनाथ भी उनके पास बैठा था। अमरनाथ के बडे भाई के लडके विनोद ने यह समाचार उनको दिया था उसने आकर कहा, "चाचा! चाची चली गई।"

"कैसे गई है ?" अमरनाथ के इस पूछने का आशय था कि घर की गाडी में गई है या भारे की गाडी में। लडके ने इसका आशय न समझ कहा, "रोती हुई गई है।"

अमरनाथ के पिता ने कहा, महापातकी हो तुम अमरनाथ! अब मुझको अपना काला मुह नहीं दिखाना।"

"पर पिताजी आप जरा मेरी बात तो समझने का यत्न करिये। वह अनपढ, गवार औरत मेरी जिन्दगी में बाधा बनी रहती। गई है तो अपने स्थान पर शोभा पावेगी। निर्धन हलवाई की बहिन अपने स्तर के आदमी से विवाह ।"

बूढे बाप से यह सुना नहीं जा सका। उसने एक चाटा अपने, होने वाले डिप्टी कमिश्नर, पुत्र के मुख पर लगाकर कहा, "चले जाओ यहां से।" वह इससे अधिक नहीं कह सका और अचेत हो वहीं, जहा बैठा था, लेट गया। अमरनाथ को यह अति गवार-पूर्ण और मूर्खता-पूर्ण व्यवहार लगा। इससे बिना इस बात का विचार किये कि उसका पिता अचेत हो गया है उठकर नीडोज होटल चला गया।

उसने जाकर अपनी अंग्रेज बीबी से अपने अपमान की बात कही तो उसको भी दु ख हुआ। वह अमरनाथ की बात को ठीक समझती थी। इगलैंड के आचार-विचार में पली होने के कारण वह उस विवाह को विवाह ही नहीं मानती थी, जिसमें पूर्व प्रेम उत्पन्न न हुआ हो। इससे उसको शान्ता के अपने भाई के घर चला जाना ठीक ही प्रतीत हुआ। इस पर भी जब अमरनाथ ने यह बताया कि वह अपना सब कुछ, जो वह

अपने माता-पिता के घर से लाई थी और जो कुछ उसे ससुराल से मिला था, छोड़ गई है और बहुत ही साधारण कपड़े, जो वह नित्य पहनती थी वही पहन कर गई है, तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

"क्यों ? ऐसा क्यों किया है उसने ? क्या आप लोगों ने उसको सामान ले जाने से मना किया था ?"

"नहीं ! इसके विपरीत दो दिन हुए मैंने उससे कहा था कि जो भूषण-वस्त्र उसके पास हैं, दस सहस्र रुपये के होंगे, उनको बेच वह बच्चों की पढ़ाई का प्रबन्ध कर सकेगी।"

"अब आप उसको मासिक क्या देना चाहेंगे ?

"मैंने उसे बीस रुपया मासिक देने का वचन दिया है।"

"बस ?"

"वह तो इतना भी शायद नहीं लेगी।"

"मैं समझती हूँ। भारी मूर्ख औरत है। शायद उसकी इच्छा दूसरा विवाह कर लेने की होगी ?"

"हिन्दुओं में औरतें दूसरा विवाह नहीं करतीं। विधवा हो जाने पर भी वह दूसरा विवाह नहीं करेगी।"

एमिली के लिए यह सब कुछ विस्मय में डालने वाला था। वह तो इस व्यवहार को अयुक्ति-संगत मानती थी।

पश्चात वे दोनों पंजाब क्लब में, जिसका अमरनाथ सदस्य बन गया था, चले गये। वहां एक-दो खेलें 'ब्रिज' का खेल और 'पैग व्हिस्की' पी रात को खाने के समय से पहले होटल में आगये। वहां होटल के नौकर ने उनको कागज का एक टुकड़ा जो उनके लिए कोई छोड़ गया था, दिया। यह कागज़ उसके बड़े भाई कैलाशनाथ का लिखा था। उसमें लिखा था, 'पिताजी की हालत बहुत खराब है। चले आओ।'

अमरनाथ ने समझा कि शान्ता को वापिस बुलाने के लिए, बहाना कर, उसको घर बुलाया जा रहा है। इससे उसने चिट्ठी फाड़कर रद्दी की टोकड़ी में फेंक दी और एमिली को बिना कुछ बताये खाने के कमरे में

चला गया। खाने के पश्चात् होटल में 'बाल' था, दोनो ने उसमें भाग लिया और रात के बारह बजे आकर सो गये।

प्रात उठने पर उसको सूचना मिली कि उसके पिता का देहान्त हो गया है। इससे एक क्षण तक अमरनाथ को शोक हुआ। परन्तु तुरन्त ही अपने को सावधान कर उसने एमिली को इस घटना की सूचना दे दी और दोनो ने कपडे पहन, प्रात की चाय पी। पश्चात् दाह-सस्कार में सम्मिलित होन के लिए चले गये।

पिताजी का देहान्त हृदय की धडकन बन्द हो जाने के कारण हुआ, ऐसा विख्यात किया गया। शान्ता के घर से चले जाने की बात किसी सम्बन्धी अथवा परिचित को नहीं बताई गई। सब लोग आये और शोक प्रकट करते रहे। किसी ने पूछा कि शाहदरे वाले नहीं आये, तो बता दिया गया कि उनकी लडकी दुराचारिणी है। अपने-आप घर छोड चली गई है। इस कारण उसके भाई को आने में लज्जा लगती है।

अमरनाथ, पिता की तेरहवीं के पश्चात् अपनी नौकरी पर रावलपिंडी चला गया। वहां जाकर उसने अपनी रुचि विशेष दो बातो में प्रकट की। एक वहां के अग्रेज समाज से मेल-जोल। वह वहा की अग्रेजी क्लब का सदस्य बन गया। साथ ही फ्री-मेसन भी होगया। दूसरी बात जो उसकी रुचि की पात्र हुई वह लडके और लडकियों की अग्रेजी ढग पर शिक्षा थी। उसने सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षाओं को प्रचलित कराने में भारी सहायता दी। ईसाइयों ने, जो अमीर हिन्दुस्तानी लडकों और लडकियों के लिए स्कूल खोले हुए थे, उनको नि शुल्क भूमि और दान-दक्षिणा दिलाने में वह विशेष रुचि प्रकट करता था। इन दोनों बातों के कारण सरकरी अफसरों में उसका बहुत मान था।

एमिली चोपडा यद्यपि इगलैण्ड की प्रथाओं को पसन्द करती थी, इस पर भी उसकी रुचि हिन्दुस्तानी रस्मो रिवाज को समझने में थी। यह उनमें घुल-मिल जाने के लिए नहीं, प्रत्युत हिन्दुस्तान से परिचय प्राप्त करने के लिए थी। इसके लिए उसने हिन्दुस्तानी बोलना और पढना सीखा,

एमिली के विचारों को सबसे बड़ी ठेस उस दिन पहुँची जब वह एक स्त्रियो का आश्रय-स्थान जो तपोवन के नाम से विख्यात था देखने आई। यह वास्तव में एक विधवा-आश्रम था और इसमें वे हिन्दू विधवाएँ रहती थीं, जिनके पालन-पोषण का प्रबन्ध नहीं था।

तपोवन वालों को कई बार यह सुझाव दिया गया कि डिप्टी कमिश्नर साहब की बीवी को अपने आश्रम में निमन्त्रित करें। तपोवन की व्यवस्थापिका, गायत्रीदेवी, बहुत यत्न करने पर भी यह समझ नहीं सकी कि क्यो उसको बुलाया जाये। आर्यसमाज के प्रधान श्री बानाराम की स्त्री चेतनकौर ने आकर गायत्रीदेवी से कहा था और जब उसने इसमें लाभ पूछा तो वह कहने लगी, "बड़े अफसर की बीवी है। साथ ही हिन्दुस्तानी औरतों की भलाई में रुचि रखती है।"

मुझको उसके कामो से सहानुभूति नहीं। वह उस दिन सेन्ट मेरी स्कूल में गई थी और उसने विधवा प्रथा पर हँसी उड़ाई थी। उसको हमारी संस्था के उद्देश्य से सहानुभूति ही नहीं तो वह यहा आकर क्या करेगी। देखो चेतन बहिन! मुझको उसके पति से कुछ लेना नहीं। हम संसार से बाहर होकर बैठी हैं, मैं नहीं चाहती कि वे लोग आकर हमारी शान्ति को भंग करें।"

"आश्रम के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो उसकी प्राप्ति में सहायता मिल सकती है।"

"मैं उन लोगों से, जो हमारे उद्देश्यों को ठीक नहीं समझते, एक दमड़ी की भी सहायता लेना नहीं चाहती।"

सब संसार, पैसे वालो से पैसा लेता है, जो देते हैं भगवान उनका भी भला करता है जो गाली देते हैं हम उनका भी भला चाहते हैं।

गायत्री देवी ने बात समाप्त करने के लिए कह दिया, "हमारे और आपके विचारों में भेद है। भगवान क्या करता है, यह जानने की मुझमें क्षमता नहीं। पर मैं क्या करती हूँ यह मैं जानती हूँ। हम दुखियारियों को किसी अफसर की बीवी से सहायता की आवश्यकता नहीं।"

"इस पर भी वह आवेगी, मैं जानती हूँ। वह बहुत हठी औरत है। जहां उसको बाधा प्रतीत होती है, उसको लांघकर जाने में उसको आनन्द आता है।"

"आप उनसे मिली प्रतीत होती हैं।"

"हां! लालाजी मुझको ले गए थे। बहुत ही मिलनसार औरत है। बात करती है तो मालूम होता है कि मानो मुख से मोती झरते हैं। हमने आर्यसमाज के विषय में उनको बताया और वह यह जानकर प्रसन्न हुईं कि आर्यसमाज हिन्दू-धर्म में सुधार करने वाली संस्था है।"

"और इतना बड़ा झूठ आप बता आईं?"

"यह झूठ है क्या?"

"मैं जो कुछ जानती हूँ उससे तो आपका कथन सत्य प्रतीत नहीं होता। महर्षि दयानन्द ने प्राचीन वैदिक धर्म के प्रचार के लिए आर्य-समाज की स्थापना की है। सुधार का इसमें कहीं नाम तक नहीं है। हिन्दू-धर्म में जो कुछ प्रचलित है, उसमें जो कुछ अवैदिक है वही तो बदलना है। जो बदलना है वह हिन्दू-धर्म नहीं। इससे हिन्दू-धर्म में सुधार की बात कहां से आगई? सुधार तो तब कहते, जब वास्तविक हिन्दू-धर्म में परिवर्तन की आवश्यकता मानते।"

चेतनकौर बेचारी युक्ति करना नहीं जानती थी। उसने जो कुछ अपने पति से सुन रखा था वही कह दिया करती थी। वास्तव में हिन्दु-धर्म क्या है, उसी पर मतभेद का उल्लेख गायत्री देवी ने किया था। अपने विचार को और स्पष्ट करने के लिए गायत्री देवी ने कहा—'महर्षि स्वामी दयानन्द ने कपोल-कल्पित हिन्दू-धर्म का खंडन किया है। वह हिन्दू-धर्म जो सनातन है, शाश्वत है, और सत्य है, उसमें आर्यसमाज क्या सुधार करेगा?"

इस अवहेलना के किए जाने पर भी एमिली वहां आई। आश्रम के द्वार पर चपरासी ने रस्सी खेंच भीतर की घंटी बजा दी। गायत्रीदेवी आई और एक अंग्रेज महिला को देख समझ गई। उसने कहा, "आइये।

कार्यालय में आ जाइये।"

एमिली उसके साथ द्वार लांघ कार्यालय में पहुंच गई। वहां उसको लकड़ी की सीट वाली एक कुर्सी पर बिठाते हुए गायत्रीदेवी ने कहा,—"क्षमा करिये, यहां गद्देदार कुर्सी नहीं है। आप के लिए जल मंगवाऊं ?"

"नहीं ! धन्यवाद !"

"मैं समझती हूं कि आप जिलाधीश की धर्म-पत्नी हैं। मैं भूल तो नहीं कर रही ?"

"आप ठीक समझी हैं। पहले तो आप यह बताइये कि आपने मेरे यहां आने को पसन्द क्यों नहीं किया ?"

"मैंने आप के आने को पसन्द नहीं किया। मैंने तो अपनी ओर से आपको यहां आने का कष्ट देना उचित नहीं समझा। इस आश्रम में कोई ऐसी बात नहीं जो आप के मन में विनोद उत्पन्न कर सके।"

"इसके विषय में जानकर मेरी ज्ञानवृद्धि तो हो सकती है।"

"उसके लिए यहां से कोई बाधा नहीं है, परन्तु हम कैसे आपको निमंत्रण दे सकती थीं कि आकर हम दुखियारियों की दशा देख अपनी ज्ञानवृद्धि करें ?'

"आप के आश्रम को कुछ सरकारी सहायता की आवश्यकता हो तो मैं . ।"

'यह काम सरकारी नहीं होना चाहिए। हम सब स्त्रियां यहां एक परिवार की भांति रहती हैं। यहां का प्रत्येक काम हम आपस में मिल-कर कर लेती हैं। हम सब, दिन में तीन घण्टा ऐसा काम करती हैं जिससे आय होती है और हमारा निर्वाह हो जाता है। शायद यह आपको पता नहीं कि मनुष्य को अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत कम काम करने की आवश्यकता होती है।"

"फिर मैं आप के लिए क्या कर सकती हूं ?"

इसने एमिली के मन पर भारी ठेस पहुंचाई और वह इन औरतों के विषय में विचार करने लगी। वह आश्रम देखने लगी। सौ के लगभग विधवाएं रहती थीं। सब अवस्थाओं की थीं। अच्छी, सुन्दर, सुडौल, युवा, वृद्ध, साधारण और कुरूप। एक बात जो उसको विशेष प्रतीत हुई, वह संतोष की मुद्रा थी जो सब के मुख पर झलक रही थी।

आश्रम देखते हुए उसने एक युवतीसे पूछ ही लिया, "तुम पुनः विवाह क्यों नहीं कर लेती ?"

"विवाह के बिना मुझको यहां कोई कष्ट नहीं, मेरी आत्मा में शान्ति है, सुख है और इस सुख के स्थिर रहने का विश्वास है।"

'सब औरतें विवाह करती हैं।" एमिली का कहना था।

"हमने भी किया था।"

"फिर भी तो हो सकता है ?"

"विवाह के अतिरिक्त भी तो करने को काम है। जीवन का परम कर्त्तव्य, आवागमन से मुक्ति प्राप्त करना, भी तो करने को काम है।"

"ये आप लोग कैसे करती हैं ?"

"ज्ञान-प्राप्ति से और निष्काम-भाव से कर्म करने से।"

एमिली इन बातों को समझने की योग्यता नहीं रखती थी। उसने देखा कि वह तपोवन में गई और बिना किसी प्रकार से भी वहां रहने वाली विधवाओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किए लौट आई। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि उन लोगों के लिए उसका वहां आना कोई विशेष बात नहीं हुई।

एमिली को तपोवन की घटना से विलायत में एक सहेली की बात याद आ गई। उसने स्कूल फाइनल कर विवाह कर लिया था। वह लड़की और उसका पति परस्पर बहुत प्रेम करते थे। उसकी सहेली ने एक दिन, उसको बताया था; कि वह अपने पति को अपनी आंखों से ओझल कर जीती नहीं रह सकती। दुर्भाग्य की बात थी कि उसका पति एक रेल की दुर्घटना से मर गया। पति-पत्नि दोनों एडिनबरा से लन्दन

तक रेल में यात्रा कर रहे थे कि दुर्घटना हो गई और पत्नी के देखते-देखते पति का देहान्त होगया। एमिली ने और उसकी अन्य सहेलियों ने अति-विस्मय किया था, जब अपने पति के मरने के एक मास के भीतर ही उसने दूसरा विवाह कर लिया था।

तपोवन में वह यह देखकर आई थी कि स्त्रियां विधवा हो गई हैं उनका अपने पति से प्रेम उसकी सहेली के प्रेम से एक अंश-मात्र भी नहीं था। इस पर भी वे पुनः विवाह के लिए उत्सुक प्रतीत नहीं होती थीं।

वह जानती थी कि योरुप में विधवाओं की ऐसी संस्था की न तो जरूरत है और न होगी।

५

जब अमरनाथ की बदली रावलपिंडी से गुजरांवाला में हुई तो वहां के लोगों ने और अनेक संस्थाओं ने उसको विदाई में दावतें दीं और उसको स्मृति-उपहार दिए। एमिली को इनसे बहुत प्रसन्नता हुई। इस पर भी जैसी वह आई थी वैसी वह गई नहीं।

एक तो उसके एक लड़का हो चुका था और दूसरा बच्चा होनेवाला था। दूसरे वह हिन्दुस्तानी विचारधारा की एक ठोकर खा चुकी थी। गायत्रीदेवी का उसको कहना कि उनके काम में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उनको शान्ति से अपने दिन व्यतीत करने देना ही उनकी भारी सहायता है, उसके हृदय में चुभ गया था। बच्चा पैदा होने के समय उसने घूमना बन्द कर दिया था, इस कारण घण्टों ही घर बैठी हुई वह हिन्दुस्तानी मानसिक अवस्था पर मनन करती रहती थी।

गुजरांवाला में एक दिन, जब वह सातवें महीने में थी, उसको कोठी के बाहर 'नारायण हरि' का शब्द सुनाई दिया। उसकी कोठी के बाहर चौबीस घंटे चपरासी या चौकीदार बैठा रहता था। चपरासी ने साधु को कहा, "जाओ बाबा! यह बड़े साहब का बंगला है।"

भीतर आजाइये।"

"मां ! पिताजी घर पर हैं ?"

"हां, अपने काम में लगे हुए हैं।"

"तो उनको कहिए कि आजावें तब मैं आ सकता हूं।"

"तो जरा ठहरिए।"

वह कोठी के दूसरी ओर गई और अपने पति को बुला लाई। अमरनाथ ने आकर कहा, "बाबा जी, आजाओ" और चिक उठा दी।

साधु भीतर चला आया। उसको एक कुर्सी पर बैठाकर अमरनाथ और एमिली दूसरी कुर्सियों पर बैठ गए। साधु ने कहा, "आज्ञा करो माजी !"

"आपने रुपया क्यों नहीं लिया। इससे तो कई दिन के लिए रोटी मिल जाती।"

"पर मुझको तो केवल दो रोटी की जरूरत थी।"

"तो शेष दाम अगले दिन और फिर उससे अगले दिन के लिए व्यय हो जाता।"

"और तब तक उन दाम को सुरक्षित रखने की चिन्ता मोल ले लेता।"

"पर वह नित्य मांगने की चिन्ता तो कई दिन के लिए मिट जाती।"

"दूसरी चिन्ता तो आधा घण्टा से अधिक कभी नहीं हुई। स्नान आदि और नित्य से छुट्टी पा मैं नगर के एक ओर चल पड़ता हूं। किसी एक घर में 'नारायण हरि' की आवाज देता हूं और वहां से खाने भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता। उस दिन भूखा रहता हूं। समझता हूं भगवान को ऐसा रखना ही स्वीकार होगा, इस पर भी चिन्ता नहीं रहती। ऐसा दिन कभी वर्ष में एक-आध बार ही आता है।"

"भूखा रहने से चिन्ता नहीं होती क्या ?"

"भूखा रहने से कष्ट होता है। चिन्ता नहीं। कष्ट होता है शरीर

को, चिन्ता होती है मन को। यह भयकर वस्तु है।"

"कष्ट, चिन्ता को उत्पन्न करने वाला नहीं होता क्या ?"

"होता है। परन्तु उनको जो शरीर को ही जीवन का मुख्य ध्येय मानते हैं। मेरे लिए शरीर उस परम उद्देश्य की प्राप्ति में साधन है। कम खाता हूं, मोटा पहनता हूं। इस शरीर को किसी परोपकार के कार्य में लीन रखता हूं। इस प्रकार इसको कुमार्ग पर जाने से रोकता हूं।"

"शरीर को दुर्बल कर कुमार्ग से हटाना भी भला कोई अच्छी बात है ? क्या यह अच्छा न होगा कि शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाया जाय फिर इससे परोपकार कार्य किया जाय। कभी उच्छृङ्खलता से शरीर-सीमा का उल्लघन कर दे तो इसको क्षमा कर पुनः सीधे मार्ग पर रहने के लिए प्रेरणा दी जाए ?"

"आप ठीक कहती हैं। परन्तु हमारी जीवन-मीमांसा इससे भिन्न है। शरीर का स्वस्थ और सबल होना आवश्यक है, परन्तु उतना ही जितना कि मन और आत्मा के नियन्त्रण में रह सके। आत्मा इस शरीर रूपी रथ का मालिक है। मन सारथि है और शरीर की इन्द्रियां रथ के घोड़े हैं। घोड़े बलवत होने से रथ वेग से चल सकता है परन्तु बलशाली घोड़े तब ही रथ और रथ के मालिक को ठीक मार्ग पर रख सकते हैं जब सारथि घोडों को काबू में रखकर चला सके और सारथि भी मालिक के आदेश में रह सके।"

एमिली को हिन्दुस्तानी विचारधारा का ज्ञान होने लगा था। अमरनाथ एमिली में यह परिवर्तन देख चकित हो रहा था। उसने एक अंग्रेज़ लड़की से विवाह इसलिए किया था कि वह उसके साथ पार्टियों में, नाच-खेल-तमाशों में और सरकारी आयोजनों में जा सकेगी, परन्तु जब तक वे गुजरावाला में आये एमिली रात को नाच पर जाने के स्थान घर बैठ पुस्तक पढ़ना अधिक पसन्द करने लगी। पहले वह अपने पति के साथ क्लब में जाती थी, ब्रिज खेलती थी और ह्विस्की पीती थी, परन्तु अब उसकी इन बातों में अरुचि हो गई थी।

जब शान्ता प्रेमनाथ की पढ़ाई के लिए सहायता लेने आई थी, अमरनाथ रावलपिंडी में काम करता था। वह क्लब में भारी रकम हार चुका था और लाहौर रुपये का प्रबन्ध करने आया हुआ था। उस समय एमिली में अभी परिवर्तन आरम्भ नहीं हुआ था।

जब अमरनाथ, प्रेमनाथ से जहाँगीर के मकबरे में मिला था तब वह गुजरांवाला से लाहौर आ चुका था। इस समय तक एमिली के तीन बच्चे हो चुके थे। सबसे बड़ा लड़का था सोमनाथ। मँझली लड़की थी। उसका नाम सरस्वती था और सबसे छोटा भी लड़का था। उसका नाम रामनाथ था।

लाहौर का डिप्टी कमिश्नर होना एक बड़ी बात थी। प्रेमनाथ को जब पता लगा कि गुल्ली फेंकने वाला लड़का उसकी बीबी से तकरार करने लगा है तो वह वहाँ चला आया परन्तु आकर वह उसके वार्त्तालाप से प्रभावित हुआ था। उसके बाप का नाम और निवास-स्थान जानने पर वह जान गया था कि वह लड़का उसका अपना ही पुत्र है। इससे उसने उसको एक रुपया देने का विचार किया, परन्तु लड़के को लेने से इन्कार करते देख वह क्रुद्ध भी हुआ और प्रसन्न भी। एमिली तो उसके कहने पर कि यह औरत न होती तो मजा चखा देता, बहुत ही प्रभावित हुई थी।

इसके पश्चात् एमिली कई बार कहती रही कि अमरनाथ अपनी पत्नी बीबी को बनाकर मिलाए, परन्तु वह इतने असमंजस में पड़ गया था कि किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका। एक बार वह केवल दस-बीस रुपया महीना प्रेमनाथ की पढ़ाई के लिए मांगने आई थी और उसने देने से इन्कार कर दिया था। यह तब था जब वह रावलपिंडी में डिप्टीकमिश्नर था और हजारों रुपये रिश्वत ले रहा था।

इस प्रकार रहते हुए दो वर्ष व्यतीत हो चुके थे कि जब एक दिन अपनी अदालत के निजी कमरे में बैठे हुए उसने एक लड़के की आवाज सो पर पहले सुना कि दरखास्त लिखने वाले ने प्रार्थना-पत्र देने की

अन्तिम-तिथि न लिखकर गलती की है। उसको कुछ ऐसा समझ आया कि यह वही लड़का है जो जहांगीर के मकबरे में कह रहा था कि हम पहले आये हैं, आपको ज़रा दूर बैठना चाहिए था। इस विचार के आते ही वह कमरे से उठ बाहर आया। इस समय प्रेमनाथ कमरे से बाहिर जा रहा था। अमरनाथ ने पहचान लिया और पेशकार को यह कह दिया कि इस लड़के की अर्ज़ी ले लो और मेरे पास ले आओ।

पेशकार ने चपरासी के द्वारा प्रेमनाथ को बुलवाया और प्रेमनाथ की अर्ज़ी लेकर डिप्टी कमिश्नर साहब के सामने गया। उसके अचम्भे का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि उस लडके की नौकरी लग गई।

६

प्रेमनाथ को अपने पिता के रहस्य का पता चला तो वह गम्भीर विचार में पड़ गया। आधे घण्टे की इस कथा ने उसको कई वर्ष का बूढ़ा कर दिया। वह ऐसा अनुभव करने लगा कि उसको कोई ऐसा काम ससार में अपनी मेहनत से करना है जिससे उसके पिता को पता चले कि उसने प्रेमनाथ आदि का तिरस्कार कर अपने जीवन की महान् भूल की है।

यह कैसे हो ? वह यही विचार कर रहा था। माँ ने उसको चुप और गम्भीर देखकर पूछा, "क्या सोच रहे हो प्रेम ?"

"माँ," प्रेम ने चेतनता प्राप्त करते हुए कहा, "ऐसे बाप का बेटा होने से मैं लज्जा से भूमि में धँसता हुआ अनुभव कर रहा हूं। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

"तुम, बेटा मेहनत और ईमानदारी से काम करो। अपनी ज्ञानवृद्धि में तल्लीन रहो। इसीसे ही तुम अपनी मान-मर्यादा को बना सकोगे।"

'तुम्हारे नाना, एक दुकानदार थे परन्तु जब स्वामी दयानन्द लाहौर में आये तो उनके व्याख्यानों को सुनने वहां से जाते रहे। पुण्यस्मृति महर्षि जी के प्रभाव से एक अनपढ़ हलवाई के मन में यह भावना जागी

कि उसने न केवल स्वयं पढ़ना आरम्भ किया प्रत्युत अपनी लड़की को भी हिन्दी और संस्कृत पढ़ानी आरम्भ कर दी । तुम्हारे मामा यद्यपि कुछ अधिक पढ़े नहीं, तथापि सोने का हृदय रखते हैं । वे यदि न होते तो मैं आज से बहुत पहले ही रावी में डूबकर मर गई होती ।"

"हमारी मुसीबत में जितना साहस और आत्म-विश्वास उन्होंने मुझको दिया उसके लिए तुम्हें उनका आभारी होना चाहिये । इस समय यही तुम्हारे पिता के तुल्य हैं और उनके व्यवहार पर तुम्हारा सिर अभिमान से ऊंचा होना चाहिए ।"

प्रेम सब समझ गया । उसको मामा का उस दिन का मुख स्मरण हो आया जब दस वर्ष पूर्व वह उसको और अपनी बहिन इन्द्रा को दुकान की चौकी पर बिठा अन्दरसे खिला रहा था ।

वह अपने मन में अपनी अवस्था को उन्नत करने का निश्चय कर उठ पड़ा और बोला, "मां, विश्वास रखो तुम कि प्रेम के किसी काम पर लज्जित नहीं होना पड़ेगा ।"

वह मकान के नीचे उतर आया । उसका मामा दुकान के नीचे कहीं जाने के लिए खड़ा था । ज्योति दुकान पर बैठा जलेबी निकाल रहा था । प्रेम ने समीप आ झुककर मामा के पांव छुए और कहा, "मामा जी ! मुझको आशीर्वाद दो न ।"

मामा प्रेम की इस बात से विस्मय में उसका मुख देखता रह गया । पश्चात् मुस्कराकर पूछने लगा, "प्रेम, तुम्हारा विवाह हो रहा है क्या ?"

ऊपर खिड़की में से प्रेम की मां यह देख रही थी । उसने कह दिया, "हां भैया ! आज नौकरी लगी है । अब विवाह भी तो करोगे ही ।"

ज्योति ने जब सुना कि प्रेम की नौकरी लग गई है तो वह प्रसन्नता से उतावला हो कूदकर दुकान से नीचे उतर आया और प्रेम को गले लगाकर बोला, "प्रेम भैया, अब तो दावत होनी चाहिए ।"

'हां ठीक कहा है ज्योति ने ।' प्रेम के मामा ने कहा । वह जहां जा रहा था वहां जाना भूल गया और पास-पड़ोस के लोगों को आवाज

दे-देकर बुलाने लगा, ओ दीन भैया ! हो सन्तु बेटा ! अजी चौधरी गिरधारी ! आओ जी आओ ! प्रेम की नौकरी लगी है।"

लोग धीरे-धीरे आने लगे। गांव-भर में शोर मच गया और जो आता था पाव-भर जलेबी बधाई देने की पाता था। सब जलेबियां समाप्त हो गईं। ज्योति ने और बनाईं। वह भी समाप्त हो गईं। फिर सायंकाल और बनाईं।"

उस गाव वालो को पता चला कि चौदह वर्ष का बालक कानूगो नियुक्त हुआ है तो सब विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखते रह गए। जलेबी खाते और भगवान का गुणानुवाद करते जाते थे।

अगले दिन सफेद धुले हुए कपड़े पहन प्रेम कानूगो के कार्यालय में गया और तहसीलदार की आज्ञा दिखा चार्ज मागा। पहला कानूगो एक मुसलमान, करीमबख्श नाम का था, जो तीस वर्ष से वहा काम करता था। उसने बुढ़ापे के कारण काम से छुट्टी पाने की अर्जी दी हुई थी। आज एकाएक गाव के छोकरे को चार्ज देते समय, जहां उसे विस्मय हुआ वहां उसे खुशी भी। उसने उठकर प्रेम को गले लगाया और पीठ पर हाथ फेर कहा, "मैं यहीं गाव में ही रहूंगा। कुछ दिन मुझसे आकर काम सीख जाना बेटा ! यह काम तुमको सौंपते हुए आज मुझे बहुत खुशी हो रही है। इस काम में तनख्वाह तो सिर्फ चालीस ही रुपये है, पर आमदनी, जितनी चाहो हो सकती है। खुदा करे जल्दी ही शाहदरा में एक आलीशान कोठी खड़ी हो और उसमें प्रेम बाबू अपनी छोटी-सी बीवी के साथ सुख और आनन्द से रहे।"

करीमबख्श ने प्रेमनाथ को काम बहुत अच्छी तरह समझाया। कानून, लगान, पैमायिश, दाखिल, खारिज इत्यादि सब बातें बताईं। खेत के नक्शे समझाये। वह उसको अपने साथ बाहर ले गया और खेतों के झगड़ों में फैसला करने की तरकीबें बताईं। इस प्रकार पुराने कानूगो ने नये कानूगो को अपनी गद्दी पर बैठा दिया।

साप्ताहिक रिपोर्ट तहसीलदार के पास जाने लगी और दूसरे-तीसरे

दिन प्रेम को तहसीलदार के इजलास में स्वयं भी उपस्थित होना पड़ता।

हर रोज मां प्रेमनाथ से पूछती, "बताओ बेटा! काम कैसा चल रहा है?"

'ठीक है मां! आज तहसीलदार साहब से मिलने गया था। वे मेरे कद और उमर का विचार कर तो मेरा मुख देखते रह जाते हैं। इस पर भी काम से पूरा सन्तोष प्रकट कर रहे हैं। आज मैंने फर्मु जुलाहे के झगड़े पर नक्शा और जिरह पेश की तो तहसीलदार ने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "शाबाश प्रेमनाथ! तुम किसी दिन अपने बाप का नाम रोशन करोगे।"

मां इससे बहुत प्रसन्न हुई। उसने पूछा, "क्या झगड़ा था फर्मु का?"

'फर्मु के बाप का नाम मीरा था। उसकी दरिया के किनारे बीस बीघा जमीन थी। उसमें से चार बीघा के लगभग दरिया के नीचे आगई है। बाकी सोलह में फर्मु तीन भाई और बहिनें हैं। बहिनों ने अपना भाग विवाह के समय दाखल-खारिज करवा लिया था। दोनों ने तीन-तीन बीघा ऊंची जमीन ले ली है। बाकी दस बीघा में फर्मु कहता था कि उसको पांच बीघा ऊंची जमीन मिल जावे। मुकद्दमा तहसीलदार की अदालत में दो वर्ष से लटक रहा था। मैंने जमीन का मोल लगाकर साथ रुपये देने-लेने का हिसाब बना दिया। तीनों भाइयों को मंजूर हो-गया और तहसीलदार ने मुझको शाबाश दी।"

"बाबा करीम बख्श कहता था कि सौ रुपये आमदन का मुकद्दमा था।"

"तभी?" प्रेमनाथ की मां ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "फर्मु की बीवी कल आई थी। दो तरबूज और बीस रुपये लाई थी। मैंने पूछा यह कैसे हैं तो कुछ उत्तर नहीं दे सकी। मैंने नहीं लिए, उसको वापिस भेज दिये थे।"

"हां, ठीक किया है तुमने। पर मुझको आज तहसीलदार का पेशकार कहता था, 'बाबू प्रेमनाथ! इस महीने तुम सरदार साहब को सलाम

करने नहीं आये ?"

मैंने कहा—"अभी कल ही तो अदालत में हाज़िर हुआ था; आज भी आया हूं।"

पेशकार हंस पड़ा और मेरे कान में बोला, "हर जैल से सौ रुपया महीना आया करता है। भाई, पीछे न रहना, नहीं तो कुछ गड़बड़ हो सकती है।"

"पर मैं चालीस रुपये का मुलाज़िम सौ रुपया कहां से लाऊंगा।"

"यह कर्म से क्या लिया है ?"

"कुछ नहीं।"

"तो मूर्ख हो। एक सौ रुपये का काम था। अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो इतने मुकद्दमों में, जितने तुमने एक महीने में निपटाये हैं, पांच सौ बनाता। चार सौ अपने पास रखता और एक सौ रुपया सरदार साहब की नज़र करता।"

मैंने कहा, "भैया मुझसे यह न हो सकेगा।"

"तो नौकरी कर चुके। कोई और काम ढूंढ लो।"

"मां, यह एक नई मुसीबत है। तुम क्या कहती हो ?"

मां ने प्रेम की आंखों में देखते हुए कहा, "क्या करना सोच रहे हो ?"

"मैं नौकरी छोड़ने का विचार कर रहा हूं। पर मां, बिना तुम्हारी आज्ञा के यह भी नहीं कर सकता। इस नौकरी के मिलने से पहले तीन महीने जो सड़कों की धूल छानी है, उसे मैं जन्म-भर नहीं भूल सकता। फिर तुम्हारी कठिनाई भी मुझको स्मरण है। क्या करूं कुछ समझ नहीं आता।"

मां ने प्रेम का माथा चूमकर उसको प्यार दिया। पश्चात् कहा, "प्रेम, मेरी चिन्ता न करो, मैं तो भगवान के सहारे इस मंझधार में पड़ी हुई हूं। घूंस कदापि न लेना। हां, एक बात करो, कल तहसीलदार के घर जाकर उसको सफ़ा कहदो कि यह तुम से नहीं हो सकेगा। यदि उसको

जवान में पथलाहट सुनना, या बल देखना तो घर आकर इस्तीफ़ा दे देना।"

मा की इस दृढ़ता को देख प्रेम का मन प्रसन्नता से उमड़ने लगा। उसने प्रसन्नता से उबलते हुए कहा, "मां, तुम विश्वास रखो, तुम्हारा प्रेम कोई ऐसी बात नहीं करेगा जिससे तुम्हारी शिक्षा पर कोई भी कलंक लगा सके।"

७

अमरनाथ ने प्रेम को नौकरी दे, घर जाकर एमिली को बताया कि उसने क्या किया है। एमिली ने तो यह समझ रखा था कि उसका पति अपनी पहली स्त्री से घृणा करता है। तभी तो न कभी उसे बुलाता है और न कभी उससे मिलने जाता है। परन्तु उसके लड़के को इस प्रकार नौकरी देते देख उसको सन्देह होगया कि उसके हृदय के किसी छिपे कोने में अपने लड़के के लिए प्रेम विद्यमान है। उसने पूछा, "आपको इस प्रकार उससे रियायत करने की क्या आवश्यकता थी?"

"मैंने रियायत नहीं की। जितने भी प्रार्थी और थे उन सबसे यह लड़का अधिक योग्य और समझदार प्रतीत होता है।"

"यह कहना भी शायद रियायत ही प्रतीत होती है। अपनी वस्तु सबको भली प्रतीत होती है।"

"यह आज तुमको क्या होगया है एमिली! पहले तो तुम उसकी मा से मिलने के लिए बहुत ही लालायित प्रतीत होती थीं?"

"हां, और अब भी हूँ। परन्तु मैं तो आपसे पूछ रही हूँ कि तीन वर्ष से तो मेरी बात मानी नहीं। आज एकाएक कैसे उस लड़के पर दयालु हो पड़े? चौदह वर्ष के छोकरे को इतनी ज़िम्मेदारी की जगह दे दी।"

अमरनाथ इसका उत्तर देना नहीं चाहता था। वह चुप रहा और बात पलटकर बोला, "सोमनाथ कह रहा था कि उसके स्कूल का ड्रामा

हो रहा है और उसमें भाग लेने के लिए अपने खर्च में से विशेष पोशाक बनवा रहा है। उसको उसके लिये पचास रुपये चाहियें, तुम कल उसके स्कूल चली जाना और पता कर रुपये दे आना।"

एमिली समझ गई कि उसका पति अपनी पहली बीबी के विषय में बात करना नहीं चाहता, इससे वह चुप रही। अमरनाथ ने अपनी बात को जारी रखा जिससे एमिली पुनः प्रेम की बात न पूछ ले। उसने कहा, "आज लैफ्टिनैन्ट गवर्नर ने अपनी कोठीमें एक पार्टी देनी है। युद्ध के विषय में क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय पर विचार हो रहा है। इस कारण जब तक मैं स्नान कर तैयार होता हूँ, तुम भी चलने के लिए कपड़े पहन लो।"

"मेरी आज वहाँ जाने की रुचि नहीं हो रही।"

"क्यों ?"

"आज यहाँ कोई साहब मिलने आ रहे हैं।"

"कौन हैं वे ?"

"बंगाल के एक विख्यात महात्मा हैं। निरूपानन्द जी सरस्वती एम० एस० सी०।"

"उनको फिर किसी दिन आने को कहा जा सकता है। गवर्नर की पार्टी से अनुपस्थित रहना ठीक नहीं होगा।"

"वह पंजाब के गवर्नर हैं, आप डिप्टीकमिश्नर हैं लाहौर के। पर मैं क्या हूँ ? मेरे लिये वहाँ जाना क्यों ठीक है ?"

"तुम एक अफसर की बीबी हो। एक अफसर की बीबी का उत्तर-दायित्व तुमको उसके साथ चलने को कहता है।"

एमिली यह सुन गंभीर विचार में पड़ गई। उसने कहा, "यद्यपि मैं यह अपना कर्त्तव्य नहीं समझती, तो भी आपके कहने से आपके साथ चलती। परन्तु मैंने बहुत मिन्नत कर स्वामीजी को आने के लिये मनाया है। वह बहुत ज्ञानी आदमी हैं।"

अमरनाथ यह देख रहा था कि एमिली दिन-प्रतिदिन इन साधुओं के

चक्कर में पड़ती जाती है। उसने स्वयं इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। वह आत्मा-परमात्मा, द्वैत-अद्वैत इत्यादि बातों को व्यर्थ का मस्तिष्क का व्यायाम मानता था। इस पर भी आज तक उसने एमिली की किसी बात को मना नहीं किया था।

आज वह चाहता था कि एमिली पूर्णरूप से शृंगार कर उसके साथ पार्टी में चले और सौन्दर्य से उसकी शोभा बढ़ाए, परन्तु एमिली को हठ करते देख उसने कहा, "यदि पार्टी पर नहीं चल सकतीं तो रात को 'वारफंड' एकत्र करने के लिये बाल में तो चलोगी ?"

"हां, वहां चलूंगी। पर एक शर्त पर। आपने शराब नहीं पीनी होगी।"

"मैं पीकर अन्ट-सन्ट बोलने लगता हूं क्या ?"

"नहीं, यह बात नहीं। मुझको कुछ शराब पीने से अरुचि होती जाती है।"

"तो तुम नहीं पीना।"

"पर मुझको पीकर झूमते हुए के साथ चलने में लज्जा लगती है।"

"पर वहां तो सब पीते हैं।"

"इसी से तो कहती हूं कि आप वहां जाने वालों में सबसे श्रेष्ठ दिखाई दें। मेरी यही इच्छा है।"

"अजीब औरत हो तुम ? क्या तुम यह चाहती हो कि मैं सब अफसरों में भेड़ू बनूं और सब मेरी हंसी उडायें ? और फिर दिनप्रतिदिन उन्नति करने के स्थान पर मेरी अवनति होने लगे ?"

"मैं ऐसा नहीं चाहती। परन्तु मुझको अचम्भा तो इसी बात का है कि बुरे काम करने वालों को आप दण्ड देते हैं और स्वयं ऐसे समाज में घूमते हैं जहां शराब पी मद मग्न हो लोग दूसरे की बीवियों से नाच करते हैं और बेहूदा ढंग से एक-दूसरे से बातें करते हैं।"

"सब देशों में शासक-श्रेणी का रहन सहन ऐसा ही है।"

"भगवान ही उनकी रक्षा करे।"

"तो तुम भगवान को मानने लगी हो ?"

"इसके विना मुझको कोई मार्ग ही नहीं सूझता । आप वाल पर किस समय चलेंगे ?"

"रात साढ़े नौ वजे चलना होगा ।"

"मैं तैयार रहूँगी ।"

अमरनाथ गवर्नर की पार्टी पर गया ही था कि स्वामी निरूपानन्द और उनके दो शिष्य एक पचीस हजार की 'विल्लज नाइट गाड़ी' पर वहाँ आ पहुँचे ।

एमिली ने वगले के वाहर आ स्वामीजी का स्वागत किया । उनको भीतर ड्राइंग रूम में ले गई । वहाँ विठाया और चाय का प्रवन्ध करा दिया ।

चाय पीते-पीते स्वामीजी ने एमिली के जन्म से लेकर उस दिन तक की मुख्य-मुख्य वातों के विषय में पूछ-ताछ कर ली । एमिली ने वता दिया —

"वह वरमिंघम के एक धनी परिवार की लड़की है। उसने कैम्ब्रिज से ग्रेजुएशन किया है और पश्चात् वह लंदन में लॉ का अध्ययन कर रही थी कि उसकी मिस्टर चोपडा से भेंट हुई । दोनों के सम्पर्क में आने के कई कारण वनते गये और वे परस्पर प्रेम करने लगे। जव मिस्टर चोपड़ा आई० सी० एस० की परीक्षा में प्रथम आये तो दोनों ने विवाह करने का निश्चय कर लिया। उस समय मिस्टर चोपडा ने नहीं वताया कि इनका एक विवाह पहले भारतवर्ष में होचुका है ।

"यह मुझको यहाँ आकर पता चल गया परन्तु मैं उनसे इतना प्रेम करती थी कि मैंने उनके इस झूठ को क्षमा कर दिया । मुझको कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि वावू अमरनाथ और उनकी पहली वीवी में कुछ ऐसी वात है जो वे मुझसे छिपाते हैं । मैंने कई वार उनसे अपनी पहली वीवी को वुलाने को कहा है, पर वे, जव भी उसकी वात आती है, चुप कर जाते हैं । यह लुकाव-छिपाव मुझको पसन्द नहीं । इसके

अतिरिक्त मैं स्वयं भी विचार करती हूँ कि इस सम्पूर्ण जीवन का लाभ क्या है? साहब रिश्वत नहीं लेते, यह विख्यात है। पर मैं यह भी जानती हूँ कि हमारे बंगले की पूर्ण सजावट का सामान, जो एक लाख रुपये से कम दाम का नहीं, उन लोगों की भेंट है जिनको वे अनुचित लाभ पहुँचाते रहे हैं।

"मैं जब किसी सभा-सोसाइटी में उनके साथ जाती हूँ तो लोग,उनको भेंट देने के स्थान मुझको भेंट देते हैं। अर्थात् मेरे द्वारा उनको घूस देते हैं। प्राय वे लोग उनसे काम बना ही लेते हैं।

"हमारे घर में जो आटा-दाल आता है वे लोग हमको उधार देते हैं और भगवान जानता है कि उधार बिना चुकाये ही जमा हो जाता है। यह सब जीवन मुझको पागल बनाये जा रहा है। इसी मन की अशान्ति को दूर करने का उपाय ढूंढ़ती-फिरती हूँ। इसी कारण आपकी शरण आई हूँ।"

स्वामी निरूपानन्द इस कथा को सुन हैरान नहीं हुए। वे जानते थे कि बड़े अफसरों के घर कभी कोई ईमानदार पैदा हो जाये तब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्राय. तो ईमानदार आदमी नमक की खान में नमक बन जाने की भांति बेईमान हो ही जाता है और कभी ऐसा नहीं हो पाता तो घर में वैमनस्य और दुविधा उत्पन्न हो जाती है।

इस कारण स्वामी जी ने कहा, "देवी! तुम्हारी समस्या अति दुस्तर है। इस पर भी नदी में गिरे मनुष्य के लिये उसमें से बाहर निकलने के लिये यत्न करना अनिवार्य ही है। इसमें से बाहर निकलने के लिये दो ही मार्ग हैं। एक निवृत्ति का और दूसरा निर्लिप्तता का। निवृत्ति मार्ग तो है उसको छोड़कर बाहर आ जाओ। यह देखने में सुगम प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में इसको कर पाना अति कठिन है। दूसरा मार्ग है, निर्लिप्तता का। यह मन की एक भावना मात्र है। इसमें कमल रूप हो कीचड़ में रहने समान है। यह भावना तब बन सकती है, जब मनुष्य आत्मा को शरीर से पृथक् मानने लगे, और शरीर को आत्मा की प्रेरणा से चलाने

का अभ्यास कर ले।

"तुम जहां रहती हो, चारों ओर भ्रष्टाचार का वातावरण है, परन्तु आत्मा तो शरीर से पृथक् रहने के कारण, उस वातावरण से अलिप्त रह सकता है। निष्काम-भाव से कार्य करने पर अलिप्तता के भाव को पुष्टि मिलती है। साधु-सगत से अपने आत्मा को अपने वातावरण से अलिप्त रखो। कभी उस वातावरण में विचरना भी पड़े तो भी विना अपनी किसी कामना को लेकर जाओ, उसमें विचार से काम लो तो आत्मा को उस वातावरण से पृथक् रख सकोगी।

एमिली इस जीवन-मीमासा से बहुत प्रभावित हुई। संसार माया है। स्वामी निरूपानन्द ने अपनी बात को और स्पष्टकर कहा, "इस माया में रत मनुष्य इससे मोह करने लगता है। जितना मोह अधिक होता है उतनी ही कठिनाई मनुष्य को उससे छुटकारा पाने में होती है।"

इस प्रकार की बातें रात के साढ़े आठ बजे तक चलती रहीं। पश्चात् भोजन के समय स्वामी जी विदा हुए।

इस शिक्षा ने एमिली के मन में क्रान्ति उत्पन्न करदी। वह समझ गई कि वर्तमान परिस्थिति से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है, 'संसार में निर्लेप हो विचरना।'

नौकरी

१

जर्मन का युद्ध अति भयंकर रूप धारण कर चुका था। हिन्दुस्तान से सिपाही फ्रांस के मोर्चे पर जा-जाकर मक्खियों की भाँति मर रहे थे और भारत सरकार अधिकाधिक भर्ती करने में यत्नशील थी।

गवर्नर ने अपनी कोठी में सब बड़े-बड़े अफसरों और नगर के प्रसिद्ध रईसों को चाय-पार्टी दी थी। लाहौर के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर चोपड़ा भी इस पार्टी में आये थे। आज मिस्टर चोपड़ा को अपनी अंग्रेज बीवी के बिना देखकर परिचित चिंता प्रकट कर रहे थे, "मिस्टर चोपड़ा, आज मिसेज नहीं आईं। तबीयत तो ठीक है?"

"कुछ 'मैलन्कोलिया' की बीमारी हो रही है।"

"ओह! बहुत ही भयंकर रोग है।"

"हाँ, रात-भर सोती नहीं। और कभी सोती हैं तो बहुत बड़बड़ाती रहती हैं।"

"चिकित्सा किस की चल रही है?"

"एक सन्यासी हैं श्री निष्पानन्द। सुना है बहुत ही योग्य वैद्य हैं।"

"कब से चिकित्सा हो रही है।"

"अभी आज ही आरम्भ हुई है। कहते हैं बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जाएगी।"

चाय चल रही थी, कि गवर्नर महोदय उठकर उपस्थित नागरिकों और अधिकारियों को बताने लगे, "डीयर ऑफिसरज, फ्रेण्ड्ज एण्ड लोयल सिटिजन्स! मेरा यह बहुत ही कटु कर्त्तव्य हो रहा है कि मैं आपको अपनी होम गवर्नमेंट की कठिनाइयों का वर्णन करूँ। जर्मन की पनडुब्बियों ने इंग्लैंड की भूमि का घेरा डाला हुआ है। आने-जाने वाले जहाजों को

निरन्तर डुबोया जा रहा है, और इसका परिणाम यह हो रहा है कि इंगलैंड के नर-नारी आधा पेट भर ही खा सकते हैं।

"इंगलैंड ने हिन्दुस्तान को जहालत से निकाला है। इस कारण हिन्दुस्तान इंगलैंड का अनन्तकाल तक कृतज्ञ रहेगा। मैं समझता हूँ कि इस पृष्ठ-भूमि को समझकर आप उस ओर ध्यान दें तो आपको विश्वास आ जावेगा कि इंगलैंड को इस भीर के समय सहायता देना हिन्दुस्तान का कर्त्तव्य है।

"जर्मन एक पशुओं की कौम है। वे अपने फौजी बूटों के तले तमाम दुनिया को रौंद डालना चाहते हैं। इस समय जर्मनी को पराजय देना आजाद दुनिया की जीत करानी है। इन्सान को इन्सान बनाने के लिए इंगलैंड को इस युद्ध में सहायता देना एक बहुत ही पुण्य-कार्य है।"

पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओर ड्वायर चाय-पार्टी में हिन्दुस्तान की जर्मन से युद्ध में सहायता मांग रहे थे। इस पर भी उनके प्रत्येक शब्द से यह गन्ध आ रही थी कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों के अहसान में दबा हुआ है और उस अहसान के बदले में इसको अपना धन, जन, माल इंगलैंड के लिए देना चाहिये। इतना कहते-कहते गवर्नर बहादुर के कहने में कुछ बल आगया। वे कहने लगे, "इस समय एक बात मैं हिन्दुस्तानियों के मस्तिष्क में चित्रित कर देना चाहता हूं कि अमरीका से कुछ हिन्दुस्तानी इस आशा से यहां आ रहे हैं कि वे इंगलैंड को अपने घर की व्यवस्था रखने में व्यस्त देख, हिन्दुस्तान में विप्लव खड़ा कर दें। वे समझते हैं कि योरुप के युद्ध में लगे होने के कारण हमारी शक्ति यहां दुर्बल पड़ गई है। इन हिन्दुस्तानियों को समझ लेना चाहिए कि हम अब भी इतनी ताक़त रखते हैं कि इन मच्छरों को मामूली-सा बन्दूकों का धुआं दिखाकर उड़ा देंगे।

"मैं कृतज्ञ-प्रजा से यह अनुरोध करता हूँ कि इन खटमलों को जहां देखें, कुचल डालने का यत्न करें।

आपको इंगलैंड की सहायता फौजी भर्ती में वृद्धि कर करनी चाहिये।

हम चाहते तो इंगलिस्तान की भाँति हिन्दुस्तान में भी सब नौजवानों को भर्ती हो जाने की आज्ञा कर देते, मगर यहां के लोगों की नेकनीयती और देशभक्ति का विचारकर हम आशा करते हैं कि स्वतन्त्रता से ही काफी भर्ती हो जावेगी।

"सब जिलों के लिए हमने कोटा निश्चित कर दिया है। और जिला अधिकारियों को आज्ञा भेज दी है कि अपना-अपना कोटा पूरा करें। नागरिकों को चाहिये कि वे अपने-अपने जिला अधिकारियों की सहायता करें। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि पंजाब के सब जिले अपना अपना कोटा दो मास के अन्दर पूरा कर देंगे।"

पंजाब-गवर्नर के इस व्याख्यान पर सब हाल तालियों से गूंज उठा। पश्चात् 'गाड सेव दि किंग' बैंड ने बजाया और चाय-पार्टी समाप्त हुई।

पार्टी में आये हुए सब लोग यही अनुभव कर रहे थे कि यह भारत के लोगों के सामने प्रार्थना नहीं थी, प्रत्युत आज्ञा थी। यह प्रेरणा नहीं थी, प्रत्युत धमकी थी।

अमरनाथ हृदय से ऐसा ही विश्वास रखता था जैसा गवर्नर बहादुर ने अपने व्याख्यान में कहा था। अब वह मन में सोच रहा था कि भर्ती कराने में किस प्रकार यत्न करे।

जब वह घर पहुंचा तो स्वामी निरूपानन्द जा चुके थे। एमिली 'बाल' में जाने की तैयारी में लगी थी। उसने अपनी 'बाल' के लिये सबसे बढ़िया पोशाक निकाल कर बैरा को लोहा करने के लिये दे दी थी और पाँव के जूते से लेकर सिर पर लगाने की पिन तक प्रत्येक पहरावे की देखभाल हो रही थी।

अमरनाथ ने पहुंचकर पूछा, "क्या हो रहा है ?

"आपने 'बाल' पर चलने के लिए कहा था न ? कपड़े ठीक करवा रही हूं।"

"थैंक यू ! आज वाले स्वामी जी कोई भी थे, भले आदमी प्रतीत होते हैं। वैराग्य की शिक्षा के स्थान नाच पर जाने की बात कह गये हैं।"

"हां, उनका कहना है कि संसार रूपी कीचड़ में कमल बनकर रहना चाहिये।"

"यह सब 'नान सेन्स' है। ससार ही एक सत्य है। खैर, छोड़ो इसको, भोजन की बताओ। यहां होगा या होटल में?"

"डिनर करके चलेंगे। सप्पर होटल में लेंगे। बाई को कह दिया है कि बच्चों को सुला दे। हमें आने में देरी हो जावेगी।"

"वेरी गुड!"

इस समय कपड़े बैरा को देकर एमिली अमरनाथ के साथ बाहिर ड्राइंग रूम में आगई। वहां बैठते हुए उसने पूछा, "पार्टी में क्या हुआ था?"

"गवर्नर बहादुर का व्याख्यान हुआ था। उन्होंने फौज में भर्ती कराने के लिये आज्ञा दी है।"

"तो आप इस विषय में क्या कर रहे है?"

"कल तक सरकारी तौर पर योजना पहुंचेगी। उसके अनुसार काम कराऊँगा।"

"आपको देहातों में घूम आना चाहिये। भर्ती तो वहां ही होगी।"

"मैं अभी एक बात सोच रहा था कि जिला के हर एक जेल में भर्ती करने का दफ्तर खोल दूं और वहां पर लेक्चर दे-देकर लोगों को भर्ती होने की प्रेरणा दूं।"

"ठीक तो है। मैं आपके साथ चला करूंगी।"

"मैं भी तुम्हारे स्वामीजी से मिलना चाहता हूं। उन्होंने तुम में यह सब परिवर्तन कर मुझ पर भारी अहसान किया है।"

एमिली हंस पड़ी।

भोजनोपरान्त दोनों 'बाल' पर चले गए। रात को जब साहब बहादुर और एमिली लौटे तो घड़ी में दिन के साढ़े तीन बज रहे थे। एमिली थककर चूर हो रही थी और साहब शराब के नशे में चूर लुढ़कता हुआ भीतर आया था। दोनों पहुंचते ही बिस्तर पर सो गए।

२

भर्ती के लिये सरकारी योजना आने में और फिर उस योजना के चलाने के लिए साधनों के निर्माण में दो मास लग गये। इस योजना के सम्बन्ध में लाहोर के डिप्टी कमिश्नर ने तहसील के कार्यालय में तहसीलदारों, कानूगो और नम्बरदारों की एक सभा बुलाई थी। वहां पर जिले के बड़े साहब भर्ती की योजना समझाने वाले थे।

प्रेमनाथ को भी उपस्थित होने की आज्ञा मिली थी। साथ ही वह तहसीलदार से अपनी मा की आज्ञानुसार रिश्वत के विषय में बातचीत करने वाला था। उसने एक दिन पहले ही एक पत्र स्वय इस आशय का तहसीलदार साहब को दिया था कि वह उनसे पन्द्रह मिनट के लिये प्राईवेट भेंट चाहता है। तहसीलदार सरदार सुन्दरसिंह प्रेमनाथ के काम से सब प्रकार से सन्तुष्ट था। केवल एक बात थी। जब से वह आया था उसकी आमदनी में एक सौ रुपया महीना की कमी हो गई थी। यह बात उसको खटकती थी और वह इस विषय में प्रेमनाथ को एक दिन बुलाकर समझाना चाहता था। अब उसको स्वय ही पृथक् में मिलने के लिये आता देख उसने सन्तोष अनुभव किया।

जिस दिन जिला के कर्मचारियो की बैठक थी, उसी दिन प्रेमनाथ को भेंट के लिये बैठक से आधा घंटा पूर्व समय मिला।

डिप्टी कमिश्नर अभी नहीं आया था। इस कारण सभा का प्रबन्ध ठीक करके तहसीलदार प्रेमनाथ को साथ लेकर पृथक् कमरे में चला गया। वहां कुर्सी पर बैठ उससे पूछने लगा, "सुनाओ भाई, क्या चाहते हो ?"

प्रेमनाथ ने खड़े-खड़े ही कहना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "मुझको कई साथियों ने कहा है कि आपकी खिदमत में हर महीने कुछ नजर करनी चाहिए। मै बिल्कुल अनजान हूँ। इस कारण मुझको इस बात का ज्ञान नहीं है। मुझको सरकार की तरफ से चालीस रुपया मासिक मिलते हैं और उससे अधिक कहां से लाऊं, मै नही जानता।"

तहसीलदार समझा था कि गाव के किसी झगड़े के विषय में बात-चीत करने आ रहा है और उसकी बात सुनकर वह स्वयं ही इस विषय में किसी ढग से उसे समझायेगा, परन्तु उसको सीधे ही इस प्रकार की बात करते सुन वह भौचक्का रह गया।

प्रेमनाथ उत्तर की प्रतीक्षा में सामने चुपचाप खडा रहा। तहसील-दार ने कहा, "प्रेमनाथ ! तुम्हारी आयु बहुत कम है। तुम दुनियादारी नहीं जानते। यद्यपि तुम्हारे काम से मै प्रसन्न हूं, तो भी अनुभव करोगे कि एक अफसर को जिस ढग से रहना होता है उसमें वह अपने वेतन म नहीं रह सकता। इस कारण कुछ-कुछ वेतन के अतिरिक्त आय करनी आवश्यक हो जाती है।

"तुम डिप्टी कमिश्नर साहब के खास आदमी हो इस कारण और तुम को अभी ऊपर से आमदनी करने का ढंग नहीं आता, इसलिये मै अभी एक वर्ष तक तुमसे किसी प्रकार की आशा नहीं रखूंगा। इस पर भी तुमको जैसी दुनिया है, वैसा बनकर रहना होगा। अब तुम जा सकते हो।"

प्रेमनाथ बाहर निकल आया। वह सोच रहा था कि अभी एक वर्ष तक तो छुट्टी मिल गई। तब तक कहीं अन्य नौकरी ढूंढनी पड़ेगी। अन्यथा रिश्वत लेनी पड़ेगी। वह इसी चिन्ता में बाहर उस शामियाने के समीप जहां सभा होनी थी खड़ा था कि इस समय डिप्टी कमीश्नर साहब और उनकी स्त्री अपनी मोटर में वहा पहुंचे। मोटर से उतरें तो सब लोग झुक-झुककर सलाम कर रहे थे। प्रेमनाथ अपने विचारो में लीन डिप्टी कमिश्नर के आने से बेखबर, नाखून छीलता हुआ खड़ा था।

डिप्टी कमिश्नर ने प्रेमनाथ को, लोगो के पीछे किसी गम्भीर विचार में मग्न देखा और पहचान लिया। उसने एमिली के कान में कहा। एमिली ने भी प्रेम को देखा और पहचाना। उसको वहां सब उपस्थित लोगो से कम उमर का देख वह भी चकित रह गई। जब तक प्रेमनाथ को ज्ञान हुआ कि बड़ा साहब आ गया है और उसकी ओर देख

अपनी स्त्री से कुछ कह रहा है, वे दोनों तहसीलदार के कमरे की ओर चले गये थे।

तहसीलदार अभी भी वहां बैठा था जहां प्रेमनाथ से उसने भेंट की थी। डिप्टी कमिश्नर के आने की सूचना मिलते ही वह भागा हुआ आया, तब तक साहब और उनकी स्त्री कमरे के द्वार पर आ पहुंचे थे। वह उनको कमरे में ले गया और आदर से बैठाकर पानी इत्यादि पूछने लगा।

डिप्टी कमिश्नर ने कलाई पर बंधी सोने की घड़ी में समय देख कर कहा, अभी दस मिनट हैं। आपसे तब तक यहां बैठ ही बात करना चाहता हूं, पश्चात एमिली की ओर संकेत कर बोला, "इनके लिये 'सोडा' मंगवा दीजिये।"

तहसीलदार ने सब प्रबन्ध कर रखा था और क्लर्क को मेम साहिबा के लिये सोडा लाने के लिये कह दिया। डिप्टी कमिश्नर ने सबसे पहले प्रेमनाथ की ही बात चला दी। "कानूनगो प्रेमनाथ का काम कैसा है?"

"लड़का होशियार है, पर अभी आयु कम होने से बचपन की बातें कर बैठता है। यह बात तो दो-तीन साल में ठीक हो जायेगी।"

"बचपन की क्या बात की है उसने?" डिप्टी कमिश्नर ने सतर्क हो पूछा।

"यही, अभी दस मिनट हुए आया था। कहने लगा कि वह रिश्वत नहीं ले सकता। इस कारण अफसरों को प्रसन्न करने में वह असमर्थ है। सब लोगों ने आपको और श्रीमतीजी को कुछ भेंट देने के लिये चन्दा किया था, ऐसा प्रतीत होता है कि वह उसमें कुछ दे नहीं सका।"

तहसीलदार ने अपने सौ रुपये महीने की बात टालकर जलसे पर भेंट की बात करदी। इसमें प्रेमनाथ ने दस रुपया चन्दा दिया था। इस पर भी डिप्टी कमिश्नर ने यह कह दिया। "ईमानदारी से बेईमानी करनी अधिक कठिन है। उसके लिये अधिक समझदारी और अनुभव की आवश्यकता है। वह अभी बच्चा है। उसकी बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।"

"हुजूर ! यह आपके किसी मित्र का सुपुत्र प्रतीत होता है ?"

एमिली हँस पड़ी। परन्तु उसने इस रहस्य को खोलना अपना कर्तव्य नहीं समझा। डिप्टी कमिश्नर ने यह कह, बात टाल दी, "हाँ, कुछ ऐसा ही समझ लेना चाहिए, मुझको इस लड़के की तरक्क़ी में रुचि है।"

बात समाप्त हो गई। तहसीलदार समझ गया कि इस लड़के को अधिक तंग करना उचित नहीं। इस पर भी वह विचार करता था कि इसको अपनी अवस्था में उन्नति करने के लिये चालीस रुपये पर सन्तोष करने से क्या हो सकेगा।

सभा हुई। सभा में साहब को जिले की ओर से एक चांदी की सन्दूकची और उसमें अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया। अमरनाथ ने इस विषय में सबका धन्यवाद किया और सभा के असली प्रयोजन पर प्रकाश डाला। उस विषय में सरकारी योजना बताते हुए डिप्टी कमिश्नर ने बताया कि सरकार ने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक युवक को भर्ती कराने के लिये पचास रुपये भर्ती करने वाले अफसर को भी दिये जाएँगे।

सब ज़िलों में भर्ती के लिये इश्तिहार लगाने के लिये छप गये हैं। उन इश्तिहारों में लिखा गया है कि फ़ौज में भर्ती होने वाले को क्या लाभ होगा। अन्त में डिप्टी कमिश्नर बहादुर ने कहा कि वह आशा करता है कि ज़िला लाहौर में से तीन हज़ार युवक तीन महीने में भर्ती किये जायेंगे।

यह सभा बहुत बधाईयाँ और प्रसन्नता प्रकट करने पर समाप्त हुई। डिप्टी कमिश्नर और एमिली मोटर में सवार हो चले गये। प्रेमनाथ वैसे ही गम्भीर विचार में पूर्ण सभा की कार्यवाही सुनता रहा और वैसे ही गम्भीर भाव में सभा के पश्चात् खड़ा रहा। वह केवल यही विचार कर रहा था कि उसको शीघ्र ही किसी अन्य स्थान पर नौकरी ढूंढनी चाहिये। वह इस बेईमानी के अड्डे पर अधिक काल तक

रह नहीं सकता।

घर लौटते समय कामोकी के नम्बरदार और कानूगो उसके साथ थे। वे बहुत प्रसन्न थे। प्रेमनाथ सदा से अधिक गम्भीर था। शाहदरे का नम्बरदार टमटम की चौथी सवारी थी। उसने प्रेमनाथ को चुप देख पूछा, "बाबू, चुप क्यों हो ?"

"मुझको इसमें कोई खुशी की बात दिखाई नहीं देती।"

"वाह भाई !" कामोकी के नम्बरदार ने कहा, "मैं समझता हूं कि पांच सौ तो मैं भर्ती कराऊंगा और पचास रुपये की हिसाब से पच्चीस हजार रुपया कमाने का मौका और कहां मिलेगा।"

पच्चीस हजार की बात सुन प्रेमनाथ के मुख से लार टपकने लगी, परन्तु युद्ध में भर्ती कर लोगों को भेजना उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसा 'बकरा-ईद' के लिये कल्लाल बकरों और भेड़ों की मंडी लगाते हैं। इस विचार पर उसके रोंगटे खड़े हो गये। वह आंखें मूंदकर आगे की ओर जिधर टमटम जा रही थी, मुख किये बैठा रहा। शाहदरा के मोड़ पर प्रेमनाथ और नम्बरदार उतर पड़े और टमटम आगे को चल पड़ी। उसमें कामोकी का कानूगो और नम्बरदार ऊंचे-ऊंचे बातें करते हुए चले गये।

३

प्रेमनाथ ने तहसीलदार से हुई सब बातें अपनी मा से कह दीं। मा ने बिना विचारे कह दिया, "प्रेम, नौकरी कहीं और ढूंढ़नी पड़ेगी।"

"मा ! एक और झगड़ा खड़ा हुआ है। युद्ध के लिये सिपाहियों की भर्ती भी हमारे द्वारा होगी और इसमें लोगों को तैयार करने के लिये हमको प्रत्येक आदमी के पीछे पचास रुपये मिलेंगे।"

"यह तो ठीक ही है। तुम अपनी ओर से किसी को मत कहना, पर जो स्वयं भर्ती होने के लिये आए उसको करा देना।"

"अपने-आप कौन आएगा, मा ?"

"नहीं आएगा तो न सही।"

"पर ज़िला-भर के सब कानूगो का मुकाबिला होगा, जो सबसे ज्यादा भर्ती करायेगा, उसको बढ़िया समझा जायेगा।"

"बेटा, तुम घटिया ही रहना। तुम को यहां इस महकमें में नौकरी नहीं करनी।"

मां को इतनी दृढ़ता से कहते देख उसका हृदय साहस से भर गया। वह उन्नति के अन्य साधन ढूंढने लगा।

अगले दिन बड़े-बड़े और सुन्दर छपे हुए पोस्टर उसके पास पहुँच गये। उसने वे अपने कार्यालय के सन्मुख, थाने के सामने और सरकारी हस्पताल के बाहिर लगवा दिये। इश्तिहार लगते ही लोगों की भीड़ लगने लगी। उसको दिन में कई बार पढकर सुनाना पड़ता था। इश्तिहार में लिखा था—

"शाहनशाह मुअज्जम इंग्लिस्तान के हुक्म से यह एलान किया जाता है कि जर्मनी के साथ लड़ाई लड़कर इन्सानियत और जम्हूरियत की हिफ़ाजत होगी। इसलिये हिन्दुस्तान के हर नौजवान से यह तवक्को की जाती है कि वह इस वक्त अपने मादरे-वतन की खिदमत के लिये कमर बस्ता हो जाय और जंग में हिस्सा लेने के लिये फौज में भर्ती हो जाय।"

"हर एक हुब्बे-वतन से यह उम्मीद करना कुछ भी ज्यादा नहीं कि वह खून के हर कतरे को मादरे-वतन की खिदमत में लगा दे।"

"यह वक्त बहुत नाजुक है और इस वक्त का चूका हुआ शायद एक सदी के हेर-फेर में पड़ जायेगा।"

'ऐ हिन्दुस्तानी नौजवानो! आओ, फ़ौज में भर्ती हो जाओ। तन्ख्वाह, भत्ता, पोशाक, खुराक, बहादुरी दिखाने पर इनामात, तमग़े और ज़मीन मिलेगी।"

भर्ती होने के लिये यहां पर नाम लिखाओ। ज़िन्दगी का लुत्फ़ उठाने के लिये यही तरीका है।" बहुक्म

ए० एन० चोपड़ा आई० सी० एस०

इन इश्तिहारों को लगे कई दिन हो चुके थे। कुछ गरीब लोग लालच में फंसकर अपना नाम लिखा गये। प्रेमनाथ ने बिना किसी प्रेरणा के उनका नाम लिख लिया और एक दिन उनको तहसीलदार के कार्यालय में और वहां से चिट्ठी लेकर जिला कचहरी और वहां से फौजी भर्ती के कार्यालय में ले गया। प्रति सप्ताह बिना किसी प्रकार का प्रयत्न किये भी आठ-दस आदमियों को भर्ती कराने के लिये प्रेमनाथ को शहर जाना पड़ता था। पहले महीने ही प्रेमनाथ को चालीस आदमी भर्ती कराने के कारण दो हजार रुपया मिला। दो हजार में से चुपचाप तहसीलदार के पेशकार ने पांच सौ रुपये रख लिये। इस पर भी पन्द्रह सौ रुपये एक ऐसी रकम थी कि जिसको वह अपनी नहीं समझता था। रुपया लेकर आया तो मा के सामने रखकर बोला, "मा, यह मिला है।"

"कहां से?"

"भर्ती के दफतर से।"

"किसलिये?"

"लोगों को फौज में भर्ती कराने के बदले में।"

"कितना है?"

"पन्द्रह सौ रुपया।"

"बेटा, इसको इन्द्रा के विवाह के लिये रख छोड़ो।"

"पर मा ।"

"क्यों? क्या है बेटा!"

"मुझको यह रुपया नर-रक्त में रंगा प्रतीत होता है।"

"पर तुमने तो किसी को भर्ती होने के लिये कहा नहीं। तुम भर्ती न करते तो वे थाने में जाकर भर्ती हो जाते।"

"ठीक है मा! पर मैं जानता हूं कि ये सब जीते वापिस नहीं आएंगे। कई लंगड़े-लूले होकर आएंगे।"

"पर इसमें तुम्हारा क्या कसूर है। देखो बेटा! लड़ाई लड़ना यह किसी एक का काम नहीं। इसका उत्तरदायित्व भी तुम पर नहीं है।

फिर भी यह तो है ही कि जब लड़ाई होती है, बहादुर लड़ने वाले जाते ही हैं। यदि प्रत्येक यह देखने लगे कि लड़ाई में लोग मरते हैं तो लड़ाई आरम्भ करने वाले बदमाशों की बन जाए। शरीफ़ लोग मारे जाएं और फिर दास बना लिए जाएं।"

"देखो न, लंका के युद्ध में कितने मारे गए थे। स्त्री तो राम की चुराई गई थी पर लड़ने-मरने वाले असंख्य वानर, भालू और अन्य जातियों के लोग थे। इस प्रकार नर-रक्त देखकर डरने वालों के लिये संसार नहीं है।"

यह एक नई बात थी। प्रेमनाथ ने इस प्रश्न को इस दृष्टिकोण से देखा ही नहीं था। यद्यपि वह यह नहीं समझा था कि उसको पन्द्रह सौ क्यों मिला है। इस पर भी भर्ती करने की बुराई का विचार उसके मस्तिष्क से निकल गया।

वह अपने कार्यालय में बैठा खसरा में दाखल-खारिज कर रहा था कि कुछ युवक, जो किसी कालेज के विद्यार्थी प्रतीत होते थे, गांव में घूमते हुए आये और भर्ती के पोस्टर पढ़ने लगे। जहांगीर का मकबरा समीप होने के कारण सैर करने वाले लोग प्रायः गांव देखने चले आते थे। धर्मशाला के कुएँ से पानी पीकर हलवाई की दुकान से जलेबी खा-कर घूम-घामकर चले जाया करते थे।

आज ये युवक पोस्टर पढ़कर परस्पर हँसी-मजाक करने लगे। प्रेम-नाथ की दृष्टि उनकी ओर गई तो वे युवक एक सुकुमार बालक को देखकर समझे कि इसका पिता वहां नौकर होगा और वह लड़का वहां बैठ अपने स्कूल का सबक याद कर रहा है। एक युवक ने कार्यालय में आकर पूछा, "तुम्हारे पिता कहां हैं?"

"वह नहीं हैं।" इसका अर्थ वे समझे कि कहीं गये हुए हैं।

"तुम यहां क्या रहे हो?"

"दफ्तर का काम कर रहा हूं।"

"क्या काम करते हो?"

"मैं यहाँ के जेल का कानूगो हूँ।"

"ओह ! तुम कानूगो हो और तुम्हारे बाप क्या हैं ?"

"कहा तो है कि वे नहीं हैं।"

अब लड़कों को समझ आई कि नहीं है का अर्थ है कि देहान्त हो गया है। इससे शोकातुर मुख बना कहने लगे, "यह भर्ती भी तुम करते हो ?"

"जी हा," प्रेमनाथ समझ गया था कि ये लोग उसकी कम आयु के कारण हँसी उड़ाना चाहते हैं। इसका उसे अभ्यास हो गया था। इस कारण उसने गम्भीर हो उनकी ओर देखना उचित समझा।

इस पर एक युवक जो सिर से नगा था, कहने लगा, "मैं भी भर्ती हो सकता हूँ क्या ?"

"मैं तो न नहीं कर सकता। आप इतने कोमल प्रतीत होते हैं, कि फौजी अफसर आपको अस्वीकार कर देगा। आप की ऊँचाई भी कम है।"

इस पर एक और बोल उठा, "आपको इस काम का क्या मिलता है ?"

"पचास रुपये प्रत्येक भर्ती हुए पुरुष के लिए।"

"यह मनुष्यों की विक्री की दलाली नहीं है क्या ?"

"मैं रुपये लेने नहीं जाता। मैं रुपयों के लिये काम नहीं करता। मैं तो सरकार का काम करने के लिये नौकर हूँ। जो कुछ मिलता है, वह उस नियम से मिलता है जो सरकार ने बनाया है।"

"इस पर भी है तो मनुष्यों की विक्री ही ?"

"किसी अच्छे काम के लिये मनुष्यों की भर्ती करना उनकी विक्री कैसे हुई ? युद्ध तो कौमों की हार-जीत के लिये लड़े जाते हैं ?"

"पर किस की हार और किसकी जीत ?"

"जर्मन की हार और अग्रजों की जीत और किसकी ?"

"अग्रेजों से हमारा क्या सम्बन्ध है, उनकी जीत के लिये हम क्यों

लड़ूँ ?"

"इसलिये कि अंग्रेज यहां राज्य करते हैं ?"

"इनका राज्य हटाना नहीं है क्या ?"

प्रेमनाथ को याद आ गया कि अंग्रेजों ने अपना राज्य बनाये रखने के लिये हिन्दुस्तानियों पर बहुत अत्याचार किये थे। इससे वह कुछ सोचने लगा। पश्चात् कहने लगा, "आप ठीक कहते हैं कि अंग्रेजों का राज्य हटाना है पर जर्मन की जीत से और अंग्रेजों की हार से हिन्दुस्तान का क्या होगा ? मैं नहीं जानता। मुझको जर्मन के विषय में कुछ पता नहीं, इससे मैं कैसे कह दूँ कि जर्मन की जीत से हमारा राज्य हो जाएगा और फिर यह मेरे सोचने का विषय नहीं।"

"तो किसका है ?"

"किसी बड़े विद्वान् का। मैं तो केवल दसवीं जमायत पास हूँ।"

सब हंस पड़े। इस पर भी वह आदमी जो प्रेमनाथ से बातचीत कर रहा था, उसकी युक्तियुक्त और विषयान्तर्गत् बात से प्रभावित हुआ था।

सब लोग चल पड़े परन्तु उसने प्रेम से पूछा, "कभी लाहौर आते हो ?"

"सप्ताह में दो तीन बार जाना पड़ता है।"

"मेरा नाम दीनानाथ है। मेरा पता यह है। कभी मुझसे मिलना।" इतना कह उसने अपना कार्ड दे दिया और अपने साथियों के साथ चल पड़ा।

प्रेमनाथ आज के वार्त्तालाप से विचारों में पड़ गया। उसके सामने यह प्रश्न बन गया था, कि क्या अंग्रेजों का राज्य नहीं हटाना ? इस प्रश्न ने उसमें कई विचार उत्पन्न कर दिये।

वह सोचने लगा था, जब राम ने लंका पर आक्रमण किया था तो राम ने सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि की सहायता उचित समझी थी। उस समय सुग्रीव राजा नहीं था। राजा था बाली। इस कारण बाली से सहायता मांगी जाती तो बहुत जल्दी सीता वापिस आ जाती, पर राम ने

वाली से सहायता नही ली। कारण यह था कि वाली सबल और योग्य होते हुए भी ठीक आचरण का आदमी नहीं था। इस कारण रावण की हत्या कर पुन एक आचरणहीन ही को राज्य पर बैठा देने से ही समस्या सुलझ नहीं सकती थी। अनाचारो पर चरित्रवानों का राज्य होना चाहिये था। इस मार्ग पर चलने से ही सीता जैसी स्त्रियो के अपहरण की समस्या सुलझाई जा सकती थी।

वह सोचता था कि यह ठीक है कि अग्रेजों ने भारत पर अपना अनधिकृत-राज्य जमा रखा है परन्तु क्या अग्रेजों को हटाकर जर्मनो का राज्य स्थापित करने से भारत की दासता कम हो जाएगी ?

इतना विचारकर उसने दीनानाथ से मिलने का विचार मन से निकाल दिया। वह जब लाहौर जाता था तो कभी-कभी उर्दू का हिन्दुस्तान समाचार-पत्र लेकर पढ़ा करता था और उससे अग्रेजों की हार के समाचार मिलते रहते थे। इनसे उसके मस्तिष्क में अनेको प्रकार के विचार उत्पन्न हुआ करते थे। उसकी इच्छा रहती थी कि वह यदि और अधिक पढ़ा होता और उसके पास और अधिक जानने के साधन होते तो वह मन में उठ रहे प्रश्नों का उत्तर पा सकता। वह अपनी परिस्थितियों से विवश था।

४

लाहौर से शाहदरा आने का एक और मार्ग था। मस्ती दरवाजे से निकलकर बादामी बाग़ के स्टेशन के आगे से होते हुए रेल की सड़क के साथ साथ वृद्ध रावी का पुल पारकर जगल में से होते हुए एक कच्ची सड़क थी जो रेल के पुल से पौन मील ऊपर जाकर रावी नदी को नौका से पारकर शाहदरा गाव को जाती थी। कभी प्रेमनाथ टमटम का खर्चा बचाना चाहता और उसके पास पैदल जाने के लिए समय होता तो वह इस मार्ग से गाव को अथवा गाव से नगर को जाया करता था। नदी पार करने के लिए नाव प्रात. छः बजे से रात सूर्यास्त तक चलती रहती थी।

एक दिन तहसीलदार ने जिला-भर के भर्ती करने वाले अफसरों की एक सभा, राजा साहब शेखुपुरा के महल में बुलाई थी। प्रेमनाथ सभा से साय ६ बजे की छुट्टी पा गया था। राजा साहब का महल मस्ती दरवाजे के समीप था और वहा से पैदल मार्ग ही समीप पड़ता था। इससे वह सभा से छुट्टी पाते ही लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ जगल के मार्ग से नाव के घाट की ओर चल पड़ा।

वृद्ध रावी का पुल पारकर ज्यो-ही वह जंगल में घुसा कि उसको स्थान का अकेलापन खटकने लगा। यह भय पहले उसके मन में कभी नहीं आया था। आज ऐसा क्यो हुआ वह समझ नहीं सका।

जब कुछ दूर जगल में चला गया तो कुछ-कुछ अंधेरा होगया। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके पीछे सूखे पत्तो पर किसी के चलने का शब्द हो रहा है। वह खड़ा हो पीछे घूम देखने लगा। उसे कोई दिखाई नहीं दिया। इससे उसने मन में विचार किया कि उसको भागकर उस स्थान से नदी-किनारे पहुँच जाना चाहिये। इसके लिये जब उसने मुख आगे को किया तो दो आदमी, जिन्होंने अपने मुख पर पगड़ी ऐसे लपेटी हुई थी कि सिवाय आंखो के और कुछ भी दिखाई नहीं देता था, हाथ में बरछे लिये आगे का मार्ग रोककर खड़े दिखाई दिये।

प्रेमनाथ का हृदय धक-धक करने लगा। इस पर भी मन को दृढ़कर पूछने लगा, "क्या चाहते हो?"

"जो कुछ तुम्हारे पास है निकाल दो।"

"मेरे पास नौका का भाड़ा, दो पैसे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" इतना कहते हुए उसने अपने कुर्ते की जेब में हाथ डालकर दो पैसे निकाले और उनको दिखाने लगा।

इस पर एक ने कहा, "हमको विश्वास नहीं आता। तुमको आज सभा में भर्ती कराने का एलाउंस मिलने वाला था। हमें पता चला है कि अढाई हजार रुपया मिलना चाहिये था।"

बात बिल्कुल ठीक थी परन्तु रुपया नहीं बांटा गया था। चैक दिये

गए थे। अपने चैक पर हस्ताक्षर कर प्रेमनाथ तहसील के मुन्शी को दे आया था। इस पर भी इन लोगों की इतनी जानकारी को देख विस्मय में बोला, "आप मेरी तलाशी ले सकते हैं। मुझको रुपया मिलने वाला था अवश्य परन्तु मिला नहीं।"

इस उत्तर पर वे दोनों अनिश्चित-मन प्रेमनाथ का मुख देखते रह गये। इस समय दो आदमी और उसी प्रकार पगड़ी बाँधे पेड़ों के पीछे से निकल आये और प्रेमनाथ के पीछे खड़े हो गये इस समय उन चारों में से जो दूसरों का नेता प्रतीत होता था, कहने लगा, "यद्यपि इसका उत्तर ठीक प्रतीत होता है तो भी इसकी तलाशी ले लेनी चाहिये।"

इस आज्ञा के मिलते ही दो आदमियों ने प्रेमनाथ के हाथों को पकड़ लिया और एक ने उसकी जेबें देख डालीं। प्रेमनाथ के पास उस दिन दो पैसे ही थे इससे उनको बहुत निराशा हुई और उसी ने जो नेता प्रतीत होता था, कहा—"प्रेमनाथ, अब तुम थाने में रिपोर्ट कर देना कि डाकुओं ने तुमको घेर लिया था और तलाशी ली थी तो केवल दो पैसे जेब में देख तुमको छोड़ दिया।"

प्रेमनाथ चुप था, उसका हृदय धक-धक कर रहा। वह अभी भी अपने को सुरक्षित नहीं पाता था। उसके मन में यह था, कि ये लोग अपना भेद छिपाये रखने के लिये उसको जंगल में ले जाएँगे और मार डालेंगे। परन्तु नेता ने अपने साथियों को कहा, "इसको जाने दो।"

प्रेमनाथ छूट तो गया और वह शीघ्रातिशीघ्र नदी के किनारे पहुँचने के लिये लगभग भागने लगा, परन्तु उसका मस्तिष्क उन डाकुओं के नेता की आवाज़ से कुछ जाना-पहचाना-सा अनुभव कर रहा था। फिर उसने उसका नाम भी लिया था। इससे प्रेमनाथ को विश्वास-सा हो गया कि ये लोग उसको बहुत भली-भाँति जानते हैं। इस पर भी उसका मस्तिष्क तब तक काम नहीं कर सका जब तक कि वह नदी पार करने के लिये नाव में आराम से बैठ नदी की ठंडी मन्द-मन्द चलती हवा को अनुभव नहीं करने लगा था। नाविक कानूनगो बाबू को भली-भाँति

पहचानते थे। उसको हांफते देख कहने लगे, "बाबू, भागकर आने की क्या आवश्यकता थी।" तुम तो हमको रात के बारह बजे भी कहते तो नाव चला देते।"

"फिर भी मैंने सोचा कि अन्तिम नाव के समय पहुंच जाऊं तो अच्छा है।"

जब नाव नदी के मध्य में पहुंची, तो निश्चित हो प्रेमनाथ डाकुओं के नेता की आवाज़ को पहचानने का यत्न करने लगा। इस समय उसको स्मरण हो आया। यह आवाज़ उन युवकों में से उसकी थी जो एक मास से ऊपर हुआ, उससे भर्ती के विषय में बातचीत करता रहा था और जिसने अपना नाम दीनानाथ बताया था।

इस विचार के आते ही वह दीनानाथ की शक्ल-सूरत के आदमी को मुख पर पगड़ी बांध सामने खड़े होने का चित्र मन में बनाने लगा। ज्यूं-ज्यूं वह इस प्रकार विचार करता था उसको अपनी स्मरण-शक्ति पर विश्वास होता जाता था।

रात-भर वह सो नहीं सका। वह सोचता था कि क्या पढ़े-लिखे लोग भी डाके डाल सकते हैं ? उसके विचार में तो यह काम अनपढ़, गंवारों और मूर्खों का है।

अगले दिन उसको लाहौर जाना था और भर्ती कराने का रुपया वसूल करना था। इस कारण उसने विचार किया कि अपना संशय निवारण करने के लिये दीनानाथ से मिलने का यत्न करना चाहिये।

उसने अपनी मां से भी पूर्ण कथा और अपने मन का संशय वर्णन कर दिया। मां उसको सुनकर बहुत चिन्ता में पड़ गई। कितनी ही देर तक वह विचार करती रही। एकाएक उसको एक विचार आया। उसने कहा, "प्रेम, तुम कहते हो कि दीनानाथ कोई पढ़ा-लिखा युवक प्रतीत होता है।"

"हां मां! कपड़ों से अथवा उसके बात करने के ढंग से यही प्रतीत होता था।"

५

प्रेमनाथ अढ़ाई हज़ार रुपयों में से पांच सौ तहसीलदार के मुन्शी के पास छोड शेष दो सहस्र रुपये के नोट जेब में डाल दीनानाथ की खोज में निकल पडा। उसने पता दिया था 'कुतुब फरोश-सूत्र मंडी बाज़ार'।

दीनानाथ दुकान पर बैठा हुआ था। प्रेमनाथ ने नमस्ते की और सामने जा खड़ा हुआ। दीनानाथ प्रेमनाथ को आया देख विस्मय में उस का मुख देखने लगा। प्रेमनाथ ने उसकी ओर मुस्कराकर देखते हुए कहा, "आपने मुझको पहचाना नहीं ?"

"पहचाना ? हां ! पहचाना है। तुम शाहदरा के कानूगो हो।"

"हां ! तो बैठने को नहीं कहिएगा। आपने मुझको मिलने को कहा था न ?"

"हां, याद आ गया है। बैठिए।" दीनानाथ ने दुकान में जगह बनाते हुए कहा। "उस दिन तुमने यह कहा था, कि यह सोचना कि इस युद्ध में जर्मन को सहायता देनी चाहिये अथवा अंग्रेज़ों को, एक विद्वान् आदमी का काम है। मैंने तुमको एक पुस्तक देने के लिए यहा बुलाया है। तुम क्या पढ़े हो ? हिन्दी, उर्दू अथवा अंग्रेज़ी ?"

"मैं तीनों ही भाषायें पढ़ा हूं। हिन्दी अपनी मां से पढा हूं। और उर्दू, अंग्रेज़ी स्कूल में।"

"तो मेरे पास एक किताब है, 'ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' एक अंग्रेज़ लेखक की ही लिखी है। मैं चाहता हूं कि तुम उसको पढो।"

"क्या दाम है उसका ?"

"दाम तो तीन रुपये हैं। पर मैं तुमको पढ़ने के लिए दे देता हूं। पढ़कर दे जाना।"

"धन्यवाद ! मैं वचन देता हूं कि समाप्त करते ही दे दूंगा। मेरे पास फालतू रुपए हैं भी नहीं। चालीस रुपये में, मुश्किल से रोटी-कपड़े का गुज़र होता है।"

"और यह जो हजारों रुपए भर्ती कराने में मिलते हैं ?"

"यह रुपये मैं अपने नहीं समझता। जैसे आये हैं वैसे ही किसी पुण्य कार्य में लगाने का विचार रखता हूं।"

इतना कह प्रेमनाथ, ध्यान से दीनानाथ के मुख की ओर देखने लगा। आवाज से और उसकी आंखों से जो पिछले दिन लपेटी पगड़ी में से दिखाई दे रही थीं वह निश्चय पर पहुंच चुका था कि वह कल के डाकू के सामने बैठा है। अब उसने उसकी आंखों की ओर देखा तो दीनानाथ की आंखें झुक गईं। प्रेमनाथ को अपने अनुमान पर विश्वास हो गया। उसने दीनानाथ के मन में छुपी बात निकालने के लिए कह दिया, "देखिये दीनानाथ जी! हम गरीब आदमी हैं। जिस दिन मेरी नौकरी लगी थी, हमारे पास खाने के लिए एक छटांक भी अन्न नहीं था। मां मेहनत करते-करते थककर चूर हो चुकी थी। उस समय भगवान ने सहायता की और मैं इतनी कम आयु का होता हुआ भी नौकरी पा गया।"

"इस पर भी मैंने निश्चय किया था कि परमात्मा ने जो दिया है उसी पर सन्तोष करूंगा और आज नौकर हुए पांच मास से ऊपर हो गए हैं, मैंने एक पैसा भी रिश्वत का नहीं लिया। मेरे साथी दूसरे कानूगो पांच-सात सौ रुपया महीना कमाते हैं। मैं कसम खाकर कह सकता हूं कि मैंने यह नहीं किया। अब तक तीन किश्तें भर्ती कराने की पा चुका हूं। पहली दो किश्तों का तीन हजार रुपया मैंने मां के चरणों में रखा तो उन्होंने बहन इन्द्रा के विवाह के लिए रख लिया था। अब तीसरी किश्त आने लगी तो फिर मां से पूछा था कि इसका क्या होगा। मां का कहना था कि इन्द्रा के विवाह के लिए काफी हो गया है। अभी हम यह विचार नहीं कर सके हैं कि यह रुपया कहां दें, कि कल एक घटना हो गई।"

"मैं कल शाहदरा जा रहा था कि मार्ग में डाकुओं ने घेर लिया। उनको किसी प्रकार यह सूचना मिल गई थी कि मुझ को अढ़ाई हजार रुपया मिलना है और यह समझ कि रुपया जेब में लिए जा रहा हूं,

मुझको पकड़ लिया। उस समय रुपया मेरे पास नहीं था। उनको मेरी तलाशी लेने पर पता चल गया कि मेरी जेब में दो पैसे हैं। उन्होंने मुझको छोड़ दिया।"

"मैं रात-भर सोचता रहा हूं कि भगवान् जाने उनको क्या आवश्यकता पड़ी थी कि डाका डालने पर उद्यत हो गए थे। यदि उनकी आवश्यकता ऐसी है कि उनको रुपया मिलना ही चाहिए तो मैं रुपया उनको देने का निश्चय कर बैठा हूं। यह रुपया मुझको आज मिला है। अढ़ाई हज़ार नहीं दो हज़ार रुपया है। पांच सौ तहसीलदार साहब का भाग था वह उन्होंने ले लिया है। मैं मन में विचार कर रहा हूं कि किस प्रकार उन डाकुओं से मिलूं और उनकी आवश्यकता को जानूं, जिससे यदि मन ने माना तो रुपया उनको दे दूं।"

इतना कह प्रेमनाथ दीनानाथ का मुख देखने लगा। दीनानाथ का मुख पीला पड़ गया था। उसकी आंखें जमीन पर गढ़ गई थीं और उसके हाथ कांपते हुए धोती के किनारे की बट्टियां वट रहे थे। प्रेमनाथ को गरीबी ने बहुत बातें सिखा दी थीं। इससे उसको यह विश्वास हो गया कि दीनानाथ समझ गया है कि उसका भेद खुल गया है। वह दीनानाथ के बोलने की प्रतीक्षा करता हुआ उसका मुख देखने लगा। कितनी देर तक वह दीनानाथ के बोलने की प्रतीक्षा करता रहा। दीनानाथ के होंठ फड़कते थे पर उसके मुख से आवाज़ नहीं निकलती थी। बहुत यत्न कर दीनानाथ ने दुकान के भीतर खड़े नौकर को धीरे से कहा, "एक गिलास पानी लाओ।"

पानी आया, दीनानाथ ने पिया और इस प्रकार गला साफ कर उसने कहा, "भाई प्रेमनाथ! उन डाकुओं को कुछ नहीं देना चाहिए। वे ठीक आदमी नहीं हो सकते।"

इस पर प्रेमनाथ ने उसको अपनी मां की आपबीती सुना दी और कहा, "कभी मुसीबत में भले लोग भी बुरे काम करने पर विवश हो जाते हैं। मैं सोचता था कि क्या जाने उनकी भी कोई ऐसी आवश्यकता

हो। हम दुखिया हैं और हमको दूसरो के दुःख यथाशक्ति स्वयं निवारण करने का प्रयत्न करना चाहिये।"

दीनानाथ की आंखो में तरलता आने लगी थी। वह उठ खड़ा हुआ और प्रेमनाथ से बोला, "गांव जा रहे हो क्या?"

"मैं उन डाकुओ को ढूँढ़ने निकला हूँ।"

"चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।" उसने अपने नौकर को कहा, "तुम बैठो, मैं तीन घण्टे में लौट आऊँगा।"

वह प्रेमनाथ को लेकर मस्ती दरवाजे की ओर चल पड़ा। प्रेमनाथ ने समझा कि वह उसको रुपया दिलवाने ले जा रहा है। इस कारण वह चुपचाप चल पड़ा। दोनो सूतर मण्डी से गुमटी बाजार और वहां से लगे मण्डी, पश्चात् वाटरवर्क्स के पीछे होकर सुथरों की धर्मशाला के पास से परेड ग्राउण्ड में से होते हुए बादामी बाग स्टेशन के सामने से गुजर, जंगल वाले मार्ग पर जा पहुँचे। जब उस स्थान पर पहुँचे, जहां पिछली सायं प्रेमनाथ को डाकुओ ने घेरा था, प्रेमनाथ खड़ा हो गया। वह दीनानाथ को खड़ा कर बोला, "यहां मुझको उन्होंने रोका था। मेरा विश्वास है कि वे पेशावर डाकू नहीं थे। यदि ऐसे होते तो मुझको मार डालते। जिससे उनको कोई पकड़ने वाला न रह जाता।"

दीनानाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। प्रत्युत प्रेमनाथ के हाथ को पकडकर उसे कृतज्ञता से दबाते हुए कहा, "प्रेमनाथ! मैं हारा, तुम जीते। वह डाकू मैं ही था। तुम सत्य कहते हो कि हमको रुपये की आवश्यकता थी, परन्तु अब मेरे विचार बदल गये हैं और मैं तुमसे रुपया नहीं लूँगा।"

"भैया! क्या मैं जान सकता हूँ कि क्या आवश्यकता थी रुपये की?"

"हां! हमने एक संस्था बनाई है। उस संस्था का नाम है, 'ग़दर पार्टी।' हम में से एक आदमी अमरीका से आया है, वह हमको इकट्ठा कर भारतवर्ष में विप्लव उत्पन्न करने की योजना बनाए हुए है। उस

योजना में एक बात यह भी है कि रुपया डाके डालकर एकत्र किया जाएगा। हमने अभी तक दो डाके डाले हैं। कल तीसरा डाला था परन्तु आज तुम्हारी बात सुन मेरे मन में एक ऐसा विप्लव उत्पन्न हुआ है कि मैं डाकों में विश्वास खो बैठा हूँ।"

"पर भैया! रुपये से विप्लव कैसे होगा? विप्लव तो लोगों की मानसिक-अवस्था बदलने से हो सकता है। मन के बदलने से रुपया भी मिलेगा।"

"यही तो मैं तुम्हारी बात से समझ पाया हूँ। हम बलपूर्वक अपना काम करना चाहते हैं। तुमने मेरे मुख पर चपत लगाई है। तुमने मुझको समझा दिया है कि मन की प्रेरणा से पहाड़ भी उमड़ सकते हैं। रुपया तो साधारण वस्तु है।"

"भैया दीनानाथ! मैं सत्य ही रुपया तुमको देने आया था। मुझको अपनी माँ की बात सुन कुछ ऐसा प्रतीत हुआ था कि तुम जैसे सभ्य व्यक्ति जब डाका डालने पर उद्यत हुए हों, तो अवश्य कोई ऐसी विवशता आ पड़ी होगी जिसको टालना हमारा कर्तव्य है। यद्यपि मैं नहीं समझा कि तुम चार आदमी दस-बीस हज़ार रुपया एकत्र कर कैसे विप्लव उत्पन्न कर सकोगे। इस पर भी यह रुपया हाजिर है। मैंने तो इसको किसी पुण्य-कार्य में लगाना है। यदि तुम समझते हो कि इससे कुछ श्रेष्ठ कार्य हो सकता है तो रुपया हाजिर है।"

इतना कह प्रेम ने जेब में से दो हज़ार रुपये के नोट निकालकर दीनानाथ के सामने कर दिये। दीनानाथ ने इन नोटों की ओर देखा और फिर उनको हाथ में पकड़ लिया और प्रेमनाथ की जेब में डालकर कहा, "भैया, यह रुपया मेरा हुआ और मैंने यहाँ रखा है। आवश्यकता पर इसे ले लूँगा, जिस काम के लिए कल चाहिए था, आज उसके लिये आवश्यकता नहीं। चलो चलें।"

इतना कह वह उसकी बाँह-में-बाँह डालकर रावी नदी की ओर चल पड़ा। नदी के किनारे पहुँचकर प्रेमनाथ ने दीनानाथ से कहा,

"अब आप जा सकते हैं। आपकी दुकान पर कोई नहीं।"

"अभी एक काम और करना है। माताजी के दर्शन करने हैं। वास्तव में उनकी चरण-रज सिर पर चढ़ाने की इच्छा हो रही है"।

प्रेमनाथ इसका अर्थ नहीं समझा। वह विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। दीनानाथ ने अपना भाव स्पष्ट करते हुए कहा, "जिस मां की कोख से तुम्हारे जैसा पुत्र उत्पन्न हो सकता है, उसके दर्शन करने से जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रेम, चलो मुझे आज तीर्थ-यात्रा करने से मत रोको।"

दोनों नौका पर सवार हो गये।

६

जब भी लाहौर जाना होता था, प्रेमनाथ दीनानाथ की दुकान पर एक चक्कर लगा आता था। दीनानाथ ने भी प्रेम की आर्थिक अवस्था सुधारने में विचार करना अपना कर्तव्य मान लिया।

उक्त घटना के कई दिन पीछे की बात थी। प्रेमनाथ तहसील में अपना काम कर दीनानाथ की दुकान पर जा पहुंचा। वहा कुछ अपरिचित लोग बैठे थे। दीनानाथ वहा नहीं था। वहा पर एक सिख महाशय भी थे। उसने प्रेमनाथ को वापिस लौटते देख आवाज़ दे दी। "प्रेमनाथ जी! आइये, बैठिये, कहा जा रहे हैं?"

"दीनानाथजी से मिलने आया था। वह हैं नहीं और मुझे दूर जाना है।"

सिख महाशय ने मुस्कराकर कहा, "अभी सायंकाल में बहुत समय है। नाव तो अंधेरा हो जाने पर भी मिल जाती है।"

उसको इस प्रकार बातें करते देख प्रेमनाथ समझ गया कि यह भी गदर पार्टी का आदमी है। उसने सरदार साहब से कहा, "यदि दीनानाथ जी ने जल्दी आना हो तो कुछ समय तक प्रतीक्षा कर सकता हूं।"

"आते ही होंगे। आइये बैठिये।"

प्रेमनाथ वहा बैठ गया। सरदार ने कहा, "बाबू प्रेमनाथ ! आपने हमारी बहुत हानि की है।"

"मैंने अपनी जानकारी में कोई ऐसी बात नहीं की। मुझको समझा दीजिये। मैं उसका बदला चुकाने का यत्न करूँगा।"

"मेरा नाम अर्जुनसिंह है और मैं," उसने प्रेमनाथ के कान के समीप होकर कहा, "अमरीका की ग़दरपार्टी का सदस्य हूँ।"

"तो फिर मैंने आपको क्या हानि पहुंचाई है ?"

"आपने हमारे एक विशिष्ट कार्यकर्ता को वरग़ला दिया है। दीनानाथ हमारा एक बहुत ही अच्छा सिपाही था। आपने उसको बाग़ी बना दिया है।

"आप मेरी हसी उड़ा रहे हैं या मेरी प्रशसा कर रहे हैं ?"

"दोनों में से कुछ नहीं। मैं अपनी और देश की किस्मत को रो रहा हूँ।"

"देखिये सरदार साहब ! मेरी आयु अभी-अभी पन्द्रह वर्ष की हुई है। मैं केवल दसवीं श्रेणी तक पढ़ा हूँ। मैं अति-निर्धन हूँ। इस कारण मैं किसी को कैसे वरगला सकता हूँ ?"

"तुमने दीनानाथ को बहका दिया है।"

"कैसे ?"

"उसके मन की ज्योति जगाकर।" दीनानाथ दुकान में आकर उसके पीछे बैठ गया था। बोल उठा, "देखो अर्जुनसिंह, मैं तुमको स्पष्ट कह देता हूँ कि मैं देश की स्वतन्त्रता के लिये त्याग से नहीं डरता, परन्तु प्रेमनाथ ने मेरे ज्ञान-चक्षु खोल दिये हैं। मैं ऐसा समझने लगा हूँ कि अंग्रेजों को भगाकर, किसी अन्य देश वाले को निमन्त्रण देना महामूर्खता होगी। हम इस प्रकार स्वामी बदलने से सुखी नहीं, दुःखी होंगे। यह ज्ञान मुझको प्रेमनाथ ने दिया है। यदि हम यह समझ जाएँगे तो इस युद्ध के समय झगड़ा करना अनुचित मानने लगेंगे।"

"जलते दीपक से दीपक जलता है। बुझे दीपक से दीपक नहीं जलता

करता। फिर जिस दीये में तेल ही नहीं, वह क्या जलेगा। पहले मन रूपी दीपक में ज्ञान का तेल डालो, फिर देखोगे कि जलते दीये की लौ लगने मात्र से दीपमाला जगमग-जगमग कर उठेगी।"

अर्जुनसिंह इतनी लम्बी सूझ-बूझ नहीं रखता था। इस कारण दीनानाथ ने बात ज़रा और स्पष्ट करने के लिये कह दिया, "क्रान्ति करने का समय नहीं आया। इस समय हमको तैयारी तो करनी चाहिए, परन्तु कार्य करने का समय युद्ध के पश्चात होगा।"

"तो तैयारी क्या करनी चाहिये ?"

"अपनी और भारतीय जनता की ज्ञान-वृद्धि। क्या आप जानते हैं कि जर्मन, जो फौजी-शक्ति से योरुप पर साम्राज्य बनाकर बैठना चाहता है, हिन्दुस्तान में आकर हम को अपने फौजी-बूटों के नीचे कुचल नहीं देगा ?"

"हम समझते हैं कि कैसर का राज्य बहुत अंशों में अंग्रेजों से अच्छा है।"

"होगा, परन्तु अपने लोगों के लिये। दूसरे लोग, जिन पर वह राज्य करता है, उनकी दशा तो बहुत खराब है। पर मैं तो सरदार साहब, यह कह रहा हूँ कि भारत में राज्य बदलना हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए। हमारा उद्देश्य तो भारतीय राज्य स्थापित करना है।"

"हमारा उद्देश्य इस समय यह है कि अंग्रेजों के युद्ध-कार्य में जितना विघ्न डाल सकें, डालें।"

"मेरा और आपका मार्ग पृथक्-पृथक् है। आप जर्मन के सहायक बन रहे हैं। मैं भारतमाता का सपूत बनने का यत्न कर रहा हूँ।"

बात यहीं समाप्त होगई। प्रेमनाथ को प्रतीत हुआ कि सरदार अर्जुनसिंह और उसके दो साथी जो वहां बैठे थे दीनानाथ की इस स्पष्ट-वादिता पर प्रसन्न नहीं हैं। इस पर भी दीनानाथ से झगड़ा नहीं करना चाहते थे। दीनानाथ ने अपनी जेब से पांच हजार के नोट निकालकर उनको दिये और कहा, "इतना देने से अब आपका सब रुपया चुकता हो

गया है।"

"पर दीनानाथ, तुमने अपनी ओर से कुछ नहीं दिया और प्रेमनाथ का रुपया बचाकर जो पार्टी की हानि की है उसका बदला भी तो चाहिये।"

"मेरी शक्ति यह है कि मैं आपको दस रुपये मासिक सहायता दूं। सो, दो मास की मैं दे चुका हूं। अब मैं आपके कार्य में विश्वास नहीं रखता, इससे कुछ दे नहीं रहा।"

"तो क्या यह रुपया जो हमने एकत्र किया है हमारे काम में विश्वास रखने वालों से किया है?"

"यह तो डाका डालकर एकत्र हुआ है न? तो मेरे यहां भी तुम डाका डाल सकते हो। पर मैं अपनी इच्छा से अब एक पैसा नहीं दूंगा।"

"बहुत अच्छा।" अर्जुनसिंह ने कहा, "जब पानी नाक तक आ जाएगा तब तुम्हारे जैसे टटपूंजियों पर भी डाका डाल लेंगे।"

इतना कह अर्जुनसिंह रुपया अपनी जेब में रख और अपने साथियों को लेकर चला गया। उनके चले जाने के पश्चात् दीनानाथ ने बहुत ही गम्भीर भाव बनाकर प्रेमनाथ को समीप बुलाकर कहा, "मैं समझता हूं कि तुम लोगों को रुपया घर में नहीं रखना चाहिये। इनकी बातों से ऐसा पता चलता है कि ये लोग तुम्हारे घर में डाका डालेंगे।"

"क्यों? हमने इनका क्या बिगाड़ा है?"

"यह बात नहीं। इनके मस्तिष्क में यह बात समा गई है कि यह अंग्रेजी राज्य पलटने के लिये यत्न कर रहे हैं, और इस काम की श्रेष्ठता इतनी अधिक है कि उसके लिये जिस किसी भांति भी साधन जुटाये जायें उचित ही हैं। तुम्हारे साथ कोई द्वेष नहीं, पर इनको अपने काम के लिये रुपया चाहिये और इनको पता चल गया है कि तुम्हारी माता जी के सन्दूक में पांच हजार रुपया रखा है।"

प्रेमनाथ इस समस्या पर अभी सोच ही रहा था कि दीनानाथ ने अपनी योजना बता दी। उसने कहा—"माताजी ने कहा था, तुम नौकरी

छोडने वाले हो। इस कारण मैंने एक योजना सोची है। मोहनलाल रोड स्कूल-कालेजों का मार्ग है। वहां एक दुकान का प्रवन्ध कर दिया है। तुम उसमें अपना पांच हज़ार रुपया लगा दो। किताबें, कापियां, कलम, दवात और अन्य पढ़ाई के सामान की दुकान खोल दी जाये। अभी तुम नौकरी मत छोड़ो। मेरे पास एक ईमानदार लड़का है। वह वहां काम करेगा। जब दुकान चल जायेगी, तुम वहां बैठ जाना।"

"पर माताजी वह रुपया काम में नहीं लगायेंगी।"

"वह रुपया तुम उधार दिया हुआ मानना। इससे दो बातें हो जाएंगी। रुपया घर नहीं रहेगा और अर्जुनसिंह के हाथ से बच जाएगा। दूसरे तुम्हारे नौकरी छोडने का आयोजन सफल हो जाएगा। मैं इस व्यापार में कुछ ज्ञान रखता हूं। तुम्हारी सहायता कर दूंगा। मोहनलाल रोड इस काम के लिये बहुत अच्छा स्थान है। काम अवश्य चलेगा।"

७

स्वामी निरूपानन्द की शिक्षा का फल हो रहा था। एमिली अपने पति के कामों में अरुचि प्रकट करने लगी थी। उसको यह सब प्रयास व्यर्थ का प्रतीत होने लगा था। एक दिन डिप्टी कमिश्नर को किसी सभा में जाना था और सभा के आयोजकों ने मिसेज चोपड़ा को भी बुलाया था। ऐमिली को जाने की इच्छा नहीं थी। इस पर पति-पत्नी में तकरार हो गया।

"तुम क्यों नहीं जा रहीं ?"

"जाने की आवश्यकता नहीं समझती। आप तो जिलाधीश हैं, आप को जिला के लोगों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए जाना ही है। यह पदाधिकारी होने के नाते आपका कर्तव्य है।"

"पत्नी होने के नाते तुम्हारा भी कुछ कर्तव्य है या नहीं ?"

"सो तो पूरा कर रही हूं। मैं श्रीमान् ए० एन० चोपड़ा साहब की

स्त्री हूँ। लाहौर के डिप्टी कमिश्नर की नहीं।"

"पर आजकल ए० एन० चोपड़ा चौबीस घंटे का सरकारी नौकर है। इस कारण तुमको एक सरकारी नौकर की बीवी होने से सरकारी काम में सहायक बनना पड़ेगा।"

"यह ठीक है कि मैं आपको छोड़ नहीं सकती। इस कारण एक दास की दासी बनने पर विवश हूं। चलिये।"

मिस्टर चोपड़ा ने समझा कि उसने भारी विजय प्राप्त की है। इस कारण अति प्रसन्न हो ऐमिली को साथ ले सभा-स्थान की ओर चल पड़ा। सभा हुई। डिप्टी कमिश्नर बहादुर को फूलों और गोटा-किनारी की मालायें पहनाई गईं। एक अभिनन्दन पत्र पढ़ा गया जिसमें जिलाधीश की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

अभिनन्दन-पत्र पढ़ने वालों ने अंग्रेजी सरकार की प्रशंसा तो की, साथ ही अंग्रेजी रहन-सहन और सभ्यता तथा संस्कृति की भी प्रशंसा की। एक सज्जन, जो वहां पर स्कूल में मुख्याध्यापक थे, तो इस सीमा तक चले गये कि हिन्दुस्तानी पोशाक और आचार-विचार की निन्दा भी आरम्भ कर दी। कुछ समय तक तो मिसेज चोपड़ा सुनती रहीं, परन्तु जब मुख्याध्यापक महोदय कहने लगे, "इस असभ्य देश में ज्ञान का प्रकाश लाने वाली सरकार के आप प्रतिनिधि हैं। इस कारण हम आपका अभिनन्दन करते हैं। हम घरेलू कलह में कुत्तों की तरह परस्पर लड़-लड़ कर एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे थे, तब यहां पर भगवती स्वरूप महारानी विक्टोरिया ने दैवी-राज्य की स्थापना कर सुख और शान्ति का प्रसार किया।"

ऐमिली इस बात को सहन नहीं कर सकी। उसने मास्टर साहब को बीच में ही टोक दिया। वह स्वयं खड़ी हो गई और वक्ता को बैठा कर स्वयं बोलने लगी।

उसने कहा, "सभ्यगण, आपने जो अभिनन्दन-पत्र मेरे पति और लाहौर के जिलाधीश की सेवा में दिया है उसका उत्तर देने के लिए

साहब ने मुझको आज्ञा दी है। उन सब बातों के लिए, जो आपने मेरे परमप्रिय पति के लिए इस पत्र में तथा अपने भाषणों में कही हैं; हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। वे सरकार द्वारा आप लोगों की सेवा के लिए नियुक्त हुए हैं और यह सुनकर कि आप उनकी सेवाओं का आदर करते हैं हमको अति हर्ष और सन्तोष हुआ है।"

"यह युद्ध का काल है। इस देश की सरकार एक अति बलशाली और विकृत मनोवृत्ति वाले साम्राज्य से युद्ध में उलझ गई है। आपने ब्रिटिश राज्य की जो प्रशंसा की है, उससे यह आपका कर्तव्य हो जाता है कि इस भीड़ के समय आप अपनी सरकार की सहायता करें।"

"इस पर भी मैं आपको अपने मन की एक बात कहना चाहती हूँ। यह ठीक है कि इस देश में अंग्रेजी राज्य स्थापित है। इसमें कारण हिन्दुस्तानियों की राजनीति में अज्ञता थी। राजनीति में अज्ञता का कारण यह नहीं था कि यहाँ के लोग कुत्तों के तुल्य थे। यह तो यहाँ के लोगों की सीमा से अधिक भलमनसाहत के कारण था।"

"मैं आपको और विशेष रूप से आपके अन्तिम वक्ता को बताना चाहती हूँ कि उन्होंने इस विषय में जो कुछ कहा है, यदि शुद्ध खुशामद से नहीं कहा तो उन्होंने अपनी अज्ञानता का बहुत प्रबल परिचय दिया है। भारत देश में ज्ञान और चरित्र की जितनी महिमा थी और है, उसके लिए योरुप को अभी शताब्दियों, यहाँ इसके चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीखना है।"

"मेरा जन्म इस देश में नहीं हुआ, परन्तु पिछले बारह वर्षों से मैं यहाँ हूँ और जो कुछ मैंने यहाँ देखा है उससे चकाचौंध रह गई हूँ। दुर्भाग्य की बात है कि सरकारी स्कूलों में पढ़े-लिखे लोग भारत की सर्वोच्च विभूति, यहाँ के धर्म का अध्ययन तो करते नहीं और योरुप के बाहरी रूप-रंग पर मुग्ध हो यहाँ की निन्दा करने लगते हैं। मैं आप लोगों को यह चेतावनी देना चाहती हूँ कि ऐसे लोगों के विचार को, अधूरे ज्ञान पर निर्मित होने के कारण, यहीं दबा दो। अन्यथा भविष्य में भारत

अपना अमूल्य रत्न अध्यात्मवाद और नि श्रेयस का मार्ग तो खो देगा, और इस रत्न के स्थान पर हाथ में सासारिक वैभव रूपी काच का खिलौना पकडे रह जायगा ।"

"अन्त में मै आप सब लोगों का पुन धन्यवाद करती हूं और आपको प्रेरणा देती हू कि आप अपने मेधावी बालकों को भारत की सारगर्भित अध्यात्म विद्या सिखायें। इसमें उनका कल्याण होगा और ससार का भी कल्याण होगा ।"

लोगों ने तालिया बजाई और डिप्टी कमिश्नर बहादुर की अग्रेज बीबी का एक साधू सन्त के समान उपदेश सुन अति हर्ष प्रकट किया। सभा विसर्जित हुई और लोगों ने प्रतिष्ठित मेहमानों को विदा करते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

मार्ग में मिस्टर चोपडा ने अपना असन्तोष प्रकट किया। वह इस समय तक अपने मन के भावों को भीतर ही भीतर दबाकर बैठा हुआ था। उसने कहा, "यह आज तुमने क्या किया है ?"

"जो उचित समझ आया कह दिया ।"

"परन्तु मैंने तुमको उत्तर देने के लिए कब कहा था ?"

"मै आपकी पत्नी होते हुए आपके विचारों को प्रकट करना अपना कर्तव्य मानती हू ।"

"पर ये मेरे विचार नहीं है।"

"इस पर भी बात ठीक ही है। ये मूर्ख खुशामदी सरकारी स्कूलों-कालिजो में पढ़े-लिखे अनपढ़ नहीं जानते कि वे अपने ही देश की आत्मा का हनन कर रहे हैं। इगलेण्ड में यदि कोई स्कूल का अध्यापक इगलैण्ड के विषय में कुछ ऐसा कहता तो कम-से-कम उसके नौकरी से पृथक होने की आज्ञा तो तुरन्त हो जाती।"

"पर यह इगलैड नहीं है।"

'ठीक है, पर यहां भी मनुष्य बसते हैं, यहां के लोगों के मन भी उसी मिट्टी के घडे हुए है जिससे इगलैड के लोगों और बालकों के।"

"मैं समझता हूँ कि मैंने तुमको साथ लाकर भारी भूल की है।"

"क्या हो गया है इससे ?"

"दो-चार ऐसे और व्याख्यान दे डालो और मेरी नौकरी गई।"

"क्या अपने देश की मान-मर्यादा एक व्यक्ति की नौकरी से भी अधिक मूल्य की नहीं है ?"

"तुम नहीं समझती।"

८

एक दिन लाहौर डिवीजन के कमिश्नर महोदय ने मिस्टर चोपड़ा को अपने घर बुलाया। वहां उससे यह कहा, "आपके जिले में डाके की वारदातें अधिक होने लगी हैं। और यह विश्वस्त सूत्र से पता चला है. कि कोई पोलिटीकल पार्टी, पार्टी फंड के लिए डाके डाल रही है। मैं चाहता हूँ कि दो सप्ताह के भीतर इस पार्टी का पता कर इन पर मुकदमा चलना चाहिए।"

डिप्टी कमिश्नर अपनी विलासिता में इतना विलीन था कि उसको यह समाचार विस्मय में डालने वाला सिद्ध हुआ। इस पर भी उसने अपनी अज्ञानता को छिपाने का यत्न करते हुए कहा, हजूर, मैं इस बात से बेखबर नहीं हू और पूरी कोशिश कर रहा हूँ कि ये सबके सब लोग किसी जगह एकत्र हों और पकड़ लिये जाएं।

"मैं आप जैसे राज्य-भक्त और सतर्क पदाधिकारी से यही आशा करता हूँ। अच्छा, एक सप्ताह पश्चात् इस काम में जो तरक्की हो रिपोर्ट कीजियेगा।"

घर आकर उसने इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस और डिप्टी इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस को बुला भेजा और उनसे कमिश्नर साहब से दी गई सूचना पर बातचीत की। डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "जैसे कैसे भी हो, दो सप्ताह में एक षड्यन्त्र पकड़ लेना चाहिये, पीछे देखा जायगा।"

मिस्टर चोपड़ा को अपनी नेकनामी की आवश्यकता थी। और

पुलिस अफसरों को इस आश्वासन की आवश्यकता थी कि यदि मुकदमा ढीला हुआ तो सरकार उस ढीलेपन पर आँखें मूंद लेगी। परिणाम यह हुआ कि खुफिया पुलिस ने भागदौड़ आरम्भ कर दी।

एक दिन प्रात. चार बजे लाहौर और आस-पास के गावों में कई स्थानों पर छापे मारे, तालाशियां लीं और लगभग एक सौ आदमी पकड़ लिये। अर्जुनसिंह पकड़ लिया गया। दीनानाथ भाग निकला। प्रेमनाथ पकड़ा गया। इस प्रकार इनसे मिलने-जुलने वाले सब लोग पकड़े गये। दीनानाथ अपनी पुस्तकें एक छापेखाने में छपवाया करता था। उसने वंकिम के आनन्दमठ उपन्यास का उर्दू अनुवाद छपवाया था। उस पुस्तक की किताबत करने वाला मुंशी और छापेखाने का मालिक पकड़ लिये गए। पापड़ मंडी में एक और किताबों के छापने वाले लाला चरणदास मेहता थे। वे १६०७ में भारतमाता सभा के सदस्य थे वे भी पकड़ लिये गए।

इस प्रकार एक सौ से ऊपर लोग पकड़कर नौलखा थाने में लाये गए। पुलिस तलाशियों में विक्रेताओं की पुस्तकें छकड़ों पर लाद कर ले गई। अर्जुनसिंह के सन्दूक में से पांच हजार के नोट ले गई। एक और के घर से कपड़े और बर्तन उठा लिये गये। प्रेमनाथ के घर में ले जाने योग्य कुछ नहीं था। इस कारण प्रेमनाथ के साथ पुलिस को और कुछ नहीं मिला।

जब प्रात चार बजे पुलिस ने प्रेमनाथ का दरवाजा खटखटाया तो प्रेमनाथ की मां स्नान आदि से छुट्टी पा राम-नाम की माला जप रही थी। नीचे दरवाजा खटखटाया जाता सुन वह उठी और खिड़की में से झांककर पूछने लगी, "कौन है ?"

"पुलिस है, दरवाजा खोलो।"

प्रेमनाथ की मां को समझ नहीं आया कि बात क्या है। वह नीचे आई, दरवाजा खोला तो देखा कि एक सौ से ऊपर पुलिसवाले मकान को चारों ओर से घेरे हुए हैं। कुछ आसपास के मकानों पर चढ़े हुए थे।

प्रेमनाथ की मां ने अचम्भे से पूछा, "क्या चाहते हो ?"

"प्रेमनाथ के वारंट हैं और उसके घर की तलाशी का हुक्म है।"

"वह भौंचक हो पुलिस अफसर का मुख देखती रह गई। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। पुलिस ने प्रेमनाथ की माता को दरवाजे में से एक ओर कर दिया और धड़ाधड़ ऊपर चढ़ गई। प्रेमनाथ स्नान कर रहा था। वह बाहर आया तो पकड़ लिया गया। इन्द्रा जागी तो इतने लोगों को वहां देख चीखें मार-मार रोने लगी।

इस समय प्रेम की मां प्रेम के मामा को लेकर वहां चली आई। प्रेम के मामा ने थानेदार से कहा, "आपको तलाशी तब तक आरम्भ नहीं करनी चाहिए थी जब तक स्वयं किसी पास-पड़ोस के आदमी से अपनी तलाशी न करवा लेते।" पर पुलिस वालों को आज्ञा थी कि तलाशी में यदि कोई भी बाधा खड़ी करे तो उसकी न सुनी जाये। इसका अर्थ पुलिस ने समझा कि मनमानी की जाये और आपत्ति उठाने वाले को गाली दी जाए और धमकाया जाए।

इस पर भी प्रेमनाथ के मकान में सिवाय उस पुस्तक के, जो दीनानाथ ने उसको पढ़ने को दी थी, जिसका नाम 'भारत में अंग्रेजी राज्य' था और कोई वस्तु पुलिस को ले जाने को नहीं मिली। इस समय प्रेम के मामा ने फिर कहा कि तलाशी के पर्चे की खानापूरी यहां कर ली जाए, परन्तु कौन सुनता था। प्रेमनाथ के मामा को दो-चार सुनाई गईं। थानेदार ने उसके मुख पर एक चपत भी लगा दी और प्रेमनाथ को ले चल दिये।

दीनानाथ के घर में इससे उल्टी बात हुई। सायंकाल जब दीनानाथ दुकान बन्द करके घर, जो मुहल्ला मोहलियां में था, जाने लगा तो उसको ऐसा अनुभव हुआ कि एक आदमी उसके पीछे साये की भांति लगा हुआ है। दीनानाथ ने बंगाल में क्रान्तिकारियों की गिरफ्तारियों का विवरण और सन् १९०७ में श्री अजीतसिंह इत्यादि की गिरफ्तारी का वृत्तान्त पढ़ा था। इससे उसको सन्देह हो गया। वह घर पहुंचा तो उसको वहां

"ठीक है ऐमिली ! पर यह सुख और आनन्द जो इस कोठी में तुम्हारे साथ रहकर पा रहा हूँ सबसे बडा न्याय है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती ।"

६

ऐमिली को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह मन में प्रेमनाथ के हवालात में रोने-पीटने और उसकी मां के घर पर निःसहाय पडे होने का चित्र खींच रात भर सोचती रही। प्रात काल साहब अभी सो ही रहे थे कि वह उठी, मोटर निकलवाई और शाहदरा में जा प्रेमनाथ का मकान ढूढने लगी। मकान मिलने में कठिनाई नहीं हुई। प्रेमनाथ अभी एक दिन पहले ही पकडा गया था और उसके विषय में गांव भर में चर्चा थी।

ऐमिली ने एक राह पर जाते से पूछा और वह उसको प्रेमनाथ के मकान के नीचे ले गया। प्रेमनाथ की मा को आवाज दी गई। उसने खिडकी में से झाककर देखा और समझ गई। वह नीचे आई और हाथ जोडकर नमस्कार कर सामने खडी हो गई। ऐमिली ने कहा, "मुझको अपने घर पर नहीं ले चलोगी ?"

"वहा पर आपके वैठने योग्य स्थान नहीं है ?"

"चलिये ! मै चलती हूँ।"

विवश प्रेमनाथ की मा उसको ऊपर ले गई। मकान काफी साफ-सुथरा था। इस पर भी डिप्टी कमिश्नर के बगले के बराबर तो किसी प्रकार भी नहीं हो सकता था।

इन्द्रा अभी सो ही रही थी। ऐमिली उसकी चारपाई पर बैठ गई और उसके मुख को देखने लगी। सोये-सोये भी वह गम्भीर सास लेने लगती थी। इस समय शान्ता सामने खडी थी।

ऐमिली ने उसको अपने समीप वैठने को कहा। वह भूमि पर बैठ गई और बोली। "आपको यहां नहीं आना चाहिये था। कल मै थाने में गई थी। वे आये थे और मुझको देख आखें दूसरी ओर फेर चले गये। मै

समझती हूँ कि वे अपने पुत्र की रक्षा करना पसन्द नहीं करेंगे ।"

"मैं आपसे यह पूछने आई हूँ कि क्या आपको कुछ भी पता है कि प्रेम का गदर पार्टी से कुछ भी सम्बन्ध था ?"

मैं विश्वास से जानती हूँ कि उसका किसी भी पार्टी से सम्बन्ध नहीं है। दीनानाथ को मैं जानती हूँ। एक भले घर का लडका है। उससे प्रेम का मेल-जोल अवश्य था।"

"अब तुम्हारा काम कैसे चलेगा ?"

"जैसे पीछे चलता रहा है।"

"तब तो तुम बीस रुपये मासिक उनसे लेती थीं। अब तो तुम वह-भी नहीं लेती।"

"उन बीस रुपयों में मेरा कुछ बनता नहीं था। मैं तो स्वयं काम धंधा करती थी।"

इसके पश्चात् दोनों चुपकर गईं और एक दूसरे का मुख देखती रहीं। उस समय इन्द्रा उठ बैठी और विस्मय में इस नई आई हुई का मुख देखने लगी। ऐमिली ने उसका मिलान अपनी लड़की सरस्वती से किया। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह उसकी लड़की से अधिक सुन्दर है। इससे उसको ईर्ष्या होने लगी। फिर अपने मन की भावनाओं को दबाकर कहने लगी—"मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकती हूँ ?"

"मैं पूजा कर रही थी। आपका यही अनुग्रह होगा कि आप यहाँ से चली जाएँ।"

"ऐमिली को यह मन की एक विचित्र अवस्था प्रतीत हुई। वह समझती थी कि वह उससे उसके लडके को छुड़ाने के लिये कहेगी अथवा अपने निर्वाह के लिये कुछ धन मांगेगी।

"लड़के के विषय में आप क्या करना चाहती हैं ?"

"मेरे पास वकील करने के लिये रुपया नहीं है, इस कारण मैं क्या कर सकती हूँ। मैं परमात्मा से प्रार्थना करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती हूँ ?"

इस बातचीत से ऐमिली उठ खड़ी हुई। उसके मन को कुछ ठेस पहुँची। परन्तु वह मन में सोचती थी कि कुछ किया नहीं जा सकता। शान्ता उसको छोड़ने के लिए नीचे तक आई। परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। एकाएक ऐमिली को कुछ याद आया। उसने पूछा, "आपके पास कुछ काल के लिए गुजर करने को रुपया तो होगा ही ?"

"महीने का अन्त है। पर आप इसकी चिन्ता क्यों करती हैं। जिसने बनाया है वह यदि जीवित रखना चाहेगा तो कुछ प्रबन्ध कर ही देगा।"

इस पर कुछ कहने को नहीं रह गया था और ऐमिली मोटर पर सवार हो लाहौर अपनी कोठी पर पहुँच गई। मिस्टर चोपड़ा जागकर ऐमिली के मोटर लेकर कहीं चले जाने पर विस्मय कर रहा था कि वह वापिस आ पहुँची। उसने पूछा, "कहाँ गई थीं ?

"आपकी पहली बीवी से सहानुभूति प्रकट करने।"

"तुम शाहदरा गई थीं ? यह ठीक नहीं किया। कल वह थाने में आई थी। मैंने तो ऐसा भाव बना लिया था कि मैंने उसको पहचाना ही नहीं।"

"आप ऐसा किस प्रकार कर सके थे ? वह बेचारी बहुत ही दु खी है।"

"उसके दु खी होने में मुझको सन्देह नहीं। साथ ही मुझको इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि मेरा उससे सम्बन्ध प्रकट हुआ तो मेरी नौकरी नहीं रह सकती।"

यह समस्या सुन ऐमिली चुप कर गई। उसी सायकाल मिस्टर चोपड़ा ने ऐमिली को बताया, "कल पुलिस वालोंने सबको खूब मारा-पीटा है। उनमें से पन्नालाल, सरकारी गवाह बन गया है। वह सब कुछ बक गया है, उसने बताया है कि अर्जुनसिंह इस जत्थे का नेता था और वह स्वयं भी इस जत्थे में शामिल था। उन्होंने तीन स्थानों पर डाके डाले थे और सात हजार के लगभग रुपया लूटा था। उसमें से दो हजार के लगभग खर्च हो गया था और शेष अर्जुनसिंह के पास पड़ा था। इस पार्टी का उद्देश्य यह था कि पांच हजार रुपये के बम्ब बनवाए जाएंगे और

उनसे पुल रेल की सड़कें और बड़े-बड़े अफसरों की कोठियां उड़ा दी जाएंगी।"

ऐमिली ने अपने मन की बात पूछी, "प्रेमनाथ का सम्बन्ध बताया है क्या ?"

"हां, कहा है कि प्रेमनाथ भी उनकी पार्टी का सदस्य था और वह भी डाकों में सम्मिलित था।"

ऐमिली इससे विस्मय में मिस्टर चोपड़ा का मुख देखती रह गई।

चोपड़ा ने पूछा, "क्या सोचती हो अब ? बात तो सर्वथा स्पष्ट है। अब कुछ ही दिनों में मुकदमा चलेगा।"

इस पर ऐमिली ने कहा, "मुझको पन्नालाल के बयान पर विश्वास नहीं आता। मेरी सम्मति है कि इस सरकारी गवाह को यहां बुलाकर उससे स्वयं जिरह करें।"

"मैं इस प्रकार जांच में हस्ताक्षेप नहीं कर सकता।"

"आप जिला मैजिस्ट्रेट हैं। आप अपना सन्देह मिटा सकते हैं ?"

"यदि मैंने इस मामले में हस्ताक्षेप किया तो पुलिस मेरी शिकायत गवर्नर के पास कर देगी। और सब कुछ समाप्त हो जाएगा।"

"बहुत ही विचित्र बात है। एक निरपराध लड़का फंसाया जा रहा है और आप मैजिस्ट्रेट होते हुए उसकी सहायता नहीं कर सकते !"

"मैं सरकारी अफसर हूं। मैं अपराधियों की सहायता के लिए नियुक्त नहीं हूं।"

"आप निरपराध लोगों की रक्षा के लिये नियुक्त हैं।"

"होगा। मैं तो यह जानता हूं कि गदर पार्टी वालों ने बहुत उपद्रव मचा रखा था। सो पकड़े गए। इससे मेरी नेकनामी होगी और यदि अब उनमें से बहुत-से छूट गए तो मेरी बदनामी हो जायेगी।"

ऐमिली अपने पति की इस स्वार्थ प्रवृत्ति से सन्तुष्ट नहीं हुई। वह सोच रही थी कि किसी प्रकार प्रेमनाथ की रक्षा करनी चाहिए।

अगले दिन उसने साहब के पेशकार से जो घर पर कागजात इत्यादि

देने और लेने आया करता था, नगर में फौजदारी के योग्य वकील का पता पूछ लिया। साथ वह उसको मिलने चली गई और उसको प्रेमनाथ का मुकद्दमा लडने के लिए कह आई। पाँच सौ रुपया पेशगी भी दे आई।

१०

मुकदमा डिप्टी कमिश्नर की अदालत में उपस्थित हुआ। केवल प्रेमनाथ का अपना वकील था। शेष अभियुक्तों के लिये सरकार ने थर्ड रेट वकील नियुक्त कर दिये। प्रेम का वकील एक अंग्रेज था। उसका नाम मिस्टर नार्टन था।

जब मिस्टर नार्टन ने अदालत में उपस्थित हो अपने को प्रेमनाथ का वकील बताया तो डिप्टी कमिश्नर ने अचम्भे में पूछा, "किसने आपको इस काम के लिये नियुक्त किया ?"

"अदालत को इस बात के पूछने की आवश्यकता नहीं है। मैं इंग-लैंड की बार का सदस्य हूँ और किसी भी मुकदमे में, किसी की भी ओर से पैरवी कर सकता हूँ।"

इस पर सरकारी वकील ने कहा, "मिस्टर नार्टन, यदि यह बता दें कि उनको किस ने इस काम के लिये लगाया है तो दो अपराधी जो लापता हैं, उनका पता चल जायेगा।"

नार्टन ने कहा, "यह तो तब ही हो सकता है, जब मेरा मित्र मुझ को पकड कर अपराधी बनाकर मेरे पर जिरह करे।"

विवश पुलिस अफसरों को सन्तोष करना पडा। मुकदमा आरम्भ हुआ और सरकारी वकील ने एक लम्बा-चौडा बयान दिया जिसमें बताया कि अमेरिका में यह षड्यत्र निर्माण किया गया है और वहाँ से चल कर हिन्दुस्तान में पहुँचा है। इस षड्यत्र का उद्देश्य यह है कि कानून से स्थापित सरकार को अशान्तिमय उपायों से हटाया जाय। इसके लिये ये लोग डाके डालकर रुपया एकत्र करते हैं और फिर रुपये से बम्ब बनाकर सरकारी अफसरों को मारकर और सरकारी इमारतों को गिरा-

कर सरकार के काम को अस्त-व्यस्त करने का विचार रखते हैं।

इसके पश्चात् सरकारी गवाह के बयान हुए। उसने इतना लम्बा बयान दिया कि दिन समाप्त हो गया। प्रेमनाथ की मा अदालत में उपस्थित थी। उसने देखा कि एक अंग्रेज बैरिस्टर प्रेमनाथ की रक्षा के लिये अदालत में उपस्थित है। वह समझती थी कि शायद प्रेम के पिता ने गुप्त रूप में उसको वहा नियुक्त किया है। इस पर भी जब अदालत उठ गई तो वह बैरिस्टर के सामने आकर बोली, "मैं आपका अत्यन्त धन्यवाद करती हूँ। मैं प्रेमनाथ की मा हूँ।"

"तुम ? वह तो कोई और थी जो अपने को उसकी मा कहती थी।"

"कोई अंग्रेज औरत थी क्या ?"

"शक्ल से तो अंग्रेज मालूम होती थी। पर पहरावे से और बोलने से हिन्दुस्तानी मालूम होती थी।"

"वह उसकी विमाता है। उसने आपको फीस दी है क्या ?"

"हा ! उसने वचन दिया है कि पूरे मुकदमे का दो हज़ार देगी। पांच सौ पेशगी दे चुकी है। इस लड़के के पिता का क्या नाम है ?"

"आप उस से ही पूछ लीजियेगा। हम हिन्दुस्तानी औरतें अपने पति का नाम नहीं लेतीं।"

"मैंने सब कागजात देखे हैं। यह लड़का निरपराध है। इसको छूट जाना चाहिये।"

"मैं भगवान से आपके लिये प्रार्थना करूँगी।"

मिस्टर नार्टन मुस्कराकर अपनी मोटर पर सवार हो चला गया। प्रेमनाथ की माता विस्मय में उसका मुख देखती रह गई। वह अभी भी उधर ही देख रही थी जिधर मोटर गई थी। इसी समय कैदी बाहर निकलने शुरू हुए। प्रेम भी हथकड़ी लगा हुआ बाहर आया। मा ने आगे बढ़कर प्रेम के सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया।

"मा ! कैसे काम चलता होगा ?"

"चिन्ता न करो बेटा। सब ठीक हो जाएगा।" बस, इतनी ही बात

हो सकी और सिपाही कैदियों को कैदियो की गाडी में ले गये। प्रेम की माँ को शाहदरा जाना था। इस कारण वह बिना प्रतीक्षा किये चल पडी।

घर पहुचते-पहुचते दीये जल चुके थे। उसने इन्द्रा को मामा के घर से बुलाया और अपने मकान का दरवाजा खोल ऊपर चढ़ने लगी थी कि दीनानाथ उसके पीछे आ खडा हुआ। उसने धीरे से कहा, "मा जी, ऊपर आ जाऊं?"

प्रेमनाथ की मा ने घूमकर देखा, पहचाना और फिर असमञ्जस में पड गई। कुछ विचार कर बोली, "चलो, तुम आगे चलो। दीनानाथ लपक कर ऊपर चढ गया। पीछे प्रेमनाथ की मा इन्द्रा को लेकर दरवाजा बन्द कर ऊपर चली आई। उसने मिट्टी के तेल की कुप्पी जलाई, तो दीनानाथ की लम्बी दाढ़ी और मूछें देखकर कहा, "मैं तुरन्त पहचान गई थी।"

"मैं आपके साथ रोशनाई दरवाजे से आ रहा हूं, पर आपने एक बार भी आँख उठाकर नहीं देखा।"

"मेरा स्वभाव है कि राह चलते हुए लोगों के मुख पर नहीं देखा करती। सुनाओ, कहां रहते हो अब?"

"मैं कई दिन के पश्चात् ही लाहौर आया हूं। मोहनलाल रोड वाली दुकान पर गया था। वह लडका जो वहां बैठता है मेरे भाई का लडका है। पूर्ण विश्वास योग्य है। मैंने आज हिसाब लिया है। दो मास में दो सौ से ऊपर लाभ हुआ है। सो उससे दो सौ रुपया ले आया हूं।"

इतना कह दीनानाथ ने दो सौ रुपये प्रेम की मा को दे दिये और कहा, 'अब वह लडका स्वयं आपके पास आया करेगा और माहवारी कुछ-न-कुछ दे जाया करेगा।"

"दीनानाथ! सुना है कि तुम्हारी दुकान तो पुलिस वाले ठेलो पर लादकर ले गये हैं। अब गुजर कैसे चलता होगा?"

"मैंने दिल्ली में एक पुस्तक-विक्रेता की नौकरी कर ली है। वह मुझको सौ रुपया महीना दे देता है और मैं वहां, विशनदास के नाम से

विख्यात हूं।"

"तुम इस रुपये में से कुछ ले लो। या कहो तो तुम्हारे घर पहुंचा दूं।"

"नहीं मां! तुम वहां नहीं जाना। पुलिस तंग करेगी। मैंने रुपया वहां पहुंचाने का प्रबन्ध कर दिया है। आज आपकी बहू को एक सौ रुपया मिल गया होगा।"

रात दीनानाथ प्रेमनाथ की मां के घर पर ही रहा। रात बहुत देर तक वह अपने और प्रेमनाथ के विषय में बातें करता रहा। दीनानाथ ने भारत और इंगलैंड के विषय में बहुत-सी बातें बताईं।

रात दो बजे के लगभग प्रेम की मां ने कहा, "बेटा, अब सो जाओ। कल किस समय जाओगे?"

"अभी जा रहा हूं मां।"

"मुकद्दमा नित्य होता था और प्रेम की मां नित्य अदालत में जाती थी। प्रेम के वकील ने ही सब अपराधियों की रक्षा में भार लेना आरम्भ कर दिया। सरकार की ओर से अपराधियों के वकील इतने घटिया थे कि उनको बात करने का ढंग ही नहीं आता था। डिप्टी कमिश्नर, मिस्टर चोपड़ा चकित था कि नार्टन जैसा महंगा वकील प्रेम की मां कैसे नियुक्त कर सकी है!

नार्टन को पता चल गया कि मुकद्दमे की फीस देने वाली डिप्टी कमिश्नर की बीवी है। उसको सन्देह तो पहले दिन ही हुआ था, परन्तु उसकी साड़ी और हिन्दुस्तानी बोलने का ढंग देख उसको विश्वास नहीं होता था। परन्तु एक दिन वह फीस की दूसरी किश्त देने आई तो तो नार्टन ने उसे पृथक् कमरे में ले जाकर कहा, "अगर मैं गलती नहीं करता तो आप मिसेज़ चोपड़ा हैं?"

"आपने पहचानने में बहुत समय लगा दिया है। मैं तो समझी थी कि आप पहले दिन ही पहचान गये होंगे।"

"पहचान तो गया था, परन्तु आपके कहने से कि आप प्रेमनाथ की मा हैं धोखे में पड गया था; फिर आप इतनी अच्छी हिन्दुस्तानी बोलती हैं।"

ऐमिली ने मुस्कराकर कहा, "मैं इस लडके की विमाता हूँ। उसकी मा के साथ उसके पति ने अन्याय किया है। इससे मेरी सहानुभूति उसके साथ है। उसके मन को सन्तोष देने के लिये कि उसके बेटे के लिये अच्छे-से-अच्छे वकील की सेवायें उपस्थित हैं, मैंने यह सब कुछ किया है। मैं चाहती हूं कि रुपये की कमी के कारण उसकी रक्षा ढीली नहीं होनी चाहिए।"

"आप अपने पति से क्यों नहीं कहतीं। मैं सरकारी गवाह पर जिरह करता हूँ। और जब गवाह निरुत्तर हो जाता है अथवा झूठा सिद्ध होने लगता है तो मजिस्ट्रेट उसकी सहायता के लिये बीच में कूद पडते हैं। मुझको तो अदालत होस्टाईल, विरोधात्मक व्यवहार वाली प्रतीत होती है।"

"इसमें कारण है। मैं चाहती हूँ कि आप केस को सुदृढ़ करते जायें। सैशन कोर्ट में वे छूट सकें तो भी ठीक है।"

"यत्न कर रहा हूँ। मुकद्दमा कुछ नहीं है। केवल पोलिटिकल मकद्दमा होने से प्रान्त का गवर्नर अभियुक्तों को दड दिलवाने में रुचि प्रकट कर रहा है।"

"आप यत्न करते जाइये।"

मुकद्दमे की प्रारम्भिक कार्यवाही समाप्त हो गई। सिटी मैजिस्ट्रेट ने, जो उन दिनों डिप्टी कमिश्नर ही होता था, पन्द्रह अभियुक्तो में से दो को छोड़ दिया और शेष तेरह को सेशन कोर्ट के पास भेज दिया। उन तेरह कैदियो के विरुद्ध इण्डियन पीनल कोड की धारा १२०, ३९०, ३९१, ३९२ और १२४ ए लगा दी गई। सब से विचित्र बात यह हुई कि मैजिस्ट्रेट ने प्रेमनाथ के विरुद्ध अपने फैसले में तीन बडे पृष्ठों में दलील की और घटनाओं को विकृत कर लिखा।

मिस्टर नार्टन ने जब मैजिस्ट्रेट के व्यवहार में इतना विरोध देखा तो उनका मुख लाल हो गया। अर्जुनसिंह की रक्षा में बहुत दुर्बलता थी। दीनानाथ के विरुद्ध कुछ नहीं था। केवल यह बात मुकद्दमे में आई थी कि अर्जुनसिंह के घर से और प्रेमनाथ के घर से किताबें निकली थीं, जिन पर दीनानाथ की दुकान की मोहर लगी हुई थी। मिस्टर नार्टन ने प्रेमनाथ और दीनानाथ की सफाई में एक दिन भर बहस की परन्तु प्रभाव उल्टा हुआ।

मुकद्दमा सैशन कोर्ट में गया और नार्टन को उस अदालत में मुकद्दमा करने के लिये दो हजार रुपया और दिया गया। जब ऐमिली उसकी इस नवीन फीस की पहली किश्त देने गई तो मिस्टर नार्टर ने उसके पति के व्यावहार पर बहुत खेद प्रकट किया। उसने कहा कि बहुत आसानी से वह अपने पुत्र को छोड़ सकता था, परन्तु उसके मन की अवस्था पर अचम्भे के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जा सकता। उसने ऐमिली को मुकद्दमे में त्रुटियां दिखाईं और कहा, "यूं तो मुकद्दमा चल ही नहीं सकता और किसी भी अभियुक्त के विरुद्ध दोष सिद्ध नहीं हुआ परन्तु प्रेमनाथ के विरुद्ध तो कुछ है ही नहीं। मुझ को अचम्भा तो यह है कि इस विषय में एक पिता की स्वभाविक प्रवृत्ति भी मैंने मैजिस्ट्रेट में नहीं देखी।"

११

ऐमिली ने हिन्दुस्तानियों से सम्पर्क तो केवल अपनी जानकारी बढ़ाने के लिये आरम्भ किया था, परन्तु इसका प्रभाव उसके मन पर हुए बिना नहीं रहा। संसार में कोई बात अथवा घटना ऐसी नहीं होती जो अपना न्यूनाधिक प्रभाव समीपवर्ती लोगों पर न छोड़े। प्रभाव तो सब पर होता है, परन्तु कुछ लोगों की आत्माएँ अपने पूर्व जन्म के फलने पहले ही इतनी जीवित हो चुकी होती हैं, कि उनमें होने वाली घटनाओं की प्रतिक्रिया अधिक उग्र होती है। ऐमिली की आत्मा ऐसी ही प्रतीत होती थी।

हिन्दुस्तान में आने पर उसको मिस्टर चोपडा ने नीडोज होटल में ठहराया। इससे उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि हिन्दुस्तान और इग्लिस्तान में कोई अन्तर नहीं। परन्तु जब उसको पता चला कि उसकी एक सौत भी है, तो वह कुछ चिन्तित हुई। उसने यत्न किया कि उससे मिलकर उसके मन पर उसके पति के दूसरे विवाह की प्रतिक्रिया जाने, परन्तु मिस्टर चोपडा ने यह कहकर टाल दिया कि वह अनपढ गवार औरत है। व्यर्थ में उसको गाली देने लगेगी।

जब शान्ता के पति के घर से विना कुछ लिये और विना झगडा किये चले जाने की सूचना मिली, तो वह विचार करने लगी कि यह अस्वाभाविक प्रतिक्रिया क्यों ? इससे उसके मन में पुन: अपनी सौत से मिलकर उसके भाव जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसके पति ने फिर यह कह टाल दिया कि वह पगली है। इसके पश्चात् घटनायें द्रुत गति से घटीं। उसके स्वसुर का देहान्त हो गया और वे दोनों रावलपिंडी चले गये।

यदि वह साधारण योरोपियन स्त्रियों की भांति होती तो अग्रेजी क्लब में योरोपियनों अथवा योरोपियन-नुमा हिन्दुस्तानियों की सगति से ही सन्तुष्ट रहती, परन्तु कुछ जानने की लालसा तो केवल उन आत्माओ में ही उत्पन्न होती है जो पूर्व जन्म के कर्म से सजीव हो चुके होते हैं। रावलपिंडी में तपोवन की औरतों ने उसकी भावनाओं को वह ठेस लगाई थी कि केवल मात्र हिन्दुस्तान में तमाशा देखने के विचार को छोडकर वह हिन्दुस्तान को समझने का यत्न करने लगी।

उसकी इस समझने की भूख को गुजरावाला के साधू ने और उन्नत कर दिया। वह साधू रोटी खाता है, शरीर को चालू रखने के लिये। और इस चालू शरीर का प्रयोग करता है अपनी आत्मा की उन्नति के लिये। एक रथ है, घोडे हैं, सारथि है और रथ का स्वामी है। रथ और घोडे रखे जाते हैं स्वामी को कहीं ले जाने के लिये, स्वामी रथ की देख-भाल रथ रखने के लिये नहीं, प्रत्युत कहीं दूर ले जाने के लिये करता

है। उसको यह उदाहरण बहुत पसन्द आया। इससे उसके मन में शरीर क्या है, इन्द्रियां और मन क्या है और आत्मा क्या है, यह सब जानने की इच्छा हुई।

गुजरावाला से उसके पति की बदली लाहौर हुई। यहां पर उसके मन में एक और ठेस पहुँची। जहांगीर के मकबरे में एकाएक उसको सौत का लड़का उसको दिखाई दिया। लड़का स्वस्थ और साफ-सुथरे कपड़े पहने था। उसने देखा कि लड़के के मन में उच्चतम भावनायें और निर्भीकता भी विद्यमान है। वह सोचती थी कि एक मूर्ख, गंवार औरत का बच्चा इतना सभ्य और सुशील कैसे हो सकता है? यह पहला अवसर था जब उसके मन में अपने पति के पक्षपात-पूर्ण विचारों का भास हुआ था।

पश्चात् वह यत्न करती रही कि अपनी सौत से मिले, परन्तु एक उच्चतर सरकारी पदाधिकारी की बीवी होने के कारण पार्टियों, सभाओं और मेहमानों के कारण उसको समय ही नहीं मिलता रहा। एकाएक उसको प्रेम का नौकरी के लिये आना और मिस्टर चोपड़ा का उसको चालीस रुपये मासिक की नौकरी देकर मन में प्रसन्नता अनुभव करना चकित करने वाला सिद्ध हुआ। इससे जहां उसके मन में अपने पति के हृदय में उसकी सौत के लड़के के लिये कोमलता का पता चला वहां चालीस रुपये की न्यूनता का भी भास हुआ। वह सोचती थी, एक डिप्टी कमिश्नर के लड़के का वेतन चालीस रुपये मासिक एक हँसी है।

इसके कुछ ही समय पश्चात् एक और घटना घटी। यह तहसीलदार का और उसके पति का कहना था कि लड़का रिश्वत नहीं ले सकता। इन सब घटनाओं का अर्थ कुछ नहीं होता यदि ऐमिली की अन्तरात्मा में विचारशीलता नहीं होती और फिर उसके विचारों को उचित धारा में ले जाने के लिये स्वामी निरूपानन्द नहीं मिल पाता।

मुकदमे में मिस्टर चोपड़ा का व्यवहार उसके मन में क्रान्ति करने वाला सिद्ध हुआ। केवल मात्र नौकरी रखने के लिये उसने अन्याय

किये। अपने लड़के को फांसी दिलवाने का मार्ग खोल दिया। वह अपने पति को एक अति ही क्षुद्र प्राणी मानने लगी थी।

आज वह अपने पति के व्यवहार पर इतनी लज्जित हुई थी कि नार्टन की बातों का यह उत्तर न दे सकी। वह घर आई तो अपने कमरे में जा कर लेट रही। उसकी इच्छा हो रही थी कि अपने पति से लड़े, परन्तु उसका मुख इस कारण बन्द हो जाता था कि मिस्टर चोपड़ा ने जैसा व्यवहार अपनी पहली स्त्री और बच्चों से किया था ऐसा वह उसके साथ और बच्चों के साथ भी कर सकता था।

मिस्टर चोपड़ा, कुछ देरी से घर आया तो ऐमिली को अपने सोने के कमरे में देख चिन्तित हो वहाँ गया। उसको लेटा हुआ देखकर पूछने लगा, "क्या बात है ? तबीयत तो ठीक है ?"

"नहीं ! ठीक नहीं है। सिर में चक्कर आ रहा है।"

"तो यू डी क्लोन लगाओ न। बताओ कहाँ रखा है वह ?"

"बहुत लगा चुकी हूं ?"

"कब ? गन्ध तो आती नहीं ?"

"जीवन भर लगाती रही हूं। और सिर में चक्कर फिर भी आता ही है। इतना कहते हुए वह उठकर बैठ गई और उसने कहना जारी रखा, "भला यह बताइये कि अपने आदमी के साथ रियायत तो दूर रही न्याय भी नहीं किया जा सकता न ?"

डिप्टी कमिश्नर चिन्ता के भाव से उसके पलंग के कोने पर बैठकर पूछने लगा, "यह आज क्या हो गया है तुमको ? मैंने किस अपने के साथ न्याय नहीं किया ? शायद तुम प्रेमनाथ की बात करती हो ?"

"अभी और किसी अपने से वास्ता भी तो नहीं पड़ा। उसी की बात तो देखनी है। आज मिस्टर नार्टन से बातचीत हुई थी। उसने पूर्ण मुकदमे पर अपने विचार बताये थे। उसका कहना है कि प्रेम को छोड़ देने पर आपत्ति तो दूर रही, सब लोग आपको न्याय-प्रिय कहते।"

"मैं यह सन्देह नहीं बनने देना चाहता कि मैंने अपने लड़के को

छोड़ दिया है।"

"कितनी भद्दी युक्ति है। आप केवल अपने को नेकनाम बताने के लिये अपने लड़के को फांसी पर लटकाना चाहते हैं। फिर यह नेकनामी किस लिये चाहते हैं ?"

"मैं चाहता हूँ कि मेरी नौकरी के साथ सम्बन्ध रखने वाली बातों में तुम दखल न दो।"

"पर मैं तो आपके पुत्र के बारे में कह रही हूँ। नौकरी न्याय करने के लिए है, और उसमें आपने अन्याय किया है। यदि यह अन्याय किसी और से होता तो मेरा सम्बन्ध नहीं था। यह आपने अपने लड़के के साथ किया है, इस कारण कह रही हूँ।"

"यही तो तुम समझती नहीं। मेरी नौकरी न्याय करने से अधिक सरकार का दबदबा बनाये रखने के लिये है। इन लोगों ने इस दबदबे में विघ्न डालना चाहा है।"

"पहली बात तो यह है कि इस फैसले को देते समय आप मैजिस्ट्रेट थे, डिप्टी कमिश्नर नहीं। दूसरे यह कि दबदबे में विघ्न डालने में प्रेम-नाथ का हाथ है क्या ?"

"है अथवा नहीं, इसके जानने की आवश्यकता नहीं। यह मैं जानता हूँ कि यदि प्रेमनाथ को छोड़ देता तो लोग कहते कि मैंने अपने लड़के के साथ रियायत की है।"

यह बात इतनी अयुक्ति-संगत और मन में ग्लानि उत्पन्न करने वाली थी कि ऐमिली ने पुनः पलंग पर लेटते हुए कह दिया, "मुझ को आपसे कुछ नहीं कहना है।"

"पर मुझको कहना है।"

"क्या ?"

"यदि तुम ने प्रेम से सहानुभूति दिखाने में कोई ऐसी बात की जिससे मेरी मान-मर्यादा में धक्का लगा, तो ठीक न होगा।"

"क्या ठीक नहीं होगा ?"

"मुझको तुमसे पृथक् होना होगा।"

"बहुत ही कृतघ्न होगे आप।"

"बकवास बन्द करो।"

ऐमिली मुख मोड़कर लेट गई। अमरनाथ ने समझा कि उसको पर्याप्त डाटा गया है। इससे उसको वैसे ही छोड़ क्लब में चला गया।

आज नार्टन भी क्लब में आया था। वह प्राय. अंग्रेज समाज से ही सम्बन्ध रखता था। और अफसरों को दूर से ही सलाम कर छुट्टी ले लिया करता था, परन्तु आज ऐमिली के आने पर उसकी रुचि मिस्टर चोपड़ा से बात करने के लिए हो गई थी। यूं तो वह वचन दे चुका था कि वह ऐमिली के इस मुकदमे में रुचि की बात किसी से नहीं कहेगा, परन्तु वह अपनी जानकारी के लिए कि प्रेम को दड देने में क्या कारण है, बात करने की उत्सुकता को रोक नहीं सका।

पजाब क्लब का पूरा हाल लांघकर वह मिस्टर चोपडा के पास आया। वह हालके एक कोने में बैठा शराब का एक पैग सामने तिपाई पर रखे गम्भीर विचार में मग्न था। मिस्टर नार्टन ने "गुड ईवनिंग मिस्टर चोपडा" कहकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और फिर कहा 'एम आई डिस्टर्बिंग यू।'

"आइये, आइये, मिस्टर नार्टन! बैठिये क्या पीयेंगे ?"

"मैंने अभी चाय ली है। धन्यवाद!" नार्टन ने बैठते हुए कहा, "इतने दिन तक मैं आपके समीप नहीं फटका। आप थे हाकिम और मैं था आपके कैदी का वकील। मेरा आपके समीप आना उचित नहीं था। परन्तु इस मुकद्दमे में ऐसी बातें मेरी जानकारी में आई हैं जिनसे मेरी आपसे परिचय बढाने की लालसा जाग उठी है।"

"क्षमा करिये मिस्टर नार्टन! मैं मुकदमे के विषय में आपसे बात करना नहीं चाहता।"

"मुकद्दमे के विषय में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। यदि कहना होता तो आपके फैसला लिखने के पहले मिलता। अब तो मरे घोड़े को पीटने

की बात है। मैं मुकद्दमे के विषय में नहीं कह रहा। मैं तो एक औरत के विषयमें कहना चाहता हूं जो मेरे मुअक्कल की मा है। साफ परन्तु टाकिया-लगे कपड़े पहन बेचारी नित्य पांच मील आने और पांच मील जाने की यात्रा करती रही है। अपने पुत्र से अति मोह है उसका। तभी तो गर्मी, सर्दी, वर्षा, आंधी की परवाह न करती हुई वह घड़ी की सूई की भांति समय पर अदालत के दरवाजे पर आ खड़ी होती थी। अदालत में आपके सामने तीन मास तक खड़ी रही और एक बार भी आपकी अयुक्तिसंगत युक्तियों पर उसने माथे पर बल नहीं आने दिया।"

"कल जब आपने फैसला सुनाया तो उसकी आंखों में तरलता थी जब वह बाहर निकली तो मैंने उससे कहा, मैसेज चोपड़ा! मुझको शोक है कि मैं आपके बच्चे को छुड़ा नहीं सका।"

इस पर उसने कहा, "यही तो मेरा उनसे मतभेद है। मैं आत्म-समर्पण करना जानती हूं। और वे आत्म-संरक्षण के लिए उत्सुक रहते हैं। मैं आत्मा की ओर देखती हूं, वे शरीर के उपासक हैं। मैं भावों को मानती हूं वे शब्दों पर अपना ध्यान लगाये रखते हैं।"

"मैं सोच रहा था कि क्या सत्य ही उसके पति मिस्टर चोपड़ा आप हैं?"

मिस्टर चोपड़ा चुपचाप मिस्टर नार्टन का मुख देखता रहा। उसे चुप देखकर मिस्टर नार्टन ने अपना कहना जारी रखा। "पहले जब वह मुझे मिली थी तो मैं समझा था कि मिस्टर चोपड़ा कोई दूसरे हैं परन्तु उसने एक दिन मुझसे कहा था कि 'पिता' के सार्वजनिक उत्तर-दायित्व भी हैं। उनको वे भी निभाते हैं। इसी कारण मैंने यह के[illegible] बहुत मेहनत से तैयार किया था और अपनी ओर से पूरा यत्न किया कि पिता यदि पुत्र को छोड़ भी दे तो कोई भी बड़ा अफसर उसमें दो[illegible] न निकाल सके।"

"मिस्टर नार्टन! मैं आपका बड़ा मशकूर हूं। परन्तु मैं आप[illegible] ने [illegible] का पता नहीं निकाल सका। मुझको आपकी सब युक्तियां सार[illegible]

प्रतीत हुई है। एक युक्ति जो आप नहीं समझ सके और जिसका उत्तर आप नहीं जानते वह यह है कि राज्य व्यक्तियों से ऊपर होता है।"

"यह ठीक है, परन्तु एक बात आपको भी स्मरण रखनी चाहिये। वह यह कि राज्य का आधार न्याय है, जब आप राज्य को चलाने के लिए अन्याय का अवलम्बन करते हैं तब राज्य को चलाने पर ही कुठार चलाते हैं।

"न्याय वही है, जिससे लोगों का हित हो।"

"हित वही है, जो न्याय युक्त हो।"

बात इससे आगे चल नहीं सकी। इस समय प्रान्त के गवर्नर क्लब में आ गए और सब का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया।

१२

सेशन कोर्ट के मुकद्दमे को दो मास और लग गए। परन्तु परिणाम वही हुआ जो पहली अदालत में हुआ था। सब को दंड हुआ। प्रेमनाथ को सात वर्ष का कठोर दंड हुआ।

इस बार ऐमिली स्वयं वकील साहब से मिलने नहीं आई। उसने एक सहस्र रुपया और भेजा और हाई कोर्ट में अपील के लिए कह दिया। हाईकोर्ट में अपील सुनी गई। अर्जुनसिंह को फांसी के स्थान जन्म भर कैद का दंड हुआ। अन्य बारह कैदियों का भी दंड कम कर दिया गया। प्रेमनाथ का दंड तीन वर्ष का रह गया। इस दंड में एक वर्ष तो व्यतीत हो चुका था।

इस काल में दीनानाथ छिपा-छिपा घूमता रहा। उसने अपना मकान दिल्ली में ही ले लिया और विशनदास के नाम से वहां विख्यात होगया। एक दिन वह अपनी स्त्री को वहां ही ले गया और इस प्रकार नाम बदल कर रहने लगा।

मानसिक वेदना

१

प्रेम की माता के लिये प्रेम का पकड़कर कैद किया जाना बहुत ही दुःखकारक हुआ। जब तक मुकद्दमा चलता रहा वह मन को आशा की भित्ति पर स्थिर रख सकी। परन्तु हाई कोर्ट में अन्तिम निर्णय हो जाने पर वह अपने को सम्हाल न सकी। जिस दिन उसको यह पता चला कि सब प्रकार का प्रयत्न किये जाने पर भी प्रेमनाथ कैद से बच नहीं सका, वह खाट पर पड़ गई। वर्ष भर की भागदौड़ और शरीर की शान्ति को खाने वाली चिन्ता के कारण वह बीमार हो गई। उसकी सेवा के लिये इन्द्रा ही थी। वह बालिका नहीं जानती कि मा को क्या हो रहा है। गांव के हकीम को बुलाकर दिखाया। वह दुशान्दा लिख कर दे गया। उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। पश्चात् सरकारी अस्पताल में लेजाकर दिखाया गया। डाक्टर ने कह दिया तपेदिक है। इस पर पुन: लाहौर के एक हकीम का इलाज होने लगा, पर न ज्वर गया न खांसी।

इस समय एक घटना और घटी। मोहनलाल रोड की दुकान पर काम करने वाला नौकर सब कुछ बेचकर कहीं भाग गया। इससे जो थोड़ी-सी आय होती थी वह भी समाप्त हो गई।

प्रेमनाथ के मामा ने अपनी बहिन से पूछा कि उसके पति को समाचार भेज दिया जाय? परन्तु बहिन नहीं मानी। उसका एक ही कहना था कि इन्द्रा का विवाह कहीं कर दिया जाये तो ठीक हो; परन्तु विवाह के लिये बहिन के पास एक पैसा भी नहीं था। इन दिनों इन्द्रा के मामा की हालत भी अच्छी नहीं चल रही थी। इस कारण इन्द्रा के विवाह की बात इन्द्रा की मां के कहने तक ही सीमित रही।

माता की अवस्था दिन प्रतिदिन बिगड़ती जाती थी। किसी प्रकार

का लाभ न देख औषधि बन्द कर दी गई और मृत्यु की धीरज से प्रतीक्षा होने लगी। शान्ता मन में सोचती थी, प्रेम को कैद हुए डेढ वर्ष हो गया है। शेष डेढ़ वर्ष में कुछ छूट भी मिलेगी। इस प्रकार एक सवा साल की बात है और तब तक तो वह जी सकेगी। प्रेम के आने पर इन्द्रा का हाथ उसको पकडाकर मरने में सुख और शान्ति प्राप्त करेगी। वह अपने मन की शक्ति को संचित कर तब तक जी सकने पर पूर्ण विश्वास रखती थी।

इस समय नित्य प्रात काल भगवान का भजन और रामायण का पाठ होता था, जो उसकी तिल-तिल घटती शक्ति को रोकने में सबल हो रहा था।

मास में एक बार प्रेमनाथ से बोर्स्टल जेल में भेंट होती थी। हाई-कोर्ट के अंतिम निर्णय होने के तीन मास तक उसकी माँ भेंट के लिये जाती रही। पीछे वह इतनी निर्बल हो गई कि जा नहीं सकी। वह अपनी शारीरिक शक्ति एक रत्ती भर भी व्यर्थ गंवाना नहीं चाहती थी। वह अपने शरीर को उसके लौट आने तक जीवित रखना ही चाहती थी।

जब वह नहीं गई तो प्रेमनाथ का मामा मिलने गया। उसने प्रेम को माँ की पूर्ण अवस्था से परिचित करा दिया। प्रेम ने माँ को सन्देश भेजा कि वह सब प्रकार से स्वस्थ, है उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, वह शीघ्र ही लौटकर आएगा।

इस प्रकार प्रतिमास भेंट होने लगी और छ मास व्यतीत हो गये। प्रेम प्रतिमास माँ को सान्त्वना का सन्देश भेजता रहता था। परन्तु माँ की अवस्था दिन प्रतिदिन नीचे-ही-नीचे गिरती गई।

अभी कैद की मियाद में नौ मास शेष थे कि शान्ता को दस्त लग गये। कभी-कभी अचेतनता भी होने लगी। इन्द्रा को बहुत बचाकर रखने का यत्न किया जाता था। परन्तु वह भी सूखकर दिन प्रतिदिन कांटा होती जाती थी। इस समय शाहदरा के डाक्टर ने प्रेम के मामा को बताया कि यदि वह डिप्टी कमिश्नर के पास प्रार्थना करे तो प्रेम को पैरोल पर

मां की सेवा के लिए छोड़ा जा सकता है। प्रेम का मामा एक वकील से मिला। उसने बीस रुपये लेकर एक प्रार्थना-पत्र लिख डिप्टी कमिश्नर की अदालत में लेजाकर उपस्थित कर दिया। डिप्टी कमिश्नर ने प्रार्थना सुनी और उस पर आज्ञा करने के लिये तीन दिन की तारीख डाल दी। इस काल में सरकारी वकील से कहा गया कि वह यदि आपत्ति करना चाहे तो कर सकता है।

उसी सायंकाल डिप्टी कमिश्नर घर गया तो ऐमिली को बुलाकर बोला, "सुना है, प्रेम की मां बहुत बीमार है।"

जब से प्रेम को दण्ड हुआ था ऐमिली अपने पति से भली भांति बोलती नहीं थी। वह उसके साथ अब क्लब व नाच पर भी जाती नहीं थी। केवल मात्र चाय अथवा खाने के समय दोनों एक दूसरे का दर्शन करते थे। इससे अधिक नहीं। इस विषय पर एक दिन खुलकर वाद-विवाद भी हो चुका था। साहब ने कहा था, "यदि तुम मेरे साथ चल नहीं सकती तो विवाह का क्या लाभ हुआ ?"

"मेरी नुमायिश करने के लिये आपने मुझसे विवाह किया था क्या?"

"नुमायिश नहीं श्रीमती जी ! अपना साथी बनाने के लिये।"

"सो तो मैं हूं। आपके बच्चों को जन्म दिया है। आपके घर का प्रबन्ध देखती हूं। आपके सुख-आराम में सहायक हूं। पर आपकी नौकरी सम्बन्धी सभाओं में अथवा क्लब में जाकर आपके शराबी मित्रों से बातें करने में सहायक नहीं होना चाहती।"

"मैं जब अकेला वहा जाता हूं और दूसरे लोग अपनी बीवियों के साथ होते हैं तो मुझको लज्जा लगती है।"

"तो आप मुझको तलाक देकर दूसरा विवाह कर सकते हैं।"

"पर मैं पूछता हूं कि अब क्या बात हो गई है जो तुम इस प्रकार नाराज़ रहने लगी हो।"

"जब मैं आपके साथ जाती हूं तो लोग मेरी ओर अंगुली कर कहते हैं कि यह औरत है जिसने अपने पति को ऐसा उल्लू बना रखा है कि

वेचारी सौत के बच्चे को कैद करवा दिया है।"

"पर तुम तो जानती हो कि इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं।"

"इसीलिये तो मैं कहती हूं कि मुझको नुमायिश के लिये साथ न ले जाइये। जिनके सन्तोष के लिये आप मुझ को साथ ले जाते हैं वही मुझ को दोषी मानते हैं।"

वात इस प्रकार इस सीमा तक पहुँचकर रह गई। डिप्टी साहब ने यह समझ उसको बताया था कि वह उसको प्रेम को छोड़ने को कहेगी, परन्तु ऐमिली ने इस वत को सुनी अनसुनी कर दिया और कुछ उत्तर नहीं दिया। इस पर मिस्टर चोपड़ा ने कहा, "मैं सोच रहा हूं कि उसे पैरोल पर छोड़ू अथवा न।"

ऐमिली ने वात वदल कर कहा, "आप क्लब मोटर गाड़ी में जा रहे हैं क्या ?"

"तो कैसे जाऊँगा वहाँ ?"

"किसी मित्र से कहिये कि वे आकर आपको ले जाएं और फिर रात को छोड़ जाएं। पहले कई बार ऐसा हो चुका है।"

"तो मोटर तुम को चाहिये ?"

"हाँ।"

"कहाँ जाना है ?"

"श्री स्वामीजी को लेकर कहीं जाना है।"

"यह स्वामियों के चक्कर में तुम कैसे पड़ गई हो ?"

"मैं समझती हूँ कि हिन्दुस्तान का यही प्रसाद है। भाग्य खींचकर यहाँ ले आया है तो इससे लाभ उठा रही हूँ।"

"यह सब व्यर्थ है।"

"तो आप इस व्यर्थ के काम के लिये गाडी नहीं देना चाहते ?"

"मैं तुम को न नहीं कर सकता। परन्तु उस धूर्त स्वामी के लिये मेरे मन में कोई स्थान नहीं।"

"पर वे मांगने नहीं आये। माग तो मैं रही हूँ।"

"तो ले जाओ।"

ऐमिली ने ड्राइवर को बुलाकर मोटर निकलवाई और स्वामी निरूपानन्द के आश्रम पर जा पहुँची। वहां पहुँच उसने स्वामी जी को साथ लेकर शाहदरा जाने का विचार प्रकट किया। "वहां क्या है बेटी?" स्वामीजी ने पूछा।

ऐमिली ने बताया, "आप जानते हैं कि साहब की हिन्दुस्तानी बीबी वहा रहती है। सुना है, वह बहुत बीमार है। आप उसकी चिकित्सा करियेगा न?"

निरूपानन्द इस प्रस्ताव पर चकित रह गया। उसने कुछ विचार कर कहा, "चिकित्सा तो करूंगा, परन्तु मैं पूछता हूं, तुम को उसके जीवित रहने में क्या रुचि है?"

"स्वामी जी! मैं आपकी पूर्ण शिक्षा का यही निचोड़ समझी हूँ कि सब में एक ही आत्मा विराजमान है। यदि यह बात सत्य है तो सब का सुख-दुःख सब को अनुभव होना चाहिये। प्रायः ऐसा नहीं होता। इसमें कारण है कि प्राय. मनुष्यों में आत्मा की मृत्यु हो चुकी होती है जैसे एक मनुष्य में अर्द्धांग वात हो जाने से मृत अंग में शरीर के अन्य अंगों में होने वाले कष्टों का अनुभव नहीं होता, वैसे ही मनुष्य समाज में वे समाज के सुख-दुःख की प्रतीति नहीं कर पाते, जिनकी आत्मा में पक्षाघात हो चुका होता है।"

"धन्य हो बेटी! अब मैं समझा हूँ कि मेरी शिक्षा निष्फल नहीं जा रही। क्या है तुम्हारी सौत को?"

"मैं नहीं जानती। आज सूचना आई है कि वह बहुत बीमार है।"

"तो अभी चलें?"

"हां, महाराज।"

२

प्रेमनाथ के जेल में पहले कुछ मास तो बहुत ही कठिनाई के व्यतीत हुए। यद्यपि उनका शाहदरा वाला मकान बहुत ही छोटा था और कच्चा था, तथापि उसकी मां की मेहनत और प्रयत्न से बहुत साफ-सुथरा रहता था। घर में मच्छरों का नामो-निशान नहीं था, परन्तु जेल में उसे जिस कोठरी में रखा गया उसमें दो कैदी और थे और तीनों को टट्टी-पेशाब कोठरी के अन्दर ही करना पड़ता था। परिणाम स्वरूप स्थान बहुत ही गंदा हो रहा था। रोटी में उसके साथ मिट्टी मिली होती थी। साग तो एक प्रकार के पत्ते होते थे, जो बहुत ही बुरे स्वाद के बनते थे। इस पर भी काम करने के लिये कभी चक्की चलानी पड़ती थी कभी बान बटना पड़ता था।

कई मास के पश्चात् प्रेमनाथ को निवाड़ बुनने का काम दिया गया और एक वर्ष से ऊपर हो जाने पर उसको मुन्शीगीरी के काम के लिये कार्यालय में लगाया गया। एक बात थी, प्रेमनाथ ने अपनी बुरी हालत और कठोर मेहनत के लिये कभी शिकायत नहीं की थी। यदि किसी दिन काम पूरा नहीं कर पाता था और उसको दंड मिलता था तो भी वह चुपचाप सह लेता था। उसने कभी किसी जेल के अफसर की शिकायत नहीं की थी। इसका परिणाम यह हो रहा था कि धीरे-धीरे उसे काम सुगम मिलता जाता था।

जब तक उसकी मा आती रही वह चक्की पीसता रहा और उसने मा से कभी शिकायत नहीं की थी। वह उसे व्यर्थ में दुःखी करना नहीं चाहता था। मां के बीमार होने की सूचना मिली तो उसे चिन्ता लग गई। परन्तु उसने इस विषय में अपने अफसरों से न तो किसी प्रकार की शिकायत की और न ही पैरोल इत्यादि का विचार मन में उठाया। वह मन में भगवान का भजन कर सदा प्रार्थना करता रहता था कि वह मा को उसके लौटने तक जीवित रखे।। उठते-बैठते चलते-फिरते और

काम करते वह भगवान के नाम की आराधना करता रहता था।

प्रतिमास उसको प्रतीक्षा रहती थी कि अब मा स्वस्थ हो गई होगी और उससे मिलने आएगी। वह उत्सुकता से मुलाकात के दिन की प्रतीक्षा करता रहता था। उसकी निराशा का कोई ठिकाना नहीं होता जब वह मां के स्थान पर अपने मामा को आया देखा करता था।

एक दिन उसका मामा आया और यह कहते हुए कि उसकी मा अभी भी बीमार है, उसके आंसू निकल आये। प्रेम ने अपनी कैद की शेष अवधि गिनी और कहा, "मामा! मा ठीक हो जाएगी। मैं अभी उसके हाथ से सेहरा बंधा विवाह के लिये जाऊँगा। उससे कह देना, वह अभी नहीं जा सकती।"

उसका मामा जानता था कि यह दुःखी मस्तिष्क की इच्छा का प्रदर्शन मात्र है। इस पर भी उसने उसकी मां की वास्तविक अवस्था का वर्णन नहीं किया।

इससे कुछ दिन पीछे ही उसने प्रेम के पैरोल पर छोड़े जाने की प्रार्थना की थी। इन दिनों प्रेमनाथ क्लर्क का काम करता था। इस काम में मेहनत और समय बहुत कम लगता था, इसी से उसे भगवत्-भजन के लिये बहुत समय मिल जाया करता था।

जेल में उसकी कोठरी का एक साथी था, नाम था मनोहर। अपराध था बच्चे के हाथ में से सोने के कड़े उतारते हुए उसको घायल करना। वह पांच साल कठोर कैद का था। एक और साथी भी था। उसका नाम था रहमान। अपराध था एक लड़की का गला घोंटकर मारने का यत्न। वह उस लड़की को प्रेम करता था, परन्तु उसके माता-पिता ने लड़की का विवाह किसी अन्य से कर दिया था। एक दिन वह लड़की मकान से उतरी तो रहमान अपने मकान के नीचे खड़ा था। दोनों के मकान एक दूसरे के सामने थे। रहमान अपने क्रोध पर काबू नहीं रख सका और लपककर उसकी गर्दन पकड़ झकोड़ने लगा। राह चलतों ने समयपर देख लिया और लड़की को छुड़ा लिया। पर इतने में ही वह अधमरी होगई थी।

पहले तो प्रेमनाथ इन दोनों से घनिष्ठता उत्पन्न नहीं करना चाहता था। परन्तु मनोहर तो उसके पीछे ही पड़ गया। एक दिन प्रेम दिन भर जब चक्की चलाकर लौटा तो उसके हाथों में फफोले पड़े हुए थे और उसका शरीर स्थान-स्थान पर पीड़ा कर रहा था। मनोहर ने उसकी दशा देखी और समझी। फिर उसके अंगों को दबाकर उसको आराम पहुँचाया। हाथों के फफोलों पर पानी लगाया।

उसकी सेवा से प्रेमनाथ पिघल पड़ा। उसने कहा, "मनोहर भैया, तुम इतने दयालु होते हुए भी कैसे इस प्रकार का अपराध कर बैठे थे ?"

मनोहर फूट पड़ा। कहने लगा, "माँ बहुत बीमार थी। डाक्टर देखने के लिये फीस मांगता था। मैं माँ का कराहना सुन नहीं सका। कहीं से रुपये लाने के लिये मकान के बाहर आया तो वह बच्चा बाजार से कुछ लेकर चला आ रहा था। मैंने उसको गोदी में उठा लिया, प्यार किया और उसका कड़ा उतारने लगा। वह रो पड़ा, इस पर मैंने जल्दी में कड़ा उतारने में उसकी बांह घायल कर दी।"

"मां अब कैसी है ?"

"वह मर गई है।"

"तुम ने एक भूल की भैया। तुम अपनी मां से बहुत प्रेम करते थे न ! परन्तु तुमने यह विचार नहीं किया कि तुम्हारी मां भी तुम से स्नेह करती होगी और जब उसको पता चलेगा कि तुम कैद हो गये हो तो उसके मन पर क्या प्रभाव उत्पन्न होगा।"

मनोहर आंखें नीचे किये बैठा रहा। प्रेम ने फिर कहा, "एक बात और भी विचारणीय थी। तुम अपनी मां के लिये इतना कुछ करने के लिये तैयार हो गए और बच्चे की मां भी थी। वह बच्चे के लिये कितना स्नेह रखती होगी, यह तुमने विचार नहीं किया।"

मनोहर जो अपने भाग्य को कोसता रहता था, प्रेम की विचार-शीलता से अत्यन्त प्रभावित हुआ। रहमान ने जब देखा कि मनोहर, जो दिन रात रोया करता था प्रेम की संगत से सन्तोष अनुभव करने

लगा है, बहुत चकित हुआ। फिर जब प्रेमनाथ को हाथों के फफोलों के कारण ज्वर हो आया और उसको यह सब कुछ चुपचाप सहन करते देखा तो वह भी उसकी ओर आकर्षित होने लगा। एक दिन रहमान ने काम करने से इन्कार कर दिया और उसको जमादारों ने बुरी तरह पीटा। रात को शरीर में वेदना के कारण वह हाय-हाय करता रहा। प्रेम और मनोहर ने रात भर उसकी सेवा और सुश्रूषा में व्यतीत करदी। इससे तीनों एक दूसरे के समीप हो गये।

प्रेम ने कहा- "रहमान भैया! कुछ खुदा का नाम लिया करो।"

"कहाँ है वह? इस अाज़ाब में भी अगर वह रहमत नहीं दिखाता तो फिर किस वक्त दिखलायेगा?"

"भैया, वह रहमत ही क्या होगी जो तुमको सुख देकर दूसरों को दुःख दे। तुमने जो किया वह अपने भावों के प्रभावाधीन ही तो किया था, परन्तु तुमने उस लड़की के तथा उसके माता-पिता के भावों का तो विचार नहीं किया। वह परवरदिगार केवल तुम्हारा ही खालक तो नहीं। उसकी तो सब खलकत अपनी है। वह सब का ध्यान भी रखता है।"

"मैं उस लड़की से प्रेम करता था?"

"ठीक है! पर उसके माता-पिता तुमको पसन्द नहीं करते थे। शायद वह लड़की भी तुमसे अधिक अपने माता पिता को चाहती थी। देखो रहमान, हमारा विचार इस प्रकार है: सब प्राणियों में आत्मा है। सब को सुख-दुःख होता है। हमको सबकी आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझना चाहिए और सदा इस बात का ध्यान करना चाहिये कि किसी को दुःख न हो। स्वयं दुःख सहन कर भी दूसरों को दुःख न देना ही मनुष्य में मनुष्यता का लक्षण है।"

रहमान इतनी गम्भीर बात सोच नहीं सकता था। उसका कहना था, "कुदरत में यह बात नहीं पाई जाती। प्रेमनाथ तुम्हारा उसूल गैर कुदरती है। कुदरत में जिसकी लाठी उसकी भैंस होती है।"

"तुम ठीक कहते हो। पर इन्सान को परमात्मा ने कुदरत पर हकूमत करने के लिये पैदा किया है। मैं कुदरत पर राज्य करना चाहता हूँ। उसका दास बनकर विचरना नहीं चाहता।"

इस प्रकार बातचीत होती रहती थी। एक बार प्रेमनाथ को निवाड बुनने से पुन चक्की पर लगा दिया गया। रहमान कहने लगा, "मैं होता तो इसके खिलाफ इजहार करता।"

"तुम्हारे दृष्टिकोण से ऐसा होना चाहिये। परन्तु मेरा दृष्टिकोण तुमसे भिन्न है। मै कहता हूँ कि मै यहाँ कैदी हूँ, अपने पूर्व जन्म के दुष्कर्मों के कारण। मेरे प्रत्येक प्रकार के यत्न करने पर भी मै कैद होने से बच नहीं सका। इस कारण इस कैद होने के परिणामो को धैर्य से सहन करना ही एक मात्र मार्ग रह गया है।"

"परमात्मा को मानने वाले अपनी अकर्मण्यता को छिपाने का यह बहाना बनाते है। 'हिम्मते मरदां, मददे खुदा', को मैं मानता हूँ।"

"ठीक है! मै भी इसको मानता हूँ और मैंने कैद से बचने के लिये कोई उपाय छोड़ा नहीं। परन्तु उसका अब फल नहीं निकला तो यह मानना ही पड़ता है कि पूर्व जन्म के कर्मों का फल इतना प्रबल है कि इस समय का प्रयास उसके सन्मुख तुच्छ सिद्ध हो रहा है।"

"यह सब भ्रम है प्रेम! इस तरह से ससार नहीं चलता।"

इस वादविवाद से मनोहर में परिवर्तन होता जाता था। वह उससे मन्त्र और उपासना के भजन सीखने लगा था। ऐसी अवस्था में एक दिन प्रेमनाथ अपने मामा से मिलकर आया तो नित्य से अधिक गम्भीर दिखाई दिया। मनोहर ने उससे पूछा, "प्रेम भैया, आज क्या हो गया है?"

"मां की अवस्था बहुत खराब हो गई प्रतीत होती है। आज मामा जी मिलने आये थे और उनके आंसू निकल रहे थे।"

"तो फिर क्या होगा?"

"मेरी स्थिति में एक व्यक्ति भगवान से प्रार्थना करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता है!"

३

ऐमिली स्वामी निरूपानन्द को लेकर शाहदरा जा पहुंची। वह उनको शान्ता के घर ले गई। शान्ता को दिन में तीन-चार दस्त आ जाते थे। ज्वर एक सौ दो दर्जा तक हो जाता था। खांसी और बलगम निरन्तर आती रहती थी। दुर्बलता बहुत हो गई थी। आंखें भीतर धंस चुकी थीं। गाल सूखकर साथ चिपक गये थे और बात करने पर सब दांत दिखाई देने लगते थे।

हालत बहुत बिगड़ चुकी थी। दुर्बलता और आंखों की मन्द ज्योति देख ऐमिली डर गई। प्रेमनाथ के मामा को पता चला तो भागा हुआ आया और इन्द्रा की खाट समीप कर उनको बैठने को कहा। वे बैठे नहीं। स्वामीजी ने नाड़ी देखी, पश्चात् आंखों के कोए और जबान देखी। पेट को देखा और रोग का पूर्ण इतिहास जाना।

निरीक्षण हो जाने के पश्चात् स्वामी जी ने कहा, "इसके बचने का केवल एक ही मार्ग रह गया है कि इसको यहां से हटाकर कहीं पहाड़ पर ले जायें। इस अवस्था में इसको ले जाना सुगम नहीं। कोई परिचारिका चाहिये। औषधि तो मैं अपने पास से दे दूंगा।"

इस सब सम्मति को सुनकर प्रेम का मामा मुख देखता रह गया। वास्तव में इनमें से एक भी वस्तु उपलब्ध नहीं थी। प्रेमनाथ के मामा ने कहा, "महाराज, इन सब बातों में से हम एक भी सम्पन्न नहीं कर सकते। जब मैं अपनी बहिन के पूर्ण इतिहास पर विचार करता हूं तो मेरा मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। जो कुछ आप कर सकते हैं यहां रहते ही कर दीजिये। हम जीवन भर आपका एहसान मानेंगे।"

स्वामीजी नीचे उतर गये। ऐमिली पीछे रह गई। उसने शान्ता के समीप होकर पूछा, "बहिन! जीना चाहती हो न?"

"चाहने से भी कभी कुछ हुआ है?" शान्ता ने अपनी भर्राई हुई आवाज में कहा।

"मन की शक्ति बहुत ही प्रबल होती है। अपने मन में दृढ़ सकल्प करलो तो फिर शेष भगवान कर देंगे।"

शान्ता ने आँखें मूद लीं। ऐमिली ने कहा, "अच्छा, मैं देखती हूँ कि क्या किया जा सकता है।"

"बहिन, प्रेम को मिलने की छुट्टी दिलवा दो। मैं शान्ति से मर सकूँगी।"

"मैं उनसे नहीं कहूँगी। वे अच्छे आदमी नहीं हैं।"

इस कथन को सुनने पर शान्ता की आँखें खुल गईं। उनमें क्रोध की कुछ झलक भी दिखाई दी, परन्तु शीघ्र उसने अपने को वस में कर कहा, "इस समय जब मृत्यु सामने साकार दिखाई दे रही है, मेरे कानों में ऐसा क्यों कहती हो ? मैंने उनके विषय में अपने मन में कभी बुरा विचार नहीं किया।"

ऐमिली हिन्दु औरतों के इन भावों को जान चुकी थी। इससे अपने कहने पर लज्जित हो चुप कर गई। पश्चात् उसने बात बदलकर कहा, "स्वामी जी बहुत ही योग्य वैद्य हैं। मुझको विश्वास है कि आप उनकी चिकित्सा से ठीक होने लगेंगी।"

"न नौ मन तेल होगा, न मेनका नाचेगी।"

"इतना कुछ जुटाने का यत्न करूँगी।"

"तुम ? उनसे कह कर ?"

"नहीं ! मेरे अपने कुछ साधन हैं। मैं कल फिर मिलूँगी। अभी औषधि का प्रबन्ध कर दिया जाएगा।"

जब ऐमिली नीचे आई तो स्वामीजी ने कहा, "यह अब बच सकती है पर हजारों का खर्चा है। इसका प्रबन्ध हो सके तो कुछ किया जा सकता है।'

ऐमिली ने कहा, "आप औषधि तो अभी दे दें। शेष घर चल कर विचार किया जाएगा।"

स्वामीजी ने अपने थैले में से एक पोटली निकाली, एक शीशी में से

श्वेत रंग की एक औषधि की चार पुड़ियां बनाकर प्रेम के मामा को देते हुए कहा, "इसको चार-चार घंटे के पीछे मधु में दीजिए। कल पुनः औषधि भेज देंगे।"

प्रेम का मामा औषधि खिलाने ऊपर आया तो स्वामीजी ऐमिली के साथ मोटर में बैठ लाहौर को चल दिए। मार्ग में ऐमिली ने कहा, 'मैं चाहती हूं कि डलहौजी में एक कोठी किराये पर ले लीजाए। और कुछ समय के लिए आप वहां चले जाएं। शान्ता का भाई उसको लेकर वहां पहुंच जाएगा। वह वहा रहेगा। मैं खर्च का प्रबन्ध कर दूंगी।"

"तुम कर दोगी? बहुत खर्चा बैठेगा।"

"आप चिन्ता न करें।"

घर पहुंचकर सबसे पहला काम उसने बैंक में अपना हिसाब देखा। उसके पास बीस हजार से ऊपर जमा था। इस पर उसने अपनी योजना बना डाली।

अगले दिन उसने साढ़े पांच हजार की एक डाज गाड़ी मोल ले ली। उसने इस गाड़ी में सबसे पहला काम यह किया कि स्वामी जी को लेकर पुन शान्ता को दिखाने ले गई। देखने पर दस्तों में कुछ लाभ प्रतीत हुआ। शेष वैसे ही था। दो दिन की और औषधि दिलवाकर जब वह लौटी तो उसने स्वामी जी के एक शिष्य को रुपया देकर डलहौजी भेज दिया और यह कह दिया कि एक अच्छी-सी कोठी किराये पर लेकर सूचना दे। स्वामी जी से उसने कहा, "आपको कष्ट तो बहुत हुआ है पर अभी थोड़ा कष्ट और करना पड़ेगा। वहां कम से कम एक मास के लिए आप जाकर रोगी को अपनी देखभाल में रखिए।"

सायंकाल एक नई मोटर कोठी में देख अमरनाथ ने समझा कि कोई उससे मिलने आया है। पर जब उसको पता चला कि ऐमिली ने अपने लिए एक गाड़ी खरीदी है तो उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। बैरे से पता पाकर मिस्टर चोपड़ा ऐमिली के कमरे में जा पहुंचा। वह दिन भर की भाग-दौड़ के कारण थक गई थी, और आराम कर रही थी।

मिस्टर चोपड़ा ने कहा, "ऐमिली डीयर, यह डाज गाडी तुम ने मोल ली है ?"

"जी हां।"

"क्या जरूरत थी इसकी ?"

"मुझ को आजकल कुछ इधर-उधर जाना पड़ रहा है और आपके काम में विघ्न डालना उचित न मान एक पृथक् गाड़ी ले ली है। साढे पांच हजार की मिली है।"

"कौन काम आन पड़ा है ?"

"कल मैं शाहदरा गई थी। आज फिर जाने की आवश्यकता थी। यूं तो मैं पहले ही एक गाडी खरीदने का विचार रखती थी। आज एकाएक आवश्यकता आ पड़ने पर खरीद ही ली।

"शाहदरा में क्या काम था ?"

"आप की बेगम साहिबा बीमार हैं। देखने गई थी।"

"शान्ता को ? तुम वहां क्यों गई थीं ? सुना है उसको तपेदिक हो गया है। कहीं तुम को कुछ हो गया तो मैं क्या करूंगा ?"

"करेंगे क्या, दोनों बीवियां मर जायेंगी तो नए विवाह के लिए छुट्टी मिल जायेगी।"

"कैसी बातें कर रही हो तुम ? हो क्या गया है आजकल तुमको ?"

"मेरे ज्ञान-चक्षु खुल गए हैं।"

"यह स्वामियों के साथ घूमने का फल है। देखो डीयर, मैं एक बड़ा अफसर हूं, तुम उसकी बीवी हो। तुम को अपनी और अपने पति की मान-मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।"

"इसीलिए तो भागती फिरती हूं। आपके विचार में मान-मर्याद की रक्षा अफसरों को प्रसन्न करने से होती है। मैं समझती हूं कि अपनी मर्यादा अपने मन में होने से ही बनती है। जिस काम से आत्म-ग्लानि उत्पन्न हो वह दूसरों को अच्छा लगे तो भी उन्नति का सूचक नहीं है। मैं जो कर रही हूं, अपनी अन्तरात्मा से अच्छा समझकर कर रही हूं।"

"और मैं जो कुछ कह रहा हूं वह अपने मन में अच्छा मान कह रहा हूं।"

"मैं आपको उससे मना नहीं करती। इसी प्रकार आप से आशा करती हूं कि आप मुझ को मना न करें।"

दो नदियां जो तेरह वर्षों से साथ-साथ बह रही थीं और लगभग एक वर्ष से पृथक्-पृथक् बहने लगी थीं अब विपरीत दिशाओं में बहने लगीं। अमरनाथ मन में सोचता था कि यह हिन्दुस्तान का वातावरण है, और जो इस में पड गया वह न घर का रहा न घाट का। इसी से डरकर उसने एक अंग्रेज लड़की से विवाह किया था, परन्तु जब वह हिन्दुस्तान में आई तो वह भी स्वामियों के चक्कर में पड गई।

एक सप्ताह के भीतर डलहौजी में कोठी का प्रबन्ध हो गया। स्वामी निरूपानन्द और शान्ता तथा उसकी भाभी वहां चले गये। चिकित्सा नियमित रूप से होने लगी।

धन ऐमिली व्यय कर रही थी। इस बात का ज्ञान मिस्टर चोपडा को था। ऐमिली ने कभी कोई बात चोरी नहीं रखी थी। इसका परिणाम यह हो गया था कि दोनों में एक घर में रहने के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं रहा था। जब से दूसरी मोटर आई थी तब से यह थोड़ी-सी एक दूसरे पर निर्भरता भी लोप हो गई थी।

ऐमिली की अपनी आय का स्रोत था। उसकी नानी उसके लिए पांच सौ पौंड वार्षिक की आय छोड़ गई थी। वह पहले तो इसमें से अपने पर व्यय कर शेष बचा लिया करती। पीछे उसमें से साधु-सन्तों पर खर्च करने लगी और अब उसने दिल खोलकर अपनी सौत के इलाज में खर्च करना प्रारम्भ कर दिया था।

८

तीन दिन के पश्चात् प्रेमनाथ को पैरोल पर छोड़ने का प्रश्न अदालत में उपस्थित हुआ। सरकारी वकील ने इसका विरोध किया। उसका

कहना था कि एक क्रान्तिकारी, जो अशान्तिमय उपायों से देश में विरोध फैलाना चाहता हो, उसको कैद से जमानत पर छोड़ा नहीं जा सकता। प्रेमनाथ के वकील ने कहा, "प्रार्थना कानून की मांग का विरोध करने के लिये नहीं की गई। यह तो मनुष्यता के नाते दया करने के लिये की गई है। अपराधी अपनी तीन वर्ष की कैद में से दो वर्ष व्यतीत कर चुका है। दो-चार महीने में वह छूटने वाला है। उस समय पर भी तो उसे छोड़ना ही पड़ेगा। अब उसकी मुनासिब जमानत लेकर छोड़ा जा सकता है।"

सरकारी वकील की युक्ति यह थी कि दया का प्रश्न तो शान्ति से रहने वाले नागरिकों के साथ हो सकता है। बाग़ी के लिये कोई दया नहीं दिखाई जा सकती। परिणाम यह हुआ कि प्रेमनाथ के मामा की प्रार्थना अस्वीकार हो गई।

इस समय तक प्रेमनाथ की मां की चिकित्सा स्वामी निरूपानन्द करने लगे थे और उसके डलहौजी भेजने का प्रबन्ध हो रहा था।

प्रार्थना पंजाब के गवर्नर महोदय से भी की गई, पर वहां भी उसको अस्वीकार कर दिया गया। ऐमिली मन में सोचती थी कि यह विचित्र राज्य-प्रपंच है। न न्याय होता है न सहानुभूति का व्यवहार।

जब डलहौजी में चिकित्सा होते हुए एक मास के लगभग हो गया तो एक दिन ऐमिली ने मोटर निकाली और स्वयं चलाती हुई डलहौजी जा पहुंची। उसको शान्ता की अवस्था देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। वह ठीक हो रही थी। ज्वर उतर गया था और खांसी में भी विशेष लाभ प्रतीत होता था। ऐमिली एक सप्ताह भर वहां रही। शान्ता देख रही थी कि उस पर रुपया पानी की भांति व्यय किया जा रहा है। उसके मन में एक बार यह विचार आया कि मिस्टर चोपड़ा यह सब व्यय कर रहे हैं। केवल एक क्रान्तिकारी की मां से कोई सम्पर्क नहीं है, ऐसा करने के लिये सब खर्चा ऐमिली के द्वारा किया जा रहा है। उसके मुख से एक-दो बार मिस्टर चोपड़ा के लिये, इस सब प्रयास के लिये धन्यवाद

भी निकला, परन्तु तुरन्त ही ऐमिली ने उसका भ्रम दूर कर दिया। उसने कहा, "शान्ता बहिन ! आपको मिस्टर चोपड़ा के विषय में यह विदित हो जाना चाहिये कि वे इस सब में कुछ नहीं कर रहे। मेरी नानी ने अपनी वसीयत में मेरे लिये पांच सौ पौंड वार्षिक की आय छोड़ी है। वह रुपया ही वास्तव में इस समय तुम्हारे काम आ रहा है।"

"पर तुम यह सब मेरे लिये क्यों कर रही हो ?"

"अपने मन के सन्तोष के लिये।"

ऐमिली जब डलहौजी गई थी तो वह केवल मिस्टर चोपड़ा की मेज़ पर यह लिखकर रख गई थी कि वह शान्ता को देखने डलहौजी जा रही है। इससे तो मिस्टर चोपड़ा आग-बबूला हो गया। उसने बच्चों को एक स्कूल के बोर्डिंग हाउस में भर्ती करा दिया। सोमनाथ देख रहा था कि उसकी मां और पिता का सम्बन्ध सहिष्णुता का नहीं रहा और अब मां की अनुपस्थिति में उनके स्कूल में भर्ती करवाने की बात उसके मन पर गहरा प्रभाव छोड़ गई।

सरस्वती और रामनाथ अभी छोटे थे। उनको ये सब बातें समझ नहीं आईं और फिर बोर्डिंग हाउस में समवयस्क बच्चों के साथ खेलने-कूदने और रहने की प्रसन्नता में माता-पिता की बात को भूल गये।

जब ऐमिली डलहौजी से लौटी तो बच्चों के बोर्डिंग हाउस में भर्ती किये जाने से उसको अचम्भा हुआ। फिर मन को धैर्य देकर चुप कर रही।

अगले दिन वह मोटर लेकर बच्चों के स्कूल में जा पहुंची। वहां वह तीनों को मिली। उसने उनसे पूछा, "सोम, तुम अच्छी तरह से हो न ! कुछ कष्ट तो नहीं ?" उत्तर सरस्वती और रामनाथ ने दिया, "यहां बड़ा मज़ा है, मां !"

"अच्छी बात !" उसने उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "देखो, हमारे घर में टेलीफोन है। कभी जरूरत हो तो कर लेना। अब कुछ चाहिये ?"

सरस्वती ने कहा, "मां, पांच रुपये दे जाओ। मेरी क्रीम की डिबिया

जाने से पूर्व मिस्टर चोपड़ा ने सोम से कहा, "मैं बोर्डिंग हाउस के वार्डन से कह रहा हूँ कि वह औरत फिर आए तो तुम सब को उससे दूर रखा जाए। वह तपेदिक के रोगी के पास रह कर आई है।"

सोमनाथ ने कहा, "पापा, वे कहती थीं कि उनको बीमारी नहीं हो सकती।"

"ठीक है, पर तुम को तो हो सकती है?"

मुझको तपेदिक हो सकता है। तपेदिक का रोगी बच नहीं सकता। ये बातें सोम के मस्तिष्क में घुस गईं। और उसने इस विषय का एक पत्र अपनी मा को लिख दिया। उसने लिखा—

"मम्मी! पापा आये थे। वे कहते थे कि तुम तपेदिक के रोगी को देखकर आई हो। इससे तुम रोग को फैला रही हो और उन्होंने वार्डन को कह दिया है कि तुम हम को न मिल सको।"

"मैं आशा करता हूँ कि तुम ठीक होगी और तुम बीमार नहीं होगी।"

ऐमिली इस समाचार से बहुत ही परेशान हुई। उसका बच्चों से स्नेह ही था जो उसको मिस्टर चोपड़ा के घर से बाँधे हुए था। मिस्टर चोपड़ा के इस काम से यह बन्धन भी ढीला हो रहा प्रतीत होने लगा। ऐमिली ने एक पत्र तो वार्डन को लिखा और उससे यह पूछा कि क्या यह सत्य है कि मिस्टर चोपड़ा ने बच्चों को उससे मिलना बन्द कर दिया है। दूसरा पत्र उसने सोम को लिखा उसमें लिखा—

"प्रिय सोम, मैं ठीक हूँ। बीमार नहीं हूँ। मेरा तुम्हारी विमाता से मिलने जाना मनुष्यता के नाते था। मैं समझती हूँ मेरे कारण ही तुम्हारे पिता ने उसको छोड़ दिया था। उसके सब कष्टों में मैं ही कारण हूँ। अतएव मैं उसकी इस कठिन समय में सहायता कर प्रायश्चित्त कर रही हूँ।"

"यदि यह सत्य है कि तुम्हारे पिता ने मेरा तुम से मिलना मना कर दिया है तो मैं मिलने नहीं आऊँगी। यद्यपि मैं जानती हूँ कि तुम बीमार नहीं होगे, मैं भी बीमार नहीं हूँ। इस पर भी पापा की आज्ञा तुम को

माननी चाहिये और मुझ को भी।"

"सरस्वती और राम को प्यार देना।"

वार्डन का पत्र आया—

"क्षमा करें! हम को बच्चों के संरक्षक की आज्ञा का आदर करना चाहिये। हम आपके आने और बच्चों से मिलने में आपत्ति नहीं मानते, पर हम विवश हैं।"

बात तय हो गई। ऐमिली ने बच्चों से मिलने जाना भी बंद कर दिया। घर पर पति-पत्नी में तनाव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला गया।

५

मिस्टर चोपड़ा अब अकेला क्लब में जाता। उसके मित्र कभी उससे पूछते कि मिसेज घर पर ही बैठी क्या करती रहती है? तो चोपड़ा कह दिया करता, "जो उसको करना आता है।"

लोग इसका अर्थ यह समझते थे कि उसके बच्चा होने वाला है, परन्तु महीनों पर महीने व्यतीत होने लगे और न बच्चा हुआ और न ही मिसेज चोपड़ा क्लब में अथवा अन्य आयोजनों पर मिस्टर चोपड़ा के साथ दिखाई दीं। इस पर लोगों को 'दाल में कुछ काला' दिखाई देने लगा।

वकील मिस्टर नार्टन भी चोपड़ा की निन्दा फैलाने में कारण बन गया। यद्यपि वह एक शान्त विचारशील प्रकृति का आदमी था तो भी मिस्टर चोपड़ा के व्यवहार से उसके मन को ऐसी ठेस पहुँची थी कि वह उसको मनुष्यता से गिरा हुआ अनुभव करने लगा था। इस कारण जब भी अवसर मिलता वह उसकी निन्दा किए बिना नहीं रहता था।

इसके साथ मिस्टर चोपड़ा दिन-प्रतिदिन अधिक और अधिक शराब पीने लगा और फिर सन्देहात्मक चरित्रवाली स्त्रियों के साथ घूमता दिखाई देने लगा। मिस्टर चोपड़ा की कोठी में भांति-भांति के लोगों का

मे कुव्यंवस्था ही उत्पन्न होगी।"

इस विवेचना को रहमान नहीं समझ सका। वह वितर-वितर उसका मुख देखता रहा। मनोहर ने बात फिर चला दी, "पर तुम अपने छूटने के इस उपाय को, अर्थात् फौज में भर्ती होने को, प्रयोग क्यों नहीं करते?"

"मेरा माँ के पास जाना अत्यावश्यक है। फौज में भर्ती होने से क्या जाने कई वर्षों तक घर न जा सकूँ। इस प्रकार चार महीने में तो छूटूंगा ही।"

परन्तु बात इस प्रकार नहीं हो सकी। रहमान और मनोहर फौज में भर्ती हो गए। प्रेमनाथ की कोठरी में अन्य कैदी लाये गए। जिन से प्रेमनाथ का मन नहीं मिल सका। चार मास के पश्चात् प्रेम के छूटने की तिथि आई। उसको जेल के कपड़े उतार और अपने कपड़े पहन चलने के लिए कहा गया। तीन मास से उसका मामा भी मिलने नहीं आया था। इससे वह अति चिन्तातुर जेल से निकल नगर की ओर चल पड़ा।

वह अभी जेल के फाटक से सौ गज के अन्तर पर भी नहीं गया था कि एक आदमी उसके साथ चलता हुआ कहने लगा, "कहाँ जा रहे हो छोकरे?"

प्रेमनाथ ने उसकी ओर ध्यान से देखा और उसके प्रश्न का प्रयोजन न समझ बिना कुछ कहे चलता गया। इस पर उस आदमी ने फिर कहा, "कहाँ जा रहे हो?"

अब प्रेम से नहीं रह गया, उसने पूछा, "क्या मतलब है आपका इससे?"

"हम लोग बेमददगारों की मदद करते हैं।"

"तुम लोग? कौन हो तुम लोग?"

"बताता हूं, चलो मेरे साथ।"

कुछ दूर पर सड़क के किनारे एक कैम्प लगा था। उसके बाहर एक बोर्ड लगा था। जिस पर लिखा था, 'रिक्रूटमेंट आफिस'। वह आदमी प्रेम की बाँह पकड़कर बोला, "जरा इधर आओ।"

"क्यों ?"

"पता चल जायेगा कि हम तुम्हारे हमदर्द हैं, आओ !" प्रेमनाथ अनिश्चित मन खड़ा था। इस समय कैम्प के अन्दर से तीन पुलिस कान्स्टेबल बाहर निकल आये और प्रेम को बांह से पकड़कर कैम्प में ले गये। वहां एक आदमी फौजी कपड़े पहने बैठा था। प्रेम को उसके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। प्रेम को उसने सिर से पांव तक देखा और फिर सामने रखी कुर्सी पर बैठने को कहा।

प्रेम बैठ गया। इस पर उसने एक छपा फार्म निकाला और प्रेम के सामने मेज़ पर रखकर कहा, "इसके नीचे हस्ताक्षर कर दो।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या पूछते हो ? फिर कैद होने का विचार है क्या ?"

"यह क्या है ?"

"यह है रोटी, कपड़ा, सैर-सपाटे और साठ रुपये महीना। तुम्हारे घर वालों को इसके अलावा ईमानदारी और मेहनत करने पर इनाम और किसी नहर के किनारे पर मुरब्बे।"

"तो यह भर्ती का दफ्तर है ?"

"हां !"

"पर मैं अभी भर्ती होना नहीं चाहता। मुझे अपनी बीमार मां की सेवा करने के लिये जाना है।"

"वह तुम, इस पर हस्ताक्षर करने के पीछे भी जा सकते हो।"

"देखो जी, मैं तीन वर्ष की कठोर कैद भोगकर आया हूं और मां घर पर बीमार पड़ी है। जब तक वह ठीक नहीं हो जाती मैं कहीं नहीं जा सकता।"

"भाई, तेरी मां का इलाज सरकारी तौर पर हो जाएगा। तुमको उसकी टहल सेवा के लिये भी समय मिल सकेगा।"

प्रेमनाथ उठ खड़ा हुआ, "नहीं जी, मैं अभी नहीं भर्ती हो सकता।"

इसपर पुलिस वालों ने उसको पकड़कर पुनः कुर्सी पर बैठा दिया

और बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ बांयें हाथ के अंगूठे पर स्याही लगाकर सामने रखे फार्म के नीचे लगा दिया। इस समय एक आदमी हाथ में एक कागज के टुकड़े पर प्रेम का नाम और पता जेल से लिखकर ले आया और उस फौजी अफसर को बता दिया। फौजी अफसर ने फार्म के खाली खाने भर दिये और प्रेमनाथ को सारा फार्म सुना दिया। पीछे उससे बोला, "तुम फौज में भर्ती हो गये हो। अभी तुमको मोटर में बैठाकर सैर कराई जायेगी और छावनी में ले जाकर तुम्हारा नाम और रेजिमैन्ट का नाम बताया जाएगा। फिर तुमको तुम्हारी मां के पास ले जाया जायेगा।"

"मैंने अपनी इच्छा से फार्म नहीं भरा। इसलिये मैं इसका पाबन्द नहीं हूँ।"

"इन्कार करोगे तो कोर्ट मार्शल किया जायेगा।"

"वह क्या होता है?"

"तुम पर झूठ बोलने का मुकद्दमा किया जायेगा। हम सब साक्षी करेंगे कि तुमने अपनी इच्छा से भरा है फिर तुमको दण्ड होगा।"

"अजीब परेशानी है। क्या किया है मैंने जो तुम मुझको इस प्रकार तंग कर रहे हो? जब मां को पता चलेगा कि मैं युद्ध में लड़ने जा रहा हूं तो बेचारी के प्राण निकल जायेंगे।"

"जब तुम्हारी मां को छः महीने का वेतन तीन सौ साठ रुपये मिलेंगे तो वह प्रसन्नता से फूली नहीं समायेगी।"

प्रेमनाथ वहां से उठकर भाग जाना चाहता था, परन्तु पांच आदमी उसको चारों ओर से घेरे हुए बैठे थे।

६

विवश प्रेमनाथ वहां बैठा रहा। इस समय सड़क पर से गुजरता हुआ एक और आदमी लाया गया। उसने जब प्रश्न किये और उसको जब पता चला कि फौज की भर्ती की जा रही है और उसको साठ रुपया

महीना मिलेंगे तो उसने प्रसन्नता से अंगूठा लगा दिया। उसको ऐसा करते देख फौजी अफसर ने प्रेम को सम्बोधन कर काह, "देखो यह मर्द आदमी है। तुम तो लड़कियों की तरह रोने लगे हो।"

दिन के नौ बजे के लगभग दही की लस्सी और साथ मठरियां खाने को दी गयीं। तीन वर्ष पश्चात् प्रेम को मनुष्यों के खाने योग्य कुछ मिला। इससे उसको शान्ति हुई और वह बैठा कुछ सन्तोष अनुभव करने लगा।

इस समय तक दो आदमी और पकड़कर लाये गये। उनको भी समझा-बुझाकर फार्म पर अंगूठे लगा दिए गए। लगभग दिन के ग्यारह बजे, इस प्रकार एकत्र किए गए पांच युवकों को एक फौजी गाड़ी में बैठा-कर छावनी ले जाया गया। बारह बजे ये वहां पहुंचे। वहां इनको एक बैरक में लेजाकर भोजन करवाया गया। उस जैसे वहां एक सौ से ऊपर लोग थे जो विभिन्न कैम्पों से आए थे। वहां उनको स्वादिष्ट और पौष्टिक खाना मिला। प्रेम को ऐसा खाना वर्षों उपरान्त मिला था, जिसे खाकर उसे नींद आने लगी थी। पश्चात् उनको एक बैरक में लेजाकर आराम करने को कहा गया। वहां प्रेम दो घंटा भर खूब गहरी नींद सोया। तीन बजे उसको उठाया गया और एक अफसर के सामने उप-स्थित किया गया। वहां उसकी डाक्टरी परीक्षा हुई। बिना उससे पूछे और बिना कुछ कहने का अवसर दिए उसका नाम, नाप, तोल और शरीर पर के चिह्न लिख लिए गए।

जब लिखने वाले अफसर ने सबका ब्योरा लिखकर अवकाश पाया तो सायंकाल के छः बज गए थे। वह अफसर यह आज्ञा दे कि ये रिक्रूट जालन्धर कैम्प में जायेंगे जाने लगा, तो प्रेम ने कुछ आगे बढ़कर कहा, "हजूर, मुझको कुछ कहना है।"

"कहो।"

"मैं आज ही जेल से छूटा हूं और छूटते ही मुझको पकड़कर भर्ती कर लिया गया है। मेरी मां सख्त बीमार है। मैं उसको देखने

ग्रौर उसकी सेवा सुश्रूषा करने जाना चाहता हूँ।"

"तो तुम ग्राज भर्ती क्यो हुए हो ?"

"मै अपनी इच्छा से नहीं हुआ। मुझको जबरदस्ती पकडकर भर्ती किया गया है।"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"प्रेमनाथ।"

"किस जुरम में कैद थे ?"

"बग़ावत, साजिश ग्रौर डाकाजनी में।"

"तुम मेरे साथ मेरी बैरक में ग्राग्रो।"

प्रेम उसके पीछे-पीछे चल पडा। वह ग्राफिसर जब अपने कमरे में पहुँचा तो कमरे का दरवाजा बन्द कर कहने लगा, "देखो, मुझे सख्त अफसोस है कि तुम्हारी मर्जी के बिना तुमको भर्ती किया गया है पर मै अपने तजुरबे से कहता हूँ कि इस समय तुम्हारे लिए यही अच्छा है कि तुम भर्ती होने से इन्कार न करो। नहीं तो कोर्ट मार्शल कर तुमको पुन' दस साल की कैद की ग्राज्ञा हो जाएगी। 'तुम पहले ही पुलिटिकल कैदी हो। तुम पर दया नहीं की जायेगी। देखो, अगर तुम मेरा कहा मानो तो मै तुम्हारी मदद कर सकता हूँ कि तुम ट्रेनिंग के पीरियड में अपनी मां से मिल सकोगे ग्रौर उसकी सेवा भी कर सकोगे। कहाँ है तुम्हारी मां ?"

"मेरे कैद होने से पहले वह शाहदरा रहती थी। ग्राज से तीन महीने पहले तक वह वहीं थी। तीन महीने से उसका मेरे पास कोई समाचार नहीं ग्राया।"

"तो ऐसा करो। तुम रात को अपनी बैरक में सोग्रो। किसी को कुछ बताना नहीं। कल प्रात ग्राठ बजे मेरे पास ग्राना। मै तुमको मोटरगाडी दूंगा ग्रौर साथ दो सिपाही दूंगा। वे तुमको शाहदरा ले जाएँगे ग्रौर वहां से पता कर तुम चले ग्राना। ग्राकर बताना। हम शाहदरा के पास ट्रेनिंग कैम्प खोल रहे है। मै तुम को वहां भेज दूंगा।

वहाँ से तुम माँ को नित्य मिल सकोगे और यदि तुमने कहा कि तुमको जबरदस्ती भर्ती किया गया है तो तुम पर फौज में बग़ावत फैलाने के जुर्म का मुकद्दमा होगा। अंग्रेज़ अफसर होंगे, वह तुम्हारा पहला मुकद्दमा देखेंगे और दस वर्ष से कम की कैद नहीं देंगे।"

प्रेमनाथ भयभीत भौंचक्का हो अफसर का मुख देखता रह गया। अफसर ने उसकी पीठ ठोकी और कहा, घबराओ नहीं। मा के पास जाने से पहले छः महीने का वेतन भी दिलवा दूंगा। यह तुम अपनी मा को दोगे तो वह बहुत प्रसन्न होगी और तुम को आशीर्वाद देगी। जब तुम युद्ध पर जाओगे तो तुम्हारी मा को हस्पताल में भर्ती कर चिकित्सा भी हो जाएगी।"

प्रेमनाथ दुविधा में फस गया। वह बाहर आया तो आफिसर ने उसको एक सिपाही के साथ रिक्रूटों की बैरक में भेज दिया। वहाँ उसको रात का खाना मिला-और सोने को चारपाई मिल गई।

अगले दिन चार बजे बिगुल बजा और रिक्रूटों को जगाकर टट्टी-पेशाब के लिये भेजा। वहाँ से उनको एक पक्के बने तालाब में स्नान के लिये ले जाया गया। पश्चात् उनको एक घंटा दौड़ाया गया। इसके पीछे कबड्डी इत्यादि खेलें करवाई गईं। पीछे उनको बैरक में लेजाकर फौजी कपड़े पहनने को दिये गये। बिस्तर दिया गया और खाने के लिये बर्तन दिये गये। वहाँ से पुनः वे अपनी बैरक में आगये। वहा उनको प्रातः का नाश्ता दिया गया।

प्रेम ने वर्दी पहिनी और उस अफसर के पास चला गया। जिसने उसको मा के पास भिजवाने को कहा था। वह भी अपनी परेड से लौटा था। उसने प्रेम को फौजी वर्दी पहिने देखा तो उसकी पीठ ठोंककर कहा, "बहुत अच्छे मालूम होते हो इन कपड़ों में।"

"अच्छा, देखो मैं तुमको तुम्हारी मा के पास भिजवा देता हूं।" उसने मेज पर रखी घंटी बजाई। बाहर खड़ा सिपाही आया तो उसने उसको जमादार को बुलाने की आज्ञा दी।

वह स्वय बैठ गया और प्रेमनाथ को सामने खडा रहने दिया। पन्द्रह मिनट में जमादार आया। अफसर ने उसको कहा, तीन सिपाही इसको मोटर में शाहदरा ले जाओ।। वहां यह अपनी मा से मिलकर लौट आयेगा। मुन्शी से इसको छ मास का वेतन पेशगी दिलवादो। जिससे अपनी मां को कुछ रुपये दे आए।"

जमादार उसको लेकर बाहर निकल गया। मुन्शी के पास लेआकर उसको साठ रुपये मासिक के हिसाब से तीन सौ साठ रुपये वेतन के दिलवाकर एक मोटर गाडी ले चल पडे।

प्रेम ऐसा अनुभव कर रहा था कि मानो वह स्वप्न-लोक में विचर रहा है। एक ओर उसको मा की चिन्ता थी, दूसरी ओर वह देख रहा था कि चाहे कुछ हो कानूगो की नौकरी से यह नौकरी बहुत अच्छी है। खाने, पहरने और रहने का प्रबन्ध बहुत उत्तम है। वह मन में विचार कर रहा था कि यदि मा अच्छी हो तो फिर इस नौकरी के करने में हानि ही क्या है!"

मोटर के पुल से रावी पार कर शाहदरे जा पहुंची। गाव में जाकर उसने देखा कि उनके मकान को ताला लगा है। मामा का मकान भी बन्द था। दुकान खुली थी और ज्योति दुकान पर बैठा मिठाई पर से मक्खियां उडा रहा रहा।

मोटर तो गाव से बाहर ही छोड आये थे। प्रेम अपने साथियो के साथ जब दुकान के सामने खडा हुआ तो ज्योति फौजियो को इस प्रकार खडा देखकर डर गया। उन दिनों फौजियों से मिलकर दुकान लूट लेने की कई घटनायें हो चुकी थीं। ज्योति घबराकर उठा और शोर मचाने के लिये भागने ही वाला था कि प्रेम ने आवाज दी, "ज्योति भैया! कहां जा रहे हो?"

ज्योति ने पहचान लिया और कूदकर दुकान के नीचे उतर आया और 'प्रेम भैया!' "कह गले मिलने लगा, परन्तु रुक गया। बोला, मेरे कपडे बहुत मैले है। तुम्हारे भी मैले हो जावेंगे।

प्रेम ने पकड़कर उसको गले से लगाया और जब मिल चुका तो पूछा, "मां कहां है ?"

"डलहौजी गई है।"

"क्यों ?"

"वहां इलाज होता है। पिता जी भी गये हैं और अम्मा भी गई हैं। मैं यहां अकेला रहा हूँ।"

"कोई चिट्ठी आती है वहां से ?"

"हां ! कल ही आई थी। बुआ अब ठीक हैं। ज्वर नहीं है। खांसी आती है पर कम है। सैर करने जाती हैं।"

प्रेम को सन्तोष हुआ, पर वह विस्मय कर रहा था कि इतना खर्चा कहां से हो रहा है। उसने पूछा, "वह चिट्ठी कहां है ?"

ज्योति ने अपनी संदूकची में से एक चिट्ठी जो उर्दू में लिखी थी निकालकर दिखाई। यह प्रेम के मामा को लिखी हुई थी। चिट्ठी पर डलहौजी का पता लिखा हुआ था।

प्रेमनाथ चिट्ठी लेकर ज्योति यह कहकर कि वह मामा को चिट्ठी लिखेगा चल पड़ा। जब प्रेम और उसकी रखवाली के लिये आए हुए सिपाही वापिस हो कुछ दूर निकल आये तो ज्योति पीछे भागता हुआ आया, "प्रेम भैया ! प्रेम भैया !" वह आवाज़ दे रहा था।

प्रेम ठहर गया और घूमकर देखने लगा। ज्योति ने समीप आ कर कहा, "भैया, वह आई थी ?"

"वह कौन ?"

"वह मेम ! जो लाहौर के बड़े साहब की बीबी है।"

"ओह ! प्रेम ने अचम्भा प्रकटकर पूछा, किस कारण आई थी ?"

"वह ही बुआ जी को डलहौजी ले गई है।"

"अच्छा ? यह ठीक नहीं हुआ।"

"पर भैया ! तुम अभी भी कैदी हो क्या ?"

"नहीं ! पर हां।"

"क्या मतलब ?" ज्योति ने पूछा।

"कुछ नहीं ! देखते नहीं हो कि मैं फौज में भरती हो गया हूं।"

"सो तो मैं देख रहा हूं। पर छूटे हो या अभी भी कैद हो ?"

"दोनों।"

ज्योति इस पेचीदा बात का अर्थ नहीं समझ सका। इससे चुप कर रहा। प्रेम गांव से बाहर आ, मोटर पर अपने सरक्षकों के साथ बैठकर लाहौर वापिस चला गया।

७

प्रेम ने बैरक में पहुंचकर मां को चिट्ठी लिखी और उसमें बताया कि कुछ कारणों से विवश होकर उसने फौज में नौकरी कर ली है। वह तीन सौ रुपया अपने छ महीने का पेशगी वेतन मनीआर्डर कर भेज रहा है। कुछ दिन ट्रेनिंग लेने के पीछे उसको मिलने आने की छुट्टी मिलेगी तब ही वह आ सकेगा।

उसने यह भी लिखा कि वह ज्योति से मिला था और उससे पता चला कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो रहा है। वह तो जेल से छूटते ही मिलने के लिये आता, परन्तु बिना रुपये के आकर क्या करता ? इस कारण उसने नौकरी कर लेना उचित ही समझा। उसकी सबको यथायोग्य नमस्ते मिले। नीचे उसने अपना पता लिख दिया।

ट्रेनिंग कैम्प शाहदरा खुल गया और पांच सौ रिक्रूट वहां पर तीन महीने की शिक्षा के लिए एकत्र किए गए। शिक्षा में ड्रिल, कसरत, कपड़ा पहनने का तरीका, खाने का तरीका, और अफसरों से बात तथा सैल्यूट करने का ढग सिखाया जाता था। इसके साथ बन्दूक चलाना और आज्ञानुसार आगे बढ़ना और भागकर पीछे हटना भी बताया जाता था।

प्रेमनाथ को एक दूसरे के पीछे पांच चिट्ठियां मा की ओर से मिलीं। उसने पाचों का उत्तर ऐसे दिया कि जिससे मा को सान्त्वना मिली और उसके भली भांति होने का विश्वास मिला।

ट्रेनिंग कैम्प में एक आदमी विशनदास के नाम से हाजिरी बोलता था। पहले ही दिन प्रातः की परेड के पश्चात् प्रेम को वह आदमी दीखा और भला प्रतीत हुआ। वह उसको पहचानने के लिये समीप पहुंचा तो चकित रह गया। यह दीनानाथ था। दीनानाथ ने भी उसको देखा और पहचाना, परन्तु मुख पर अंगुली रखकर चुप रहने का सङ्केत किया। विशनदास अपने कुछ मित्रों के साथ कैम्प को जा रहा था। प्रेमनाथ समझ गया। दीनानाथ फरार था। उसने समझा कि वह अपना पूर्व परिचय वहां प्रकट होने देना नहीं चाहता। इस विचार के आते ही प्रेम मुख दूसरी ओर कर उसके मित्रों की मंडली के पीछे पीछे चलने लगा। उसका अभिप्राय था कि दीनानाथ के कैम्प का नम्बर जान ले और फिर समय पाकर उससे मिले।

उसी सायंकाल दीनानाथ ने प्रेम से भेंट की और बताया कि उसका नाम दीनानाथ नहीं, प्रत्युत विशनदास है। उसने बताया कि उसके फौज में भर्ती होने के दो प्रयोजन हैं। एक तो अपने वारंट वापिस करवाना और दूसरे फौजियों में देश-भक्ति की धारणा को उत्पन्न करना।

विशनदास ने कहा कि वह अपने फरार होने की बात तब तक लोगों में नहीं फैलने देना चाहता, जब तक वह फौज में नौकरी करता है। युद्ध के पश्चात् वह इस विषय में सरकार के साथ बातचीत करने का विचार रखता है।

"यहां फौजियों में देशभक्ति के प्रचार की बात पहली बात से भी कठिन है। मैं हिन्दुस्तान पर अंग्रेजों के राज्य की हानियों का वर्णन नहीं कर सकता। आज जो देशमें योग्य और विख्यात लोग हैं उनकी चर्चा तक यहां नहीं हो सकती। फिर यहां पर प्रायः लोग सर्वथा अनपढ़ हैं। उनका जीवन एक पशु के समान अविचारशील और केवल मात्र शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अर्थ ही है। उनको यदि मैं यह कहूं कि गांव की ओर चलो, लड़कियों और स्त्रियों से हंसी ठट्ठा करने चलें, तो पागलों की भांति खुशी मनाते हुए चल पड़ेंगे और यदि यह कह दूं कि भारतवर्ष

हमारा देश है और हमारा अधिकार है कि इस देश में मान-मर्यादा से रह सकें, हमारे पूर्वज बहुत ही उन्नत विचारों वाले सुख और शान्ति पूर्वक रहते थे, तो मेरे साथी उदासीन हो ऐसा समझने लगते हैं कि मैं कोई कुछ ऐसी बात कह रहा हूँ जिससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं।"

"भैया," प्रेमनाथ ने कहा, "तुमको यहाँ देखकर मेरा यह कैम्प का नीरस जीवन रसमय हो जाएगा। मैं सत्य ही अपने को ऐसा पाता था जैसे किसी रेगिस्तान म थोड़ी हरियाली हूँ। अब तुम और मैं दो नहीं, ग्यारह हो जायेंगे।"

प्रात. और साय ट्रेनिंग का कार्य होता था। दोपहर के खाने के पश्चात् और रात के खाने के पीछे मिल-मिलाकर दो तीन घटा परस्पर मेल-जोल हो सकता था। बिशनदास वर्तमान युग की बातें जानता था और प्रेमनाथ ने माता से पुराण इत्यादि ग्रथों की कथाएँ सुनी थीं। दोनों ने पहले एक-दूसरे को यह कथायें सुनानी आरम्भ कीं और पीछे उनकी कथाओं के सुनने में रुचि प्रगट करने वालों की सख्या बढ़ने लगी। धीरे-धीरे यह एक प्रकार की विस्तृत कथा वार्ता की सभा बन गई।

एक दिन कर्नल रघुवीरसिंह इस गोष्ठी में आ पहुँचा। यह उस कैम्प का कमांडिग आफिसर था। गोरखा जाति का होने से हिन्दु-धर्म पर उसकी अगाध श्रद्धा थी, परन्तु वह फौजी नियन्त्रण को उस ढग से ही समझता था, जिस ढग से उसको अग्रेज अफसरों ने बताया हुआ था। उसने किसी से सुना कि प्रेमनाथ बहुत सुन्दर कथा कहता है। एक दिन वह स्वय सुनने के लिए चला आया।

प्रेमनाथ कह रहा था, "कल मैंने आपको राम की महिमा का तत्व बताया था। राम के काल में वे लोग जो प्रकृति के उपासक थे, जिनके विचार में शारीरिक सुख और शाति परम लक्ष्य था, असुर कहाते थे। असुर के अर्थ कोई भयकर शरीर वाले अथवा बड़े-बड़े दाँतों वाले या दो तीन सिर वाले लोग नहीं। ये एक विचार विशेष के मानने वाले थे। यह विचार था सांसारिक वैभव को सर्वोपरि मानना। इस कारण अध्या-

त्मवाद के मानने वालों से ये पृथक् थे। राम ने अध्यात्मवाद की जीत कराई और वहाँ पर भगवान के भक्त का राज्य स्थापित किया।

"राम से पूर्व इस पार्थिव सभ्यता के अनुयाइयों का प्रभाव लंका से बढ़ते हुए पंचवटी और विन्ध्य प्रदेश तक आ गया था। राम ने अपने बाल्यकाल में विन्ध्य-प्रदेश को असुरों से रिक्त किया था और फिर अपनी यौवनावस्था में लंका की विजय कर वैदिक संस्कृति को पार्थिव संस्कृति के आक्रमण से एक दीर्घकाल के लिए सुरक्षित किया था। यही कारण है कि भारतवर्ष के प्रत्येक नगर तथा प्रदेश में राम को भगवान् का अवतार माना जाता है और आज तक उसके गुणानुवाद गाये जाते हैं।"

"आज की बात भगवान कृष्ण की है। कृष्ण वैदिक संस्कृति, जिसकी आत्मा अध्यात्मवाद है, का परम पोषक और सहायक था। उसके काल में भी केवल मात्र सांसारिक उन्नति को ही परम साध्य वस्तु मानने वाले इस देश में उन्नति कर रहे थे। इस विचार-धारा के पोषक भीष्म पितामह इत्यादि कौरव अपना साम्राज्य चला रहे थे। वे कन्धार, यवन देश इत्यादि अन्य विदेशों से विद्वान् लोगों को बुलाकर जनता की विचारधारा को सांसारिक उपभोगों में लगाने का यत्न कर रहे थे। कृष्ण भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति की स्थापना में लग गया। उसने ऐसा प्रपंच रचाया कि चन्द्रवंशियों में ही वैदिक संस्कृति के उपासक उत्पन्न किये। उनका संगठन किया और फिर उनकी विजय कराई। इस सब प्रयास का नाम भारत युद्ध अर्थात् महाभारत प्रसिद्ध हुआ।"

"ययाति एक राजा हुए हैं। वे चन्द्रवंशीय थे, उनका राज्य मध्य-एशिया में कहीं था। ययाति का एक पुत्र यदु था और वह संसार से विरक्त रहकर ज्ञान-ध्यान में अधिक रत रहता था। पिता के विचारों से उसका मतभेद हो गया और पिता ने उसको उत्तराधिकार से वंचित कर अपने छोटे पुत्र पुरु को राज्य दिया।"

"पुरु की सन्तान में बड़े-बड़े पराक्रमी हुए। उनमें तो कई अध्यात्मवादी हुए और कई संसारवादी। भरत जिसके नाम से आज हमारा देश भारत-

वर्ष कहाता है, वैदिक संस्कृति का उपासक हुआ। उसके काल में वेद-विज्ञ ऋषियों की मान-मर्यादा सर्वोपरि थी। स्थान-स्थान पर यज्ञ-हवन, दान-दया का आयोजन होता था। पूर्ण देश ने इस पराक्रमी राजा भरत को अपने हृदय में स्थान दिया हुआ था।"

"परन्तु पश्चिम से विचारों की बाढ़ आई और बड़े-बड़े महापराक्रमी भी अपने विश्वासों से विचलित हो गये। एक ऐसे ही राजा की कथा मैं आपको आज सुनाता हूँ। इस राजा ने विषय-भोग को मानवता से भी ऊँचा माना। और वासना से विवश हो अपनी ही सन्तान की हत्या की।"

"पुरु के वंश में एक राजा शान्तनु हुए। वे शिकार से बड़ी प्रीति रखते थे। इस कारण गंगा के तट पर उन्होंने एक बहुत ही रमणीय विहार बनाया। एक घना जंगल सुरक्षित किया और उसमें भाँति-भाँति के पशु-पक्षी, हिंसक जन्तु इत्यादि पलने दिये और उस जंगल में शिकार खेलने में रत रहने लगे।"

"एक दिन वह शिकार खेलते-खेलते गंगा तट पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक अत्यन्त रूपवती स्त्री खड़ी उन पर मृगनयनों से कटाक्ष कर रही थी। उस कामिनी का सुन्दर रूप, मनोहर वेश और यौवन देखकर राजा शान्तुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उस पर मोहित हो गये। वे उसके पास गये और उससे पूछने लगे, "सुन्दरी, तुम मनुष्य हो, देवता हो, दानव हो, गन्धर्व अथवा किस जाति से हो? तुम जैसी रूपवती मैंने पहले कभी नहीं देखी। मैं तुमसे विवाह करने की अभि-लाषा करने लगा हूं।"

उस सुन्दरी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "जब आप मुझ पर इतना अनुराग करते हैं तो मैं आपसे विवाह करने के लिए उद्यत हूं, परन्तु एक प्रतिज्ञा चाहती हूँ।"

"बताओ, क्या प्रतिज्ञा चाहती हो, मैं उसका पालन करूंगा।"

"मैं आपकी पत्नी बनना स्वीकार करती हूँ। परन्तु आपको मेरे कामों में हस्ताक्षेप नहीं करना होगा। आपको अधिकार नहीं होगा कि

मेरे कामों से मुझको रोकें। यदि ऐसा करेंगे तो मैं आपको छोड़ जाऊँगी।"

"राजा प्रीति के फांस में पहले ही फँस चुका था। उसको वासना-वश उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रहा था। इस कारण बिना विचारे बोल उठा, "मुझको यह प्रतिज्ञा स्वीकार है।"

"उस महारूपवती स्त्री को वे अपने राज्य में ले गये और उसको अपनी परमप्रिया रानी बनाकर महलों में रखा। यह सुन्दरी गंगा के किनारे मिली थी। इस कारण उसका नाम गंगा रखा गया। रानी गंगा के पुत्र हुआ तो वह उसको गंगा में बहा आई। राजा को बहुत बुरा प्रतीत हुआ। परन्तु रानी के चले जाने के भय से राजा कुछ कह नहीं सका। इसी प्रकार एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा और बारी-बारी से सात पुत्र हुए और सातों के सातों उत्पन्न होते ही गंगा में बहा आई।"

"राजा उसके रूप पर मोहित हुआ था और उसको ऐसे बुरे काम से मना नहीं कर सका। आठवां पुत्र हुआ तो राजा अपने मन की भावना को रोक नहीं सका। उसने गंगादेवी को कहा, "यह क्या करती हो रानी?"

"रानी क्रुद्ध हो गई। उसने वह आठवां पुत्र राजा को दिया और स्वयं अपनी प्रतिज्ञानुसार उसको छोड़ चली गई।"

"यह शान्तनु कौरवों का पुरखा था। इस प्रकार की मनोवृत्ति उन लोगों की थी जिनके विरुद्ध कृष्ण ने भारत-युद्ध करने का और जिनको यह भारत-युद्ध कर जीतने का आयोजन किया था।"

"इन लोगों की हार हुई। वेद, उपनिषद् के ज्ञाता और कर्ममीमांसा के प्रतिपादन कर्ता भगवान् कृष्ण की जीत हुई।"

"जब से सृष्टि बनी है सांसारिक वैभव को ही सब कुछ मानने वालों की उन्नति तो हुई है, परन्तु ह्रास उन्नति से भी शीघ्र हुआ है। आज जर्मन ने विज्ञान में महाउन्नति की है। परन्तु यह उन्नति किसी आध्या-

त्मिक विकास की द्योतक न होने के कारण अवश्य विनाश को प्राप्त होगी। हम भगवान कृष्ण की सेना के सैनिक ऐसे सांसारिक वैभव को नष्ट करने में सहायक होने वाले हैं।"

"कल फिर इस महाराज शान्तनु की दूसरी कथा कहूँगा, जिससे यह प्रतीत होता है कि गंगादेवी की दुर्घटना से भी शिक्षा ग्रहण न कर, कैसे इस व्यसनी राजा ने एक महान् युद्ध की नींव रखी।"

प्रेमनाथ ने कथा इतनी सरल तथा रोचक भाषा में कही कि सुनने-वाले एक सौ से ऊपर उपस्थित लोग उसकी बात सुनने में मूर्तिवत बैठे रहे।

कर्नल रणवीर जो सबसे पीछे अँधेरे में खड़ा यह कथा सुन रहा था, प्रेमनाथ की वर्णन-शैली से प्रभावित हुआ। उसने कथा की समाप्ति पर अपने समीप खड़े एक सिपाही से पूछा, "इस कथा के कहने वाले का क्या नाम है ?"

"प्रेमनाथ।"

"कथा के पश्चात् उसको कहना कि मेरे कैम्प में हाजिर होवे।"

वह कर्नल की आज्ञा सुन भयभीत हो गया और कर्नल के वहाँ से जाते ही सबके बीच में से लाँघकर आगे जा प्रेम के कान में बोला, "भैया, कर्नल तुमको अपने कैम्प में बुला गया है।"

"कब ?"

"अभी कहकर गया है कि कथा के समाप्त होने पर वहां हाजिर हो जाओ।"

कर्नल रणधीरसिंह देख रहा था कि यह आदमी नेता बनने की शक्ति रखता है और फौज में विचारक नेताओं की आवश्यकता नहीं होती। साथ ही वह यह भी विचार करता था कि इसने जर्मनी की निन्दा किस प्रकार से की है। क्या यह सत्य ही ऐसा विश्वास रखता है, अथवा नीति से जर्मनों के नाश की बात कहता है। इस कारण वह उत्सुकता से प्रेमनाथ के उसके सामने उपस्थित होने की प्रतीक्षा करने लगा।

कथा समाप्त होते ही प्रेमनाथ कैम्प में हाजिर हुआ। वह फौजी सलामकर अकडकर सामने खड़ा हुआ तो कर्नल ने सिर से पांव तक उसको देखकर पूछा, "क्या नाम है ?"

"प्रेमनाथ, नम्बर पैंतालीस, ग्रुप दस, कैम्प पन्द्रह बटा पचास।"

"ब्राह्मण हो क्या ?"

"जनाब नहीं! खत्री हूँ।"

"कथा तो ब्राह्मणों से भी अच्छी कहते हो।"

प्रेमनाथ चुप रहा। इसमें उत्तर देने को कुछ नहीं था। उसे एक नियन्त्रण में अभ्यस्त खड़े देख कर्नल ने पूछा, "हम तुम्हारे कथन की शैली से बहुत प्रसन्न हैं। परन्तु यहां पर जो कुछ तुम कहते हो उसमें आपत्ति-जनक बात भी हो सकती है।"

"मैंने फौजी नियमों को पढ़ लिया है और समझ चुका हूँ। इस कारण ऐसा नहीं करूँगा।"

"पर तुम पर खबरदारी कौन करेगा ? तुम यहां के औसत सिपाही से अधिक समझदार प्रतीत होते हो। तुमको पकड़ने के लिए तुम से अधिक योग्य रिपोर्टर की आवश्यकता होनी चाहिए।"

"पर जनाब, मैं ऐसा क्यों करूंगा जिससे फौजी नियन्त्रण टूटे।"

"देखो जी, आज तुमने जर्मन लोगों की निन्दा की। कल तुम अँग्रेजों की निन्दा कर सकते हो।"

"करूंगा तो पकड़ा जाकर दण्ड का भागी बनूंगा।"

"मैं समझता हूँ कि इस प्रकार की कथाओं को बन्दकर अलफ़ लैला की कहानियां सुनानी अच्छी रहेगी।"

"हुजूर, वे तो मुझको आती नहीं। उसके लिए किसी और आदमी को नियुक्त कर दिया जाये।"

"तो यह कहानियां तुम कहां से सीख गये हो ?"

"मेरी मां महाभारत और रामायण का नित्य पाठ किया करती थीं। मैं समीप बैठा सुना करता था।"

"तो तुम्हारी माता बहुत पढ़ी-लिखी औरत है ?"

"वे केवल हिन्दी पढ़ी हैं।"

"अच्छा देखो ! तुम यदि कथा कहना चाहते हो तो उसको वर्तमान काल की बातों से मत मिलाया करो।"

"जैसी आज्ञा।"

"जा सकते हो।"

प्रेमनाथ ने समझा कि वह सुगम छूट गया है। वास्तव में कर्नल ने उसके पूर्व इतिहास की पड़ताल के लिए जाँच प्रारम्भ कर दी।

कर्नल से इस बुलावे की सूचना पूर्ण कैम्प में फैल गई और अगले दिन उसकी कथा सुनने के लिये दुगने से भी अधिक लोग एकत्र हो गये। विशनदास जानता था कि इस प्रकार की सभाएं बहुत दिन नहीं चल सकेंगी। इस कारण उसने इनको मनोरजन का केन्द्र बनाने का आयोजन कर दिया। उसका एक मित्र चमनलाल गान जानता था। उससे उसने आए हुओं का मनोरजन करने के लिये कहा। वह मान गया और खड़ा होकर गाना गाने लगा। उसने गाया—

"वगदी ए रावी विच, डेंडा करीड दा।
घोडी ते चढ़िया लगदा मुंडा अहीर दा।"

ट्रेनिंग कैम्प में इतनी मेहनत करनी पड़ती थी कि थोड़ा-सा मनोरजन का आयोजन बहुत ही विनोद उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ। श्रोतागणों ने "मुंडा अहीर दा" सुनकर तालियां पीटकर फिर सुनाने का आग्रह किया। चमन ने एक और पद सुना दिया—

"वगदी ए रावी विच तैरन बेरियाँ।
नजराँ लगाँवदियाँ कुड़िया ने केरियाँ॥"

सुनने वालो ने सीटियाँ बजा-बजा कर इस पद का स्वागत किया। चमन गाता गया—

"वगदी ए रावी विच मछलियाँ सोनियाँ।
शाह जी दी तोंद फुल्ली कर कर बोनियाँ॥

वगदी ए रावी विच फुल्ल गुलाब दा।
मान न करियो मुंडिया झूठे शबाब दा ॥"

आज तो रग जम गया। एक दो मित्रो में प्रारम्भ हुआ वार्तालाप कथा के रूप में बदल गया और कथा से एक मनोरजन की सभा बन गई। विशनदास का यह निश्चय था कि जहां भी वह रहेगा और जिस रूप में भी उसको अवसर मिलेगा वह अपने पास-पडोस में रहने वालो पर अपने विचारों की छाप लगाए बिना नहीं छोड़ेगा। वह स्वय कभी कुछ नहीं कहता था। पर लोग उससे पूछते थे और फिर वह उत्तर दिया करता था। आज गाने हुए और विशनदास ने कहा, कल हीर और रांझा का सांग होगा। इस पर तो पंजाब के रहने वालो के हृदय उत्सुकता से अगले दिन की प्रतीक्षा करने लगे। शायद इस खेल-कूद में कथा-कहानी होती ही नहीं। यदि एक आदमी एक प्रश्न न पूछ लेता। उसने पूछा—

"बाबू विशनदास, तुमने कल कहा था कि जापान ने न केवल चालीस वर्ष में इतनी उन्नति कर ली है कि रूस जैसी प्रबल शक्ति के दांत खट्टे कर दिये हैं, तो क्या अपने से बड़े देश को पराजित कर सकना ही उन्नति का लक्षण है?"

प्रश्न बहुत ही जटिल था। इस कारण विशनदास को बात समझानी पड़ी। उसने कहा "एक आदमी की ताकत उसके शरीर की बनावट से होती है। परन्तु उसकी परीक्षा तो तब होती है जब वह किसी को कुश्ती में पछाड़ता है। जैसे व्यक्तियो की ताकत की परीक्षा कुश्तियों के मैदान में होती है, वैसे ही जातियां की उन्नति की परीक्षा युद्ध के समय होती है। जो जाति युद्ध में हार जाती है वह अवश्य पिछड़ी हुई होती है।"

"जर्मन एक उन्नतिशील देश है तो क्या वह जीतेगा?"

"नहीं! उन्नति केवल विज्ञान की उन्नति को नहीं कहते। उन्नति तो सर्वतोन्मुखी होनी चाहिए। तब ही जीत हो सकती है।"

इन मनोरंजन की सभाओं से कैम्प के आफिसर घबरा उठे। और उन्होंने आज्ञा देकर सभाओं को बन्द कर दिया। लोगों ने इस आज्ञा को उठाने की प्रार्थना की। परिणाम यह हुआ कि अफसरों को स्वयं मनोरंजन के आयोजन करने पड़े। बिशनदास को इससे बहुत शोक हुआ। इस पर भी वह यत्न करता रहता था कि जो कुछ भी है उससे अपना प्रयोजन सिद्ध करे।

अफसरों द्वारा आयोजित आयोजनों में कैम्प में रहने वालों में रुचि कम होने लगी और लोग सायंकाल कैम्प से निकल इधर-उधर घूमने लगे। इससे गांव में और नदी के किनारों पर फौजियों से नागरिकों के तंग किये जाने की घटनायें बढ़ने लगीं। इन घटनाओं के समाचार दैनिक पत्रों में छपने लगे। सरकार अफसरों को डांटने लगी। अफसर फौजियों को डांटने लगे और फौजी भी अपना क्रोध लोगों पर निकालने लगे।

इस समय लाहौर से प्रेमनाथ के विषय में भेजी गई जांच का परिणाम आया, जो बड़े अफसरों को भेज दिया गया। बड़े अफसरों के सामने प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस लड़के का क्या किया जाये। यह क्रान्तिकारी रह चुका है। इससे ट्रेनिंग सेन्टर में विद्रोह फैलने की संभावना है। अफसरों ने आज्ञा देकर इसको सिक्खों की रेजिमेंट के साथ लगाकर समय से पहले ही फ्रन्ट लाइन पर भेज दिया।

६

ऐमिली प्रतिमास एक-दो दिन के लिये डलहौजी जाया करती थी और वहां शान्ता के पास रहती थी। इन दिनों शान्ता, जो अब प्रायः ठीक हो चुकी थी ऐमिली के सम्पर्क में आती थी और ऐमिली के मन पर उसके मन की श्रेष्ठता का प्रभाव होता रहता था। ऐमिली ने देखा कि अति कठिन अवस्था में भी शान्ता का धैर्य और शान्ति नहीं छूटी।

जब वह डलहौजी को लाई जाने वाली थी तो उसने ऐमिली से कहा

था, "अब यह शरीर इतना जर्जर हो चुका है कि इसको बचाने का प्रयास व्यर्थ है।"

"यह कैसे कहती हो बहिन ?"

"मैं समझती हूँ कि प्रथम तो ठीक ही नहीं होऊंगी। और यदि ठीक भी हो गई तो इतनी दुर्बल और रुग्ण रहूंगी कि जीवन का कुछ आनन्द ही नहीं रहेगा। ऐमिली बहिन! अपना रुपया व्यर्थ न गंवाओ। स्वामी जी से कहो कि जो कुछ औषधि देनी है वह यहां पर रहते हुए ही दे दें। मैं उनकी अत्यन्त कृतज्ञ रहूंगी।"

"मैं इसमें स्वामी जी से बहस नहीं कर सकती। उन्होंने आज्ञा दी है कि आपको पहाड़ पर ले जाना चाहिये। मैंने प्रबन्ध कर दिया है। वे आज्ञा देंगे कि आपको यहां रहना है तो मैं यहां ही रहने का प्रबन्ध कर दूंगी।"

"पर तुम मेरे लिये क्यों कुछ करती हो ?"

"यह भी स्वामी जी से पूछ लेना। मैं तो उनकी ही आज्ञा का पालन कर रही हूं।"

परिणाम यह हुआ कि शान्ता डलहौज़ी पहुंच गई। वहां जाकर उसको विदित हुआ कि लगभग एक हजार रुपया मासिक का खर्चा हो रहा है। इससे उसको ऐमिली के सम्मुख बहुत ही लज्जित होना पड़ा।

जब ऐमिली डलहौजी आई तो शान्ता जिसकी अवस्था सुधरने लगी थी, उससे बोली, "मैंने इस जन्म में किसी का कर्ज़ा अपने सिर नहीं उठाया। अब तुम मेरे सिर पर इतना बोझा लाद रही हो कि मैं समझती हूँ, कई जन्म में भी नहीं उतर सकेगा।"

ऐमिली स्वामी निरूपानन्द की शिक्षा के मनन करने से पुनर्जन्म तथा कर्म-मीमांसा के सिद्धांत को स्वीकार कर चुकी थी। इससे उसने कहा, "पर यह तुम कैसे कहती हो कि मैंने तुम्हारे पिछले जन्म का कुछ नहीं देना? क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि मैंने तुम्हारा यह सब कुछ और शायद इससे भी अधिक देना हो।"

शान्ता मुस्कराई और बोली, "हम हिन्दुस्तानी तो ऐसी बात कहते हैं पर आप लोग तो ऐसे सस्कारों में पले नहीं। फिर आपको क्यो अपना आराम और सुख छोड़कर दूसरो के लिये इतना कुछ करना चाहिये, यह समझ नहीं आता।"

ऐमिली मुस्कराकर चुप कर रही। महीने पर महीने बीतने लगे। इस समय एकाएक प्रेमनाथ का पत्र आया, जिसमें लिखा था कि वह फौज में भर्ती हो गया है। इस समाचार से शान्ता के स्वास्थ्य के सुधरने में फिर बाधा खड़ी हो गई, परन्तु स्वामी निरूपानन्द के उपदेशों और औषधियों के बल पर पुन उन्नति आरम्भ हो गई।

प्रेमनाथ के भेजे हुए तीन सौ रुपये आये। वह रुपये उसने ऐमिली के सामने रखते हुए कहा, "किस मुख से कहूँ कि यह ले लो। इसकी उस रकम से जो आप व्यय कर रही हैं कोई तुलना नहीं। मैं समझती हूँ कि आप इसको जहाँ चाहें दे दें।

ऐमिली समझती थी कि खर्च के मुकाबिले में तीन सौ रुपये की कुछ गणना नहीं। इस पर भी उसने कहा, "यह रुपया प्रेम ने आपके लिये भेजा है। सो यह उसी काम में लगाना चाहिये। इस कारण मैं यह स्वामी जी को दे रही हूँ। वह जिस कार्य में उचित समझेंगे व्यय कर देंगे।"

प्रेमनाथ का पत्र आया था कि तीन मास की ट्रेनिंग समाप्त हो गई है और तीन महीने और हैं। उसके पश्चात् पन्द्रह दिन का अवकाश मिलेगा। उसमें वह मिलने आयेगा, परन्तु वह उस चिट्ठी के दो दिन बाद ही वहा आ पहुँचा। मा उसको देख चकित रह गई। वह उसको सिर पर प्यार देकर पूछने लगी—"तुमने तो लिखा था कि अभी तीन महीने में आओगे ?"

"हां मां ! पर कुछ समझ नहीं आता। मेरी ट्रेनिंग समाप्त होने से पहले ही मुझको एक सिख रैजिमेंट के साथ लगाकर योरुप भेजा जा रहा है। छुट्टी तो केवल पाँच दिन की मिली है। मैं अब शीघ्र ही फ्रन्ट लाइन पर चला जाऊँगा।"

जब प्रेम डलहौजी पहुँचा था तब ऐमिली लाहौर में ही थी। डलहौज़ी में उसकी मा, इन्द्रा, उसकी मामी और स्वामी निरूपानन्द के एक शिष्य रहते थे। प्रेम का मामा शाहदरा में था।

प्रेम दो दिन तक वहाँ रहा। प्रेम की मां को प्रेम के युद्ध पर जाने से चिन्ता लग रही थी, परन्तु ऊपर से वह उस चिन्ता को प्रकट नहीं होने देती थी। इन्द्रा को प्रेम ने तीन वर्ष के पीछे देखा था। वह अब सज्ञान हो गई थी और मा के स्वास्थ्य ठीक होने से उसका भी स्वास्थ्य सुधर रहा था। प्रेम ने मां से कहा, "मा! लोग कहते हैं कि यह युद्ध अभी दो वर्ष और चलेगा। इससे इन्द्रा का प्रबन्ध कर उसका विवाह कर देना।"

"क्या हो सकेगा? मैं जानती नहीं।" उसकी मा ने कहा, "ऐमिली बहिन स्वामी जी से इस विषय में बातचीत कर रही है।"

प्रेमनाथ की मां ने प्रेमनाथ से कहा था कि हो सके तो वह लाहौर में ऐमिली से मिले और उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करे।

प्रेम जब लाहौर वापिस आया तो ऐमिली से मिलने गया। डिप्टी कमिश्नर की कोठी में पहुँच चपरासी को बोला, "मिसेज़ चोपड़ा से मिलना है।"

"मिसेज़ चोपड़ा? वे यहां नहीं हैं।"

"कहां हैं? कब मिलेंगी?"

"हम नहीं जानते।"

प्रेमनाथ को अगले दिन बम्बई के लिये विदा होना था। और वह जाने से पहले मिलकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता था। इस कारण चपरासी का उत्तर सुन परेशानी में उसका मुख देख रहा था, कि एक मोटर फर्र करती हुई आई और कोठी की ड्योढी में खड़ी हो गई। प्रेमनाथ घूमा तो उसने देखा कि डिप्टी कमिश्नर मोटर से उतर रहा था। वह झेंप गया और चाहता था कि एक ओर खड़ा हो जाये, दिखाई न दे। परन्तु ऐसा नहीं हो सका। पूर्व इसके कि वह पीछे हट

सके, मिस्टर चोपड़ा बरामदे में आ खड़ा हुआ। उसने प्रेमनाथ की ओर देखा। प्रेमनाथ की आँखें नीचे झुक गई। मिस्टर चोपड़ा दो क्षण तक उसकी ओर देखता रहा, पश्चात् उससे बोला, "भीतर आओ।"

प्रेम को सन्देह हुआ कि उसको आने को कहा है अथवा किसी और को। इससे वह मिस्टर चोपड़ा की ओर देखने लगा। इस समय मिस्टर चोपड़ा कोठी के ड्राइंग रूम के दरवाजे में प्रवेश कर रहा था। प्रेमनाथ यह देखने के लिये कि किसी और को तो नहीं बुलाया, अपने चारों ओर देखने लगा। जब वहाँ सिवाय चपरासी के और किसी को नहीं देखा, तो वह उसके पीछे ड्राइंग रूम में जाकर खड़ा हुआ।

डिप्टी कमिश्नर स्वयं कुर्सी पर बैठ गया और सामने खड़े प्रेमनाथ से पूछने लगा, "किस मतलब से आये हो ?"

"मिसेज चोपड़ा से भेंट करना चाहता हूँ ?"

"मिसेज चोपड़ा ! तुम्हारा उससे क्या मतलब है ?"

"डलहौजी से उनके नाम संदेश लाया हूँ।"

"तो तुम डलहौजी से आ रहे हो ?" मिस्टर चोपड़ा ने ऐसे खड़े होकर कहा, जैसे कोई सामने साँप आते देख खड़ा हो जाता हो।

प्रेमनाथ ने इस विस्मय और घबराहट को देखा, परन्तु इसका अर्थ न समझ सकने के कारण चुपचाप खड़ा रहा। मिस्टर चोपड़ा एकाएक बोल उठा, "तुम भी तपेदिक के मरीज से छूकर आये हो ? तुम को किसने अन्दर आने दिया है। बाहर हो जाओ !"

प्रेम इस सब मनोद्गार का कारण नहीं समझ सका। इस पर भी उसने धैर्य से उत्तर दिया, "मैं अपने कैम्प से होकर आया हूँ, वहाँ मेरी प्रत्येक प्रकार से परीक्षा कर ली गई है। आप डरिये नहीं, मैं प्रत्येक प्रकार से स्वस्थ हूँ।"

"तुम्हारे कपड़ों में खराबी हो सकती है।"

"ये तो मैंने यहाँ आज ही धोबी से लेकर पहने हैं। क्या आप बता सकते हैं कि मिसेज चोपड़ा कहाँ हैं ?"

"वे हैं जहन्नम में। मैं नहीं जानता।"

"तो फिर मैं जाता हूँ। मैं कल युद्ध पर जा रहा हूँ, उनसे मेरी नमस्कार कह दीजियेगा।"

इतना कह वह नमस्कार कर बाहर जाने के लिये घूमा तो मिस्टर चोपड़ा ने कहा, "ठहरो।"

प्रेमनाथ इसका अर्थ नहीं समझ सका। वह फिर खड़ा हो गया मिस्टर चोपड़ा पुनः कुर्सी पर बैठ पूछने लगा, "तुम कब भर्ती हुए थे ?"

"जिस दिन जेल से छूटा था। उसी दिन भर्ती लिया गया था। आज चार महीने होने वाले हैं।"

"तुम्हारी ट्रेनिंग हो गई है क्या ?"

"पूरी तो नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध में आदमियों की आवश्यकता बहुत अधिक हो गई है। यही कारण है कि अधसिखे भेजे जा रहे हैं।"

"पर तुम क्यों जा रहे हो। मैं जानता हूँ कि वहाँ से बचकर नहीं आओगे।"

"मैं अपनी इच्छा से नहीं जा रहा। इस पर भी कोई कारण नहीं कि मैं नहीं बच सकता।"

"यह सब बेहूदा है। तुम्हारी माँ ने तुमको भर्ती होने की स्वीकृति दे दी है क्या ?"

"उससे भर्ती होने के लिये पूछा ही किसने है। वास्तव में मुझसे भी किसी ने नहीं पूछा। खैर, छोड़िये इस बात को। दास से दास बनाये जाने के लिये कौन पूछता है।— "मैं जाऊँ क्या ?"

मिस्टर चोपड़ा बहुत परेशान प्रतीत होता था। यही कारण था कि वह प्रेमनाथ से जो कुछ कह रहा था वह अविचारित भावों के वश ही कह रहा था। प्रेमनाथ यद्यपि उसके मन की गहराई तक नहीं पहुँच

सका था तो भी यह तो देख रहा था कि डिप्टी कमिश्नर का व्यवहार सर्वथा अयुक्ति सगत है। एक ओर तो तपेदिक के रोगी से छूकर आने के कारण वह उसको दूषित समझता था। दूसरे उसके फौज में भर्ती हो जाने के कारण चिन्ता करता प्रतीत होता था। फिर वह ऐमिली के विषय में बताना भी नहीं चाहता था और जब उसने पूछा कि वह जाये तो उसका मुख देखता रह गया और उत्तर नही दे सका। प्रेमनाथ को मिस्टर चोपड़ा की यह अवस्था अति विचित्र प्रतीत हुई। जब कितनी ही देर तक मिस्टर चोपड़ा ने प्रेम के प्रश्न, 'म जाऊं' का उत्तर नहीं दिया तो प्रेम ने बहुत नम्रता से फिर पूछा, "आपने कुछ कहने के लिये मुझको भीतर बुलाया था। तो क्या आप कह चुके हैं। क्या मैं जा सकता हूँ ?"

तुम्हारी मा ने मिसेज़ चोपड़ा पर जादू कर रखा है। मैं इससे तग आ गया हूँ। मैं उसको भी घर से निकाल दूँगा।"

प्रेमनाथ इस आवेशमय कथन को सुनता रहा। जब मिस्टर चोपड़ा कह चुका तो उसने कहा, "मैं अपनी मां से मिलने नही जा रहा। हाँ, भारत छोड़ने से पूर्व एक पत्र उनको लिखूंगा। यदि आप कहते हैं कि इस विषय पर आप के विचार उनको लिखूँ तो लिख सकता हूँ।"

"निकल जाओ मेरे कमरे से। तुम लोगों ने मेरा सत्यानाश कर दिया है।"

प्रेमनाथ वहाँ से निकल भागा। वह यह विचार करता था कि कहीं वह उस पर वार न कर बैठे। कोठी के बाहर आ प्रेमनाथ गभीरतापूर्वक विचार करने लगा कि उसके पिता को हो क्या गया है ? वह कोठी के बाहर खड़ा रहा। उसका विचार था कि मिसेज़ चोपड़ा का पता करने का एक प्रयत्न और करना चाहिये।

कोठी के भीतर से एक आदमी मैले कपड़े पहने निकला। उसके कपड़ों को कोयलों की स्याही लगी देख वह समझ गया कि रसोई खाने का नौकर है। शायद बाजार से कुछ खरीदने जा रहा है। जब वह

कोठी से बाहर निकल भुजंग की बस्ती की ओर चल पड़ा तो प्रेमनाथ उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। कोठी से कुछ हट जाने पर वह लम्बे-लम्बे कदम उठाता हुआ उस नौकर के साथ-साथ चलने लगा। जब उसने पूछा, "क्यों जी, डिप्टी कमिश्नर साहब की कोठी में काम करते हो?"

"हाँ।"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"नज़ीर।"

"क्या काम करते हो?"

"रसोईया हूँ।"

"भाई! ये साहब की बीबी आज घर पर नहीं है क्या?"

"तुम को बीबी से क्या काम है?"

"डलहौज़ी से एक साहब ने एक सन्देश उनके लिये भेजा है। वह देना है।"

"तो वह सुन ले लेंगी। वह वहाँ गई हुई हैं।"

"कब से गई हैं?" प्रेमनाथ ने अपना आशय सिद्ध होते जान पूछा।

"कल गई हैं।"

प्रेमनाथ को और कुछ पूछने को नहीं था। उसको इस बात का शोक था कि वह मिलकर उनका धन्यवाद नहीं कर सका। वह वहाँ से छावनी की बैरक में चला गया। ट्रेनिंग कैम्प से तो उसको उसी दिन छुट्टी मिल गई थी जिस दिन से उसको फ्रन्ट पर जाने की आज्ञा हुई थी। वह रेजिमेंट जो पटियाला से लाहौर आ रही थी और जिसके साथ उसने फ्रांस में जाना था, छावनी में एकत्र हो रही थी। इसी कारन में वह डलहौज़ी हो आया था। उसको कुछ रुपया पेशगी भी मिल गया था, जिससे उसने अपना किट तैयार किया था। वह बिल्कुल तैयार था।

रेजिमेंट एकत्र हुई और उसके साथ उसको अगले दिन मुगलपुरा स्टेशन से बम्बई के लिये एक स्पेशल ट्रेन में सवार होना था।

कर्मों की गहन गति

१

ऐमिली डलहौजी से शान्ता को वापिस लाने के लिये गई थी। लाहौर में एक मकान पुरानी अनारकली बाजार में ले लिया गया था और यह विचार था कि शान्ता अपनी लड़की के साथ वहाँ रहेगी। जिससे स्वामी निरूपानन्द और ऐमिली की देखभाल आसानी से हो सकेगी।

शान्ता को नीचे आने की तैयारी में तीन-चार दिन लग गये। इस बार ऐमिली अपनी मोटर नहीं ले गई थी। इस कारण पठानकोट तक टांगे में आये और वहाँ से रेल के एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे में सवार हो लाहौर को चल पड़े।

गाड़ी अमृतसर स्टेशन पर दो घंटे भर ठहरी। कारण यह कि लाहौर से दो स्पेशल ट्रेनें फौजियों की आ रही थीं। एक स्पेशल ट्रेन पठानकोट की गाड़ी के एक घंटा भर पीछे आई और जिस प्लेट फार्म पर पठानकोट की गाड़ी खड़ी थी उसके सामने आकर खड़ी हो गई। दोनों के बीच साझा प्लेटफार्म था।

ऐमिली और शान्ता गाड़ी के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर भीतर लेट रही थीं। इन्द्रा सोकर जाग पड़ी थी और उसने दिल बहलाने के लिये खिड़की खोल ली और प्लेटफार्म पर खोंचे वालों को चलते-फिरते देखने लगी। जब फौजियों की गाड़ी आकर खड़ी हुई तो फौजी उतरकर प्लेटफार्म पर इधर-उधर घूमने लगे। कुछ सिख सिपाही एक खोंचेवाले के चारों ओर घेरा डाल कर खड़े हो गये और उससे मिठाई ले ले कर खाने लगे। इस बीच में खोंचे वाले ने एक सिपाही से, जो मिठाई खाकर जाने लगा था, दाम माँग लिये।

सिपाही खोंचे वाले की ओर ध्यान न कर अपने डिब्बे की ओर चल

पड़ा। खोंचेवाले ने उसकी बाह पकड़कर कहा, "सर्दार साहब, पैसे दे कर जाइये। सिपाही ने बाह छुड़ाते हुए कहा, "कैसे पैसे ?"

इस समय खोंचे के समीप खड़ों में से एक ने खोंचे को ही उलट दिया। थाली, पतीली, बर्तन, सब छन-छन करते हुए प्लेटफार्म पर लुढ़कने लगे। खोंचेवाला उस जाने वाले सिपाही को छोड़ खोंचे के समीप भूमि पर लुढ़कती मिठाई को मुंह बना देखने लगा। इस समय एक सिपाही ने उस खोंचेवाले की टोपी उछाल दी। इस पर वह समझ गया कि उसका कुछ बस नहीं चल सकता। वह चुपचाप अपने खोंचे के बर्तन और टोपी समेटने लगा।

इन्द्रा इस सब तमाशे को देख रही थी। वह उस खोंचेवाले पर बहुत ही दया अनुभव कर रही थी कि इतने में प्लेटफार्म के एक दूसरे कोने में बहुत शोर सुनाई दिया। उसने खिड़कीसे सिर बाहर निकाल कर देखना चाहा कि क्या हुआ है। दूर सिपाहियों का एक झुंड बहुत जोर-जोर से किसी बात पर हंस रहा था। इस समय प्लेटफार्म पर उपस्थित अन्य खोंचेवाले चुपचाप अपने खोंचो को उठा-उठा कर भागने लगे।

इस सब हल्ले को सुन ट्रेन के सब सिपाही प्लेटफार्म पर निकल आये। इन्द्रा को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने प्रेम को भी उन सिपाहियों में देखा है। इससे वह उठकर डिब्बे का दरवाज़ा खोल पर्जो के बल खड़ी हो देखने लगी। उसको प्रेम विस्मय में दूर खड़ा दिखाई दिया। उसने जोर से आवाज़ दी, "प्रेम भैया! प्रेम भैया!!"

प्रेम को आवाज़ पहुंची या नहीं, कहा नहीं जा सकता। हां, उसके ज़ोर-ज़ोर से पुकारने पर सिपाहियों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया और दस-बारह सिपाही डिब्बे के बाहर खड़े होकर उसकी ओर देख मुस्कराने लगे। इन्द्रा ने उनकी ओर ध्यान न देकर फिर प्रेम को आवाज दी। इस पर एक सिपाही ने कहा, "आओ न, मैं तुमको तुम्हारे प्रेम भैया के पास ले चलूं।"

इन्द्रा ने घूर कर उसकी ओर देखा, तो एक और ने जो डिब्बे के समीप ही खड़ा था उसका हाथ पकड़ खींचना चाहा। इन्द्रा की चीख निकल गई।

इन्द्रा के प्रेम को पुकारने की आवाज़ सुनकर ऐमिली की जाग खुल गई थी। परन्तु वह समझी तब ही जब इन्द्रा ने दूसरी वार प्रेम को आवाज दी। वह उठकर बाहर आ रही थी कि सिपाही ने इन्द्रा को पकड़ कर बाहर घसीटने का यत्न किया। इन्द्रा ने चीखना आरम्भ किया तो ऐमिली ने अपने तकिये के नीचे से अपना पिस्तौल निकाल लिया और उसका घोड़ा चढ़ा इन्द्रा के समीप आ खड़ी हो गई। सिपाही ने इन्द्रा का हाथ छोड़ दिया और लगभग एक सौ सिपाही इस डिब्बे के चारों ओर खड़े हो गये।

ऐमिली ने इन्द्रा को भीतर कर डिब्बे का दरवाजा बन्द कर दिया और खिड़की में से पुकारा, "आफिसर ! आफिसर !!"

इस समय तक प्रेम ने इन्द्रा को देख लिया था और वह अपने स्थान से भागता हुआ डिब्बे की ओर आया। डिब्बे के बाहर खड़ी सिपाहियों की भीड़ को चीरता हुआ डिब्बे के बाहर आ खड़ा हुआ, "क्या हुआ है इन्द्रा ?" उसने पूछा।

ऐमिली ने प्रेम को पहले देखा तो था पर उसने कभी बात नहीं की थी। उसको उसने ध्यान से देख डिब्बे का दरवाजा खोल दिया। इन्द्रा सीट पर बैठी हाथ को, जो मुचक गया था, पकड़े रो रही थी। पूर्व इसके कि वह ऐमिली को नमस्कार भी करे, उसने इन्द्रा से पूछा, "क्या हुआ है ?"

इन्द्रा ने कह दिया, "उसने मेरी बाँह पकड़कर मरोड़ी है।" और उसने एक सिख सिपाई की ओर संकेत कर दिया।

प्रेम ने बाहर निकल लपककर उसका कालर पकड़ लिया और कहा, "क्षमा माँगो अपनी बहिन से, बेशर्म न हो तो।"

सिपाही पहले तो लड़ने के लिए तैयार हो गया। पर ऐमिली ने पुन रिवाल्वर तान लिया। उसने निश्चय कर लिया था कि वह इस सिपाही

को गोली मार अपाहिज कर देगी। परन्तु इसी समय एक अंग्रेज कैप्टिन जो रेजिमेंट के साथ था वहाँ आ उपस्थित हुआ। उसने प्रेम को आज्ञा दी कि सिपाही को छोड़ दे। प्रेम छोड़ सलाम कर अटेंन्शन की हालत में आ खड़ा हो गया। इस समय ऐमिली उस कैप्टिन के समीप पहुँच कर उस सिपाही के अपराध को बताने लगी। कैप्टिन ने अंग्रेजी बोलते हुए ऐमिली को देखा तो वह पहचान गया कि यह कोई अंग्रेज औरत है। उसने पूछा, "क्या मैं आपका नाम, पता जान सकता हूं ?"

जब ऐमिली ने अपना नाम और पता बताया तो कैप्टिन ने सिपाही के अपराध के लिए क्षमा मांगी और कहा कि वह उसको दण्ड देगा। इस पर कैप्टिन ने सिपाहियों को आज्ञा दी कि अपने-अपने डिब्बे में चले जावें। सब सिपाही अपनी-अपनी गाडी की ओर घूम पड़े। प्रेम ने अंग्रेजी में अपनी बहिन और मां से मिलने की स्वीकृति मांगी। कैप्टिन ने अचम्भे में पूछा, "वट ! तुम्हारा यह मतलब है कि ये तुम्हारी मां हैं ? तुम लाहौर के डिप्टी कमिश्नर के लड़के हो ?"

"यैस सर।"

कैप्टिन ने ऐमिली को सलाम की, हाथ मिलाया और वापिस अपने डिब्बे की ओर लौट गया। प्रेमनाथ डिब्बे में अपनी मां के पास जा पहुँचा और चरण-स्पर्श कर ऐमिली के सामने खड़ा होकर कहने लगा, "मुझको आपको मां कहते हुए बहुत मान अनुभव होता है। आशा है आप हमसे नाराज नहीं होंगी ?"

ऐमिली ने उसके गाल पर हल्की-सी चपत लगाते हुए कहा, "यू क्लैवर फैलो। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे जैसे पुत्र को रखने में किसी औरत को लज्जा अनुभव हो सकती है ?"

"मैं आपसे मिलने के लिए आपकी कोठी पर गया था।"

"तो ?"

"बड़े साहब से भेंट हुई थी।"

"क्या कहते थे ?"

"कहते थे कि मां ने आप पर जादू कर रखा है। पर मम्मी, मुझको कुछ ऐसा लगता है कि उनकी हालत ठीक नहीं। कुछ ऐसी बात है जिसका उनके मन पर भारी बोझा है और वे ठीक सोच-समझ नहीं सकते।"

ऐमिली चिन्तित भाव में चुप रही। प्रेम की मां ने पूछा, "क्या बात हुई है प्रेम ! जिससे तुमने यह परिणाम निकाला है।"

"कुछ ऐसा देखा है मा, जो स्वाभाविक नहीं था। अथवा जो मानवीय के अतिरिक्त था।"

"प्रतीत होता है कि उस दिन बहुत पी गये होंगे।" ऐमिली ने अपनी चिन्ता को मिटाने के लिए कहा।

इससे न तो प्रेम को सतोष हुआ और न ही प्रेम की मां को। प्रेम ने बात बदल इन्द्रा से बात करनी प्रारम्भ करदी। तुम मुझको कभी चिट्ठी नहीं लिखतीं। अब भी यदि तुमने नहीं लिखी तो आकर तुम्हारी चोटी मरोडूंगा।

इन्द्रा ने बात बदल दी, "सुना है कि पेरिस में बहुत अच्छी वस्तुएं मिलती हैं। मेरे लिए क्या लाओगे ?"

"कुछ तो लाऊंगा ही।"

२

जब फौजियों की गाडी जाने लगी तो प्रेम ने जाने से पहले जहां अपनी मां के चरण-स्पर्श किये वहां ऐमिली के भी किये। दोनों ने आशीर्वाद दिया और प्रेम ने इन्द्रा से सिर हिलाकर नमस्ते की और भागकर अपनी गाडी में चढ़ गया। जब प्रेम की गाडी छूट गई तो शान्ता ने ऐमिली से कहा, "मुझको प्रेम के कहने से चिन्ता लग गई है।"

"कैसी ?" ऐमिली ने पूछा।

"यही कि प्रेम के पिता की तबीयत खराब है। क्या कारण हो सकता है ?"

"देखो बहिन ! मैं तुमको बताती हूँ। मनुष्य के प्रायः रोग मन की विकृत अवस्था से पैदा होते हैं। उनके मन की विकृत अवस्था तो तब से ही थी जब मेरा विवाह हुआ था। मैं अभी युवा थी, भावुकता से पूर्ण थी और स्वप्न-लोक में रहा करती थी। इस कारण उनके मन के विकार का मूल्य नहीं आंक सकी। जब मुझको लाहौर में आकर पता चला कि उनका एक विवाह पहले हो चुका है तो उनको लन्दन में मैजिस्ट्रेट के सम्मुख झूठ बोलने के अपराध में दण्ड दिलवाया जा सकता था। परन्तु मैं समझती थी कि मैं उनसे प्रेम करती हूँ और उस प्रेम की प्रेरणा यह हुई कि मैंने मिस्टर चोपड़ा को केवल क्षमा ही नहीं किया प्रत्युत उनके सुख और आनन्द का जीवन व्यतीत करने में साधन बन गई।"

"उन्होंने आपको घर से निकाल दिया। उस समय मैं इस अपराध की महानता को समझ नहीं सकी और उसमें अपने उत्तरदायित्व को आंक नहीं सकी। आप निकाली ही नहीं गईं प्रत्युत निर्धनता का जीवन व्यतीत करने को विवश की गईं। ये प्रेम और इन्द्रा बहुत अच्छी शिक्षा से विभूषित होने चाहियें थे, परन्तु मैं देखती हूं कि वह केवल मैट्रिक तक पढ़ सका और यह स्कूल में जा ही नहीं सकी। इसके होने में केवल-मात्र कारण उनके मन की विकृत अवस्था ही थी।"

"मिस्टर चोपड़ा सदैव अपने विषय में, अपने सुख और शान्ति के विषय में ही विचार करते रहे हैं। उनकी पूर्ण रुचि और शक्ति अपने अभ्युदय में ही केन्द्रित रही है। उन्होंने कभी किसी दूसरे की सुख-सुविधा की ओर ध्यान नहीं दिया। उनकी इस मनोवृत्ति का ज्ञान मुझको तब हुआ जब मैंने अपने विषय में सोचना आरम्भ किया।"

"एक दिन मेरी क्लब जाने की इच्छा नहीं थी। मैंने न की। वे नाराज हो गये और उनके मुख से निकल गया कि उनका मुझ से विवाह करने का मतलब ही क्या रहा। मेरी आंखों के सामने से पर्दा हट गया। मैं समझ गई कि प्रेम तथा प्रत्येक प्रकार की शारीरिक सुविधा मुझको इस कारण प्राप्त है कि मुझको साथ ले जाकर अर्थात् मेरी नुमाइश कर

अपना प्रयोजन सिद्ध करना है।"

"उस दिन से मैं उनकी बातों और कामों को ध्यान से देखने तथा मनन करने लगी और परिणाम अति भयकर हुआ। मुझको प्रतीत हुआ कि वे निपट स्वार्थ में रत एक क्षुद्र प्राणी हैं जिसके सम्पर्क में रहकर आत्मा का हनन ही हो सकता है।"

"फिर प्रेम के मुकद्दमे की बात आई। वे मान गये कि प्रेम के विरुद्ध कुछ विशेष प्रमाण नहीं थे, परन्तु वे प्रेम को मुक्त नहीं कर सके, केवल इसलिए कि उनकी अपनी नौकरी और ख्याति संशय में पड सकती है। उन्होंने सरकारी गवाह की उन बातों को भी प्रमाणित मान लिया, जिनकी सरकारी वकील अदालत में पुष्टि नहीं कर सका। उन्होंने प्रेम के वकील की सब युक्तियो को इसलिए अमान्य कर दिया कि विद्रोही अपनी बातों को छिपाकर रखते है और उन छिपी बातों में अनुमान प्रमाण ही मान्य करना होगा।"

"जब प्रेम को पैरोल पर छोडने का प्रश्न आया तो वह अपने ही पुत्र पर दया दिखा सकते थे, परन्तु मैं क्या कहूँ, कहते मन को क्लेश होता है, उन्होंने उसके लिए वह कुछ भी नहीं किया जो एक मजिस्ट्रेट किसी अपरिचित के लिए कर सकता है।"

"उनको तपेदिक से डर इसलिये है कि कहीं उनको बीमारी न लग जाये। ऐसी मानसिक प्रवृत्ति वाले मनुष्य का नीरोग रह सकना ही एक चमत्कार होता।"

"मै जानती हूँ कि उनकी मेधा-शक्ति क्षीण होती जाती है। उनकी युक्तियां थोथी और काम निराधार होते जाते हैं। और अब वे कुछ अधिक काल तक अपने इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त नहीं रह सकते। अंत कहां होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"हम कुछ नहीं कर सकते क्या उनके लिए?" शांता का प्रश्न था।

"हम क्यों करें। मैं इस प्रकार के प्रयास में कुछ लाभ नहीं समझती।"

शान्ता ने गंभीर भाव धारण कर कहा, "मैं एक बात पूछूं बहिन ! तुम मेरे लिए क्यों इतना कुछ करती हो ?"

"इसलिये कि तुम्हें मेरी मूर्खता के कारण हानि पहुंची है। इसलिये कि तुम्हारी सहायता करने से मेरी आत्मा को सन्तोष मिलता है। तुम्हें सहायता देनी नेकी की सहायता करनी है। उनको इसके सर्वथा विपरीत है।"

"पर मैं उनको उनके मार्ग पर चलने में सहायता देने के लिए नहीं कह रही। मैं तो उनको उनके मार्ग से निकालकर अपने मार्ग पर लाने के लिये यत्न करने की बात कह रही हूं।"

"यह प्रयत्न तो हो ही रहा है। मैंने उनका त्याग नहीं किया, जैसा उन्होंने आपका कर दिया था। मैं घर में उनके लिए प्रबन्ध में सहायता भी करती रहती हूं। परन्तु कोई सुधरता इसलिए नहीं कि उसके सुधारने वाले उपस्थित होते हैं। काल, परिस्थिति और पूर्व संस्कार इसमें सुधारकों से अधिक सहायक होते हैं।"

"इस पर भी यत्न करना मनुष्य का कर्तव्य है।"

"अब तुम ही बताओ, जब तुम उनके सम्पर्क में नहीं हो, तो कैसे तुम उनको सन्मार्ग पर लाने में सहायक हो सकती हो। मैं जो उनके साथ रहती हूं, समय-समय पर उनको बताती रहती हूं। इस पर भी दिन-प्रतिदिन मैं उनसे दूर होती जा रही हूं। ऐसा समय आ सकता है जब मेरा उनका सम्पर्क भी इसी प्रकार टूट जावे, जैसे तुम्हारा उनसे टूट चुका है।"

"मैं समझती हूं कि आपका उनसे सम्बन्ध इस कारण ढीला हुआ है कि आप मेरी सहायता कर रही हैं। मैं अब लगभग ठीक हूं। आप मुझ को छोड़कर पुनः उनसे अपना सम्बन्ध दृढ़ कर उनके जीवन पर अपना श्रेष्ठ प्रभाव डाल सकती हैं।"

"यह बात मैं पहले परीक्षा कर देख चुकी हूं। मुझको इस बात का भान कि आपको छोड़कर ठीक नहीं किया गया, रावलपिंडी में हुआ था।

वहां के म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन मियां अब्दुल सत्तार खां की चार बीवियां थीं। उनकी सबसे बड़ी बीवी मेरी सहेली बन गई थी। मैंने उसे तथा उसकी सौतों को देखकर यह अनुभव किया था कि बहुपत्नीक पति की मुख्य समस्या पत्नियों के आचार-विचार और योग्यता पर निर्भर है। मैंने पहली बार वहां यह अनुभव किया था कि मुझको या तो अपना सम्बन्ध मिस्टर चोपड़ा से तोड़ देना चाहिये था या तुमको घर से निकलने नहीं देना चाहिए था। मैंने भरसक यत्न किया कि तुमको पुनः उनके सामने लाऊं, परन्तु सफल नहीं हुई।"

"पश्चात् एक बार प्रेम को हमने जहांगीर के मकबरे में खेलते देखा। मैं उससे बहुत प्रभावित हुई थी और मैंने बहुत ही यत्न किया कि उस लड़के को घर में स्थान दिया जाये और उसकी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाये। परन्तु सब निष्फल हुआ। इसके उपरान्त जब प्रेम को चालीस रुपये की नौकरी मिली तो भी मैंने कहा कि उनका लड़का इतनी घटिया नौकरी करे, यह एक लज्जा की बात है।"

"इन सब प्रयत्नों का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि हम दोनों में खाई बढ़ती गई। अब तो यह देखना रह गया है कि इस खाई का सागर कब और कैसे बनता है। मैं सब कुछ के लिये तैयार हूं।"

"तो तुम समझती हो कि वे खाई के इस पार भी नहीं लाये जा सकते ?"

"मेरा कहना है कि उनको इस ओर आने की अथवा हमारे उस ओर जाने की अभी उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई। शायद किसी समय यह हो सके।"

लाहौर पहुंचकर शान्ता और इन्द्रा को पुरानी अनारकली वाले मकान में ठहरा दिया गया।

३

मिस्टर चोपड़ा का जीवन दिन-प्रतिदिन नीरस और लक्ष्यहीन होता जाता था। रुचि संस्कारों के आधार पर बनाई जाती है। संस्कार उस वातावरण, जिसमें कोई पलता है, अथवा जैसी शिक्षा किसीको मिलती है, के आधार पर बनते हैं।

मिस्टर अमरनाथ चोपड़ा का पिता लाहौर के उन परिवारों में से था जिनको महाराजा रणजीतसिंह के राज्य के स्तम्भ कहा जाता था। वे स्तम्भ गिरे तो सिक्ख राज्य पंजाब से समाप्त हुआ। सिक्ख राज्य के पश्चात् वे अंग्रेज़ी राज्य का आधार बन गये।

राय सुलखनमल अभी बीस वर्ष की आयु के थे, जब महाराजा रणजीतसिंह का देहान्त हुआ था। उस समय यह बात लाहौर में प्रसिद्ध हुई थी कि महाराजा को विष देकर मारा गया है। यद्यपि कोई इस विषय को कहता नहीं था, परन्तु जो सरदार अपनी मनमानी करना चाहते थे और महाराजा के कारण कर नहीं पाते थे, वे इस हत्या के करने वाले कहे जाते थे।

राय सुलखनमल के पिता नगर की खत्री बिरादरी के चौधरी थे और जब कभी भी महाराजा को धन की आवश्यकता पड़ती थी एकत्र कर दिया करते थे। उनका महाराजा के यहां भारी मान था और नगर में भारी दबदबा। महाराजा के मरने के पश्चात् नगर को सिक्खाशाही से बचाने में बहुत अंशों में उनका हाथ था, परन्तु स्थिति इतनी तीव्र गति से बिगड़ती गई कि एक के पश्चात् दूसरा सिक्ख नेता मारा जाने लगा और सिक्ख खालसा ऊधम मचाने लगे।

महाराजा दलीपसिंह की कई सर्दार हिमायत करते थे। दूसरे पक्ष के लोग यह कहते थे कि दलीपसिंह तो बच्चा है और वास्तव में उसको गद्दी पर बैठाने वाले स्वयं राज्य करना चाहते थे। राय सुलखनमल के पिता राज्य की सुव्यवस्था के लिये महाराजा शेरसिंह के सहायकों में थे और

उसके मारे जाने के पीछे महाराजा गुलाबसिंह के सहायकों में हो गये। एक रात जब वे अपनी साहुकारे की दुकान से घर जा रहे थे तो मार डाले गये। इस पर राय सुलखनमल लाहौर से भागकर कहीं छिप गया। वह अंग्रेजों के राज्य स्थापित हो जाने पर ही वापिस लौटा। जब १८५७ का सिपाही-विद्रोह हुआ तो राय सुलखनमल लाहौर में अपने पिता का कारोबार कर रहा था। उस समय उसके पास विद्रोही लोग सहायता के लिये आये थे, परन्तु उसने बता दिया कि उसके पिता की हत्या के पश्चात् उनके परिवार की अवस्था ऐसी हो गई है कि वे सहायता नहीं दे सकते।

राय सुलखनमल के तीन विवाह हुए थे। पहला विवाह सन् १८५० में किया था। उससे केवल दो लड़कियाँ थीं। उनके विवाह रायसाहब ने बड़ी धूमधाम से किये थे। दूसरा विवाह १८६० में किया था। उसमें से एक लड़का ही हुआ था और तीसरा विवाह इकसठ वर्ष की आयु में १८८० में किया था। इससे ही अमरनाथ चोपड़ा का जन्म १८८३ में हुआ था।

१८८२ में राय सुलखनमल का सम्पर्क श्री स्वामी दयानन्द से हुआ और उसके विचारों में परिवर्तन आया। परन्तु बुढ़ापे में विवाह करने के कारण पहली स्त्रियों के बच्चे बाप का मान नहीं करते थे। अमरनाथ की माँ का देहान्त १८८४ में ही हो गया था और अमरनाथ का पालन उसकी सौतेली माँ के बच्चों और नौकरों द्वारा हुआ। परिणाम यह हुआ कि अमरनाथ बचपन से ही उच्छृंखल और पिता के विचारों से भिन्न बनता गया।

शान्ता के साथ विवाह के पश्चात् तो वह गवर्नमेन्ट कालेज में भर्ती हो गया। वहाँ रईसों के लड़के और अंग्रेज प्रोफेसरों की संगत में वह सर्वथा अभारतीय बन गया। उस काल में ही सीधी-सादी धर्मनिष्ठ शान्ता से उसका झगड़ा होने लगा। विलायत जाकर तो वह योरुपियन सभ्यता से इतना चकाचौंध हुआ कि वह शान्ता को भूल गया।

वह एक दुकान की सेल्ज-गर्ल के प्रेम में उलझ गया। परन्तु किसी

प्रकार यह समाचार उसके पिता को मिल गया और वह शान्ता को लेकर विलायत जा पहुंचा। वहां जाकर डरा-धमकाकर और कुछ ले-देकर अमरनाथ की प्रेमिका से अमरनाथ को छुटकारा दिलवाया और शान्ता के एक लड़की उत्पन्न होने का साधन बनकर हिन्दुस्तान लौट आया। परन्तु रोग तो अमरनाथ की मनोवृत्ति का था। वह सर्वथा अंग्रेजी आचार-विचार अपना बैठा था और उसको अंग्रेज बीवी, जो उसके साथ क्लब, नाच-तमाशे और शराब पीने में सहयोग दे सके, के बिना जीवन रसहीन लगता था। इस कारण वह ऐमिली जान्सन, एक पढ़ी-लिखी लड़की को विवाह कर ले आया। विवाह कचहरी में हुआ था और अमरनाथ को शपथ लेकर कहना पड़ा था कि उसकी पहले कोई बीवी नहीं है।

जब अमरनाथ लाहौर में आया तो उसके पिता की आयु पचासी वर्ष की हो चुकी थी और जब शान्ता सब कुछ छोड़ अपने वस्त्र ही ले घर से निकल गई तो राय सुलखनमल का देहान्त हो गया।

इसके पश्चात् अमरनाथ के बड़े भाई ने अमरनाथ को पांच हजार रुपया और देकर उससे फारखती लिखा ली। इस प्रकार अमरनाथ अपनी अंग्रेज बीवी को ले रावलपिंडी चला गया।

अमरनाथ केवल मात्र एक ही शिक्षा ग्रहण कर चुका था और वह थी 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटैस्ट'। उन दिनों युरोपियन फिलोसफी का यही एक सार था। यह सिद्धान्त स्वार्थ का दूसरा नाम है और अमरनाथ इसका अपनी बुद्धि अनुसार अनुसरण करता हुआ अपना जीवन-निर्वाह कर रहा था। जब वह अपने स्वार्थ के अतिरिक्त किसी दूसरे की चिन्ता नहीं करता था तो उसके आस-पास भी वही लोग एकत्र होते जाते थे जो अपने स्वार्थ को सर्वोपरि मानते थे। उसके साथ सम्पर्क रखने वालों में से जिसने भी परस्वार्थ की ओर ध्यान दिया वह उसकी दृष्टि में पतित हो गया।

यही अवस्था ऐमिली की हुई। रावलपिंडी में तो ऐमिली उसके प्रत्येक प्रकार के व्यवहार में साथ देती रही। क्लब में जाती, थिएटर और

सिनेमा में उसका साथ देती । सभा-समाजों में, जहां डिप्टी-कमिश्नर जाता, वह उसके साथ रहती। दोनों रात सपर के समय शराब पीते और प्रत्येक प्रकार के सुख आराम और वासना के कार्य में सम्मिलित होते थे, उन दिनों यह समझा जाता था कि बड़े साहब की बीबी साहब की बहुत ही वफादार और प्रिय है।

ऐमिली के विचारों में अन्तर आने लगा तो वह विचार करने लगी कि इस सब भाग-दौड़ का प्रयोजन क्या है? प्रात उठ बिस्तर पर ही चाय पीकर स्नान आदि से निवृत्त हो ब्रेक-फास्ट कर दिन भर का काम आरम्भ हो जाता था। जहां साहब से मिलने वाले आते थे वहा श्रीमती जी के पास भी लोगों का आना-जाना आरम्भ हो जाता था। कहीं सभा हो रही है तो कहीं राग-रग। कभी किसी अफसर की बीबी आई है तो कभी दूसरे अफसर के घर जाना है। फिर लंच का समय हो जाता था। उसके पश्चात् फिर किसी सभा-सोसायटी का डेपुटेशन आ जाता था। साहब कचहरी से लौटते तो क्लब जाना होता था। पश्चात् घर पर डिनर और फिर कहीं नाच, राग, रग, तमाशे आदि पर। प्राय. रात के बारह-एक बजे घर आकर सोना और प्रात फिर वही दिनचर्या चल पड़ती थी।

तपोवन में जाने के पश्चात् पहली बार अपने जीवन पर विचार करने की प्रेरणा ऐमिली को हुई। तब से ही पति-पत्नी में पृथकत्व का सूत्रपात हुआ। यह पृथकत्व गुजरावाला में और भी बढ़ा जब एक साधु से ऐमिली की भेंट हुई और उसने बताया कि ससार के अतिरिक्त भी कुछ है। इस ससार से बाहिर क्या है? यह स्वामी निरूपानन्द ने समझाया और वह समझ सकी। इसके पश्चात् प्रत्येक घटना ने पति-पत्नी में खाई को बढ़ा और फिर बढ़ा ही किया। दोनों का विचार करने का ढग भिन्न-भिन्न हो गया।

४

ऐमिली उलहौजी से लौटी तो मिस्टर चोपड़ा कचहरी गये हुए थे। उसने स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन किया और अपने कमरे में जा लेट रही। वह सोच रही थी कि इस प्रकार के जीवन का अन्त कहां होगा। उसके मन में शान्ता का यह कहना बार-बार घूम रहा था कि क्या यह खाई पार नहीं की जा सकती। यदि उसके बस की बात होती तो यह भेदभाव मिट सकता था, परन्तु भेदभाव में सदा दो पक्ष होते हैं और दोनों पक्ष एक उद्देश्य को लक्ष्य बनाकर कार्य कर सकेंगे, कहना कठिन था। इस पर भी वह यत्न करने के लिए उद्यत थी।

सायंकाल जब चोपड़ा कचहरी से लौटा तो चपरासी ने कहा, "मेम साहबा आई हैं।"

"उनको इत्तला करो कि मैं आ गया हूँ।"

चपरासी कहने के लिए कमरे से जाने लगा तो मिस्टर चोपड़ा ने वापिस बुलाया और कहा, "उनको कहना यहां नहीं आयें। मैं वहां आता हूँ।"

चपरासी यह सुन जाने लगा तो बोले, "अच्छा ठहरो, मैं स्वयं जाऊंगा।"

चपरासी बाहर बरामदे में चला गया। मिस्टर चोपड़ा अपने कपड़े बदलने के लिए दूसरे कमरे में चला गया। वह अभी कपड़े बदल ही रहा था कि दरवाजे के बाहर से ऐमिली ने आवाज दी, "मैं आ सकती हूं क्या?"

"यहां? नहीं!" इतना कह मिस्टर चोपड़ा विचार करने लगा कि उसने उसको बुलाया था और उससे बात स्पष्ट करना चाहता था। अब वह आई है तो बात कर ही ले। परन्तु उसके मस्तिष्क में घूमा हुआ था कि ऐमिली तपेदिक के कीटाणुओं से भर रही है और उनसे छूत लग जाने की सम्भावना है। इस कारण वह विचार कर रहा था कि उससे बात

करे अथवा न ।

ऐमिली ने उसको चुप देख कहा, "देखिए, मैं छः मास से शान्ता जी से मिल रही हूं । मुझको तो रोग नहीं लगा । फिर आपको रोग क्यों लग जाएगा ?"

"यह बात नहीं । हां, मैं तुम से लान में बैठ बात करूंगा । तुम वहां चलो ।"

ऐमिली मुस्काराई और कोठी के बाहर लान में चली गई । वहां पहुंच चपरासी को कह कुर्सियां लगवा दीं । मिस्टर चोपड़ा कपड़े बदल वहां आ गया । बैरा ने चाय लगा दी और पति-पत्नी दोनों पीने लगे । ऐमिली ने बताया, "शान्ता अब लगभग ठीक है । उसको ज्वर नहीं हो रहा । खांसी भी अब नहीं होती । दुर्बलता पहले से कम है और वह लाहौर आ गई है ।"

'कहां ठहरी है ?"

"पुरानी अनारकली बाजार में एक मकान ले लिया है । वहां चली गई है ।"

"तुम उसके साथ साथ आई हो ?"

"और उसका था ही कौन, जो उसके साथ आता ?"

"उसका भाई जो था ।"

"वह बेचारा गरीब अपनी रोटी कमाये या बहन की सेवा-सुश्रूषा करे ? वह शाहदरा में है ।'

"तो यहां उसके पास कौन रहेगा ?"

"एक नौकर रख देना चाहती हूं । उसका लड़का था, पर भर्ती करने वालों ने जबरदस्ती फौज में भर्ती कर लिया है ।"

"वह आया था । मैंने उसको कोठी से निकाल दिया था ।"

"वह बता रहा था और आपकी मानसिक अवस्था पर चिन्ता प्रकट कर रहा था ।"

"वह मेरे लिए क्यों चिन्ता करेगा ? सब झूठ और फरेब है । मैं

इस भुलावे में नहीं आ सकता। मैंने उनके लिए कुछ किया ही नहीं और मैं उनसे कुछ आशा नहीं रखता।"

"पर देखिये, यह आपको अपना पिता जानता है। इससे एक स्नेह-मय पुत्र होने से आपके लिए चिन्ता करता है।"

"धनी आदमियों के लिए सब ऐसे ही झूठ बोला करते हैं। तुम्हारे पीछे मेरे बड़े भाई का छोटा लड़का शौकत आया था। उसका बाप और बड़ा भाई जूआ खिलाते हुए पकड़ लिए गये हैं। वह चाहता था कि मैं उनको छुड़ा दूं। मैंने उससे कहा, "बच्चू, मुझको लाहौर में आये छः-सात वर्ष हो चुके हैं, अब तक तुम कहां थे? कभी मिलने नहीं आये?" तो कहने लगा, "चाचा जी! पहले आपकी आवश्यकता नहीं पड़ी। अब पुलिस वालों ने अकारण फंसा लिया है।"

"ठीक तो कहता था।" ऐमिली ने बीच में टोक कर कहा, "हमने भी तो उनको कभी नहीं बुलाया। यहां हम सैकड़ों दावतें कर चुके हैं, आपने एक बार भी उनकी सुध नहीं ली।"

"मेरे साथ उन्होंने भारी धोखा किया है। केवल पांच हज़ार देकर फारखती लिखवा ली थी।"

"आप इतने पढ़े-लिखे और कानून के जानने वाले होते हुए भी जब उनके जाल में फंस गये, तो फिर गिला करने की क्या आवश्यकता है?"

"तो तुम चाहती हो कि उन जुआरियों को छुड़ा दूं?"

"आप अपने निर्दोष पुत्र को नहीं छोड़ सके, तो उनको क्या छुड़ाएगा? जैसा मन आये करो। मैं तो यह कहना चाहती हूं कि अब लाला ठीक है। लड़का सिपाही होकर सरकार की वफादारी बजा रहा है। लड़की विवाह के योग्य हो गई है। अब आप उनको अपने घर में रख लीजिये।"

"उनको घर रख लूं? यह कैसे हो सकता है? मैं तुमको भी कुछ दिनों के लिए स्विट्जरलैंड को सैर के लिए भेजना चाहता हूं जिससे तुम्हारे भीतर से तपेदिक के कीटाणु निकल सकें और तुम नरीन का गी

घर में लाकर रखना चाहती हो। यह नहीं होगा। फिर मेरे और उनके 'सोशल स्टेटस' में इतना अन्तर पड गया है कि यह असम्भव है।"

"यूं तो यह विवाह ही अनुचित हुआ था। पिताजी सत्तर-बहत्तर के हो गये थे। उनके दिमाग में न जाने क्या सूझा कि एक निर्धन की लडकी को लाहौर के एक रईसजादे से विवाह दिया। मैं सर्वथा अनजान था। बिना भावी जीवन की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिये रहने लगा, परन्तु ज्यूं ही मुझको पता चला कि मैं क्या कुछ बनने वाला हूं, मैंने दूसरा विवाह करने का निश्चय कर लिया।"

"आपके पिताजी ने भूल की, उसका फल आपने उस नि सहाय, निर्दोष अबला को क्या पर्याप्त नहीं दे दिया?"

"पर मैं पूछता हूं ऐमिली! मैंने तुमसे विवाह इसलिये किया था कि इस वैभवशाली जीवन में तुमको सहभोक्ता बनाऊंगा। तुमको न जाने क्या हो गया है कि स्वय यह भाग-दौड़कर कष्ट भोग रही हो और मुझ को भी उस आनन्द से वचित कर रही हो जिसके मै स्वप्न देखा करता था।"

"यह तो मैं जानती नहीं कि आप कैसे स्वप्न देखा करते थे, पर यह जानती हूं कि जब तक आपके साथ सहभोगी बनी रही अपने जीवन को निस्सार, निरर्थक और अनुपयोगी बनाए रही। ज्यूं ही मुझको प्रतीत हुआ कि कोई भी किया हुआ कर्म निष्फल नहीं जाता और मनुष्य की आत्मा पर एक लकीर छोडता जाता है तो मैं कांप उठी। मै उन लकीरों को जो आपके साथ रहकर मैंने अपनी आत्मा पर बनाई थीं, मिटाने का यत्न करने लगी। उनके कालेपन से मेरा हृदय कांप उठता है।"

"बहुत पाप किए हैं तुमने मेरे साथ रहते हुए?"

"नि सन्देह! इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ अथवा अनाचार में खोना, पाप नहीं है क्या?"

चोपडा हंस पडा। उसने चाय समाप्त कर ली थी। ऐमिली अभी पी रही थी। चोपडा नैपकिन से हाथ पोंछता हुआ कहने लगा, "तो तुम

बहुत पापिन हो । मुझको भय है कि कहीं मेरी नौका में पत्थर रूप न बन जाओ ।"

ऐमिली भी मुस्कराई और बोली, "मन के भावों के दूषित हो जाने का यही परिणाम है। इससे ही लोग रात को दिन और दिन को रात समझने लगते हैं ।"

"देखो ! मैं तुमसे यह कहता हूँ कि तुम दो-चार मास के लिए स्विटज़रलैंड जाने का विचार कर लो । मैं तुमको खर्चे के दस हज़ार रुपये दे सकता हूं ।"

"युद्ध दस-पांच दिन में समाप्त होने वाला है। युद्ध समाप्त होते ही तुम्हारे लिये टिकट और कोठी का प्रबन्ध कर दूंगा। छोड़ो इन तपेदिक वालों की संगत । मैं भी छुट्टी का प्रबन्ध कर रहा हूं । युद्ध की समाप्ति पर छुट्टी मिलेगी ही । जब तक तुम इस छूत से रिक्त होवोगी । मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा । हम वहां आनन्द से एक वर्ष तक रह सकेंगे ।"

इतना कह मिस्टर चोपड़ा उठ खड़ा हुआ और बोला, "अब मैं क्लब में जा रहा हूं । आशा करता हूं कि तुम दो दिन में अपना निर्णय बता दोगी । मैं पासपोर्ट बनवा रखूंगा और युद्ध समाप्त होते ही तुमको भेज सकूंगा ।"

५

स्विटज़रलैंड जाने का और वहां पर दस हज़ार रुपया व्यय करने का सुभीता भारी प्रलोभन था। ऐमिली इस प्रस्ताव से गम्भीर विचार में पड़ गई। उस रात उसको नींद नहीं आई। एक ओर तो वह समझती थी कि उसको बाहर भेजने की योजना मिस्टर चोपड़ा निजी स्वार्थवश कर रहे हैं और इसमें उसको शान्ता से पृथक् करने का प्रायोजन है। साथ ही वह यह विचार करती थी कि शान्ता को जो भी वह आर्थिक सहायता दे रही थी फिर भी दे सकेगी। सबसे भारी प्रलोभन यह था कि शायद वह मिस्टर चोपड़ा के और अपने भीतर खाई को इस प्रकार मिटा सकेगी।

इस प्रकार रात भर वह अपने देश से बाहर जाने के आयोजन पर विचार करती रही। अगले दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो वह ब्रेकफास्ट के लिये डाईनिंग हाल में गई तो मिस्टर चोपड़ा ने पूछा, "क्या विचार किया है तुमने ?"

"मैं यह सोचती हूँ कि मैं आपके साथ ही चलूंगी। पहले अकेली जाकर क्या करूंगी ? अकेली जाऊंगी तब भी लगभग उतना ही व्यय होगा जितना दोनों के इकट्ठा जाने से। आप कहते थे कि युद्ध बन्द होने वाला है ?"

"हाँ ! जर्मन फौजों का मोरेल गिर रहा है। वे अब धकेलकर बेल-जियम की सरहद पर ले जाई जा चुकी हैं। यह बात भी चल रही है कि जर्मन के कुछ नागरिकों ने अमेरिका के नागरिकों को 'ट्रूस टर्म्स' बन-वाने के लिये लिखा है और प्रेजिडेन्ट विल्सन ने सब मित्र-राष्ट्रों से इस विषय में बातचीत की है।"

"कब तक बात परिपक्व होने की सम्भावना है ?"

"यदि थोड़ी अकड़कर बात की गई तो अस्थायी शान्ति में कुछ देर हो सकती है, परन्तु वास्तविक शान्ति अधिक चिरस्थायी होगी।"

"यदि सब बात इतनी जल्दी होने वाली है तो फिर मेरे अकेली जाने से क्या लाभ है ?"

"तुम समझती नहीं ! तुम्हारे शरीर में जो तपेदिक के कीटाणु घुस गये हैं उनके निकलने के लिये कुछ समय भी तो चाहिए।"

"वह तो यहाँ भी निकल जाएंगे। अब मैं डलहौजी तो जाऊंगी नहीं।"

"पर यहाँ रहती हुई तुम शान्ता से मिलने तो जाओगी ही ?"

"वैसे तो हम लाहौर में रहते हैं, जिसमें सहस्रों तपेदिक के रोगी रहते हैं।"

"हम किसी के घर थोड़े ही जाते हैं ?"

"और जो लोग यहाँ और कचहरी में मिलने आते हैं और आपसे

हाथ मिलाते हैं, उनके विषय में कौन कह सकता है कि किसी रोगी से मिलकर नहीं आये ?"

"कुछ भी हो, तुमको पहले जाना ही होगा।"

इससे ऐमिली को सन्देह हो गया कि दाल में कुछ काला है। वह चुप कर रही। ब्रेकफास्ट समाप्त हुआ तो मिस्टर चोपड़ा लोगों से मिलने के लिये कोठी के ड्राइंग-रूम में चला गया। ऐमिली का विचार बच्चों को मिलने के लिये स्कूल जाने का हो रहा था। इस कारण वह अपने कमरे में कपड़े बदलने के लिये गई। वहां चपरासी तश्तरी में रखी हुई एक चिट्ठी लाया।

ऐमिली ने चिट्ठी उठाकर खोली और पढ़ी। यह बच्चों के स्कूल के वार्डन की लिखी हुई थी। इसमें लिखा था,

"डीयर मिसेज़ चोपड़ा,

"मुझको अभी आपके पति मिस्टर चोपड़ा का एक पत्र मिला है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि आप बीमार हैं और मानसिक विकार से पीड़ित हैं। आप शीघ्र ही अपनी चिकित्सा के लिये स्विटज़रलैंड जाने वाली हैं। इस कारण आप बच्चों को देखने आएंगी। इस पर उन्होंने आज्ञा दी है कि आपको उनकी उपस्थिति के बिना बच्चों से मिलने न दिया जाये।"

"यदि आप आयेंगी तो आपको बच्चों के सामने न करना अति कठिन है। इस कारण पत्र लिखकर पहले ही सूचना दे रहा हूँ कि आप अकेले आने का कष्ट न करें।"

इस पत्र को पढ़कर ऐमिली सन्न रह गई। उसको कुछ ऐसा भास हुआ कि स्विटज़रलैंड भेज यह आदमी मुझको पागल सिद्ध करना चाहता है और शायद वहां किसी पागलखाने में भर्ती करवा देगा।

उसने एक पत्र स्कूल के वार्डन को लिखा। उसमें उसने लिखा, "मेरी इच्छा बच्चों से मिलने आने की थी। अब से पहले बच्चों को खुले लान में मिल लिया करती थी। अब मेरे लिये इस सुख-प्राप्ति की मनाई कर

दी गई है। मैं आपको किसी कठिनाई में नहीं डालना चाहती। इस कारण अब अकेली नहीं आऊँगी।"

उसके मन में सन्देह करने वाली एक और बात हो गई। सदा से विपरीत उस सायंकाल मिस्टर चोपड़ा ने ऐमिली से कहा, "तुम बच्चों को मिलने नहीं चलोगी ?"

"क्यों ?"

"मैं मिलने जा रहा हूँ।"

ऐमिली के मन में एक बात सूझी। उसने कहा, "मुझको आज काम है। मैं स्वामीजी से मिलने जा रही हूँ। आप आज मिल आइये। मैं कल मिल आऊँगी।"

"कल किस समय जाओगी ?"

"क्यों, क्या बात है ?"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलने का यत्न करूँगा।"

"मैं तो कल दोपहर के समय, जब स्कूल में विश्रान्ति का समय होता है, जाऊँगी।"

"तो तुम मुझको कचहरी से अपनी मोटर में लेते जाना।"

"पर आप तो अभी जा रहे थे न ?"

"नहीं, तुम्हारे साथ ही जाऊँगा।"

"पर मैं आपके साथ नहीं जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"मेरे तपेदिक के कीटाणु आपके अन्दर घुस जाएँगे।"

"साथ-साथ खुली हवा में चलने-फिरने से कुछ नहीं होता।"

"तो स्विट्ज़रलैंड में खुली हवा नहीं है क्या ? देखिये माई डीयर हज़बैंड ! मैं आपके साथ नहीं जाऊँगी। इसका कारण अपने मन से पूछ लीजिये। आपने बच्चों के होस्टल के वार्डन को कुछ लिखा है या नहीं ? मैं आज गई थी और वहाँ से बैरंग वापिस कर दी गई हूँ।"

ऐमिली ने वार्डन से लिखी चिट्ठी की बात नहीं बताई। इस कारण

बात कुछ बदलकर कही थी। इस पर मिस्टर चोपड़ा ने झेंपते हुए कहा, "तुम अकेली क्यों गई थी ?"

"इस कारण कि वास्तव में मैं पागल नहीं हूं।"

इससे अपनी लज्जा छिपाने के लिये अथवा नक़ली क्रोध दिखाने के लिये, मिस्टर चोपड़ा उठकर बाहर निकल गया। ऐमिली समझ गई कि अपनी झेंप मिटाने के लिये वह चला गया है। अब वह सोच रही थी, क्या बच्चों के लिये कमिश्नर और गवर्नर से मिलकर लाहौर के डिप्टी-कमिश्नर की शिकायत करे। चिरकाल तक वह सोचती रही। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि पहले स्वामीजी से बातचीत करे। इससे विचार न होते हुए भी वह स्वामी निश्चलानन्द के आश्रम में पहुंच गई।

स्वामीजी अपने कमरे में बैठे हुए मिलने के लिये आये हुए लोगों से वार्तालाप कर रहे थे। ऐमिली भी सब के पीछे जा बैठी। सब के चले जाने के पश्चात् एकान्त हो गया तो बात होने लगी।

"शान्ता आ गई है ?"

"हां महाराज! अनारकली वाले मकान में ठहरी है। अब आप एक दिन चलकर देख लीजिये तो उसको चलने-फिरने की स्वीकृति दी जाये।"

"एक दिन चलूंगा। और···?"

'साहब मुझको स्विटज़रलैंड भेजने की योजना बना रहे हैं।"

"क्यों ?'

"पूर्ण बात तो बताई नहीं जा सकती। हां, वे यहां यह घोषित करते प्रतीत होते हैं कि मेरा मस्तिष्क खराब हो गया है।"

इतना बताकर ऐमिली ने वार्डन का पत्र और उसके पश्चात् मिस्टर चोपड़ा से हुई वार्तालाप सुना दी। इस पर स्वामीजी ने कहा, "बात तो बहुत गम्भीर हो गई है। इस पर भी मेरा तो मार्ग त्याग का है। नहीं मिलने दिया तो नहीं सही। अपनी आत्मोन्नति में संलग्न रहना चाहिये। यह पुत्र, पति, लड़की, माता सब इस संसार से बांधने वाले हैं।"

"तो क्या किया जाये ?"

"निरासक्ति, निर्लेपता अथवा निस्पृहता। इस संसार में सुख से रहने का यही उपाय है।"

"इससे तो किसी दूसरे की भलाई करने में भी अरुचि हो जायेगी।"

"मेरे कहने का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। कर्म किये बिना तो रहा नहीं जा सकता। निर्लिप्त होकर कर्म करने से सर्वेव वह कर्म किया जा सकेगा जिसके लिये आत्मा की प्रेरणा होगी। आत्मा यदि निर्मल होगी तो कल्याणकारी कार्य होंगे ही।"

"देखो देवी ! मै इस विषय में केवल इतनी ही सम्मति दे सकता हूँ कि अपना कर्तव्य बिना इस बात का विचार किये कि दूसरा क्या कर रहा है, पालन करते रहना चाहिये।"

"यदि दूसरा धर्म-कार्य में भी बाधा डाले तो ?"

"धर्म को बिना छोड़े, कार्य करता रहे, और बाधा उपस्थित होने पर बाधा का विरोध करे। विरोध की तीव्रता अपने पर सहन करे, न कि दूसरे पर उसका प्रतिकार करे।"

"यदि यही बात है तो भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध कर कौरवों की हत्या करने के लिये क्यों कहा था ?"

"उद्देश्य हत्या करना नहीं था। उद्देश्य धर्म कार्य करते रहने का था। उसमें कौरवों ने बाधा डाली तो युद्ध हो गया। युद्ध में कौन मर गया अथवा कौन जीता रहा, विचारणीय विषय नहीं। विचारणीय विषय तो यह है कि युद्ध में धर्म की जय हुई। नास्तिकता, आर्थिकता तथा भौतिकता की पराजय हुई।"

"यही बात एक सीमित क्षेत्र में तुम्हारे साथ भी चल रही है। तुम यह धर्म समझती हो कि शान्ता की सहायता की जाये। श्रीमान् इसमें बाधा डालते हैं। यदि तो तुम समझ जाओ कि सहायता करनी उचित नहीं तो झगड़ा ही नहीं रहता। तुम्हारे इस सहायता करने की आवश्यकता समझने की अवस्था में ही तो झगड़ा हो गया है। तो झगड़े के

परिणामों की ओर ध्यान न देकर सहायता जारी रखो। उस झगड़े में किसको सुख मिलता है और किसको हानि पहुँचती है, यह विचारणीय बात नहीं है। विचारणीय बात यह है कि सहायता मिल रही है या नहीं।"

ऐमिली इस विवेचना से गम्भीर विचार में पड़ गई। इसी विचार में लीन वह घर लौट आई।

६

घर पर मिस्टर चोपड़ा ने कुछ मेहमान खाने पर बुलाये हुए थे। ऐसी अवस्था में मिसेज़ चोपड़ा नियमानुकूल पृथक् खाना खाया करती थी। मिस्टर चोपडा के मेहमान प्रायः शराब पीने वाले और जूआ खेलने वाले होते थे। इस कारण न तो वह पसन्द करता था कि ऐमिली वहाँ उपस्थित हो और न ही ऐमिली ने ऐसे भोजों में सम्मिलित होने की कभी रुचि प्रकट की थी।

आज सदा से भिन्न मिस्टर चोपड़ा ऐमिली के पास आया और कहने लगा, "कमिश्नर महोदय, उनकी बीवी और कुछ अन्य पुरुष और स्त्रियाँ रात के खाने पर आ रही हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम भी वहाँ उपस्थित रहो।"

"मुझको कुछ आपत्ति नहीं है, परन्तु यदि मेरे विषय में कुछ ऐसी बात हुई जैसी स्कूल होस्टल के वार्डन से की है, तो मैं उसका प्रतिशोध करना अपना कर्तव्य समझूंगी।"

"कैसी बात ? मैं कुछ नहीं समझता !"

"आप समझें या न समझें। मैंने आपको सचेत कर दिया है।"

"तुम आज कुछ नर्वस हुई प्रतीत होती हो। मैं कहता हूँ घबराओ नहीं।"

ऐमिली चुप रही। भोजन के समय से पूर्व वह डाइनिंग हाल में पहुँच गई और मेहमानों के स्वागत के लिए द्वार पर खड़ी हो गई। मिस्टर

चोपड़ा उसके साथ खड़े थे।

लगभग बीस लोग आमन्त्रित थे। ये नगर के प्रतिष्ठित लोग और उनकी स्त्रियां थीं। सब लोग आये और उनका स्वागत वैसे ही किया गया जैसे होना चाहिए था। केवल कमिश्नर साहब थे, जिनके व्यवहार में ऐमिली को कुछ भिन्नता प्रतीत हुई। जब वह कमिश्नर की बीवी का स्वागत कर रही थी, कमिश्नर चोपड़ा से कह रहे थे, "मैं आपको मिसेज़ के उपस्थित होने पर आपको कांग्रेचुलेट करता हूँ।"

मिसेज़ के उपस्थित के शब्द को ऐमिली ने सुन लिया था। इससे वह सतर्क हो गई। कमिश्नर की बीवी ने भी कहा, "मुझको बहुत प्रसन्नता हुई है आपको अपने स्वागत के लिए खड़ा देख।"

"तो आप आशा नहीं करती थीं?" इतना कह ऐमिली कमिश्नर की बीवी को कमरे के भीतर उसके लिए उचित स्थान पर ले चली। उसने ऐमिली को बहुत ध्यान से देखकर कहा, "आशा तो करते थे, परंतु आशा विश्वास में अन्तर है न?"

"मैं समझती हूँ कि अविश्वास करने में कोई कारण नहीं था।"

इस समय कमिश्नर और उनकी बीवी बैठ गये। कमिश्नर के दूसरी ओर मिस्टर चोपड़ा और कमिश्नर की बीवी के समीप मिसेज़ चोपड़ा बैठ गई। अन्य मेहमान भी बैठ गये। चोपड़ा में यह गुण तो था कि ऐसे अवसरों पर वार्तों में मनोरञ्जन ले आए।

ऐमिली ने अपने विषय में बात चलने से रोकने का भरसक यत्न किया। वह यह तो समझ गई थी कि मिस्टर चोपड़ा ने गलत बात उसके विषय में प्रचारित कर रखी है। इस पर भी वह अपने व्यवहार को ऐसे बनाये हुए थी जिससे बात इस विषय पर चल ही न सके।

परन्तु बात रुक नहीं सकी। दावत से प्रसन्न हो कमिश्नर महोदय ने मिस्टर चोपड़ा को धन्यवाद दिया और अन्त में कहा, "होप मिसेज़ चोपड़ा विल एवर रिमेन सो चीयरफुल ऐंड प्लज़न्ट, एज़ टूनाईट।"

ऐमिली ने घूरकर मिस्टर चोपड़ा की ओर देखा तो चोपड़ा की आँखें

झुक गई। दावत से उठ सब लोग वाहर आने लगे तो ऐमिली ने कमिश्नर की वीवी से पूछा, "आपको मेरे विषय में कुछ खास बात वताई गई प्रतीत होती है ?"

"नहीं ! नहीं ! कुछ नहीं ! आपके इतने काल तक कभी क्लव में न आने पर मिस्टर चोपडा ने कहा था कि आपकी तवियत कुछ ठीक नहीं रहती।"

ऐमिली सब समझ गई। वह क्रोध से भर गई थी और मिस्टर चोपडा के इस झूठी कथा का भंडा फोडने वाली थी। परन्तु स्वामी निरूपानन्द के कहने को स्मरण कर दातों तले होंठ ववाकर चुप कर रही। इस पर कमिश्नर की वीवी ने कह दिया, "आप स्विटजरलेंड भी तो जा रही हे।"

"यह आपको किसने कहा है ?"

"नहीं ! कुछ नहीं ! आप चिन्ता न करें। सब ठीक हो जाएगा। वहां बर्न में एक वहुत आरामदेह सैनोटोरियम है। कुछ देर तक वहां रहने से आपको आराम मिलेगा।"

"परन्तु मैं तो वहां नहीं जा रही।"

"हानि क्या है वहां जाने में ?"

"पर मैं तो विचारती हूँ कि वहां जाने से लाभ क्या होगा ?"

"सव रोगी ऐसी ही वात करते हे। खैर ठीक है। गुड नाईट।"

इतना कहकर कमिश्नर की वीवी अपने पति के साथ मोटर में वैठ गई और मोटर चल दी। इसके पश्चात् अन्य मेहमान भी विदा हो गये। जव चोपड़ा और ऐमिली वापिस ड्राँयिग रूम में आये तो चोपड़ा खिलखिला कर हँस पड़ा। ऐमिली ने पूछा, "क्या हुआ है ?"

"जो मैं समझता था और अपने अफसरों तथा मित्रों से कह रहा था, वह तुमने आज सिद्ध कर दिया है। तुम्हारा मस्तिष्क विगड़ गया है। यदि तुमने स्विटजरलैंड जाने का विरोध किया तो मैं तुमको पागलखाने में डलवा दूंगा।"

अनायास ही ऐमिली के मुख से निकल गया, "रास्कल !"

चोपड़ा फिर हँस पड़ा। ऐमिली अपने कमरे में चली गई।

रात भर वह स्वामी जी के कथन और अपने पति की योजना, जो अब लगभग स्पष्ट हो चुकी थी, पर विचार करती रही। एक बात उसके मन में समा गई थी कि अब इस आदमी के साथ रहना असम्भव हो गया है। वह इतनी विकृत मनोवृत्ति का है कि किसी समय भी कोई अनिष्ट कर सकता है।

उसने भी अपने मन में एक योजना बना ली। प्रातः जब उठी तो वह मन में यह बात निश्चय कर चुकी थी। युद्ध छिड़ गया है। उसने यह समझ लिया था कि युद्ध का विषय है विषय-वासना अथवा आत्मोन्नति। नाच-रंग, शराब, जूआ अथवा त्याग, सेवा और सादगी।"

इतना निश्चय हो जाने पर जो बात अनिश्चित रह गई थी वह युद्ध का ढंग था। इस पर वह निश्चय नहीं कर सकी थी। इस विषय में वह स्वामी जी से राय नहीं लेना चाहती थी। उसको ऐसा भास हो रहा था कि इस युद्ध में नीति से काम लेना पड़ेगा। इस नीति को कोई धोखा भी कह सकता है, इस कारण स्वामी जी से इसकी स्वीकृति लेना उचित प्रतीत नहीं हुआ।

ब्रेकफास्ट के समय मिस्टर चोपड़ा ने देखा कि ऐमिली गम्भीर और प्रसन्न प्रतीत हो रही है। उसकी आँखों में वह चमक है जो पहले कभी प्रतीत नहीं हुई। शायद विलायत में जब उनके भी कोर्टशिप चल रही थी, ऐसी द्युति उसकी आँखों में थी। चोपड़ा को इस परिवर्तन से प्रसन्नता प्रतीत हुई। खाते हुए उसने पूछा, "मैं समझता हूँ कि तुमको योरुप का जलवायु यहाँ से अधिक अनुकूल बैठेगा।"

"यह तो है ही। मैं इग्लैंड की रहने वाली हूँ। बचपन में मैं अपनी मौसी के घर रही हूँ और वह रोम में रहती थी। इस कारण वहाँ जाने से मन प्रसन्न होगा और स्वास्थ्य सुधरेगा।"

"तो जाने के लिए अपना किट तैयार कर लो।"

"आज से करूँगी। पर रुपया तो व्यय होगा ही।"

"तो तुम्हारा रुपया क्या हुआ ?"

"सब व्यय हो गया है।"

"यही तो पागलपन है।"

"यह तो हो गया। आज आप एक हज़ार रुपये का चैक लिख दें तो तैयारी आरम्भ हो जाएगी।"

"तो तुम सत्य ही जा रही हो ?"

"आप मुझको भेज रहे हैं न ? मेरे जाने की तो बात ही नहीं उठती।"

मिस्टर चोपड़ा ने एक हज़ार का चेक लिख दिया।

७

शान्ता की भाभी उसके पास लाहौर में रहती थी। घर का सब काम इन्द्रा कर लेती थी। शान्ता प्रायः आराम करती थी। खर्चा ऐमिली दे रही थी। प्रेमनाथ का तीन सौ रुपया ऐमिली ने व्यय होने नहीं दिया था।

शान्ता यद्यपि शारीरिक स्वास्थ्य लाभ कर रही थी तो भी मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो रही थी। सबसे बड़ी बात जिसकी उसको चिन्ता थी वह इन्द्रा के विवाह की थी। इसके पश्चात् ऐमिली और मिस्टर चोपड़ा के सम्बन्ध में विषमता भी अपना प्रभाव उत्पन्न कर रही थी। उसका भाई अथवा भान्जा ज्योति प्रायः नित्य समाचार लेने आते रहते थे। उनके घर की अवस्था भी अच्छी नहीं थी।

एक दिन इन्द्रा का मामा आया तो उसने बताया, "दीनानाथ कई बार दुकान पर तुम्हारे स्वास्थ्य की बात पूछ गया है। आज वह पता पूछता था।"

"वह मिलना चाहता है क्या ?"

"हां।"

"तो बता दो, क्या हानि है ?"

"अगले दिन दीनानाथ वहाँ आ गया। दीनानाथ ने चरण-स्पर्श किये और नमस्कार कही। प्रेमनाथ की मा ने कहा, "तो तुम भी भर्ती हो गये हो ?"

"हाँ ! मा जी ! प्रेम ने आपको बताया नहीं क्या ?"

"नहीं ! उसने केवल यह कहा था कि तुम भली भाँति हो।"

"माँ जी ! आपसे मिलने की इच्छा तो बहुत समय से थी, परन्तु कई कारण ऐसे बनते रहे कि इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। जिस दिन से पता चला कि आप लाहौर में आ गई हैं मिलने का प्रयत्न कर रहा था।"

"अपनी बहू की बात सुनाओ ?"

"ठीक है ! अब उसके दो बच्चे हैं। बड़ा लड़का है और छोटी लड़की।"

"निर्वाह का क्या प्रबन्ध है ?"

"मैंने कुछ रुपया दिल्ली में पैदा किया है। वह मैं उसके पास छोड़ आया हूँ।"

"माता-पिता कहाँ हैं ?"

"वे दोनों लाहौर में ही हैं। उनके लिए निर्वाह का प्रबन्ध भी हो गया है। मैं आप से मोहनलाल रोड की दुकान के विषय में कहने आया हूँ।"

"क्या लाभ होगा उससे ?"

"फिर भी आप सुनिये तो सही। लड़का जो वहाँ बैठता था, बहुत ईमानदार था, परन्तु मेरा भाई, उसका पिता, बेईमान निकला। उसने ही सब गड़बड़ की थी। लड़के को फौज में भर्ती करवा दिया और स्वयं दुकान पर जा बैठा। पीछे दुकान बेचकर रुपया घर रख बैठ गया था।"

"मैंने बहुत यत्न के पश्चात् रुपये का प्रबन्ध कर लिया है। पर आपका पाँच हजार जो वसूल हुआ है उसको लेकर आप क्या करेंगी ? मैंने उसको एक कारोबार में लगा दिया है। कुछ महीनों में उसकी आय आपको मिलने लगेगी। कराची पोर्ट-ट्रस्ट के हिस्से खरीद लिए हैं। वह

हिस्से आपके नाम के हैं और दिल्ली के नेशनल बैंक आफ इण्डिया में जमा करा दिये हैं। अब आमदन जो लगभग तीन सौ रुपया वार्षिक होगी, आपको मिल जाया करेगी। इसके अतिरिक्त, हिस्सों की कीमत बढ़ सकती है।"

"बेटा, मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती। जो तुमने किया है मेरे भले के लिए ही किया होगा। ऐसा मेरा विश्वास है।"

प्रेम की मां को इस समाचार से कुछ सन्तोष हुआ। पश्चात् फौजी जीवन और प्रेमनाथ के विषय में बातचीत होती रही।

इस विषय में ऐमिली के आने पर शान्ता ने बताया तो ऐमिली बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा, "आपकी इस आय की बात सुनकर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ है। मैं भी आपके लिए कुछ ऐसी ही बात सोच रही थी।

"हमारे साहब ने एक षड्यन्त्र रचा है। मुझको पागल बनाकर कहीं विदेश में भेजने का आयोजन कर दिया है। इस पर उन्होंने मुझको दस हज़ार रुपये खर्चे के लिए देना स्वीकार किया है। उसमें से एक हज़ार रुपया आज दे दिया है। सो मैं वह एक हज़ार आपके पास लेकर आई हूँ। अब मैं उस रकम से किसी सुरक्षित कम्पनी के शेयर्स खरीद रही हूँ, जो आपके नाम कर दूंगी।"

"पर मैं पूछती हूं कि आपको यह रुपया अपने निर्वाह के लिए मिल रहा है। आप यह मेरे लिए व्यय कर अपने को व्यर्थ में हानि पहुँचा रही हैं।"

"मेरी एक योजना है और यह रुपया आपके नाम जमा करना उस योजना का एक अंग है।"

"तो तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मैं इसमें से एक पैसा भी नहीं छूऊंगी।"

ऐमिली जब से विवाह कर भारत में आई थी तब से ही वह अपनी निजी आय में से बहुत कुछ बचा रही थी और वह समझती थी कि उस

के आश्रय वह अपना शेष जीवन सुगमता से व्यतीत कर सकेगी। साथ ही वह अपनी सत्यनिष्ठा और निर्दोष व्यवहार पर विश्वास रखती थी। उसको विश्वास था कि वह मिस्टर चोपड़ा को अपना दृष्टिकोण समझा कर अपने अनुकूल कर सकेगी। ऐसी परिस्थिति आने तक के लिए वह शान्ता और उसके बच्चों के लिए भी खाने का प्रबन्ध कर देना चाहती थी।

एक बार स्वामी निरूपानन्दजी से इस विषय पर बातचीत हुई थी। 'एक बिगड़े व्यक्ति के सुधारने में कितना काल लगना चाहिये', पर विचार हुआ था। यह मार्ग इतना दुर्गम और विषम माना गया कि इसको पार करने में लगने वाले काल का अनुमान लगाना असम्भव समझा गया। इस कारण इस पथ के पथिक के लिए अपने में असीम सहन-शक्ति उत्पन्न करने की योजना होनी चाहिये।

इस सहन-शक्ति में निर्वाह के लिए धन को एक अंश मान, ऐमिली ने अपने और शान्ता के लिए प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। यह उसकी योजना का प्रथम चरण था। शान्ता इतनी गिनती-विनती नहीं जानती थी। उसने इसकी आवश्यकता भी नहीं समझी। परन्तु ऐमिली अपनी शिक्षा और संस्कारों में यूरोपियन गति-विधि को रखने के कारण जीवन-योजना में धन के अंश को छोड़ नहीं सकी। इस कारण उसने शान्ता के न कहने पर भी एक सहस्र रुपया जो वह अपने स्विटजरलैंड जाने की तैयारी के लिए लाई थी शान्ता के नाम जमा करा चली गई।



८

दीनानाथ इन्द्रा को देख अपने मन में एक विचार बनाने लगा था। वह समझता था कि प्रेमनाथ और उसकी मा के साथ सम्बन्ध बनाने से परिवार की उन्नति ही होगी। इस कारण उसने भाई को, जो लाहौर में उसके माता-पिता के पास ही रहता था, पत्र भेजकर बुलाया और उसके सम्मुख प्रस्ताव रख दिया।

दीनानाथ के भाई का एक ही लड़का था जिसका नाम रमाकान्त था। विश्वनाथ सदा कामचोर और प्रमादी रहा था। दीनानाथ कई वार उसको काम पर लगा चुका था और सदा वह ऐसी भूलें करता रहा था जिससे उसका काम असफल होता रहा। तंग आकर दीनानाथ ने प्रेमनाथ की मां का पांच हजार रुपया लगाकर रमाकान्त को मोहनलाल रोड पर दुकान खुलवा दी थी, परन्तु दीनानाथ के अज्ञातवासी हो जाने पर विश्वनाथ ने अपने लड़के रमाकान्त को फौज में भर्ती हो जाने पर मना लिया और स्वय उसकी दुकान पर बैठ गया। रमाकान्त के भर्ती होकर लाहौर से बाहर चले जाने पर दुकान बेच डाली और रुपया एकत्र कर आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगा।

दीनानाथ ने विशनदास के नाम से तो दिल्ली में नौकरी की, पश्चात अपना व्यापार करने लगा। युद्धकाल में व्यापार में भारी लाभ हुआ। अब वह चाहता था कि अपने अज्ञातवास को छोड़ पुनः खुले में आ जाय। इसके लिए उसने फौज में भर्ती होना ठीक समझा।

फौज में भर्ती होने से पूर्व उसने अपनी स्त्री को काफी रुपया दिया था। और पाच हजार रुपया प्रेमनाथ की माता का उसके नाम करवा दिया था।

अब उसने भाई के सामने रमाकान्त के विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया। विश्वनाथ इतनी आलसी था कि उसने भविष्य के विषय में कभी विचार ही नहीं किया था। इस कारण जब दीनानाथ ने कहा तो उसने मान लिया। रमाकान्त इस समय वेलजियम की सीमा पर संतीसवीं हिन्दुस्तानी फौज में कार्य कर रहा था। यह निश्चय हो गया कि उसके युद्ध से लौट आने पर विवाह का आयोजन कर दिया जायेगा।

शान्ता जहाँ ऐमिली के अहसान में दबी थी वहाँ दीनानाथ की सौजन्यता से भी कृतज्ञता अनुभव करती थी। इन्द्रा का प्रवन्ध हो जाने से वह अति प्रसन्न थी। इस प्रकार अपने मन के बोझ को हलका हो गया अनुभव करने लगी थी। ऐमिली के विषय में वह बहुत चिन्तित रहती

थी। परन्तु उसकी सूझबूझ पर विश्वास कर वह सदा ऐमिली और चोपडा के सम्बन्ध में सरसता आजाने की आशा करती थी।

लगभग दो सप्ताह के पश्चात् ऐमिली आई और यह शुभ समाचार लाई कि युद्ध एक-दो दिन में समाप्त होने वाला है। इससे प्रेमनाथ की माँ का बोझा बहुत सीमा तक उतर गया।

ऐमिली ने बताया, "पर मेरे स्विटजरलैंड जाने के लिए भी प्रबन्ध पूर्ण हो रहे हैं। पासपोर्ट बनकर तैयार हो गया है। मेरा सब सामान बँधकर तैयार रखा है। युद्ध के बन्द होते ही शीघ्रातिशीघ्र मेरे लिए जहाज में स्थान लेने का प्रबन्ध किया जाएगा। और मैं हिन्दुस्तान से बाहर भेज दी जाऊंगी।"

"मैं नहीं जानती कि तुम इसको कैसा अनुभव करती हो। मुझको तो यह सब कुछ अस्वाभाविक और विकट प्रतीत हो रहा है। एक स्त्री का वास्तविक स्थान उसके पति के पास है। न तो मिस्टर चोपड़ा को आपको भेजना चाहिए और न आपको यहाँ से जाना स्वीकार करना चाहिए।"

"आपको यह किसने कहा कि मैंने जाना स्वीकार किया है। मैं तो यह कह रही हूँ कि मेरे जाने का प्रबन्ध हो गया है। शान्ता बहिन! मैं कई दिनों से मन में यह विचार कर रही हू कि पति-पत्नी का सम्बन्ध क्या है? प्रत्यक्ष में तो केवल शारीरिक सम्बन्ध ही है। दो व्यक्तियों को परस्पर रहना होता है और वे रहते हैं। इस रहने को धर्म का अग बना दिया गया है। इसमें पवित्रता का रग डालकर इसको कोई अलौकिक सम्बन्ध कह दिया गया है। क्या यह सब कृत्रिम बातें नहीं? यदि कृत्रिम हैं तो इनकी अवहेलना करना किसी प्रकार भी न तो पाप है और न ही कोई अपराध।"

"फिर मैं सोचती हूँ कि अपने जन्मस्थान से इतनी दूर इस व्यक्ति के पीछे आई हू। क्यों? क्या यह शारीरिक सम्बन्ध वहाँ के किसी रहने वाले से नहीं बनाया जा सकता था। मैंने यत्न ही नहीं किया। करती

तो मैं ऐसी नहीं थी कि मुझको वहां कोई पति नहीं मिलता। वह क्या बात थी कि मैंने इंग्लैंड के अनेकों युवकों को छोड़ इस हिन्दुस्तानी पुरुष को ही आत्मसमर्पण कर दिया।"

"जब इस प्रकार सोचती हूं तो इस बात के मानने पर विवश हो जाती हूं कि या तो इस पूर्ण संसार में निष्प्रयोजन घटनाएं हुआ करती हैं, या इस सब के पीछे कोई कारण, कोई उद्देश्य अथवा कोई निमित्त उपस्थित था, अदृश्य होने पर भी जिसकी अवहेलना करनी हमारे वश में नहीं थी।"

"युरोपियन जीवन-मीमांसा इस प्रश्न पर प्रकाश नहीं डालती। न समझ आने वाली बातों को शैतान का काम कहकर प्रश्न को टाला जा सकता है। संसार की घटनाओं को निष्प्रयोजन केवल 'ऐक्सिडेंन्टस' कहकर सहन किया जाता है। अथवा अनेक अन्य प्रकार के वाक्जाल बुनकर मनुष्य के संशयों पर धूल डालने का यत्न किया जाता है। मैं नहीं जानती, क्यों मेरे मन को इनसे सन्तोष नहीं हो रहा।

"इसके विपरीत भगवद्गीता की कर्म-मीमांसा है। उसमें भी इस प्रकार की घटनाओं के कारणों का वर्णन करने का यत्न किया गया है। मैं सोचती हूँ कि इसमें क्या तत्व है? कभी-कभी तो मन में इतना संशय उत्पन्न हो जाता है कि मैं इस जीवन के पूर्ण प्रयास को समुद्र की तरंगों पर तैरती एक छोटी-सी नौका मान इसको अपने अदृश्य भविष्य की ओर स्वयमेव बहने के लिए छोड़ दूं। फिर विचार आता है कि जिसने इसके भविष्य को निश्चित किया है वही तो इस संकटकाल में कार्य करने की प्रेरणा करता है। इससे उस पर विश्वास कर जो समझ में आता है, उस कार्य को करती जाऊं और फल उस प्रेरणा करने वाले पर छोड़ दूं।"

इतना कह ऐमिली चुप कर गई और आंखें मूंदे हुए मन के विचारों में लीन बैठी रही। शान्ता उसके विचारों को सुन स्वयं विचारों के घने जाल में फंसी हुई चुपचाप बैठी थी। एकाएक ऐमिली उठी और बोली,

"मैंने पंजाब नेशनल बैंक के एक हज़ार रुपये से कुछ हिस्से आपके नाम से खरीदे हैं और वह मैं आपको देने के लिए लाई हूं। मैं समझती हूं कि यह धन आपको कुछ-न-कुछ आय अवश्य कर देगा। इसी प्रकार यदि और धन मिस्टर चोपड़ा ने दिया तो आपके नाम जमा करा दूंगी।"

"पर मैं सोचती हूं कि मैं इस धन को क्यों लूं?"

"यह पत्नी के नाते तुम्हारा है। देने वाले ने भूल से मुझको दिया है। मैं, जो उसकी भूल को समझ गई हूं, सुधार कर रही हूं।"

"पर तुम्हारे समझने में भी तो भूल हो सकती है।"

"यदि भूल होगी तो जिसकी प्रेरणा से हुई है, वह इसको ठीक कर देगा। मैंने इस विषय पर यथाशक्ति निर्लिप्त भाव से विचार किया है। अपने स्वार्थ को छोड़कर ही मैंने इस बात को समझने का यत्न किया है। अब जो हो सो हो। मैं तो ठीक ही कर रही हूं।"

६

जब तक ऐमिली घर पहुंची जर्मन युद्ध का अन्त हो गया था। दुनिया के सब मुख्य-मुख्य देशों में तारों द्वारा सन्देश चले गये थे कि युद्ध बन्द करने की घोषणा हो गई है। प्रेजिडेन्ट विल्सन की भेजी गई चौदह शर्तों पर जर्मन के फौजी अफसरों ने हस्ताक्षर कर दिये हे। और जर्मन सम्राट् जर्मनी छोड़ हालैंड चला गया है।

इस समाचार के लाहौर पहुंचते ही लोगों में प्रसन्नता उत्पन्न हो गई। डिप्टी कमिश्नर की कोठी में प्रसन्नता से भरपूर लोगों का आवागमन आरम्भ हो गया। सरकारी दफ्तर बन्द हो गये और लोग सड़कों पर खुशियां मनाते हुए घूमने लगे।

मिस्टर चोपड़ा कचहरी नहीं गया था। घर पर ही उसको यह समाचार मिल गया था। जब ऐमिली शान्ता के यहां से लौटकर आई तो कोठी में लोगों की भीड़ देख एक क्षण तक चकित खड़ी रह गई, परन्तु वह अभी मोटर से उतर कर कोठी के अन्दर जा ही रही थी कि लोगों

के मुख से 'आर्मिसटिस' का शब्द सुन समझ गई। वह भीतर गई तो मिस्टर चोपड़ा बहुत से लोगो से हाथ मिला-मिलाकर प्रसन्नता से बधाईयां ले और दे रहा था। ऐमिली को आया देख उसने लोगों को वहीं छोड उसके समीप आकर कहा, "ऐमिली डीयर! आर्मिसटिस हो गया। मैं तुमको बधाई देता हूं। तुम खुश नहीं हो क्या?"

"मैं बहुत प्रसन्न हूं। अब तो योरोप जाने के लिए जहाज में जगह मिल जाएगी।"

"नि.सन्देह! आज मैं नगर के लगभग पांच सौ लोगों को अपनी कोठी में दावत दे रहा हू। इसके प्रबन्ध की आज्ञा सैसिल होटल वालो को दे दी गई है।"

"बहुत खूब।"

इस समय साथ के कमरे में टैलीफोन की घण्टी बजी। मिस्टर चोपडा ऐमिली को छोड टैलीफोन सुनने चला गया। इस समय ऐमिली से वहां खडे कई लोग बातें करने लगे।

"यह समाचार कितना अचानक आया है। हमको तो विश्वास ही नहीं होता था। इसी कारण विश्वास करने के लिए यहां चला आया हूं।" एक चूडीदार पायजामा और अंगरखा पहने और बलदार पगडी सिर पर बांधे आदमी ने कहा।

"हा, दीवान साहब!" ऐमिली का कहना था, "आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी यह आनन्द-दिवस देखने को मिलेगा।"

एक और कहने लगा, "कई दिनो से ऐसे समाचार आ तो रहे थे जिनसे हम ऐसी बात की आशा कर रहे थे, परन्तु इतनी जल्दी आशा नहीं थी। बैलजियम की सरहद से बर्लिन तक फौजों के पहुंचने में एक वर्ष लग जाना एक साधारण-सी बात थी।"

"वास्तव में जर्मन की हार उस दिन आरम्भ हो गई थी जिस दिन अमेरिका मित्र राष्ट्रों की ओर सम्मिलित हुआ था। उसके बाद तो समय की बात रह गई थी।"

इस समय मिस्टर चोपड़ा ने वहां उपस्थित सब लोगों को कहा, "गवर्नर महोदय का यह आदेश आया है कि सब राज्य-भक्त लोगों को चाहिए कि अपने-अपने घरों में आज रात दीपमाला करें। गवर्नर महोदय अपनी पत्नी के साथ इस दीपमाला को देखने आएंगे। मैं भी रात की दावत बन्द कर रहा हूं। फिर किसी दिन दूंगा। मैं प्रबन्ध करने जा रहा हूं कि नगर की सब सरकारी इमारतों पर दीपमाला हो सके।"

उसने ऐमिली को सम्बोधन कर कहा, "तुम अपनी कोठी में दीपमाला करवाने का प्रबन्ध करवा दो।"

इतना कह मिस्टर चोपड़ा अपनी मोटर में सवार होकर चला गया और ऐमिली ने कोठी के नौकरों को बुलाकर प्रबन्ध करने को कह दिया।

उस सायंकाल सब सरकारी इमारतों पर दीपमाला हो गई। और पूर्ण शहर के लोग उस दीपमाला को देखने के लिये घरों से निकल आये। अनारकली बाजार और माल रोड पर बहुत जोर से दीपमाला हुई थी। और सब से अधिक भीड़ भी इन्हीं मार्गों पर थी। अंग्रेज़ औरतें और मर्द बाहों में बाहें डाले सड़क पर नाचते-गाते फिरते थे और लाखों की संख्या में हिन्दुस्तानी बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष यह उत्सव देखने के लिये घूम रहे थे।

पंजाब का गवर्नर वेवल ही इस सब समारोह में घूम रहा था और गोरे तथा हिन्दुस्तानी लोगों को इस उत्सव मनाने में उत्साहित कर रहा था। फौजी सिपाही हाथों में हाथ डाले हुए सड़कों पर नाच-नाच कर गाते हुए घूम रहे थे। वे गा रहे थे, "लौंग लौंग वे इच टिपोरैरी" (दिल्ली दूर है)।

छावनी में और ट्रेनिंग कैम्पों से सब सिपाहियों को छुट्टी थी और उनको यह आज्ञा दी गई थी कि वे सब लोग शहर में घूमने जावें और इस उत्सव में खुशियां मनावें। प्रत्येक सिपाही को पांच-पांच रुपये इसमें व्यय करने के लिये दिये गये। उन सबको यह भी आज्ञा थी कि इस

उत्सव में कोई झगड़ा-फिसाद न होने दें।

परिणाम यह हुआ कि आर्मिस्टिस की सूचना पर पंजाब की राजधानी लाहौर में ऐसी खुशी मनाई गई, मानो इस युद्ध के जीतने में सबसे अधिक प्रयत्न लाहौर ने ही किया है और उसकी प्रसन्नता भी सब से अधिक लाहौर को ही है।

प्रायः हिन्दुस्तानी दुकानदारों ने, जिनका सम्पर्क अंग्रेज ग्राहकों से था, दीपमाला की थी। ये दुकानदार कुछ तो कमर्शल-बिल्डिंग, पुरानी अनारकली में थे और कुछ मुख्य अनारकली बाजार में। इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानियों ने इस दीपमाला पर कुछ व्यय करना अनावश्यक समझा। इस पर भी दीपमाला देखने वालों में हिन्दुस्तानी भारी संख्या में थे।

पुरानी अनारकली में एक छोटे से मकान पर भी सरसों के तेल के बीस तीस दीपकों की एक पंक्ति जल रही थी। लोग इस मकान पर उल्लास का यह चिह्न देख-देख मुस्कराते थे। वे इन दीपकों के पीछे छिपी भावना को समझ सकने में असमर्थ थे।

मिस्टर चोपड़ा भी अपनी मोटर में यह देखने के लिये घूम रहा था कि किस-किसने दीपमाला की है और सरकारी इमारतों पर दीपमाला ठीक हो रही है या नहीं। वह भी जब पुरानी अनारकली बाज़ार में से गुज़रा तो इस छोटे से मकान पर थोड़े से दीपक देख चकित रह गया। उसने इस मकान से कुछ ही दूर मोटर खड़ी करली और ड्राइवर को आज्ञा दी कि वह इस मकान के मालिक का नाम पता करे।

ड्राइवर मोटर से उतर कर चला गया। पन्द्रह-बीस मिनट पश्चात् वह लौटकर आया और उसने बताया, "हुज़ूर! बाज़ार के लोग नहीं जानते कि इस मकान में कौन रहता है। इतना पता चला है कि वहां एक बीमार औरत रहती है और उसकी एक युवा लड़की है। अभी दो मास के लगभग उनको यहां आये हुआ है। एक फौजी सिपाही उस मकान से उतरा था। मैंने उससे पूछा तो उसने नाम तो नहीं बताया। हां, इतना कहा है कि किसी युद्ध के मोर्चे पर गए हुए पुत्र की मां युद्ध

समाप्त होने की सूचना पर अपने पुत्र की मगल-कामना कर रही है।

मिस्टर चोपडा समझ गया। उसको विश्वास हो गया कि शान्ता अपनी शक्ति के अनुसार अपने पुत्र के शीघ्र घर लौटने की आशा में हर्ष प्रकट कर रही है। रात के दस बजे के लगभग वह अपनी कोठी को लौटा। सारी कोठी जगमग-जगमग कर रही थी। सहस्रों बिजली के हडे लगवा दिये गये थे और लोगो की भारी भीड उस दीपमाला की शोभा देखने के लिये वहाँ खडी थी। शान्ता के घर के बीस-तीस दीपकों को स्मरण कर मिस्टर चोपडा की हँसी निकल गई। उसने मन में सोचा कि ऐमिली को जाकर शान्ता के टिमटमाते दीपको की कथा सुनायेगा।

लोगों की भीड में से मोटर भीतर ले जाने में कुछ देर लग गई। वह मोटर से उतरा और उसने ऐमिली की मोटर के गैरेज को खाली देख अनुमान लगाया कि वह भी घूमने गई है। वह कोठी में पहुँचा ही था कि ऐमिली की मोटर भी अहाते में दाखिल हुई। मिस्टर चोपडा वहीं रुक गया। ऐमिली अपनी मोटर स्वयं चलाया करती थी इससे वह मोटर लेकर स्वय ही गैरेज में रखने गई। मोटर को वहाँ रख वह कोठी में आई तो मिस्टर चोपडा को बरामदे में खडा देख वह भी वहाँ आ गई। उसके आते ही चोपडा न पूछा, "दीपमालिका देखने गई थी क्या ?"

"हाँ ! रेल का स्टेशन बहुत ही सुन्दर सजा है।"

"और यह हमारी कोठी ?"

"यह तो मुझे आपसे पूछना चाहिये। मैने ही तो यह सजावट करवाई है। दो हजार रुपया खर्च हो गया है।"

"दो हजार ?" मिस्टर चोपडा ने अचम्भे में पूछा।

"मै समझती हूँ कि इस अनुपात से अनुमान लगाऊँ तो रेल के स्टेशन पर दस हजार से कम व्यय नहीं हुआ होगा। यूँ तो हाईकोर्ट की इमारत भी खूब सजाई गई है।"

"पर तुमने एक मकान नहीं देखा होगा, जिस पर बीस-पच्चीस सरसो

के तेल के दीपक जल रहे थे ।"

ऐमिली इसका अर्थ नहीं समझी । वह विस्मय में मिस्टर चोपडा का मुख देखने लगी । उसके विस्मय को देख मिस्टर चोपडा ने अपनी बात की व्याख्या करदी । "पुरानी अनारकली के बाजार में, कपूर्थला हौस के सामने, एक मकान के छज्जे पर पन्द्रह-बीस दीपक टिमटिमा रहे थे ।"

"ओह ! समझी ! शान्ता बहिन के घर की बात कह रहे हैं । मैं अभी उसको सब दिखाकर घर छोड़कर आई हूँ । आप उसके आनन्द का अनुमान नहीं लगा सकते । प्रेमनाथ के लौटने की आशा की खुशी में बेचारी ने जितने पैसे उसके पास थे उतने दीपक जला दिये हैं ,"

"क्या आवश्यकता थी ! उन विशाल इमारतों पर सहस्रों दीपकों की जगमग के सामने वह टिमटिमाहट बहुत ही हास्यास्पद प्रतीत होती थी ।"

"तो फिर आप उसको दो-तीन सौ रुपया दे आते, जिससे वह हँसी का पात्र न बनती । वह भी तो आपका ही घर है ।"

"ऊँह !" मिस्टर चोपड़ा ने नाक चढ़ाकर कहा । ऐमिली की हँसी निकल गई । चोपडा ने घूमकर उसको देखा और पूछा, "इसमें हँसी की क्या बात है ?"

ऐमिली गंभीर हो गई और कहने लगी, "मैं वास्तव में अपने को पागल हो रही अनुभव कर रही हूँ । आपके इस नाक चढ़ाने पर हंसने की कोई आवश्यकता नहीं थी । रोने की इच्छा होनी चाहिये थी ।"

मिस्टर चोपड़ा कोठी के अन्दर की ओर घूम गया । ऐमिली अपने कमरे में चली गई ।

१०

एक सप्ताह के भीतर ऐमिली के लिये पासपोर्ट तैयार हो गया । दस हजार रुपये का ड्राफ्ट लायड्स बैंक आफ इंगलेंड के द्वारा ऐमिली को दे दिया गया । जहाज पी० एण्ड ओ० में ऐमिली के लिये सीट रिजर्व

करवा दी गई। इस प्रकार जाने की तिथि निश्चित हो गई।

जिस दिन लाहौर से जाना था, ऐमिली शान्ता से मिलने आई। ऐमिली ने शान्ता से कहा, "मैं आज सायकाल यहाँ से जा रही हूँ। आशा करती हूँ कि शीघ्र ही फिर आपसे मिल सकूँगी। हाँ, जाने से पूर्व मैं कुछ कागजों पर आपके हस्ताक्षर चाहती हूँ।"

"क्या होगा हस्ताक्षरों से ?"

"शायद कुछ नहीं होगा। यदि कुछ होगा तो उसमें आपके हस्ताक्षर सुगमता उत्पन्न कर देंगे। मैं यह हस्ताक्षर बैंक में जमा करा जाऊँगी।"

"यह तुम क्या कर रही हो ? मुझको कुछ समझ नहीं आता। मुझको क्यों इन झगड़ों में घसीटती हो ?"

"कुछ झगड़ा नहीं। मैं यहाँ से जा रही हूँ। नहीं जानती कि हमारे पतिदेव ने मेरे लिये क्या प्रबन्ध किया है। इस कारण मैं अपना सब प्रबन्ध, अपनी वसीयत यहाँ पर ही लिखकर बैंक में रखे जा रही हूँ। उस वसीयत को कार्य में लाने के लिये मैंने आपको अपना प्रतिनिधि बनाया है। इस कारण आपके हस्ताक्षर करवा रही हूँ।"

शान्ता को बात समझ आ गई और उसने हस्ताक्षर कर दिये। इसके पश्चात् शान्ता ने बताया, "प्रेमनाथ का पत्र आया है। मारसेल्ज में उनकी फौजें डेरा डाले हुए हैं और आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"उसको पता दे दीजिए कि मुझको यदि फ्रांस में शीघ्र जाने का अवसर मिला तो उससे मिलने का यत्न करूँगी।"

शान्ता ने पत्र निकालकर ऐमिली को दिया। ऐमिली ने वह अपने बटुए में रख लिया। इसके पश्चात् वह बैंक में चली गई। वहाँ वे कागज जिन पर उसने अपनी वसीयत लिखी हुई थी, बैंक में जमा करा दिये और मैनेजर को अधिकार लिख दिया कि यदि बैंक को एक वर्ष तक उससे कोई पत्र प्राप्त न हो तो उसकी वसीयत खोलकर अधिकारियों को सूचित कर दी जाय।

मध्याह्न पश्चात् जब वह कोठी में लौटी तो मिस्टर चोपड़ा ने पूछा, "बच्चों को मिलना चाहती हो क्या ?"

"आप मुझको मनुष्य नहीं समझते हो क्या ? मुझ में भी हृदय है, जो अपने बच्चों से स्नेह रखता है।"

"तो चलो तुमको मिला लाऊं ?"

"मैं अकेली क्यों नहीं जा सकती ?"

"मैंने मना कर दिया था।"

"तो उस आज्ञा के रहते मैं मिलने नहीं जाऊँगी। मुझमें भी आत्म-सम्मान है और वह मैं खोना नहीं चाहती।"

"अब इतनी जल्दी वह आज्ञा वापस नहीं ली जा सकती।"

"तो न सही।"

"मैं समझता हूं कि मैं उनको यहीं चिट्ठी लिखकर घर पर बुला लेता हूं।"

"यह बात मुझसे पूछने की नहीं है। मैंने उनको घर से बाहर नहीं निकाला था। इस कारण मैं उनके यहां बुलाने में कोई सम्मति नहीं रखती।"

इस पर भी मिस्टर चोपड़ा ने स्कूल के होस्टल के वार्डन को चिट्ठी लिखकर बच्चों को बुलवा लिया। जब वे आये तो ऐमिली अपने कमरे में अपना सामान ठीक करवा रही थी। होल्डोल और सूटकेस और एक सन्दूक आवश्यक सामान का बंधा रखा था। पहनने के कपड़े तैयार रखे थे।

जब बच्चे कोठी में आये तो ऐमिली उनकी आवाज से जान गई कि वे आ गये हैं। ऐमिली ने मन में यह निश्चय कर रखा था कि यदि तो बच्चे उनके कमरे में बिना अपने पिता के मिलने आवेंगे तो उनसे बात-चीत करेगी। मिस्टर चोपड़ा के साथ आने पर अथवा बच्चों को मिलने के लिए किसी दूसरे कमरे में बुलाये जाने पर वह बच्चों को देख आयेगी, बात नहीं करेगी।"

जैसी वह आशा करती थी वही हुआ। चोपड़ा ने चपरासी के हाथ कहला भेजा कि सोम आदि आये हैं। इसके उत्तर में ऐमिली ने कहला भेजा, "बहुत अच्छा" और वह उनको मिलने नहीं गई। वह मन में अनुमान लगा रही थी कि पिता तथा बच्चे ड्रायिंग-रूम में बैठे उसको मिलने आने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। इससे उसने आलमारी से एक पुस्तक निकाली और आरामकुर्सी पर बैठ पढ़ने लगी।

ऐमिली का अनुमान ठीक था। मिस्टर चोपड़ा और बच्चे ड्रायिंग-रूम में बैठे हुए ऐमिली की प्रतीक्षा कर रहे थे। सोमनाथ के पूछने पर मिस्टर चोपड़ा ने कहा, "मम्मी ने लम्बी यात्रा पर जाना है। इस कारण आराम कर रही होंगी। अभी आती होंगी।"

सरस्वती ने पूछा, "पापा! मैं देखूं, मम्मी क्या कर रही है?"

"नहीं! यहीं बैठो। अभी आ जाती है।"

ज्यों-ज्यों माँ के आने में देर हो रही थी बच्चे चंचल होते जा रहे थे। चाय का समय हो गया। चोपड़ा ने कहकर चाय मंगवा दी और बच्चों को साथ लेकर वहाँ जा बैठा। पश्चात् बैरा से ऐमिली को कहला भेजा। बैरा ने आकर कहा, 'मेम साहिबा सो रही हैं।"

"सो रही हैं?"

बैरा चुप रहा। इसपर चोपड़ा बच्चों को वहीं बैठे रहने को कह ऐमिली के कमरे में चला गया। दरवाजा बन्द था। उसने खटखटाया तो भीतर से आवाज आई, "कौन है?"

"मैं हूं! श्रीमती जी! क्या मैं आपके कोप-भवन में आ सकता हूं?"

"आइये, पधारिये!"

जब मिस्टर चोपड़ा भीतर गया तो उसने देखा, ऐमिली सत्य ही बिस्तर पर लेटी हुई है और उसने कपड़े उतारे हुए हैं। इस पर उसने चिन्ता का भाव दिखाते हुए पूछा, "ऐमिली, क्या बात है?"

"कुछ नहीं! मैंने यही उचित समझा कि यहां कुछ सो लूं, मार्ग में नींद आयेगी या नहीं?"

"पर बच्चे बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"तो वे यहां नहीं आ सकते क्या ?"

"मैंने उनको कह रखा है कि तुम्हारे कमरे में आने से वे भी बीमार हो सकते हैं।"

"तो फिर वे न मिलें मुझको। मेरे मन में उनसे मिलने को कोई लालसा नहीं रही।"

"क्यों ? बहुत कठोर-हृदय हो तुम।"

"पागल जो हूं। दूसरों के बच्चों से स्नेह करती हूं और अपने बच्चों को बीमार करने के लिए उनको तपेदिक की छूत लगाने के लिए लालायित हूं। ठीक है न ?"

"चलो, चाय रखी है और वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

'ठहरो, कपड़े पहन लूं।"

कपड़े पहन वह चोपड़ा के साथ बाहर लान में चली। उसे आया देख बच्चे उठकर उसकी ओर भागकर मिलने आये, परन्तु ऐमिली ने अंगुली से संकेत कर उनको अपने से दूर ही रोक दिया और कहा, "देखो तुम्हारे पिता जी कहते हैं कि मैं बीमार हूं और तुम भी बीमार हो जाओगे।"

ऐमिली ने मुख की इतनी कड़ी मुद्रा बनाई कि सोम आदि माँ का मुख देखकर डर गये और कुछ कदम ही दूर खड़े हो गये। मिस्टर चोपड़ा ने उनको कहा, "बैठ जाओ।"

वे बैठ गये। ऐमिली ने अपने लिए चाय बनानी आरम्भ कर दी। चोपड़ा ने देखा कि ज्यों-ज्यों एमिली के मुख से वह कठोर मुद्रा उतरती जाती है उसकी आँखें तरल होती जाती हैं। ऐसा प्रतीत होने लगा कि उस प्रयत्न से, जो उसने अपने बच्चों को अपने से दूर रखने के लिए किया था, वह थक गई है और इससे उसके आँसू निकल आये हैं।

चोपड़ा का अनुमान था कि वह पिघल जायगी और रोकर अपने बच्चों को गले मिलने का यत्न करेगी, परन्तु इस समय एमिली ने चाय

वहां पर एक घटना और घटी। शान्ता, इन्द्रा और शान्ता की भाभी उसको विदा करने के लिये आई हुई थीं। चोपडा उनको प्लैटफार्म पर देख झिझका। ऐमिली ने उनको देखा तो सबको छोड शान्ता से जा मिली। उसने इन्द्रा को प्यार किया।

मिस्टर चोपडा उस समय ऐमिली का सामान रखवाने में लग गया। बच्चे सब ऐमिली, शान्ता इत्यादि के चारों ओर खडे हो गये। शान्ता ने पूछा, "मैंने यहां आकर अच्छा नहीं किया न ?"

"बहुत अच्छा किया है। तुम डरो नहीं। वह तुम को कुछ नहीं कह सकता। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी। आओ मेरे साथ। जब तक गाडी नहीं चलती मेरे साथ डिब्बे में बैठो। शान्ता को अपने को कई वर्षों के पश्चात् मिस्टर चोपडा के इतने समीप होने पर रोमाच हो आया। वह ऐमिली के साथ डिब्बे में गई तो चोपडा ने उसको देख विस्मय प्रकट किया। वह कुली को यह कह, कि मेम साहबा का बिस्तर लगा दो, स्वय डिब्बे के बाहर चला गया। सोम आदि डिब्बे में ऐमिली के पास बैठ गये। ऐमिली ने सोम को कहा, "सोम, इनको जानते हो ?"

"मम्मी ! कौन है ? इनको 'इन्ट्रोड्यूस' करा दो न।"

"सुनो, एक दिन मैंने तुमको बताया था न कि तुम्हारी एक और माता है। वे यही है। और ये तुम्हारी बहिन है। इसका ही नाम इन्द्रा है।"

"पर एक दिन मैंने पापा से पूछा था कि मेरी विमाता है क्या ? तो उन्होंने कहा था कि मम्मी का दिमाग खराब हो गया है। इस कारण चिकित्सा के लिये तुम स्विटजरलैंड जा रही हो।"

इस बात को सुन शान्ता का मुख लाल हो गया। ऐमिली ने बात सम्हाल ली। उसने कहा, "तुम्हारे पिता इनसे लड पडे है। इसी से ऐसी बात करते है। ठीक बात वही है जो मैंने कही है।"

सोम विस्मय में सबका मुख देखता रह गया। सरस्वती ने जब सुना कि इन्द्रा उसकी बहिन है तो उसने इन्द्रा का हाथ पकडकर कहा, "तुम

मेरी बहिन हो तो मुझको मिलने क्यों नहीं आती ?"

"तुम्हारे पापा मना करते हैं।" इन्द्रा ने मुस्कराकर कहा। सरस्वती ने गम्भीर हो कहा, "पापा ने मम्मी को भी मना कर दिया था।" इससे सब हँसने लगे।

इस समय एन्जिन ने सीटी बजाई। ऐमिली के अतिरिक्त सब गाडी से उतर आये। गाड़ी हिली तो सबने नमस्ते की। ऐमिली के बच्चों ने हाथ हिलाकर विदा कही।

कुन्दनपुर की परख

१

ऐमिली के लाहौर से चले जाने पर मिस्टर चोपड़ा ने समझा कि उसने अपने पर से और अपने बच्चों पर से एक दुष्ट प्रभाव उत्पन्न करने वाले को हटा दिया है। बच्चे तो उदास थे, परन्तु इस आशा में कि आगामी ग्रीष्म ऋतु के अवकाश में वे स्विटजरलैंड जाएंगे और वहां मम्मी से मिल सकेंगे, मग्न थे। अगले दिन वे स्कूल चले गये।

मिस्टर चोपड़ा, जबसे उसका ऐमिली से झगड़ा हुआ था, अपने नीरस जीवन को रसमय बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न करता रहता था। इन उपायों में क्लब में जाकर रात के बारह बजे तक जूआ खेलना, सदिग्ध चरित्र की स्त्रियों के साथ नाच करना, शराब पीना मुख्य थे। उसकी अपनी कोठी में भी जूए और शराब के समारोह होते रहते थे। इस पर भी जब कभी उच्छृखलता सीमा से बाहर होने लगती तो ऐमिली वहां पहुंचकर सब लोगों को डाट दिया करती थी और मिस्टर चोपड़ा के मित्र जो इन रात्रियों के मनोरजन में सम्मिलित होने आते थे भाग जाया करते थे।

अब श्रीमती चोपड़ा के चले जाने के पीछे इन मित्रों को बहुत प्रसन्नता हुई। प्रसन्न होने वालों में सब से अधिक हर्ष एक सूरजमोहन को हुआ था। जिस रात मिस्टर चोपड़ा ऐमिली को विदाकर आया था, उसी रात उसकी कोठी में भारी जशन मनाया गया। मिस्टर सूरजमोहन लाहौर का एक प्रख्यात वकील था। केवल जटिल मुकद्दमे ही लिया करता था और फीस करारी लेता था। इस पर भी उसकी आय का सब से बड़ा स्रोत जूआ था। उसके हाथ में लक्ष्मी खेलती थी। जिस रात उसने ताश के पत्ते पकड़ लिए उसके मुकाबिले में खेलने वालों की जेबें खाली होने लगती थीं।

एक बात का वह बहुत विचार रखता था। मिस्टर चोपड़ा की कोठी में कभी चोपड़ा के विरुद्ध नहीं खेलता था। क्लब में वह भले ही मिस्टर चोपड़ा की जेबें खाली करवा ले, पर उसके घर में वह सदैव इस बात का ध्यान रखता था कि मिस्टर चोपड़ा को अवश्य लाभ हो। इससे चोपड़ा उससे प्रसन्न था और अपनी कोठी में ही जूआ खेलने का आयोजन करता था।

मिस्टर सूरजमोहन से उतरकर मिस्टर चोपड़ा के जूआ खेलने और शराब पीने की दावतों में भाग लेने वाली एक श्रीमती मनमोहिनी थी। वह एक अन्य वकील की धर्मपत्नी थी। उसके पति महोदय भी उसके साथ आया करते थे। मनमोहिनी के पति की वकालत कुछ अधिक चलती नहीं थी, परन्तु श्रीमतीजी पर सूरजमोहन की कृपा रहती थी और वह उसको भी कुछ-न-कुछ आय कराता रहता था। कुछ अन्य स्त्री और पुरुष भी थे जो प्राय क्लब में और चोपड़ा की कोठी में रात्रि के आयोजनों में आते रहते थे।

जिस रात ऐमिली विदा हुई, मिस्टर चोपड़ा स्टेशन से लौट, बच्चों को खाना खिला, सोने को कह, अपने ड्राॅयिंग-रूम में आगया। वहां मिस्टर सूरजमोहन पहले ही उपस्थित था। चोपड़ा के आने पर उसने उठकर उससे हाथ मिलाकर बधाई दी और कहा, "मैं समझता हूं कि आपके जीवन पर से एक काली घटा हट गई है। क्या मैं ग़लत कहता हूं?"

मिस्टर चोपड़ा अपने मन की बात भलीभांति जान नहीं सका था। इससे उसने कुछ विचारकर कहा, "अपने मार्ग पर चलने के लिए अवश्य स्वतन्त्रता मिल गई; परन्तु बच्चों के विचार से कभी-कभी अपनी योजना के उचित होने में सन्देह लगता है।"

"यह बच्चों से आपका मोह कब से हुआ है? आपका मत कि ये कीड़े-मकोड़े तो पैदा होते और मरते हैं, क्या अब बदल गया है?"

"बुद्धि से तो मैं अब भी ऐसा ही समझता हूं परन्तु कभी-कभी मन में यह विचार करता हूं कि मैंने बच्चों से मां को पृथक् करने का यह

आयोजन किया है तो हृदय में एक-टीस-सी उठती है।"

"ओह, क्या मुर्गी-सा दिल बना लिया है। मेरा विचार है कि थोडी-सी पी डालो, 'मैलन्कोलिया' का मूड समाप्त हो जावेगा।"

इतना कह मिस्टर सूरजमोहन उठा और डाईनिंग हाल म जा एक स्काच ह्विस्की की बोतल और दो ग्लास उठा लाया। एक ग्लास भर उसने मिस्टर चोपडा के सन्मुख रखकर कहा, "मिस्टर चोपडा, जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, मुर्दादिल खाक जिया करते हैं। आरम्भ करिये, अभी मनमोहिनी जी भी आने वाली हैं। अभी उनका टेलीफोन आया था।"

"मिस्टर मोहन", चोपडा ने कहा, "ग्यारह हजार ऐमिली ले गई दो हजार वर्न के मिस्टर शच्युमैन को भेज दिया है। और हमारी योजना सफल होने पर पाँच हजार और देने का वचन दिया है। मेरा तो दिवाला निकल गया है।"

सूरजमोहन ने कहा, "आप चिन्ता न करें। यह घाटा तो एक-दो दिन में पूरा हो जायेगा। यह जो जर्मन-विजय का उत्सव] होने वाला है, उसमें नगर की सजावट पर एक लाख के व्यय का प्रोग्राम आपने बनवाया है। यदि आप इसका ठेका मेसर्स श्रीकृष्ण एण्ड सन्ज को दे दें तो मैं आपको तीस प्रतिशत कमीशन दिलवा सकता हूँ।"

"पर उस फर्म का टैण्डर अन्य फर्मों से बीस प्रतिशत अधिक का है?"

"आप उस फर्म को विश्वस्त फर्म कहकर ठेका दिलवा दीजिये, तो मैं कमीशन तेंतीस करवा दूंगा। देखिये मिस्टर चोपडा! उसके भाव स्वीकार करने पर सजावट के व्यय का अनुमान एक लाख से सवा लाख का हो जावेगा। उसमें तेंतीस प्रतिशत का मतलब है, चालीस हजार आपका। आपने जो कुछ ऐमिली पर खर्च किया है अथवा करना है, वह अट्ठारह हजार है। शेष जो बाईस हजार बचता है उसमें आपके दास का भाग है। ठीक है न?"

इस समय तक मिस्टर चोपडा दो बार ग्लास भरकर ह्विस्की पी

चुका था और उसकी बुद्धि में दुस्साहस और विचारहीनता आ गई थी। इससे उसने कह दिया, "अच्छी बात है। मेरा भाग कैसे मिलेगा ?"

"वह मैं दिलवा दूंगा।"

इस समय श्रीमती मनमोहिनीदेवी आ गई। उसके साथ उसका पति था। उसके साथ चार स्त्री-पुरुष और आये और सब बैठकर शराब पीने लगे। सूरजमोहन ने ताश के पत्ते निकाले और बाजी चलने लगी।

जब खेल में दम आगया तो बडे-बडे दांव भी लगने लगे। जिसके पास रुपया समाप्त हो जाता था वह या तो खेलना बन्द कर देता था, या प्रोनोट लिखकर किसी से उधार लेकर काम चलाता था। कुल चौदह-पन्द्रह लोग थे। इस प्रकार यह रात के एक बजे तक चलता रहा। पश्चात् मिस्टर चोपडा उठ खडा हुआ और सब मेहमान विदा होने लगे।

अगले दिन आठ बजे मिस्टर चोपड़ा जागकर स्नानादि से निवृत्त हो अपने कार्यालय में आ गया। वहां पहुंचकर उसने बच्चों को बुलाया, उनको प्यार किया और मोटर में चढा स्कूल भिजवा दिया।

पश्चात् वह अपने काम में लग गया। मिलने के लिये लोगों में मैसर्स श्रीकृष्ण एण्ड संज का कार्ड भी था। मिस्टर चोपड़ा को रात वाला सूरजमोहन का प्रस्ताव स्मरण हो आया। उसको याद आ गया कि चालीस हजार मिलने की बात है। इससे उसने सबसे पहले उसी को बुलाया और मिस्टर श्रीकृष्ण के साथ सूरजमोहन भीतर आ गया। बात पांच मिनट में तय हो गई। डिप्टी कमिश्नर ने अपने क्लर्क को कान्ट्रैक्ट लिख डालने के लिये कह दिया।

इस प्रकार काम चलने लगा।

२

जब ऐमिली की गाडी प्लेटफार्म से निकल गई तो शान्ता और इन्द्रा स्टेशन से बाहर निकल आईं। मिस्टर चोपड़ा बिना ध्यान दिये उनके

समीप से गुज़र स्टेशन से बाहर ऐसे आ गया मानो वे एक दूसरे को पहचानते ही नहीं। जब शान्ता घर जाने के लिये टांगेवाले से भाव-ताव कर रही थी, चोपडा मोटर पर सवार हो फर्र से निकल गया। मोटर में केवल सोमनाथ था जो उनको टांगेवाले से बात करते देख रहा था।

जब शान्ता टांगे पर सवार होकर चल पडी तो इतनी देर तक बलपूर्वक रोके हुए आंसू बह निकले। शान्ता की भाभी ने उसको रोते देखा तो कहा, "शान्ता बीबी! इस रोने से क्या लाभ होगा। यह आज का अनुभव कोई नवीन तो है नहीं। यह वही है जिसकी अदालत में तीन महीने निरन्तर जाती रही हो और जिसने एक बार भी कोई शब्द सहानुभूति का तुम्हारे लिये नहीं कहा था। यह निर्मोही परम स्वार्थी है। भगवान् तुम्हारा बदला लेगा।"

बदले का शब्द सुन शान्ता के पूर्ण शरीर में कपकपी पैदा हो गई। उसने केवल यह कहा, "भगवान करे कि मेरे जीवनकाल में यह न हो।"

"तो तुम उसकी सिफारिश करती हो!" इन्द्रा की मामी ने मुस्कराते हुए कहा।

"हां! मैं तो यही सोचती हूं कि यदि कोई मेरा पुण्य कर्म है तो उसका फल भी उनको लगे।"

"इस प्रकार तुम चाहती हो कि महाराज गवर्गण्ड की कहावत चरितार्थ कर देवें।"

इस पर इन्द्रा ने कहा, "मां! ऐसे पिता की सन्तान होना लज्जा की बात नहीं है क्या?"

"इन्द्रा! मां ने कुछ ताड़ना के भाव में कहा, "तुम्हारे पिता हैं वे। तुमको उनके विषय में ऐसी बात विचारनी भी पाप है।"

"वह तो ठीक है," इन्द्रा की मामी ने कहा, "उनके विषय में हम कुछ बुरा नहीं चाहते। इस पर भी यह तो मानना ही पडेगा कि भगवान् न्याय करता है। वह दयालु है। पर दया अपने कोष में से देगा न कि

किसी दूसरे से संचित पुण्य के बल पर ? क्या वह कंगाल है
एक के पुण्य कर्म छीनकर किसी दूसरे को फल देगा ?"

अगले दिन शान्ता ने स्वस्तिवाचन का नियमित पाठ आ
दिया। इसमें उसका प्रयोजन स्पष्ट था। वह सदा भगवान से य
करती थी कि उसके पति का अनिष्ट न हो।

इन्द्रा के मामा ने एक दिन बताया कि जर्मनी-विजय-महोत्सव
जा रहा है। एक बहुत बड़ा जलूस नगर भर में घूमेगा और सा
में झंडियां लगाई जा रही हैं। सरकार की ओर से सब सरकार
रतों पर दीपमाला होगी और स्थान-स्थान पर बैंड-बाजे बजेंगे।
स्थान पर नाच रंग होगा।"

शान्ता ने कहा, "भैया, सिपाहियों के विषय में कुछ सुना है।
कब लौटकर आवेंगे ?"

"कुछ नहीं! इस पर भी यह सुना है कि कुछ हिन्दुस्तानी प
जर्मनी में रहेंगी।"

"देखें, प्रेम कब लौटकर आता है? क्या दीनानाथ कभी मिला है?

"उसने अपना नाम अफसरों को बता दिया है और पुलिस उसव
पकड़कर ले गई है। सुना है कि उत्सव के दिन उसके और कई दूसरों वे
विरुद्ध मुकद्दमे उठाये जा रहे हैं।"

इन्द्रा के मामा ने यह भी बताया, "उस दिन के महोत्सव में लाहौर भर में पांच-छः लाख का व्यय होगा। इतनी भारी रकम में यह खुले मुँह कहा जा रहा है कि डिप्टी कमिश्नर एक लाख रुपए से ऊपर रिश्वत ले गया है।"

"यह बात सत्य कैसे हो सकती है? भैया आप एक बात करो, जो कोई भी ऐसी बात किया करे उसका खण्डन कर दिया करो।"

"बहिन! मेरी कौन सुनता है? पूर्ण नगर में यह बात विख्यात
हो रही है और बाल, वृद्ध सब यही कह रहे हैं।"

इससे शान्ता को प्रतीत हुआ कि कोई अति भयानक घटना घटने

वाली है। परन्तु शान्ता के चाहने से कुछ हो नहीं सकता था। बात यह हुई कि नगर की सजावट के लिए टेंडर मंगवाए गये थे। सबसे कम टेंडर एक अंग्रेज़ कम्पनी 'जोन्सन एण्ड जोन्सन' का था और डिप्टी कमिश्नर ने सबसे ऊंचा टेंडर मैसर्ज श्रीकृष्ण एण्ड सन्ज़ का स्वीकार कर लिया था। जोन्सन एण्ड जोन्सन वालों ने कमिश्नर और गवर्नर के सामने अपील कर दी थी। यह अपील कमिश्नर के पेशकार से तथा अन्य क्लर्कों द्वारा पब्लिक में चली गई।

विजयोत्सव के दो तीन दिन पहले कमिश्नर क्लब में बैठा था और जोन्सन एण्ड जोन्सन का व्यवस्थापक उनके पास बैठकर अपनी बात बता रहा था। इस समय बिना आयोजन के अथवा नियत योजनानुसार मिस्टर नार्टन भी वहां आ बैठा। मिस्टर रैमस्डल जोन्सन ने मिस्टर नार्टन को अपना साक्षी बना लिया। उसने अपना कहना जारी रखा, "श्रीमान्, मिस्टर नार्टन भी बहुत कुछ इस विषय पर प्रकाश डाल सकते हैं। ये भी एक मुकद्दमे में, जिसका सम्बन्ध मिस्टर चोपडा के साथ घना रहा है, वकील रहे हैं और इनको मिस्टर चोपडा की बहुत-सी बातें पता हैं।"

"मिस्टर चोपडा की बीवी ऐमिला जोन्सन मेरी दूर की सम्बन्धी है। एक-दो बार उससे मिलने गया हूं और चूंकि मिस्टर चोपडा का व्यवहार उससे बहुत बुरा था इस कारण वह बहुत दुःखी और परेशान प्रतीत होती थी।"

इस पर कमिश्नर ने मिस्टर नार्टन से पूछा, "मिस्टर चोपडा के विषय में आप क्या जानते हैं?"

"मिसेज़ चोपडा ने मुझको गदर पार्टी के एक मुलज़िम के लिये वकील किया था। वह मुलज़िम धोखे से, मुझको भारी सन्देह है कि मिस्टर चोपडा के कहने मात्र से पकड लिया गया था। वह मिस्टर चोपडा का अपनी हिन्दुस्तानी पत्नी से पुत्र था और किसी कारण से मिस्टर चोपडा अपनी उस पत्नी और पुत्र का घोर विरोधी था। लडके के विरुद्ध कुछ भी प्रमाण नहीं था, इस पर भी उसको सैशन सुपुर्द कर दिया था।"

"मिस्टर चोपड़ा का व्यवहार अपनी अंग्रेज बीवी से भी ऐसा था जैसे किसी पागल पुरुष का होता है। उसको अपने बच्चों से मिलने की मनाही कर द थी। वह सर्वदा स्वस्थ और मन की अति निर्मल औरत थी। परन्तु मिस्टर चोपड़ा ने उसको दुर्बल मानसिक अवस्था वाली घोषित कर स्विटजरलैंड भेज दिया है। स्वय वह शराब पीकर और जूआ खेल-कर अपनी रातें व्यतीत कर रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि नगर के सब गुण्डे, चोर-जुआरी उसकी कोठी में आते-जाते हैं।"

"पजाब की राजधानी लाहौर के डिप्टी कमिश्नर की इतनी बदनामी तो अंग्रेजी राज्य की जड़ों को हिला देगी। इस पर अब रिश्वत लेने की स्कैंडल चल पड़ी है।"

कमिश्नर ने पूछा, "क्या आप समझते हैं कि मिस्टर चोपड़ा ने इतनी भारी रिश्वत ली होगी?"

"यह सम्भव है। मिस्टर चोपड़ा के पास, जब उसकी अंग्रेज बीवी स्विटजरलैंड गई थी, बैंक-बैलेंस में कमी थी। मुझको यह बात एक आकस्मिक घटना से पता चल गई थी। मैं बंगाल बैंक के मैनेजर से मिलने गया था और मिस्टर चोपड़ा वहां बैठा था। मुझको देख मिस्टर चोपड़ा उठ खड़ा हुआ और मैनेजर उसको कमरे के बाहर छोड़ने को आया। मैनेजर की कुर्सी के सामने एक रजिस्टर खुला रखा था और मिस्टर ए० एन० चोपड़ा के हिसाब का पन्ना खुला था। मैंने दृष्टि दौड़ाकर देखा तो लाल स्याही में मिस्टर चोपड़ा के नाम के अन्त में डेबिट तीस हजार से कुछ ऊपर लिखा था। मैं यह देख चकित रह गया। मेरे विचार में मिस्टर चोपड़ा के हिसाब में चालीस-पचास हजार जमा तो अवश्य होने चाहियें थे।"

"मैंने उठकर मिस्टर चोपड़ा के हिसाब को ध्यानपूर्वक देखा तो पता चला कि ग्यारह हजार रुपया उसने अपनी बीवी को दिया था। साथ ही एक मिस्टर सूरजमोहन हैं, उसको मिस्टर चोपड़ा ने कई चैक दिये हैं।"

"इस समय मैनेजर साहब भीतर आ गये। मैं और ...क नहीं

देख सका। मेरा विचार है कि आप यदि बैंक के एकाउंट चैक करवाएँ तो जान जायेंगे कि रुपया कहाँ से आ रहा है और किधर जा रहा है।"

"मेरी स्त्री कहती थी कि मिसेज़ चोपड़ा पागल मालूम नहीं होती थी। और उसको वर्न मेन्टल सैनिटोरियम में भेजा गया है।"

"मुझको तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्टर चोपड़ा का किसी औरत से अनुचित सम्बन्ध हो गया है और इस कारण उसने अपनी बीवी को पागल बनाकर बाहर निकाल दिया है। शायद यह रहस्य भी उसका हिसाब देखने से पता चल जावेगा।"

आजकल मिस्टर चोपड़ा क्लब में बहुत कम आता था। इस कारण चीफ कमिश्नर ने निश्चय कर लिया कि विजयोत्सव के पश्चात् वह उसको बुलाकर बातचीत कर लेगा। इस काल में उसने मिस्टर चोपड़ा के बैंक के हिसाब का निरीक्षण करना उचित समझा।

अगले दिन वह साढ़े दस बजे बंगाल बैंक में जा पहुँचा और मैनेजर से मिस्टर चोपड़ा का हिसाब देखने की माँग की। वह हिसाब को देख चकित रह गया।

जब से मिस्टर चोपड़ा लाहौर आया था तब से लगभग बीस लाख रुपया चोपड़ा के हिसाब में नकद और चैकों द्वारा जमा हुआ था। चैक प्राय उसके वेतन के थे जो नियमपूर्वक प्रतिमास जमा हो रहे थे। नकद रुपया हज़ारों के अर्कों में जमा हुआ था।

पहले चार वर्ष तक बहुत कम रुपया निकाला गया था और खाते में जमा लगभग पन्द्रह लाख हो गया था। पश्चात् १९१४ से रुपया निकलने लगा। इसमें प्राय रुपया चैकों द्वारा वितरण हुआ। सबसे अधिक चैक दो औरतों के नाम थे। एक श्रीमती मनमोहिनी और दूसरी जेबुल-निसा। कुछ चैक मिस्टर सूरजमोहन के नाम भी थे। बहुत से चैक स्वयं अपने नाम थे। सन् १९१८ में बैंक बैलेंस डेबिट चल रहा था। पश्चात् नवम्बर १९१८ में दो रकमें दस-दस हज़ार की जमा हो गई थीं और अब दिसम्बर के आरम्भ में बीस हज़ार की एक और रकम जमा हो गई

थी। यह सब रुपया कैसे आता था और कहाँ जाता था, बहुत ही सन्देहात्मक था।

सन् १९१७ जून के पश्चात् से लेकर अकाउंट में कर्ज़ा चला आता था। अब एकाएक नवम्बर के पास में कर्ज़ा के स्थान अकाउंट में रुपया जमा था।

कमिश्नर साहब को मनमोहिनी और जैबुलनिसा के विषय में जानने की लालसा हुई। घर जाकर उसने इन्स्पैक्टर जैनरल आफ पुलिस को बुला भेजा। उसको इन दोनो औरतो के विषय में पूरी जानकारी करने को कह दिया।

३

जर्मनी पर विजय-प्राप्ति का उत्सव भारी धूमधाम से मनाया गया। इगलैंड और ब्रिटिश साम्राज्य में तो यह समारोह मनाया ही जा रहा था, हिन्दुस्तान के प्रत्येक नगर और गांव में भी इसके उपलक्ष्य में दीपमाला, सभाएँ, आतिशबाजी, कुश्तियाँ और अन्य खेल तमाशे किये गये। स्कूलो में बच्चों को मिठाई और तमगे दिये गये। पूर्ण देश में रग बिरग की सजावट हुई।

लाहौर में भी ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो कोई स्त्री सजधज कर किसी के स्वागत को तैयार बैठी हो। प्रातःकाल से ही स्कूलों के बच्चे नए-नए कपडे पहन सड़को के किनारो पर गवर्नर बहादुर की सवारी देखने के लिये खडे किये गये। और ठीक आठ बजे गवर्नर की हाथी पर सवारी, उसकी कोठी से चली, और नगर भर में घूमकर ग्यारह बजे किले पर समाप्त हुई।

पश्चात् बच्चो को मिठाई बांटी गई। पूर्ण मार्ग पर झडियां, झडे, बेल-पत्ते, दरवाजे, फूलो के तोरण लगाये गये थे और चारो ओर पुलिस और फौज का प्रबन्ध था।

जलूस में पहले तोपखाना था, पीछे घुड़सवार फौजो, उनके पश्चात्

पैदल फौज और पीछे हाथी पर गवर्नर बहादुर। इसके पीछे नगर के कुछ रईस अपनी-अपनी बग्घियों पर सवार थ।

डिप्टी कमिश्नर मिस्टर चोपडा सब प्रबन्ध करने पर नियुक्त था। वह बहुत प्रात काल से ही घोडे पर भागदौड कर रहा था। सवारों में सबसे आगे घोडे पर वह ही जा रहा था।

सवारी निकल जाने के पश्चात् स्कूलों के बच्चो को अपने-अपने स्कूल लेजाकर मिठाई दी गई और मेडल बांटे गये। इस प्रकार प्रात काल का कार्यक्रम समाप्त हुआ। उसी सायकाल किले के बाहर परेड-ग्राउड पर मेला लगाया गया। मेले में बाजीगरों के तमाशे, सरकस के खेल, नाटक, कुश्तियां, झूले इत्यादि मनोरजन के अनेक आयोजन किये गये।

इसी दिन दोपहर को कई कैदियों को छोडा गया। उनमें दीनानाथ भी था। दीनानाथ लाहौर के सैन्ट्रल जेल में बन्दी था। वह छूटते ही प्रेमनाथ की मां से मिलने गया। जाकर चरण-स्पर्श कर बोला, "मां जी! मेरा अनुमान ठीक निकला। मैं बिना मुकद्दमा चलाये छोड़ दिया गया हूं।"

प्रेमनाथ की मां ने दीनानाथ को आशीर्वाद दिया और कहा, "अब तो तुमको बाल-बच्चों को लेकर लाहौर आ जाना चाहिए।"

"मैं आज ही रात को दिल्ली जा रहा हूं और आशा करता हूं कि एक सप्ताह के भीतर ही यहां चला आऊंगा। यहां आकर कोई काम-काज चालू करने का विचार करूंगा।"

"आज तो यहां भारी उत्सव समारोह है। युद्ध-समाप्ति पर तो हमने दीपमाला की थी। वह तो प्रेम के युद्ध लडने से बच जाने की प्रसन्नता में थी। आज तो मेरे मन में किसी प्रकार का भी उल्लास नहीं है।"

"यह ठीक तो है। उस दिन जो कुछ हुआ उससे हमारा सम्बन्ध था। परन्तु उसके पश्चात् क्या होगा और क्या हो रहा है, हमारे जानने

की बात नहीं है। लड़ाई बन्द होने से हमारे सम्बन्धी मरने-मारने से बच गये, परन्तु शेष जर्मन की जीत रहो अथवा इंगलैंड की, इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"मैं भी कुछ ऐसा ही सोच रही हूँ। इसी कारण आज दीपमाला करने में कुछ उत्साह नहीं हो रहा।"

"प्रेमनाथ का कोई पत्र आया है क्या ?"

"हाँ ! युद्ध-समाप्ति के पश्चात् तीन पत्र आ चुके हैं। उनकी रेजिमेंट अभी मार्सेल्ज में टिकी है। अन्तिम पत्र में उसने लिखा है कि उनको पन्द्रह दिन की छुट्टी पैरिस इत्यादि जाने की मिली है। उसकी रुचि पैरिस जाने की नहीं हो रही। उसने लिखा है कि मार्सेल्ज में जो वासना-तृप्ति के साधन हैं, पेरिस में उससे कहीं अधिक हैं। इससे मैं तो फ्रांस से निकल स्विटज़रलैंड अथवा इटली जाने की स्वीकृति माँग रहा हूँ। फ्रांस में तो हिन्दुस्तानी सिपाहियों को रेल के भाड़े में रियायत मिल रही है। इटली और स्विटज़रलैंड में ऐसी रियायत नहीं। खर्च का प्रबन्ध तो है। मुझको कुछ साथी मिल गये हैं जो साथ चलने को तैयार हो गए हैं। यदि वेतन तथा अन्य रियायतें मिल गईं तो मैं रोम, नेपल्ज इत्यादि ऐतिहासिक स्थान देखने जाने का विचार रखता हूँ। भारत में वापिस आने के लिए अभी कुछ मास और लग जावेंगे। यहाँ से आने वाले जहाजों की भारी कमी है।"

"मा जी," दीनानाथ ने कहा, "अब छुट्टी दीजिए। इन्द्रा के विवाह की बात भी रमाकान्त के आने पर होगी। वह बसरा में था। आजकल पता नहीं कहाँ है। सम्भव है आ ही गया हो। अपने माता-पिता जी से मिलने जा रहा हूँ। वहाँ से ही सब पता चल जायगा।"

दीनानाथ दिल्ली चला गया। कुछ ही दिनों में उसका पत्र वहाँ से आया। उसने लिखा था कि रमाकान्त वापिस हिन्दुस्तान आ गया है। लड़का आजकल दिल्ली में है और विवाह के लिए राजी हो गया है। इस समाचार से प्रेम की माँ को जहाँ सन्तोष और प्रसन्नता हुई वहाँ

चिन्ता भी। वह विवाह के प्रबन्ध के लिए साधनों का विचार करने लगी थी।

एक दिन प्रेम की चिट्ठी रोम से आई। उसमें, उसने लिखा, "माँ, यह बहुत ही सुन्दर नगर है। पुरानी इमारतों की भरमार है और सब कुछ अति सुन्दर, विशाल और प्रभावशाली है।

"कल हम 'क्लूजियम' देखने गये थे और जानती हो मैंने वहाँ क्या देखा? एक गाईड के साथ मम्मी उस भव्य इमारत को देख रही थीं। मैंने दूर से देखा तो उन्हें पहचान अपनी बुद्धि पर ही सन्देह करने लगा था। कितनी ही देर तक चकित हो देखता रहा। फिर समीप पहुँच देखने गया। इस पर मम्मी ने मुझे पहचान लिया। वे मुझको वहाँ ऐतिहासिक स्थानों की सैर करते देख बहुत प्रसन्न हुई।"

"रात हम पाँच साथी उनके होटल में आमन्त्रित थे। वहाँ उन्होंने हमको बहुत बढ़िया खाने को दिया। आज प्रात मैं अकेला उनसे मिलने गया था और उनसे भ्रमण का कारण जानकर दुःख और चिन्ता लग गई है। मैं रेजिमेंट में वापिस जाकर छुट्टी लेने का यत्न करूंगा और स्विटजरलैंड उनके साथ जाकर रहूँगा। वे इस बात के लिए मान गई हैं।"

"हम कल रोम से विदा हो नेपल्ज जा रहे हैं। मम्मी ने इन्द्रा को प्यार और आपको नमस्ते दी है।"

अगले दिन इन्द्रा का मामा हाथ में एक उर्दू का समाचार-पत्र लिए हुए वहाँ आ गया। उसका मुख शोक-ग्रस्त देख शान्ता ने पूछा, "क्या है भैया?"

"क्या बताऊँ बहिन! यह समाचार-पत्र नगर में बिक रहा था। इसमें मिस्टर चोपड़ा के विषय में एक समाचार छपा है।"

"क्या छपा है?"

"लिखा है, 'डिप्टी कमिश्नर के बंगले में हत्या। रात एक बजे के लगभग बंगले के चपरासियों ने गोलियों के चलने की आवाज सुनी तो

भागे हुए भीतर गये। ड्रायिंग-रूम में श्रीमती मनमोहिनी और बेगम जेबुलनिसा की लाशें रक्त से लथपथ एक दूसरे के ऊपर पड़ी देखीं। पास एक पिस्तौल पडा था जो डिप्टी कमिश्नर बहादुर का था।"

"उस समय ड्रायिंग-रूम में और कोई नहीं था। इससे चौकीदार ने हल्ला किया। तो बड़े साहब अपने सोने के कमरे से आंखें मलते हुए बाहर निकल आये।"

"पुलिस इस दुहरी हत्या की जांच कर रही है। अभी किसी को पकड़ा नहीं गया। यह कहा जाता है कि ये दोनो औरतें डिप्टी कमिश्नर बहादुर से घना सम्बन्ध रखती थीं।"

"क्या अन्त का आरम्भ हो गया है?"

"बहिन, धैर्य से भगवान का भजन करना चाहिए। वही जानता है कि ठीक क्या है।"

उस दिन नगर में इन हत्याओ की चर्चा प्रत्येक की ज़बान पर थी। इस हत्या के समाचार के साथ-साथ लोग भांति-भांति की कहानियां कहते थे। शान्ता जब सब्जी आदि ख़रीदने मार्केट गई तो वहां लोगो की भीड़ लगी थी और एक आदमी सुना रहा था, "चोपड़ा की दो विवाहित स्त्रियां थीं। उसमें एक जो हिन्स्तानी थी, घर से निकाल दी गई थी और दूसरी जो अंग्रेज थी, उसकी चरित्रहीनता देख स्वय विलायत चली गई हे। मिस्टर चोपड़ा की मित्रता इन दोनो औरतो से थी और दोनो रात लड़ पड़ी थीं। मिस्टर चोपडा ने क्रोध में आ दोनो को गोली मार दी।"

"दोनो को गोली हृदय-स्थान पर लगी है। और ऐसा कहा जाता है कि दोनो की तुरन्त मृत्यु हो गई थी।"

शान्ता भीड़ के पीछे खडी यह कहानी सुनती रही। इस पर एक ने पूछा, "यह सब तुमको किसने कहा है?"

"साहब का चपरासी चीमा हमारा पडोसी हे। आज बारह बजे तक वह थाने में रहा हे। आया तो उसने सब मुहल्ले वालों को यह

कथा सुनाई है।"

इस प्रकार कथा के स्रोत को विश्वस्त मान किसी को सन्देह करने को स्थान नहीं रहा। सब सिर हिलाते हुए चले गये। जब शान्ता तरकारी लेकर लौटी तो वही आदमी और इकट्ठे हुओं को वही कथा सुना रहा था।

४

कमिश्नर महोदय को मनमोहिनी और जेबुलनिसा की हत्या की सूचना रात को ही मिल गई थी। उन्होंने इन्सपेक्टर-जेनरल पुलिस को टेलीफोन से कह दिया, "मिस्टर चोपड़ा को तब तक न पकड़ा जाये जब तक कोई सुदृढ़ प्रमाण न मिल जावे।" इस कारण पुलिस वहाँ पहुँची और उन्होंने ड्राँयिग-रूम को ताला लगा दिया और खुफिया पुलिस की जांच के लिये प्रातःकाल तक कुछ कार्यवाही नहीं की। केवल चौकीदार को हिरासत में ले लिया।

अगले दिन खुफिया पुलिस ने जांच आरम्भ की। बात इतनी सरल नहीं निकली जितनी कि समझी जाती थी। मिस्टर चोपड़ा का बयान था कि रात कई मित्र उसके घर आये थे। ब्रिज खेलते-खेलते शर्त लगने लगी। मनमोहिनी जीतने लगी और जेबुलनिसा हारने लगी। दोनों रात भर खेलने की ज़िद करने लगीं। मेहमान चले गये तो भी दोनों खेलती रहीं। इस समय मिस्टर चोपड़ा ने भी उनसे छुट्टी ले ली और उनको ड्राँयिग-रूम में छोड़ सोने चला गया। वह जाकर कपड़े उतार गहरी नींद में सो गया। जब पिस्तौल चलने का शब्द सुनकर जागा और चौकीदार का शोर सुन बाहर आया तो उसको हत्याओं का पता चला। पूछने पर मिस्टर चोपड़ा ने बताया कि उसका किसी पर सन्देह नहीं है। पिस्तौल उसके स्टडी-रूम की मेज के दराज में रहता है। रात दराज की चाबी उसके साथ लगी रह गई थी। मेरे मित्रों को पता है कि मैं पिस्तौल वहाँ रखता हूँ।

मिस्टर चोपड़ा ने उन लोगो के नाम लिखा दिये जो रात ग्राये थे। उनमें न तो मनमोहिनी के पति का नाम था और न ही सूरजमोहन का। जेबुलनिसा अविवाहित स्त्री थी।

इसके पश्चात् मनमोहिनी के पति और सूरजमोहन के बयान हुए और पश्चात् अन्य ब्रिज खेलने के लिये उपस्थित लोगो के भी बयान लिये गये। सबने डिप्टी कमिश्नर के बयान का समर्थन किया। सूरजमोहन और मनमोहिनी के पति ने बताया कि वे दोनो एक कॉकटेल पार्टी पर गये हुए थे।

सब कुछ लिखकर सी० आई० डी० का इन्स्पेक्टर मिस्टर रजनीकान्त बैनर्जी अपने कार्यालय में लौट आया और आराम से बैठकर सब बयानों को पढ़ गम्भीर विचार में पड़ गया। पिस्तौल उसके सामने रखा था। जो गोलियां मृत स्त्रियो के शरीर से निकली थीं वे भी सामने रखी थी। शेष चार गोलियां पिस्तौल में रखीं थीं। उसने बारी-बारी सब वस्तुओ को देखा और फिर गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा। वह कई कथायें अपने मन में बसाकर रद्द कर चुका था और और अभी किसी भांति भी अन्तिम परिणाम पर नहीं पहुंचा था कि इसी समय मिस्टर नार्टन ने अपना कार्ड भीतर उसके पास भेजा।

उसने सब सामान उठवाकर मेज़ की दराज में रखवा दिया और तब मिस्टर नार्टन को बुला लिया। हाथ मिलाकर जब मिस्टर नार्टन कुर्सी पर बैठ गया तो मिस्टर बैनर्जी ने प्रश्नभरी दृष्टि से वकील महोदय की ओर देखा।

"मै कल रात की हत्याओं के विषय में कुछ बात करने आया हूं।"

"हूं !" मिस्टर बैनर्जी ने कहा।

"एक आदमी जो जेबुलनिसा में रुचि रखता है और अपने को उसका सम्बन्धी कहता है, मुझसे उसके हत्यारे को पकड़ने में सहायता देने के लिये कह रहा है।"

"हूं ?"

"मैं पंजाब बार का एक विख्यात वकील हूँ और मैं आपको अपनी सेवायें देता हूँ।"

"हूँ।"

"इसी प्रयोजन से मैं आपके पास आया हूँ।"

अब मिस्टर बैनर्जी ने मुख खोला। उसने कहा, "आपको यह विदित होना चाहिये कि हम पुलिस वाले वकीलों से बहुत परहेज़ करते हैं।"

"इस पर भी आप मुकद्दमा अदालत में भेज नहीं सकते जब तक सरकारी वकील से स्वीकृति न ले लें। मैं आपसे सहायता लेने नहीं आया। मैं सहायता देने आया हूँ। आपको यदि यह स्वीकार नहीं तो मैं विवश हूँ। मैं स्वतन्त्र रूप से खोज करूँगा और अदालत की सहायता करूँगा।"

"मेरे मन्जूर करने या न करने की बात नहीं। मैं अपनी खोज में एक वकील की युक्तियों से, जो किसी की ओर से नियुक्त हुआ है, प्रभावित नहीं होना चाहता।"

"तो इसका मतलब यह है कि आप मेरा सहयोग स्वीकार नहीं करेंगे। मुझको आप पर दया आती है। अच्छी बात। गुड बाई!"

इतना कह नार्टन ने उठकर मिलाने के लिये हाथ बढ़ा दिया। मिस्टर बैनर्जी ने हाथ मिलाया नहीं, प्रत्युत यह कहा, "आप बैठिये मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ।"

"हाँ, पूछिये?"

"वह कौन आदमी है जो आपको इस मुकद्दमे में लगा रहा है?"

"ज़ेबुलनिसा की मौसी है जो लंडे बाजार में पेशा करती है।"

"उसका नाम-पता लिख दीजिये।"

मिस्टर नार्टन ने एक काग़ज़ के टुकड़े पर सब कुछ लिख दिया।

"अब आप जा सकते हैं।"

मिस्टर नार्टन मुस्कराया और चलने के लिये उठ खड़ा हुआ। मिस्टर

बॅनर्जी ने पूछा, "आप मुस्करा क्यों रहे हैं ?

"इसलिये कि आपने पूछी तो वह भी व्यर्थ की बात। आप हमारे को पा नहीं सकेंगे। देखिए मिस्टर बॅनर्जी, यह कोई पुलिटीकल केस नहीं है और यदि अपने प्रमाण भली भाँति एकत्र नहीं किये तो अपराधी बच जावेगा।"

"यह मैं जानता हूँ।"

"अच्छी बात है। अब अदालत में मिलेंगे।"

महीनों की खोज के बाद पुलिस ने इन हत्याओं की यह कथा निर्माण की कि दोनो जूआ खेलती-खेलती लड़ पड़ी थीं और दोनो में से एक ने उठ कर स्टडी-रूम से पिस्तौल निकाल लिया और दूसरी को मार डाला। इसी समय फांसी के भयानक दण्ड से बचने के लिये स्वयं आत्म-हत्या कर ली।

पुलिस ने इन हत्याओं के मुकद्दमे को हत्या और आत्महत्या, जिस में हत्यारा स्वयं भी मर चुका है लिखकर फाइल कर दिया।

तीन मास व्यतीत हो जाने पर मिस्टर नार्टन ने हाईकोर्ट में प्रार्थना की कि "जेबुननिसा की मौसी मुमताज, जेबुलनिसा के हत्यारे श्री ए० एन० चोपड़ा पर दफा तीन सौ दो का मुद्दमा चलाने की आज्ञा चाहती है। इस प्रार्थना-पत्र में यह लिखा था कि चूंकि मिस्टर चोपड़ा ज़िला मैजिस्ट्रेट है और पुलिस के भी अफसर हैं, इस कारण पुलिस ने हत्यारे को पकड़ उसपर मुकद्दमा करने में सुस्ती की है।"

"इस घटना का डिप्टी कमिश्नर की कोठी पर होना मात्र और हत्यायें डिप्टी कमिश्नर के पिस्तौल से होना इस बात की मांग करता है कि डिप्टी कमिश्नर को अपराधी के कटघरे में खड़ाकर मुकद्दमा चलाया जाए। जिससे मृत के सम्बन्धियों को सन्तोष हो कि अपराधी को उचित दड मिल गया है।"

"प्रार्थी के पास ऐसे प्रमाण हैं कि हत्यायें मिस्टर ए० एन० चोपड़ा के हाथों हुई हैं। इन प्रमाणों को पुलिस के सामने रखने के लिये प्रार्थी

का वकील पुलिस के पास पहुंचा था, परन्तु पुलिस ने उससे सहायता लेने से इन्कार कर दिया था।"

"न्याय और शान्ति के राज्य की प्रतिष्ठा के लिये यह आवश्यक है कि इस मुकद्दमें की मैजिस्टोरियल जाँच खुली अदालत में आरम्भ की जाये।"

हाई कोर्ट ने इस प्रार्थना-पत्र पर प्रकाश डालने के लिये पंजाब सरकार के ऐडवोकेट-जैनरल को निमन्त्रण दिया। वह उपस्थित हुआ और उसने कह दिया कि प्रमाणों के अभाव में किसी पर मुकद्दमा नहीं चलाया गया। इस पर चीफ जस्टिस ने पूछा, "इसी जिला-पुलिस के अतिरिक्त किसी को जांच पर लगाया गया था क्या ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"आवश्यकता नहीं समझी गई।"

"यदि मिस्टर चोपड़ा इन हत्याओं में लिप्त हो तो क्या यह सम्भव नहीं कि वह जांच में बाधा डाल सकता है ?"

"यह एक ख्याली प्रश्न है ? मिस्टर चोपड़ा हत्याओं में लिप्त नहीं माना गया।"

"हत्यायें उसकी पिस्तौल से हुई हैं क्या ?"

"हाँ, यह केवल असावधानी का परिणाम है जिसके लिये केवल डिपार्टमैन्टल चेतावनी आवश्यक समझी गई है।"

"हत्याओं के समय क्या चोपड़ा के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति कोठी में पाया गया था ?"

"नहीं ! परन्तु ऐसा माना गया है कि हत्यारे ने आत्मघात कर लिया है।"

इस बयान के उत्तर में मिस्टर नार्टन ने कहा, "मुकद्दमा किसी स्वतन्त्र अदालत में चलना चाहिये और हत्यारे के विरुद्ध प्रमाण, जो हमारे पास हैं, सुनने चाहियें। यदि प्रारम्भिक जांच में प्रमाण, विश्वस्त

न माने जायें तो अपराधी सेशन कोर्ट में भेजा जाये। काफी प्रमाण हैं जो यह प्रकट करते हैं कि हत्यारा दोनों मृतों से कोई पृथक् है। पुलिस ने जांच के समय असावधानी से काम लिया है। इसका प्रमाण मेरा स्वयं प्रमाण लेकर मिस्टर बैनर्जी के पास जाना और उनका मेरी सहायता लेने से इन्कार कर देना है।"

हाईकोर्ट ने निर्णय दे दिया कि मुकद्दमा हाईकोर्ट की स्पेशल बैंच के सामने हाईकोर्ट की 'ओरिजिनल साईड' पर होगा।

इस समाचार ने देश भर में सनसनी उत्पन्न कर दी।

५

रोम से आई चिट्ठी के एक मास अनन्तर प्रेमनाथ का एक पत्र बर्न से आया। उसने लिखा, "मुझको रेजिमैन्ट से छः मास की अवैतनिक छुट्टी मिल गई है। मैं तुरन्त ही वहां से बर्न चला आया हूं। परन्तु यहां बताये पते पर और अन्य सब होटलों में ढूंढ़ने पर मम्मी का पता नहीं चला। मैं अभी यहां पर ही हूं और यत्न कर रहा हूं कि मम्मी का पता करूं। यहां की पुलिस मेरी सहायता कर रही है।"

"अभी तक तो यह पता चला है कि एक स्त्री जिसका नाम ऐमिली चोपड़ा है और जिसके पास हिन्दुस्तान की सरकार का पासपोर्ट था, रोम से जनेवा और जनेवा से इटली की सीमा पार कर स्विटजरलैंड में आई थी। पश्चात् वह कहां गई है कुछ पता नहीं चल रहा।"

"जीवित अथवा मृत, जैसा भी हो उसको ढूंढ़ने का यत्न किया जा रहा है। मेरे पास रुपये कम हो रहे हैं, परन्तु मुझको एक अंग्रेज होटल में बैरे का काम मिल गया है। आशा करता हूं कि मैं कुछ ही काल यहां रहकर मम्मी की खोज करवा सकूंगा।"

यह समाचार और भी दुःखकारक सिद्ध हुआ। शान्ता के पास रुपये भेजने को नहीं थे। साथ ही उसके अपने निर्वाह के लिये भी कठिनाई उत्पन्न हो रही थी। वह चाहती थी कि ऐमिली के दिये रुपयों को न

छूए, परन्तु विवशता बढती जाती थी और वह इस विषय में विचार कर रही थी।

शान्ता ने दीनानाथ को पत्र लिखकर बुला लिया और इन्द्रा के विवाह का बैंक से रुपया निकालने का प्रबन्ध कर लिया।

इन्द्रा का विवाह हो गया। दीनानाथ के कहने पर उसके भाई ने बिना किसी प्रकार के दहेज के विवाह स्वीकार कर लिया। इस विवाह के समय शान्ता ने एक पत्र इन्द्रा के पिता मिस्टर चोपड़ा को लिखा था, परन्तु वह नहीं आया और न ही उसने कोई उत्तर दिया। इससे शान्ता को विस्मय नहीं हुआ। वह ऐसी ही आशा करती थी। इस पर भी वह अपना कर्तव्य समझती थी कि लड़की के पिता को सूचित कर दे।

अभी ऐमिली के विषय में चिन्ता लगी ही हुई थी कि समाचार पत्र में मिस्टर नार्टन के हाईकोर्ट में प्रार्थना का समाचार प्रकाशित हुआ। यद्यपि इन्द्रा के विवाह पर मिस्टर चोपड़ा के आशीर्वाद तक न भेजने की कटुता विद्यमान थी, तो भी वह इस समाचार से प्रसन्न नहीं हुई।

दो दिन के पश्चात् उसे यह समाचार मिला कि मिस्टर चोपड़ा के बंगले पर हुई हत्याओं का मुकद्दमा हाईकोर्ट की स्पेशल बेंच के सामने होगा। बेंच नियुक्त हो गई और मुकद्दमे की तिथि निश्चित हो गई।

शान्ता इस समाचार से अपने मन की विचित्र अवस्था पाती थी। उसको इस मुकद्दमे से प्रसन्नता तो हुई नहीं पर कोई चिन्ता का कारण है अथवा चिन्ता करने की आवश्यकता है, यह नहीं समझ सकी।

आजकल वह अकेली थी और करने को कुछ नहीं था। गीता, रामायण का पाठ करना, पूजा-पाठ में लगे रहने और भोजन-व्यवस्था बनाये रखने के अतिरिक्त और कुछ भी काम नहीं था। इससे चित्त उदास रहने लगा था।

जिस दिन से डिप्टी कमिश्नर के बंगले में हुई हत्याओं का मुकद्दम

आरम्भ हुआ उस दिन से ही वह नित्य मुकद्दमे में रुचि लेने लगी। नियम से वह समाचार-पत्र खरीदती और किसी से पढ़वाती। समाचार प्रायः अंग्रेजी के 'ट्रिब्यून' पत्र में छपते थे।

पहले ही दिन मिस्टर नार्टन ने अपने मुकद्दमे को उपस्थित करते हुए कहा, "घटना इस प्रकार हुई---

"रात के पौने एक बजे चौकीदार ने गोली चलने की आवाज़ सुनी और वह भागकर भीतर गया। उसने देखा कि दो शव लहू से लथपथ ड्राइंग-रूम में पड़े हैं।"

"चपरासी ने शोर मचाया।"

"मिस्टर चोपड़ा स्लीपिंग-सूट पहने सोने के कमरे में से आँखें मलते हुए निकले।"

"यह घटना है जो हुई। इस पर पुलिस की जांच मुझको आज तक प्राप्त नहीं हुई। यह कहा गया है कि चूँकि पुलिस मुकद्दमा नहीं चला रही इस कारण पुलिस को विवश नहीं किया जा सकता कि वह अपनी जांच अदालत में उपस्थित करे।"

"माई लार्ड! यह व्यवहार कानून से ठीक होते हुए भी अदालत को न्याय करने में रुकावट डालने के बराबर है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस जांच पर सरकार से नियुक्त बैनर्जी साक्षी के रूप में बुलाये जायें।"

मिस्टर बैनर्जी साक्षी देने के लिये उपस्थित हुआ तो मिस्टर नार्टन ने उस पर प्रश्न करने आरम्भ कर दिये।

"आपको इस जांच के लिये स्पेशल एलाऊँस क्या मिला है?"

"चूँकि जांच में लाहौर से कहीं बाहिर नहीं जाना पड़ा, इस कारण टांगा-भाड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला।"

"आपको वेतन कितना मिलता है?"

"सात सौ पच्चीस रुपये मासिक।"

"आप प्रति मास अपना वेतन बैंक में जमा करा देते हैं और फिर

उसमें से खर्चे के लिये धन निकालते हैं। मैं समझता हूँ यह आपका स्वभाव है। आपका हिसाब किस बैंक में है ?"

"बंगाल में।"

"इस मुकद्दमे की जाँच के लिये आपकी नियुक्ति किस तारीख से हुई थी ?"

"नवम्बर की तीस तारीख से मैं इस कार्य में लगा था।"

"हाँ! तो देखिए मिस्टर बैनर्जी, आपके बैंक में हिसाब की यह प्रतिलिपि है। दिसम्बर मास से लेकर आज मई मास तक आपके खाते में प्रतिमास सातसौ पच्चीस रुपये तो जमा हैं, पर खर्चे के लिये कुछ नहीं निकाला। क्या आप बता सकते हैं कि यह पाँच मास तक आपका खाना-पीना कहाँ से चलता रहा है ?"

"मैंने अपनी कुछ जायदाद बंगाल में बेची है। उससे खर्चा चलता रहा है।"

"ठीक है। उस जायदाद का पूरा विवरण आप यहाँ जमा करा सकते हैं क्या ?"

"उसका इस मुकद्दमे से कोई सम्बन्ध नहीं।"

"अच्छा, यह बताइये कि श्रीमती मनमोहिनी और जेबुलनिसा के सामने ब्रिज खेलने का ताश मिला ?"

"इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया।"

"उनके सामने अथवा जेब में कोई रुपया निकला ?"

बैनर्जी चुप रहा।

"आपने मालूम किया कि कितनी गोलियाँ चली थीं ?"

"दो।"

"पिस्तौल में कितने चेम्बर खाली थे ?"

"दो।"

"शरीर में से कार्तूस कितने मिले ?"

"दोनों के शरीर में से एक-एक।"

"पर दो दिन पीछे एक कार्तूस चौकीदार ने बरामदे की दीवार से निकालकर आपको दिया था, क्या यह ठीक है ?"

"हाँ।"

"उसके विषय में आपने जाँच की कि वह कैसे और कहाँ से आया ?"

"वह हत्या की घटना के साथ सम्बन्ध रखता प्रतीत नहीं होता था।"

"आपने मिस्टर चोपडा से पूछा कि वे कितने बजे सोने चले गये थे?

"बारह बजे के लगभग।"

"घटना कितने बजे घटी ?"

"पौने एक बजे।"

"तो पौन घंटे में मिस्टर चोपड़ा इतनी गहरी नींद सो गये कि वह आँखें मलते हुए निकले ?"

"चौकीदार ने यही कहा है।"

"कोठी की तलाशी ली गई ?"

"किसलिये !"

"यह देखने के लिए कि कोई हत्यारा वहाँ छिपा है अथवा नहीं ?"

"नहीं।"

६

इस प्रकार घंटे के उपरात घंटा और दिन के उपरांत दिन इन प्रश्नोत्तरो में व्यतीत होने लगे। श्री बेनर्जी के पश्चात् पुलिस इन्स्पेक्टर और पीछे कोठी के चपरासी के बयान हुए। श्रीमती मनमोहिनी के पति, जेबुलनिसा की मौसी, और मिस्टर सूरजमोहन के बयान हुए। अन्त में मिस्टर चोपड़ा के बयान हुए।

मुकद्दमे की प्रगति से जनसाधारण के मन में यह अंकित होता जाता था कि मिस्टर चोपड़ा इन हत्याओ से सम्बन्ध रखता है। इस कारण मिस्टर चोपड़ा के बयान के दिन अदालत का कमरा दर्शको से तथा वकीलों से खचाखच भरा हुआ था। दर्शकों में शांता भी एक कोने में कुर्सी पर

चिंतित भाव बनाये बैठी थी।

मिस्टर नार्टन आज भली भांति तैयार होकर आया था। उसने अपने सामने रखी फाइल को अदालत के बैठने से पहले भली भांति देख लिया था। जब अदालत बैठ गई तो उसने अपने प्रश्न पूछने आरम्भ किये। मिस्टर नार्टन ने पूछा —

"आपके कितने विवाह हो चुके हैं ?"

"इसका मुकद्दमों के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। इस कारण मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता।"

"माई लार्ड! किसी मनुष्य द्वारा दूसरे की हत्या एक मानसिक कृत्य है। हत्यारे के मन की विकृत अवस्था का उससे की गई हत्या से सम्बन्ध होता है। मैं मिस्टर चोपड़ा के जीवन की घटनाओं से यह सिद्ध करना चाहता हूं, कि उसमें विकार है और उस विकारयुक्त अवस्था में ऐसी-ऐसी परिस्थितियां आईं कि जिनका प्रभाव हत्या होने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। इस कारण मैं यह प्रश्न पूछ रहा हूँ। यद्यपि इन घटनाओं का कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु जीवन की घटनाओं ने ऐसी मन की अवस्था बनाई है जिसमें हत्यायें हो गई हैं। मुझको प्रश्न पछने की स्वीकृति दी जावे।"

न्यायाधीश ने कहा, "हम मिस्टर नार्टन की कठिनाइयों को समझते हैं। वह बिना पुलिस की सहायता से इन नृशंस हत्याओं का रहस्योद्घाटन कर रहे हैं। इस कठिनाई का अनुभव करते हुए हम उसको स्वीकृति देते हैं कि वह जो उचित समझे पूछ सकता है।"

"हां, तो मिस्टर चोपड़ा ! आपकी कितनी बीवियां हैं ?"

'मैं उत्तर देने से इन्कार करता हूं।"

"आपका पहला विवाह किस सन् में हुआ था ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपका दूसरा विवाह किस सन् में हुआ और कहां पर हुआ ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपकी पहली स्त्री से कितनी सन्तानें हैं ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपकी लड़की की शादी दो मास हुए हुई थी क्या ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपको निमन्त्रण मिला था क्या ?"

कोई उत्तर नहीं दिया गया।

"आप विवाह पर नहीं गये थे न ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपने अपनी पहली बीवी में कोई आपत्तिजनक बात देखी है क्या ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपका दूसरा विवाह कोर्ट में हुआ था क्या ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

आपने मजिस्ट्रेट के सामने शपथ खाकर कहा था कि आपकी पहली कोई बीवी नहीं ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

"आपने दूसरी बीवी को स्विटजरलैंड भेज दिया है न ?"

उत्तर नहीं दिया गया।

इस समय न्यायाधीश ने कहा, "मिस्टर चोपड़ा, इन सब बातों का उत्तर न देने से आपकी मानसिक अवस्था का एक भयानक चित्र बनता जाता है। मैं आपको सचेत कर रहा हूँ।"

इस चेतावनी से मिस्टर चोपड़ा घबरा उठा। उसका मुख विवर्ण हो गया और उसके होंठ फड़कने लगे। मिस्टर नार्टन ने इसे अपनी विजय समझ पुनः पूछा, "आपकी दूसरी बीवी स्विटज़रलैंड भेज दी गई है क्या ?"

"वह पागल हो गई थी।"

"तो उसको अकेले क्यों भेजा है ?"

"वह मुझसे लड़ती थी।"

"उससे आपके कितने बच्चे हैं?"

"तीन।"

"सबसे बड़ा कितना बड़ा है?"

"लगभग तेरह वर्ष का।"

"उसको आपने अपनी माँ को मिलने से मना कर दिया था?"

"हाँ, वह पागल हो गई थी।"

"माई लार्ड! मैं आपका इतना समय लेने के लिए क्षमा चाहता हूँ, परन्तु जो कुछ मैं आगे पूछना चाहता हूँ यह उसकी पृष्ठभूमि है।"

इस पर उसने पुन मिस्टर चोपड़ा से पूछना आरम्भ कर दिया।

"आपके बैंक के हिसाब में नवम्बर मास के अंत में तीस हजार कर्जा लिखा है। क्या यह ठीक है?"

"होगा।"

"नवम्बर और दिसम्बर मास में आपने चालीस हजार निकलवाया है। इसमें ग्यारह हजार तो आपने अपनी स्त्री को दिया था, शेष किसको और किस काम के लिए दिया था?'

"मुझको याद नहीं कि मैंने क्या दिया था, और क्या लिया था।"

"पर इस चमत्कार को तो आप बता सकते हैं कि तीस हजार कर्जा के स्थान बीस हजार जमा भी हो गया।"

"मुझको कुछ पता नहीं कि यह क्या हुआ?"

"फिर एकाएक आपका बैंक-बैलेंस बढ़कर साठ हजार हो गया है, यह कैसे हुआ?"

"मैं बता चुका हूँ।"

"आपने बहुत से चैक जेबुलनिसा और मनमोहिनी को दिये हैं। ये किस बात के बदले में हैं?"

"जूए में हार के रुपये होंगे।"

"जिस रात हत्यायें हुई थीं, उस रात आप कुछ हारे थे या जीते थे?"

"जहाँ तक मुझको स्मरण है, मैं बराबर रहा था।"

"उस घटना के पश्चात् आपके यहाँ कुछ लोग एकत्र हुए थे या नहीं ?"

"नहीं।"

"पर आपका बैंक-बैलेंस निरन्तर कम होता गया है, यह क्यों ?"

"मेरी बीवी को रुपये की ज़रूरत पड़ती रही है।"

"किस बीवी को ?"

मिस्टर चोपडा घबरा उठा था। इस पर भी मन को दृढ़ करते हुए बोला, "जो स्विटज़रलैंड गई है ?"

"यह रुपया आप किस सूरत में भेजते थे। बैंक-ड्राफ्ट से अथवा दस्ती ?"

इस पर मिस्टर चोपडा के माथे पर पसीने की बूंदें दिखाई देने लगीं। मिस्टर नार्टन ने मिस्टर चोपड़ा को चुप देख अदालत से कहा, "गवाह थक गया मालूम होता है। यदि इसको एक ग्लास पानी का मिल जाय तो यह मेरे प्रश्नो का सही उत्तर अधिक अच्छी तरह दे सकेगा।"

एक ग्लास पानी पीकर मिस्टर चोपडा ने नार्टन के प्रश्न के उत्तर में कहा, "मैंने अपनी बीवी को सीधे रुपया नहीं भेजा। सैनिटोरियम के डाक्टर मिस्टर शच्यूमैन की मार्फत भेजा है। उसका पता है, मैन्टल सैनिटोरियम बर्न।"

"हत्या की रात मनमोहिनी और ज़ेबुलनिसा के पास कितना-कितना रुपया था ?"

"मनमोहिनी और ज़ेबुलनिसा के पास कम-से-कम हज़ार रुपया था, जब मैं उनको खेलते हुए छोडकर सोने गया था। वह रुपया कहाँ गया मैं नहीं जानता। मैंने केवल एक गोली का शब्द सुना। पहली गोली का शब्द शायद मेरे जागने से पहले हुआ हो। जब मैं चौकीदार के हल्ला करने पर ड्रांयिग रूम में आया, तब नीचे मनमोहिनी थी और ऊपर ज़ेबुलनिसा। पिस्तौल पृथक् हटकर पड़ा था।"

मिस्टर चोपड़ा के पश्चात् शान्ता के बयान हुए। उसने अपने विवाह की कथा वर्णन की और फिर घर से निकाले जाने की बात बताई। पश्चात् उसके लड़के प्रेमनाथ के पकड़े जाने और फौज में भर्ती हो जाने की कथा बताई। उसने यह भी बताया कि बीस रुपया मासिक खर्च वह कई वर्षों से नहीं ले रही। अन्त में उसने प्रेमनाथ के पत्र जो बर्न से आये थे सुना दिये। अन्तिम पत्र में प्रेमनाथ ने लिखा था, "यहाँ मैन्टल सैनिटोरियम नामक कोई सस्था नहीं। डाक्टर शव्यूमैन नाम का बर्न में कोई व्यक्ति नहीं रहता। यहाँ की पुलिस खोज रही है और आज ही यहाँ के पुलिस इन्स्पेक्टर ने मुझे विश्वास दिलाया है कि वह मिसेज चोपड़ा का पता पाए बिना शान्ति से नहीं बैठेगा। वे उस आदमी का पता पा गये हैं जो डाक्टर शव्यूमैन के नाम से हिन्दुस्तान से रुपया पा रहा है।"

७

इन सब बयानों को लेने में अदालत को डेढ़ मास से अधिक लग गया। मिस्टर चोपड़ा के बयान होने के पश्चात् उसको सरकार ने अपनी पदवी पर काम करने से रोक दिया था। उसको सैक्रेटरी आफ स्टेट का यह पत्र मिला था, "चूंकि आपके विरुद्ध भारी आरोप हैं और उन आरोपों के विषय में पंजाब हाईकोर्ट में जांच हो रही है, इस कारण आपको नौकरी करने से, बिना वेतन के रोका जा रहा है। मुकद्दमे के निर्णय के पश्चात् आपको नौकरी पर पुनः लगाने पर भी विचार किया जायेगा।"

उसी दिन हाईकोर्ट ने मिस्टर चोपड़ा को पकड़ने के लिए वारंट निकाले थे। चोपड़ा लाहौर से भाग गया, परन्तु एक झूठे नाम से बम्बई में एक जहाज पर सवार होता हुआ पकड़ लिया गया। वह पकड़ कर लाहौर में लाया गया और अदालत में उपस्थित किया गया।

मिस्टर चोपड़ा ने मिस्टर सूरजमोहन को अपना वकील नियुक्त किया। मिस्टर नार्टन ने इस मुकद्दमे में तीन दिन तक बहस की। उसके

वक्तव्य का निष्कर्ष यह था कि "मिस्टर चोपड़ा अपनी छोटी अवस्था से ही अपराधी है। छोटी-छोटी बातों को छोड़कर भी उसने मिस ऐमिली जान्सन को यह धोखा दिया कि उसका पहले कोई विवाह नहीं हुआ था और उसकी पहले कोई पत्नी नहीं थी। मिस्टर चोपड़ा ने लन्दन के मैजिस्ट्रेट के सम्मुख झूठ बोला। दूसरा अपराध यह किया कि पहली बीवी को जिसके दो बच्चे थे, केवल बीस रुपये महीना देकर घर से निकाल दिया। ज्यूं-ज्यूं मिस्टर चोपड़ा बड़े होते गये उनकी दिमागी हालत बिगड़ती गई और मिसेज़ ऐमिली चोपड़ा के इनके ठीक रास्ते पर लाने के प्रयत्न करने पर उसके भी विरुद्ध हो गए। यहां तक कि उसको पागल घोषित किया और उसको बच्चो से भी मिलने से मना कर दिया। अन्त में बच्चो की मां को स्विटजरलेंड में एक मेन्टल हौस्पिटल भेजने के बहाने उसको चरित्रहीन लोगो के हाथ सौंप दिया। मिस्टर शच्यूमैन को मिस्टर चोपड़ा रुपया भेजते है, इस कारण कि वह उसकी बीवी को कहीं कैद कर रखे।"

"मिसेज ऐमिली चोपड़ा के हिन्दुस्तान से जाने के पहले ही मिस्टर चोपड़ा की संगत नगर के बुरे चरित्र के लोगों से हो गई थी। ऐसा मालूम होता है कि इनकी अंग्रेज बीवी इन शराब पीनेवालो और जूआ खेलने वालो का कोठी में आना पसन्द नहीं करती थी। तभी उसको यहां से भगा देने का प्रबन्ध कर दिया गया।"

"मिसेज ऐमिली चोपड़ा के यहां से चले जानेपर जूएबाजो का प्रभाव मिस्टर चोपड़ा पर बढ़ गया और वे लोग इससे अधिक और अधिक रुपया खेंचने लगे। एक सीमा आई जब मिस्टर चोपडा इन जूएबाजो का और अधिक रुपया देने में असमर्थ हो गए और उसी असमर्थता का परिणाम ये हत्यायें हुई।"

"माई लार्ड ! यहां तक तो बात सर्वथा स्पष्ट हो गई है। मिस्टर चोपड़ा को हत्याओ के होने का ज्ञान था। और उसकी इनके होने में सहायता भी थी। जो बात अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी वह यह है कि

पिस्तौल किसने चलाया। मृतों में से किसी ने पिस्तौल चलाया है ऐसा सिद्ध नहीं होता। इसके विपरीत पिस्तौल का एक दम दो बार चलने और शायद तीन बार चलने से यह सिद्ध होता है कि मृतों में से किसी ने भी पिस्तौल नहीं चलाया।"

"पिस्तौल किसी मृत के हाथ में नहीं था। वह दूर पड़ा था। और मृतों के दाहिनी ओर नहीं बाईं ओर पड़ा था। साथ ही तीसरी गोली किसने चलाई यह भी बात स्पष्ट नहीं हुई। इस पर भी इतना तो स्पष्ट हो गया है कि मिस्टर चोपड़ा इण्डियन क्रिमिनल कोड की धारा १०८, हत्या करने में सहायता करने का अपराधी है। इसको धारा १०८ और ३०२ के अधीन सेशन कोर्ट में जाँच के लिए भेज देना चाहिए।"

इसके पश्चात् मिस्टर सूरजमोहन ने मिस्टर चोपड़ा की रक्षा में बहस की। उसका कहना था कि मिस्टर चोपड़ा का अपनी स्त्रियों से कैसा व्यवहार है, वह इस मुकद्दमे से सम्बन्ध नहीं रखता। जहाँ तक उसकी आय और व्यय की बात है वह उसकी अपनी निज की बात है। इन हत्याओं से उसका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। कोई नहीं जानता कि गोली किसने चलाई है? मिस्टर चोपड़ा को उस गोली चलाने वाले का पता था, यह सिद्ध नहीं हो सका। इस प्रकार मिस्टर चोपड़ा किसी प्रकार से भी दोषी सिद्ध नहीं हो सके और अदालत को उनको मुक्त कर देना चाहिये।

परन्तु अदालत का निर्णय मिस्टर नार्टन के अनुकूल ही हुआ। अदालत ने इतना और कहा कि लाहौर का डिप्टीकमिश्नर जैसा उत्तर-दायित्व पूर्ण पदाधिकारी इतनी भूलें अनजाने में करे जिससे उसकी कोठी में दो-दो हत्यायें हो जायें, समझ में नहीं आता। फिर मृतों के पास न तो ताश मिली न रुपया, यह प्रकट करता है कि वे वहाँ पर जूआ नहीं खेल रही थीं। यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि वे मिस्टर चोपड़ा से रुपया माँग रही थीं और मिस्टर चोपड़ा ने गोली मारकर मार डाला। इन औरतों के साथ कोई तीसरा आदमी था, जो भागा है और उसको

मार डालने के लिये तीसरी गोली चलाई गई थी। वह आदमी भाग गया है। उसके पाप इतने अधिक हैं कि खुले में अपना नाम प्रकट करने से डरता है।

इस तमाम मुकद्दमे में जो सबसे अधिक दुःख की बात है वह यह कि पुलिस ने अपराधी को पकड़ने का कुछ भी यत्न नहीं किया। यह भी शायद इस कारण है कि जिले का बड़ा हाकिम ही अपराधी है। हम मिस्टर चोपड़ा को सैशन कोर्ट में मुकद्दमे की आगे की जाँच के लिए भेजते हैं। हमारे विचार में अपराधी ने इंडियन पीनल कोड की धारा १०८, ३०२ और ३०३ के अनुसार अपराध किये हैं।

मुकद्दमा सैशन कोर्ट में गया। मिस्टर चोपड़ा को अब अपनी जान की चिन्ता होने लगी। इस कारण उसने कलकत्ता और इंगलैंड से वकीलों को बुला लिया। और वह अपनी सफाई का प्रबन्ध करने लगा।

मिस्टर चोपड़ा का धन धड़ाधड़ व्यय होने लगा। वकील, साक्षी, जेल के अफसरों, पुलिस के अफसरों को रिश्वत और अन्य अनेकों प्रकार के व्यय होने लगे। आमदन शून्य हो गई। मिस्टर चोपड़ा ने पचास हजार की बीमा पालिसी ली हुई थी। वह पेडअप करनी पड़ी। पश्चात् उस पालिसी पर रुपया उधार लेना पड़ा। मुकदमा समाप्त होने तक मिस्टर चोपड़ा अपनी सब सम्पत्ति व्यय करके मित्रों से चन्दे इकट्ठे कर भी व्यय कर चुका था।

इस सब कुछ व्यय करने का फल कुछ नहीं निकला। मुकद्दमा ढीला होने के स्थान सैशन कोर्ट में जाकर और भी दृढ़ हो गया। ढूंढ़ते-ढूंढते मिस्टर शच्यूमैन के नाम से एक व्यक्ति के उन्हीं दिनों नीडोज होटेल में ठहरे होने की सूचना मिल गई।

उस आदमी की लाहौर में उपस्थिति, हत्या के दिन एक महान् खोज मानी गई। परन्तु वह आदमी उस दिन कोठी में था, यह सिद्ध नहीं हो सका। मिस्टर चोपड़ा के लिये इस बात का पता होना बुरा ही सिद्ध हुआ। इस सन्देह के होने पर कि गोली चलानेवाला शच्यूमैन

था, मिस्टर चोपड़ा की हत्याओं में सहायता सिद्ध हो जाती थी। इस कारण जहाँ नार्टन का पूर्ण बल इस बात पर था कि वह ढूढ़ा जाये, वहाँ चोपड़ा के वकील मिस्टर शच्यूमैन के लाहौर होने की घटना को अनावश्यक बताने में जोर देने लगे।

मुकद्दमा अभी सेशन कोर्ट में चल ही रहा था कि जनेवा से ऐमिली का तार आ गया। उसमें लिखा था कि वह कहे जाने वाले शच्यूमैन के पजे से छूट गई है। वह आदमी भी पकड़ लिया गया है।

८

अमृतसर स्टेशन पर प्रेमनाथ का उस सिख सिपाही के साथ जिसने इन्द्रा का हाथ पकड़कर घसीटा था, लड़ने के लिये तैयार हो जाना उसकी ख्याति का कारण बन गया। इस पर उस रेजिमेंट के कप्तान को जब यह पता चला कि वह लाहौर के डिप्टी कमिश्नर का लड़का है, तो उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई।

उस सिख सिपाही को जिसने इन्द्रा पर हाथ उठाया था दो दिन तक क्वेर-हिरासत में रहने का दण्ड दिया गया। पश्चात् प्रेमनाथ अपनी कहानियाँ सुनाने की योग्यता से दिन प्रतिदिन विख्यात होने लगा। जब तक रेजिमेंट मारसेल्ज पहुँची प्रेमनाथ अपनी रेजिमेंट में सब का प्रिय, विश्वस्त और सम्मानित हो चुका था।

मारसेल्ज में पहुँचने के दिन ही युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए थे। इस कारण प्रेमनाथ वाली रेजिमेंट को अन्य कई रेजिमेंटों के साथ वहीं ठहरने की आज्ञा आ गई।

विजयोत्सव वाले दिन, प्रेमनाथ वाली रेजिमेंट को नगर में घूमने की छुट्टी मिली। सब सिपाहियों को उस दिन जेब खर्च के लिये रुपये मिले, इस कारण रेजिमेंट के सिपाहियों की टोलियाँ नगर की सजावट और उत्सव देखने के लिये घूमने लगीं।

प्रेमनाथ वाली टोली में चार सिपाही थे। इनमें एक बसाखासिह

सिपाही था जिसकी प्रेमनाथ के साथ घनिष्ठता बहुत हद्द तक बढ़ गई थी। प्रेमनाथ बसाखासिंह की बांह में बांह डालकर मारसेल्ज की गलियों में चल निकला।

मारसेल्ज में उस दिन छुट्टी मनाई गई थी। लोग बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, युवक, युवतियां नये-नये कपड़े पहन झुंडों-के-झुंड गाते-बजाते, नाच-रंग मनाते, हँसी-मजाक करते हुए सड़कों पर, पार्कों में, समुद्र-तट पर तथा अन्य दर्शनीय स्थानों पर घूम रहे थे।

उस दिन फ्रांस भर में अमेरिकन और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की भारी मान-प्रतिष्ठा थी। सब के अन्तरात्मा यह मानते थे कि उनके देश की ईंट से ईंट बजाने से बचानेवाले यही सिपाही थे। फ्रांस के नगर-नगर और गांव-गांव में जहाँ-जहाँ इन देशों के सिपाही दिखाई दिये, वहाँ के लोगों ने उनको खिलाया-पिलाया और वहां की स्त्रियों ने उनके साथ नाच किया और उनकी बहादुरी पर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। मारसेल्ज में भी हिन्दुस्तानी सिपाहियों की बांहों में बाहें डाल वहां की स्त्रियों ने सिपाहियों को मारसेल्ज़ के दर्शनीय स्थानों की सैर कराई।

प्रेमनाथ और बसाखासिंह घूमते हुए, 'सी बीच' पर पहुँच गये। वहाँ लोगों की इतनी भीड़ थी कि वे अपने साथियों से पृथक् हो गये। समुद्र के तट पर एक खुले मैदान में एक बैंड बज रहा था। और सब लोग मानयुक्त मुद्रा में खड़े उस बैंड के साथ गीत के पद गा रहे थे। प्रेमनाथ भी अपने साथी के साथ वहां जा खड़ा हुआ। और लोगों को एक अतुल उत्साह से यह गीत गाते देख समझ गया कि यह कोई राष्ट्रीय भावना का गीत है।

गीत समाप्त हुआ तो बैंड ने कोई नाच की ध्वनि बजाई। इसके बजते ही सहस्रों नर-नारी परस्पर कमर में हाथ डाल नाच करने लगे। एक बहुत मोटी फ्रांसीसी औरत आई और इनको फ्रांसीसी भाषा में कुछ कहने लगी। जब प्रेमनाथ और बसाखासिंह विस्मय में उसके कहने का अर्थ समझने का यत्न करने लगे, तो उस औरत ने बसाखासिंह को दूसरे

नाचते हुए जोड़ों की ओर संकेत किया और उसकी कमर में हाथ डाल उसको नाचने के लिये ले गई। प्रेमनाथ वसाखासिंह की बेढंगी गति और घबराहट को देख खिलखिला कर हँसने लगा। अन्य लोग भी उस मोटी स्त्री को झल्ले वसाखासिंह के साथ बेमिले कदमों के साथ चक्कर काटते देख, हँसने लगे। वह औरत जबरदस्त प्रतीत होती थी। दो-तीन चक्करों में ही वसाखासिंह उस औरत के साथ भीड़ में विलुप्त हो गया।

प्रेमनाथ अकेला खड़ा-खड़ा लोगों को विजयोत्सव के आनन्द में पागलों की भाँति नाचते-कूदते देख बहुत ही विस्मय कर रहा था। इस समय एक लड़की उसके पास आई और अंग्रेजी में बोली, "आई शैल बी ग्लैड टु हैव ए टर्न विद यू।"

पहले तो प्रेमनाथ ने समझा कि वह किसी अन्य व्यक्ति को, जो उसके पीछे खड़ा है, कह रही है। उसने घूमकर देखा कि वह किस को कह रही है। उसके पीछे कोई खड़ा नहीं था। उसके सब साथी इस समय किसी न किसी साथिन को पा गये थे। उसकी इस परेशानी को देख वह लड़की हँसकर बोली, "आई एम स्पीकिंग टु यू।"

प्रेमनाथ ने अब उस लड़की को देखा, वह सर्वथा कुमारी सोलह-सत्रह वर्ष की प्रतीत होती थी। प्रेमनाथ ने कठिनाई से अपनी झिझक निकाल कर कहा, "मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। पर मैं नाचना नहीं जानता।"

"तो इस इतने बड़े जन-समूह में और कौन जानता है? सब बेताल नाच-गा रहे हैं।"

इतना कह उसने अपना हाथ उसकी कमर में डाल दिया और दूसरे हाथ को पकड़कर नाचने के लिये उसको घुमाने लगी। विवश प्रेमनाथ ने भी उसकी कमर में हाथ डाल उसकी नकल उतारनी शुरू कर दी। दो मिनट में ही प्रेमनाथ के मस्तिष्क में बाजे की ध्वनि और लय समा गई और उसको अपने नाचने पर स्वयं ही विस्मय होने लगा।

पाँच मिनट तक बैंड बजता रहा और इतने काल में तो प्रेमनाथ इस प्रकार के कम्युनिटी डांस में अपने को नाच जाननेवाला समझने लगा।

जब बैंड बन्द हुआ तो उस लड़की ने कमर से हाथ निकाल लिया और मुस्कराती हुई उसकी आंखो में देखने लगी। प्रेम ने उसकी आँखों में एक विशेष ज्योति देखी तो उसके पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया। प्रेमनाथ को चुपचाप कृतज्ञता के भाव में अपनी ओर देखते हुए उस लड़की ने कहा, "आप तो स्वर-लय को समझते प्रतीत होते है।"

"मै आपका कृतज्ञ हूँ। यह तो आपकी कृपा है। वास्तव में मेरे लिये नाचने का जीवन में यह प्रथम अवसर है।"

"आपके देश में क्या लोग नाचते-गाते नहीं?"

"हमारे यहाँ लोग गाते है। कहीं-कहीं नाचते भी है, परन्तु पुरुष-पुरुषो के साथ और स्त्रियाँ-स्त्रियो के साथ नाचती है।"

इस समय सब लोग इधर-उधर घूमने लगे थे। उस लडकी ने प्रेम की बांह में बाँह डाल कर कहा, "आओ, समुद्र तट तक चलें। फिर जब बैंड बजेगा तो नाचने आवेंगे।"

प्रेमनाथ उसके साथ चलता हुआ बोला, "आप अंग्रेज़ी बोलती है, जो यहाँ एक विचित्र बात है।"

"नहीं! मारसेल्ज़ में कुछ अंग्रेजी व्यापारी भी रहते है। मेरी माँ उनमें से एक की लडकी है। मै एक फ्रांसीसी पत्र के सम्पादक की लड़की हूँ। मैने अंग्रेज़ी माँ से पढी है और फ्रासीसी अपने पिता से। हिन्दुस्तानी सिपाहियो में भी तो कम है, जो अंग्रेज़ी बोल सकते है। मेरा विचार है कि आप अपनी फौज में कोई अफसर है।"

"नहीं, मै एक साधारण सिपाही हूँ। परन्तु कुछ पढ़ा-लिखा हूँ।"

"आपने फ्रांस तो भली भांति देख लिया होगा?"

"नहीं! हमारी रेजिमेंन्ट को यहाँ पहुँचे अभी पन्द्रह दिन के लगभग हुए है। जिस दिन हमारा जहाज़ यहाँ पहुँचा था, उसी दिन युद्ध बन्द होगया था। तब से हम लोग यहाँ पडे है।"

उस समय ये समुद्र तट पर जा पहुँचे थे। समुद्र सर्वथा शान्त था और उसकी छोटी-छोटी लहरें जहां ये खड़े थे, पांवो को आकर छू रही

थीं। नाल वर्ण समुद्र का विशाल दृश्य देखने को असख्य लोगों की भीड खडी थी। समुद्र की छाती पर दूर जगी जहाज खडे इस विशालकाय सागर पर खिलौने मात्र प्रतीत होते थे। बाईं ओर माल उतारने और लादने के लिए गोदियां बनी थीं और वहां पर कई जहाज लगर डाले पडे थे।

लडकी उसको घसीटती हुई एक स्टाल पर ले गई, जिसमें काफी और मिठाई बिक रही थी। "आप काफी पीजियेगा! उसने पूछा।"

"मैंने आज तक नहीं पी। कैसी होती है?"

"आइये! देखिये कैसी होती है।"

"दोनो स्टाल पर जा खडे हुए। कुछ मिठाई और एक-एक प्याला काफी का सामने रख लिया। काफी पीकर प्रेम ने कहा, "अजीब स्वाद है इसका?"

"हां! इससे शरीर की थकावट दूर होती है और चित्त में स्फूर्ति आती है।"

प्रेमनाथ ने अनुभव किया कि सत्य ही यह चित्त को स्थिर करने वाली वस्तु है। इस समय साहस कर उसने लडकी की ओर देखा। उसे उसमें कुछ विशेष आकर्षण प्रतीत हुआ। इसने अन्य लडकियों की तरह शृङ्गार नहीं किया हुआ था। कपडे भी साधारण परन्तु साफ-सुथरे पहने हुए थे।

जब काफी पी चुके तो प्रेमनाथ ने दाम देना चाहा, परन्तु उसने देने नहीं दिया। उसने कहा, "आज फ्रांसीसी जाति हिन्दुस्तानियों और अमरीकनों का आतिथ्य कर रही है। हम लोग आपका, हमारी भीर के समय सहायता करने के लिए, सत्कार कर रहे हैं।"

प्रेमनाथ चुप रहा। उस लडकी ने दाम दिया ही था कि नाच के मैदान में बैंड बजने लगा। लडकी ने कहा, "चलो, नाचें।"

दोनों बांह में बांह डालकर उस ओर चल पड़े। मार्ग में प्रेमनाथ ने पूछा, "आपको नाचना बहुत प्यारा लगता है?"

"यह हमारे जीवन का एक अग है। कोई ऐसा अवसर, जिसमें नाचने

को मिले हम छोड़ना नहीं चाहते।"

"पर मेरे जैसे भद्दे आदमी के साथ नाचने में आपको क्या आनन्द आता होगा?"

"यह भी एक मजा है। पर आप गीत की लय को समझते हैं। इस कारण कुछ बुरा प्रतीत नहीं होता।"

जब वे नाच रहे थे, तो प्रेम की दृष्टि वसाखासिंह की ओर गई। वह अभी भी उस मोटी औरत के साथ लटकता हुआ-सा घूम रहा था। जब प्रेमनाथ नाचता हुआ उसके पास पहुँचा तो उसने पंजाबी में कहा, "प्रेम भापा! मेरा साथी तुम्हारे से जबरदस्त है।"

"बावा! तुम भी मेरे से जबरदस्त हो।"

इस पर दोनों हँसने लगे। जब बसाखासिंह की साथिन उसको घसीटती हुई कुछ दूर ले गई, तो प्रेम की साथिन ने पूछा, "क्या कहता था आपका साथी?"

"आपके शील और सौन्दर्य की प्रशंसा करता था।"

इससे उस लड़की का मुख लज्जा से लाल हो गया। कुछ देर तक दोनों इस बात का विचार करते रहे। प्रेम मन में सोच रहा था कि यह क्या कह दिया है उसने? कुछ काल में लड़की ने अपने चित्त के संतुलन को ठीक कर पूछा, "और आप मेरे विषय में क्या समझते हैं?"

"सत्य बताऊँ?"

"हाँ।"

"बिल्कुल आपकी आयु और लम्बाई-चौडाई की मेरी एक बहन है। मैं तो जब आपकी ओर देखता हूँ तो आप मुझको वही मालूम होती हैं। वह मुझको बहुत प्यारी है।"

इस मूक प्रशंसा और स्नेह के भाव को सुन उस लड़की के शरीर में रोमांच हो आया। उसका मन पुनः मनोद्‌गारों से भर गया और तरल हो उठी। उसके मुख से केवल यह निकला, "बहुत अच्छे हैं आप। क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ?"

"हाँ ! क्यों नहीं ?" प्रेम ने अपना नाम बताया तो उस लडकी ने भी अपना नाम और पता दे दिया। उसने कहा, "मेरा नाम है मिली-डी-ला-म्यूरी।" इसके पश्चात् उसने अपने घर का पता बताया।

इस बार नाच बन्द होने पर म्यूरी प्रेम को उस भीड से बाहर ले गई। उसने कहा, "यदि आपको आपत्ति न हो तो किसी पार्क में चलें। वहाँ कुछ समय तक बैठेंगे।"

प्रेम ने आपत्ति नहीं उठाई। वह चुपचाप उसके साथ चल पडा। वहाँ से वे एक ट्राम कार में चढ़ कर दूर जा पहुँचे।

५

उस पार्क में एक बेंच पर बैठ मिली म्यूरी ने अपना जीवन-इतिहास सुना दिया। वह बहुत थोडा और सरल था। उसने बताया, "मेरा पिता पत्रों में सवाद भेजा करता है और उसी से अपनी जीविकोपार्जन करता है। माँ एक अग्रेज सौदागर की लडकी है और अपनी निजी आय रखती है। माता-पिता दोनों अपनी-अपनी आय पर निर्वाह करते है, और बहुत प्रेम से रहते हैं। मै भी अब एक दुकान पर नौकरी करती हूं और अपना निर्वाह स्वय कर सकती हूँ। मै माँ के पास रहती हूं परन्तु अपना बोर्ड तथा लौजिंग का खर्चा देती हूँ। हमारी दुकान में बहुत अग्रेज ग्राहक आते है और मै उनसे अग्रेजी में बात करती हू। इससे मुझको अग्रेजी का अच्छा अभ्यास हो गया है।"

"मेरे मन में यह इच्छा थी कि किसी अमरीकन अथवा हिन्दुस्तानी सिपाही का मनोरजन कर अपने देश के उनके प्रति ऋण को कम करने का यत्न करूं, परन्तु यह दाढ़ी-मूछ वाले हिन्दुस्तानी देख मै डरती थी, कि कहीं ये लोग मुझको कच्चा ही न चबा जावें, फिर आप दिखाई दिये पर आपके साथ भी एक दाढी वाला सिपाही था इस कारण आपको समीप से देखती रही, परन्तु आपसे बात करने का साहस नहीं कर सकी। इतने में वह मोटी औरत आपके साथी को ऐसे पकडकर ले गई मानो

किसी बैल को गले में कोई रस्सा डाल कर ले जाता है। तब मैंने आपके पास आ बातें करने का साहस किया। मैंने अंग्रेजी में बात इस कारण की थी कि कोई शब्द तो आप समझ ही सकेंगे। मुझको यह देख बहुत ही प्रसन्नता हुई कि आप अंग्रेजी बोल भी सकते हैं।"

प्रेमनाथ ने भी अपना परिचय दे दिया। उसने इस बात पर विशेष बल दिया कि वह बहुत ही निर्धन है, उसकी माता मेहनत कर अपना निर्वाह करती है। मिलो न इस सब कथा को सुनकर और बिना इस ओर ध्यान दिये कि वह निर्धन है, कहा, "आप अपनी बहिन इन्द्रा के विषय में बतायें। क्या वह सुन्दर है ?"

"हाँ, इतनी ही जितनी आप हैं।"

"तब तो कुछ भी नहीं।"

"मैं समझता हूँ वह लाखों में एक है। यदि मैं दिखा सकता तो आपको पता चलता।"

"तो दिखा क्यों नहीं सकते ?"

"वह यहाँ से सात हजार मील दूर है। मैं यह स्वप्न में भी आशा नहीं कर सकता कि उसको यहाँ ला सकूँगा।"

"उसको नहीं ला सकते तो मुझको ही ले चलिये। आपकी बहिन, जो लाखों में एक है, को देखने की लालसा मेरे मन में जाग उठी है।"

"बात तो वही हुई। जब उसको नहीं ला सकता तो आपको कैसे ले जा सकता हूँ ?"

'मैं तो स्वयं आपके साथ चल सकती हूँ। मेरे पास कुछ धन जमा हो गया है।"

"यहाँ से जाने में कितना टिकट लगता होगा ?"

"मैं पता कर लूँगी। आप ले चलेंगे क्या ?"

'जब आप साधन-सम्पन्न हैं, तो फिर मुझ से पूछने की क्या बात है ?"

"मेरे पास जाने भर के लिये होगा, पर वापिस लौटने के लिये कुछ

नहीं होगा।"

"तब तो बहुत कठिनाई होगी। मेरा वेतन तो केवल निर्वाह के लिये ही हो सकेगा। शेष बचता ही कुछ नहीं।"

"तो मैं सोचती हूँ कि यहाँ ही रह जाऊँगी। आपकी बहिन, जो एक चमत्कार है, को जो देखना है?"

प्रेमनाथ उसके इस कहने को हँसी समझ कहने लगा, "मैं हृदय से चाहता हूँ कि ऐसा हो सके।"

"क्या हो सके?"

"यही कि आप हिन्दुस्तान में चलें, और फिर वहाँ से वापिस आना न चाहें।"

"इससे आपको क्या मिलेगा?"

"हमारे देश में अच्छे लोग कम हैं। उनमें एक की वृद्धि होगी। यह एक भारी लाभ की बात होगी। मैं एक अंग्रेज औरत को जानता हूँ और वह भी हिन्दुस्तान में गई और अब उस भूमि को पवित्र कर रही है।"

"आपकी क्या है वह?"

"मेरी माता-तुल्य है। वहाँ उनको कष्ट है पर वे हिन्दुस्तान को छोड़ना नहीं चाहतीं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे वहाँ की मिट्टी में ही रंग गई है। उनमें और किसी भी श्रेष्ठ भारतीय महिला में अन्तर नहीं रहा।"

इस प्रकार से बातें चलती रहीं। रात के खाने के समय मिली उसको एक रैस्टोरां में ले गई। वहाँ उन्होंने इकट्ठे भोजन किया और पश्चात् वे वहाँ से बाहर निकल फौजी कैम्प की ओर चल पड़े। मार्ग में मिली उसको पुनः मिलने के लिये कहने लगी।

"दिल तो चाहता है। आपसे मिलकर चित्त बहुत प्रसन्न हो रहा है। मैं अपने को सौभाग्यवान् समझता हूँ कि आपसे परिचय हुआ है, परन्तु आपका समय व्यर्थ न जाये और साथ ही मैं तो पराधीन हूँ। मैं

नहीं जानता कि कल इस नगर में रहूँगा भी या नहीं।"

"यदि आपको आपत्ति न हो तो कल सायं चाय के समय इसी रैस्टोरां में आ जायें। मै ठीक पांच बजे वहां मिलूंगी। यदि न आ सके तो यह मेरे पिता का पता है, इस पते पर आप लिख सकते हैं। आपका समाचार पाकर मुझको बहुत ही प्रसन्नता होगी।

प्रेमनाथ जब तक उस नगर में रहा, मिली म्यूरी से मिलता रहा। यह एक निश्चित कार्यक्रम हो गया था कि दोनो सायं को चाय इकट्ठे पीते थे। और फिर समुद्र तट पर घूमने जाते थे और रात का भोजन कर पृथक्-पृथक् हो जाते थे।

प्रेमनाथ इटली की सैर को गया तो रोम में उसकी ऐमिली से भेंट हुई और वहां से लौटने पर वह अपने मस्तिष्क में छुट्टी लेने की योजना से भर रहा था। इस कारण आने पर उसने पत्र भेजकर मिली म्यूरी को सूचना भेजी और सायंकाल उससे मिलने गया। दोनो मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और उस सायंकाल वे बहुत देर तक बातें करते रहे। प्रेमनाथ ने अपनी इटली यात्रा का वर्णन करते हुए कहा, "मैंने आपसे एक अंग्रेज औरत का उल्लेख किया था। याद है आपको ?"

"हां! जो आपकी माता-तुल्य है। ठीक है न ?" मिली ने मुस्कराते हुए कहा।

"हां! वे आजकल योरुप आई हुई हैं। मै उनसे रोम में मिला था। यदि यहां से छुट्टी मिली तो उनसे मिलने के लिये बर्न जाऊंगा और फिर कुछ समय तक उनके साथ रहूँगा।"

"तो मैं आपकी मां-तुल्य उन महिला के दर्शन कर सकूंगी।"

"मुझको विश्वास है कि उनको आपसे मिल कर भारी प्रसन्नता होगी।"

"सत्य ? आप किसी दूसरे की बात कैसे जानते हैं ?"

"वे बहुत ही कोमल हृदय रखती हैं। उनकी मुझ पर बहुत ही कृपा है।"

"आपका कोई सम्बन्ध है उनके साथ ?"

"हां ! वे मेरे पिता की दूसरी पत्नी हैं।"

"ओह !" मिली का मुख खुला का खुला रह गया।

"हां, हमारे देश में एक पुरुष एक ही समय में एक से अधिक पत्नियां रख सकता है।"

"सत्य ? यह तो जंगलीपन है।"

"हां ! परन्तु ऐसा है। और मेरे पिता ने दूसरा विवाह भी किया था।"

"तो आपकी मां ने तलाक क्यों नहीं दे दिया ?"

"तलाक का वहां रिवाज नहीं। हमारे यहां औरतें सब प्रकार का कष्ट सहन कर लेती हैं पर एक बार विवाह हो जाने पर पति को तलाक नहीं देतीं।"

"और पति तलाक दे दे तो ?"

"कानून से तो वह भी तलाक नहीं दे सकता, पर हां, पति-पत्नी परस्पर सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते हैं। पत्नी दूसरा विवाह नहीं कर सकती परन्तु पति कर सकता है।"

"मैं तो इस प्रथा को पसन्द नहीं करती।"

"मेरी विमाता भी जब हिन्दुस्तान में गई थीं ऐसा ही मानती थीं, परन्तु अब तो वे मेरी माता को पुनः पिता जी के घर ले जाने का यत्न करती थीं।"

"सत्य ? बहुत विचित्र औरत है।"

"हां ! बहुत ही विचित्र है।"

प्रेमनाथ को छुट्टी लेने में दो मास लग गये। उसको बिना वेतन से छुट्टी मिली। कुछ रुपया शेष वेतन का लेकर वह बर्न जाने को तैयार हो गया। जाने से पूर्व वह मिली से मिलने गया। मिली ने उसको तैयार देख कहा, "तो आप अपनी विमाता के पास जा रहे हैं ?"

"हां ! चलो, आपको भी ले चलूं।"

"इस प्रकार नहीं। आप वहां जाइये, उनसे पूछकर लिखियेगा कि वे क्या कहती हैं। मैं एक बार वहां गई तो फिर लौटकर मारसेल्ज नहीं आऊंगी? उनके साथ ही रहना चाहूंगी।"

"ओह! क्यों, बिना जाने-बूझे ही उनसे प्रेम हो गया है क्या?"

"यदि आपका कहना ठीक है कि उनका हृदय बहुत ही कोमल है तो उनके पास उनकी लडकी बन रहने में भला होगा।"

प्रेमनाथ विस्मय में उसका मुख देखता ही रह गया। मिली ने प्रेम को विदा करते हुए आग्रह किया कि वह पत्र अवश्य लिखे।

१०

प्रेमनाथ बर्न पहुंचा तो वह डाक्टर शच्युमैन के मैन्टल सैनिटोरियम को ढूंढ़ने लगा। ऐसी कोई संस्था वहां नहीं थी। वह एक होटल में जाकर रहने लगा। कई दिन तक ढूढ़ने पर भी जब उसको ऐमिली का पता नहीं मिला, तो उसने अपने होटल के मैनेजर से बातचीत की। मैनेजर ने उसको पुलिस में रिपोर्ट करने की राय दी। पुलिस में रिपोर्ट लिखाई गई तो खोज आरम्भ हो गई।

इस काल में प्रेमनाथ के पास खर्चा चुक गया पर वह बिना पुलिस की खोज का परिणाम जाने, वहां से जाना नहीं चाहता था। उसने अपनी कठिनाई अपने होटल के मैनेजर से कही, तो उसको एक बड़े होटल में, जिसमें प्रायः अंग्रेज ठहरा करते थे, वेटर के रूप में नौकर करवा दिया। इस प्रकार उसको लगभग पन्द्रह रुपए नित्य की आय होने लगी। इसमें से वह पांच रुपये नित्य तो अपने होटल में व्यय कर देता था और शेष ऐमिली की खोज में व्यय कर देता था।

एक सप्ताह की खोज के उपरान्त पुलिस को यह पता चला कि मिसेज चोपडा इटली की सरहद पार कर स्विटजरलैंड आई थीं, परन्तु पीछे उनका पता नहीं चला। इससे पुलिस ने ऐमिली की खोज तेजी से आरम्भ कर दी।

प्रेमनाथ ने अपनी पूर्ण परिस्थिति मिली म्यूरी को लिखकर भेज दी, इसके दो सप्ताह पीछे मिली बर्न में आ पहुंची । प्रेमनाथ उसको देखकर प्रसन्न भी हुआ और विस्मित भी । उसने कहा, "मम्मी तो अभी मिली नहीं, तो अब आप किसकी लड़की बनने आई हैं ।"

"मैं आपकी मां की खोज में सहायता करने आई हूं ।"

"आपका अति धन्यवाद है इसके लिए, परन्तु क्या करें, कैसे हो सकेगा ? मैं स्वयं नहीं जानता ।"

मिली भी उसी होटल में ठहर गई जहां प्रेमनाथ ठहरा हुआ था । मिली के आने से प्रेमनाथ को सबसे बड़ा सुभीता यह हुआ कि वह अब मिली के द्वारा स्विटजरलैंड के अफसरों से फ्रांसीसी भाषा में बातचीत कर सकता था । इसके अतिरिक्त मिली एक ऐसा साथी सिद्ध हुई जिसके साथ वह जीवन की अन्तरतम बातें कर सकता था ।

मिली को एक दुकान पर नौकरी मिल गई थी । प्रेमनाथ को सप्ताह में एक दिन का अवकाश मिल जाता था और उस दिन वह और मिली दोनों नगर से बाहर दूर पहाड़ों, घाटियों, नदी-नालों और प्राकृतिक सौंदर्य के अन्य स्थानों पर घूमने निकल जाते थे । अपने लंच का थैला कन्धे पर डाल, आठ-दस मील बाहर निकल जाना और वहां किसी नदी-नाले के किनारे बैठ घंटों आकाश की ओर देखते हुए व्यतीत करना अथवा अतीत काल की बातों की कटुता अथवा माधुर्य का स्वाद लेना, यह अवकाश के दिन का कार्य होता था ।

उनकी बातों में एक बात का अभाव रहता था । वह था भविष्य । इस विषय में दोनों मन में क्या सोचते थे, कहना कठिन है । शायद आगे क्या होना है अथवा क्या होना चाहिये, कहने से डरते थे ।

एक दिन नदी के किनारे एक सपाट पत्थर पर एक पहलू पर लेटी हुई मिली बता रही थी, "मैं एक दिन अपनी मां के साथ मारसेल्ज से बीस मील के अन्तर पर एक गांव में गई थी । मां कई वर्षों के पीछे विश्राम के लिए अवकाश पा सकी थी । हम एक मित्र के घर में, मूल्य

देकर रहनेवाले मेहमान थे। एक दिन घूमते हुए एक जिप्सी कैम्प के पास पहुँच गये तो एक वृद्धा जिप्सी ने हमसे भीख माँगी। माँ ने दो पैसे दिये तो बड़बड़ाने लगी। मेरी ओर बहुत ध्यान से देखने के पीछे बोली, "यह लड़की भूमि पर टिकी हुई नहीं है। इसके पाँव में चक्कर है। और जब तक इसकी जड़ भूमि में नहीं जाती, यह दर-दर स्थानों पर घूमा करेगी।"

"मैं उसकी भविष्यवाणी को आज ठीक होते अनुभव कर रही हूँ। मैं अब घर से निकल आई हूँ और शायद पुन. अपने जन्म-स्थान में जाने का अवसर नहीं मिलेगा।"

"क्यों।"

"मेरा मन कुछ ऐसा ही कहता है। कम से कम यह स्थान मारसेल्ज़ से अधिक साफ़-सुथरा, सुन्दर और सुख-सुविधा युक्त है। मैं समझती हूँ कि यदि कोई बलपूर्वक मुझको यहाँ से न निकाले और यहाँ खाने-पहनने को मिलता रहे तो फिर किसलिए लौटकर वापिस जाऊँगी ?"

"मैं", प्रेमनाथ ने गम्भीर होकर कहा, "इसके विपरीत अनुभव कर रहा हूँ, लाहौर, जहाँ का मैं रहनेवाला हूँ, यहाँ से कई गुणा अधिक गन्दा नगर है। इस पर भी वहाँ कुछ है जो मुझे आवाहन कर रहा है। मेरी आत्मा उस ओर जाने के लिए तड़प रही है। मेरी माँ है, जो मुझसे बहुत स्नेह करती है। बहिन है वह भी बहुत ही भोली-भाली प्रतीत होती है। मैं उनसे मिलने की भारी लालसा रखता हूँ। मेरे लिये मनुष्य-मनुष्य का संबंध अधिक आकर्षण का है और यह सुन्दर स्थानों और दृश्यों से सम्बन्ध, गौण है। फिर इन मनुष्यों के सम्बन्ध से भी ऊपर, आचार-विचार की अनुकूलता है। हम अपने को एक जाति के सदस्य मानते हैं, इस कारण नहीं कि हम किसी एक स्थान पर उत्पन्न हुए हैं, अथवा हमको किसी स्थान के नदी-नाले, पहाड़-घाटियों से अधिक मोह है। जातियाँ भौगोलिक सीमाओं से नहीं बनतीं। प्रत्येक जाति के आचरण में एक धुरि होती है, उससे बँधा हुआ व्यक्ति उस जाति में होता है। हिन्दू जाति में कुछ ऐसी

सैद्धातिक धुरियाँ हैं, जिनके चारों ओर हिंदू समाज चक्कर काट रहा है। इस कारण मैं उस समाज का एक अग होने से उस जाति की परिधि में घूमने में ही आनन्द अनुभव करता हूं। जब तक मैं उन सिद्धान्तों को श्रेठ मानता हूँ, मैं हिन्दू-समाज के भीतर हूँ। इससे उस समाज में रहने की मेरी इच्छा बनी रहती है।

"मैं इन बातों को नहीं मानती। मैं आत्मा की प्रेरणा को मुख्य मानती हूँ।"

"प्रेरणा सस्कारों के बल पर बनती है। सस्कार वातावरण से अथवा पूर्वजन्म के कर्मफल से बनते हैं। इससे प्रेरणा जातीय-सस्कारों से ही चलती है।"

"यही तो मैं समझ नहीं पाती। मैं एक फ्रासीसी लडकी हूँ। एक ईसाई परिवार में उत्पन्न हुई हू। परन्तु आपसे ऐसा लगाव हो गया है कि आपकी माँ की खोज में आपकी सहायता करने चली आई हू।"

"हम लोग इसको पूर्व जन्म की प्रबल प्रेरणा का फल मानते हैं। मैं आपको एक बात बताता हू। मेरी विमाता, ऐमिली चोपडा मुझको जानती नहीं थी। मेरी माँ उनके पिता जी के घर आने से पहले वहाँ से चली आई थीं। मैं एक दिन एक पार्क में अपने साथियों के साथ खेल रहा था। वे पिताजी के और बच्चों के साथ वहाँ पिकनिक पर आई हुई थीं। हमारे खेलने की एक वस्तु उनको जा लगी। वे क्रोध में भरी हुई उठीं और मुझको एक चपत लगाकर डाँटने लगीं। मेरे हाथ में एक डडा था। मैंने प्रतिकार के भाव से उठाया परन्तु मेरे संस्कारों ने मेरे हाथ को रोक दिया। मैंने डडा नीचे कर कहा, "आप औरत हैं, आप पर हाथ नहीं चलाऊगा।"

"यह कहना सस्कारों के अधीन एक सिद्धात का प्रतिपादन है। यह अनेक जातियों में पाया जाता है, इस कारण अनेक जातियों के सदस्य परस्पर ऐक्य अनुभव करते हैं। इससे वे एक दूसरे के समीप आ जाते हैं और तत्पश्चात् एक दूसरे से मोह करने लगते है। इस घटना ने भी मेरी

विमाता को मेरी ओर आकर्षित किया। बिना मेरे विषय में कुछ अधिक जाने उनकी सहानुभूति मेरे साथ हो गई। यह सहानुभूति उनकी ओर से एक महान् कृपा और दया का रूप धारण कर चुकी है।"

"शायद आप ठीक कहते हैं।" इतना कह मिली सीधी हो आकाश की ओर देखती हुई गम्भीर विचार में डूब गई। वह प्रेम के साथ अपने स्नेह-सूत्र के आरम्भ को स्मरण कर रही थी। जब उसने पूछा था कि वह उसको सुन्दर समझता है अथवा नहीं, तो उसने कहा था कि वह उसको अपनी बहिन के समान दिखाई देती है। यह साधारण-सी बात थी जिसने उसके सोते हुए संस्कारों को जाग्रत कर उसकी ओर आकर्षित कर दिया था और अब वह उसको अपना आधार मान उसके आश्रय पर स्थिर भूमि पर टिकना चाहती थी।

११

स्विटजरलैंड की पुलिस को ऐमिली की खोज करने में कई मास लग गये। यह पुलिस की अयोग्यता मानी गई कि वह एक परदेसी का पता नहीं कर सकी। लापता परदेसी ऐमिली है अथवा कोई अन्य व्यक्ति यह प्रश्न नहीं था। बात यह थी कि कोई भी परदेसी स्विटज़रलैंड में आये और आवश्यकता पड़ने पर उसका पता न चले, यह एक राज्य के प्रबंध की त्रुटि का सूचक है। कभी कोई विदेशी आकर राजनैतिक गड़बड़ भी मचा सकता है। इस कारण देश भर की पुलिस ऐमिली की खोज में लग गई।

पता लगाना कठिन हो जाता, यदि ऐमिली का पति मिस्टर चोपड़ा प्रतिमास नियम से शच्यूमैन को रुपये न भेजता। शच्यूमैन के नाम ड्राफ्ट आते थे जो स्विस नेशनल बैंक से वसूल होते थे। न तो मिस्टर चोपड़ा को और न ही शच्यूमैन को यह बात स्वप्न में आ सकती थी कि प्रेमनाथ स्विटज़रलैंड पहुंचकर ऐमिली की खोज के लिए वहाँ की पुलिस को आग्रह करने लगेगा। फिर एक फ्रांसीसी लड़की मिल जायेगी जो प्रेमनाथ

की सहायता के लिए आ डटेगी। दूसरी ओर यह भी समझा नहीं जा सकता था कि लाहौर में मिस्टर चोपड़ा की कोठी में दो-दो हत्यायें हो जावेंगी और नार्टन जैसा योग्य वकील मुकद्दमे को इस प्रकार चला सकेगा जैसा उसने चलाया था। ये सब बातें मिस्टर चोपड़ा और शच्यूमैन की समझ में नहीं आई थीं। इस कारण शच्यूमैन का पता लगाना सम्भव हो सका।

स्विटज़रलैंड की पुलिस ने देश के सब बैंकों पर पहरे बैठा दिये और नियत प्रबन्ध से जब वह ड्राफ्ट का रुपया लेने आया तो पुलिस उसके पीछे लग गई। इसके पश्चात् पुलिस ने उसके मकान की और उसकी गतिविधि की देख-भाल प्रारम्भ कर दी।

उस दिन प्रेमनाथ को यह सूचना मिल गई थी कि शच्यूमैन का पता चल गया है, अब ऐमिली का पता लगे बिना नहीं रहेगा। एक दिन छुट्टी का दिन था, प्रेमनाथ मिली के साथ घूमने जाने वाला था कि एक पुलिस का इन्स्पेक्टर साधारण नागरिकों के कपड़ों में उसके पास आया और कहने लगा, "ऐमिली चोपड़ा को आप पहचान सकते हैं तो शीघ्र चलिए।"

प्रेमनाथ तैयार हो गया। मिली भी साथ तैयार हो गई। पुलिस इन्स्पेक्टर के पास कार थी। वह इन दोनों को साथ लेकर बर्न से लगभग दस मील के अंतर पर एक गाँव में ले गया। वहाँ मोटर एक मकान के सामने खड़ी कर दी गई। मकान का दरवाज़ा खटखटाया गया तो एक बुढ़िया ने खोलकर पूछा, "क्या है ?"

"ये सब पागल को देखने आये हैं।"

"कल डाक्टर आया था और कह गया है कि उसको बार-बार लोगों के सम्मुख लाने से उसकी अवस्था बिगड़ जायगी। उसने कहा है कि मैंने फिर किसी को दिखाया तो वह उसको किसी और के घर ले जाकर रखेगा।"

"तुमको कितनी आय होती है उसके रखने से ?"

"सो मार्क्स प्रतिमास। इसके साथ जितना कुछ उसके खाने-पीने को मिलता है उसमें से मेरे खाने को बच जाता है।"

"हम इतनी आय तो तुमको दो बोर्डर रखकर करा देंगे ? मिस्टर प्रेम, इसको दस मार्क्स अभी दे दो।"

प्रेम ने दस रुपये का नोट निकाल कर देते हुए कहा, "हम फिर दुबारा देखने नहीं आयेंगे। तुम इस विषय में डाक्टर से मत कहना।"

"बुढ़िया मान गई। तीनों भीतर घुस गये। उनके मकान के भीतर आते ही बुढ़िया ने मकान का दरवाजा बन्द कर लिया। पश्चात् उनको लेकर मकान के नीचे तहखाने में जहाँ कभी पुरानी शराब रखी जाती होगी, ले गई। तहखाने को भी ताला लगा हुआ था। ताला खोला गया। भीतर बिजली का लैम्प जल रहा था। प्रेम ने देखा कि सामने एक औरत खुले बाल और फटे कपड़ों में बैठी हुई है। प्रेम भीतर जाने लगा तो बूढ़ी औरत ने रोककर कहा, "खबरदार रहना, यह घातक आक्रमण भी कर देती है।" प्रेम ने हाथ से उस बुढ़िया को एक ओर कर दिया और भीतर चला गया। पुलिस इन्स्पेक्टर ने जेब से पिस्तौल निकाल लिया। मिली उस औरत की भयानक अवस्था देख डर गई। प्रेम डरा नहीं और उस औरत के सामने जा खड़ा हुआ। यद्यपि औरत के रूप और रंग में भारी विकृति आ चुकी थी तो भी प्रेम ने उसको पहचान लिया। वह मुख नीचे लटकाए भूमि की ओर देख रही थी। बाल खुले और उसके मुख के चारों ओर उड़ रहे थे। आँखों में घबराहट और अस्थिरता थी। कपड़े स्थान-स्थान पर फटे हुए थे।

ज्यूं ही प्रेमनाथ ने उसको पहचाना, उसने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये आवाज़ दी, "मम्मी! मम्मी!!"

ऐमिली ने सिर उठाया और उसको देखा। पश्चात एक विकराल हँसी हँसती हुई उठ खड़ी हुई और दोनों हाथ उठा बोली, "आज तुमको खा जाऊँगी। नहीं छोड़ूँगी।"

यह कह वह प्रेमनाथ की ओर लपकी। प्रेम सतर्क खड़ा था। उसने

दो पग पीछे हटकर उसकी झपट में आने से अपने को बचा लिया। ऐमिली अपने हाथ से अपने विचार से, अपने शिकार को निकल गया देखकर अन्यमनस्क भाव में पुन उसकी ओर देखने लगी। प्रेम न उसकी स्मृति को पुनर्जीवित करने के लिये फिर कहा, "मम्मी ! मम्मी !! मैं प्रेमनाथ हूँ।"

इस बार वह पुनः हँसी और इधर-उधर देखने लगी। पश्चात् एका-एक वह कुर्सी उठा जिस पर वह बैठी थी, प्रेमनाथ का सिर फोडने के लिये दौडी। प्रेमनाथ परिस्थिति को भली भाँति समझ गया था और दो पग पीछे हट गया। ऐमिली ने कुर्सी फेंकी, प्रेमनाथ एक ओर हट गया। कुर्सी दूर जा गिरी, इस पर वह फिर हँसने लगी और जोर-जोर से कहने लगी, 'कब तक बचोगे मुझसे ? एक दिन तुमको खा जाऊँगी। कच्चा चबा जाऊँगी ?"

अब वह पुन उसकी गर्दन पकडने के लिये हाथ फैलाकर भागी। प्रेमनाथ ने फिर एक ओर हटकर अपने को बचा लिया। परन्तु जिस वेग से ऐमिली उसकी ओर आई थी, उसको रोक नहीं सकी और अपने ही बोझ से वह लुढ़क कर गिर पडी। इससे उसको चोट लगी और वह उठ नहीं सकी। इस समय वह पुनः उसके समीप बैठकर बोला "मम्मी ! मैं प्रेमनाथ हूँ। मेरी ओर देखो। मैं प्रेमनाथ हूँ।"

अपनी चोट के कारण अथवा किसी और विवशता से वह उठ नहीं सकी। इससे वह रोने लगी। इससे प्रेमनाथ उसके समीप पहुँच गया, और उसका हाथ उठाकर अपने दोनों हाथों की हथेलियों में रखकर बहुत ही नम्रता के भाव में बोला, "मुझको पहचाना है मम्मी ?"

इस समय मिली कमरे के भीतर आ गई और पुलिस इन्स्पेक्टर भी उसके पीछे आकर खड़ा हो गया। इन सब लोगों को देख ऐमिली भयभीत हो इन सबकी ओर देखने लगी। एकाएक वह मिली की ओर देखने लगी। इसके पश्चात् उसके मुख पर भय की मुद्रा तीव्र हो उठी। उसने बहुत जोर लगाकर, मानो कहने में कठिनाई अनुभव कर रही हो,

कहा, "तुम इन्द्रा ! तुम भी यहां आगई हो। चली जाओ, यहां न ठहरो। बहुत कष्ट है यहां।"

इतना कह वह अपने सिर को पकड़कर बैठ गई। इन्स्पेक्टर ने प्रेम-नाथ को कहा, "आइये, बाहर आइये।"

"मैं इनको एक क्षण के लिये भी छोड़ना नहीं चाहता।"

"ठीक है ! पर इसके लिये इनको यहां से निकालने का प्रबन्ध करना पड़ेगा। यह स्थान स्वास्थ्यप्रद नहीं है।"

प्रेमनाथ उठा और मिली को लेकर बाहर चला आया। घर की मालकिन बुढ़िया ने तहखाने का ताला लगा दिया। बाहर आकर इन्स्पेक्टर ने अपनी पोकेट बुक से एक पन्ना फाड डाला और उस पर पेन्सिल से कुछ लिख डाला। वह लिखा पर्चा प्रेमनाथ को देकर कहा, "इसे गांव के थाने में ले जाओ। थानेदार को कहोगे तो वह कुछ सिपाही तुम्हारे साथ एक आज्ञा-पत्र लिखकर भेज देगा। शीघ्र करो। मैं चाहता हूं कि सायंकाल शच्यूमैन के यहां आने से पूर्व हम यहां सब प्रबन्ध कर लें। उसको भी यहां पर ही पकड़ना ठीक रहेगा।"

१२

ऐमिली को बर्न के एक सिविल हस्पताल में रखा गया। और डाक्टरों की देख-रेख में उसकी चिकित्सा होने लगी। शच्यूमैन उसी सायंकाल पकड़ लिया गया। प्रेमनाथ और मिली ऐमिली से नित्य मिलने जाने लगे। डाक्टरों की यह सम्मति थी कि ऐमिली को ऐसी नशे की वस्तु दी जाती रही है जिससे उसके मस्तिष्क की अवस्था सर्वथा पागल-सी हो गई है। अस्पताल में उसको नशा उतारने की दवाई दी गई और उसकी भोजन-व्यवस्था सुधारने का यत्न किया किया।

प्रेम और मिली नित्य सायंकाल एक घंटा भर उसके पास जा सकते थे। पहले ही दिन जब वे गये तो ऐमिली हस्पताल में भी उनको मारने दौड़ी, परन्तु वहां उसको पलग के साथ बांध रखा था। इसके २

उसकी अवस्था सुधरने लगी। प्रति दिन कुछ न कुछ सुधार उसके स्वास्थ्य में होता दिखाई देने लगा। लगभग एक सप्ताह पश्चात् ऐमिली ने प्रेम नाथ को पहचाना।

उस दिन जब वे दोनों उसके पलग के पास पहुंचे तो ऐमिली की धुंधली स्मृति में प्रमनाथ का धुधला-सा चित्र बन आया। उसने कहा, "तुम कोन हो ? मैंने तुमको कहीं देखा है।"

प्रेम ओर मिली उसको सर्वथा शान्त देख उसके पलग के समीप कुर्सियों पर बैठ गये। प्रेम ने उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा, "मम्मी ! मै प्रेमनाथ हूं। शान्ता बहन को भूल गई हो क्या ?"

ऐमिली ने दोनों हाथों में सिर को पकड़ कर कहा, "कुछ याद नहीं पडता। यह कौन स्थान है ? यहां के लोग कहते हैं कि यह हस्पताल है। पर मै कहती हूं कि यहां मुझको कैद क्यों कर रखा है ?"

"मम्मी, तुम कैद नहीं हो। पर तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत बिगड गया था। इस कारण तुम को बर्न के हस्पताल में रखा है।"

पश्चात् वह फिर गम्भीर होकर कुछ विचार करने लगी। प्रेम ने बहुत बातें एक ही दिन कहनी उचित नहीं समझीं। कुछ काल के पश्चात् ऐमिली ने एकाएक मिली की ओर देखकर कहा, "यह कौन है ? सरस्वती इतनी बडी नहीं हो सकती।"

"यह सरस्वती नहीं है। इसका नाम मिली डी ला-म्यूरी है।"

इस पर वह पुन अपने मस्तिष्क को पकडकर विचार करने लगी। फिर वह बोली, "मैं यहां से जाना चाहती हूं।"

"कहां ?"

"बर्न मेंटल सैनिटोरियम में। मेरे लिए वहां एक स्थान रिज़र्व है। मेरा स्वास्थ्य वहां जा कर ठीक हो जायेगा।"

"यही वह हस्पताल है। यहां आपका स्वास्थ्य ठीक हो रहा है।"

इस समय पुन ऐमिली के मस्तिष्क में धुंधलापन आ गया।

एक सप्ताह और व्यतीत होते-होते ऐमिली को पिछली बात याद

ग्राने लगी। उसने प्रेम से कहा, "बहुत धोखा हुआ है मुझसे। मैं समझी थी कि सीता की भांति केवल देश-निकाला है। मुझको पता न था कि मुझको मार डालने की योजना है।"

"कैसे हुआ है यह ?"

"मैं याद करती हूं, पर ठीक पता नहीं चलता कि कब, किस समय मैं सो गई और फिर अति भयानक स्वप्न मेरे सामने आने लगे।"

कई दिन पीछे उसको कुछ और बातें स्मरण हो आईं। उसने बताया, "मैं रोम से वीनिस चली गई। वहां से जनेवा और जनेवा में मुझको डाक्टर शच्यूमैन मिल गये। मैंने जब बताया कि मैं वर्न के एक डाक्टर शच्यूमैन के पास जा रही हूं तो उसने कहा कि वह ही है। चलिये, दोनों इकट्ठे ही चलेंगे।"

"वहां से हम चले। रेल में इटली की सीमा पार करते समय मेरे कागजात देखे गए। मेरे हस्ताक्षर और फोटो ली गई। इसी प्रकार डाक्टर साहब के भी कागजात देखे गये। मुझको अचम्भा हुआ जब उन कागजों में उनका नाम मोश्योर रोशिली लिखा निकला। जब हम सीमा पार कर इधर आए तो मैंने अपना सन्देह कह दिया। उसने हंस कर उत्तर दिया, "मैं फ्रांस और इटली में इसी नाम से विख्यात हूं। पर मेरा असली नाम शच्यूमैन है। आपको मेरे सैनिटोरियम में चलकर सब बात मालूम हो जावेगी। उसी दिन प्रातःकाल ब्रेकफास्ट के समय मेरा दूध ब्रेकफास्ट से पृथक् आया। मैंने बैरा से पूछा भी, यह पीछे क्यों रह गया था ? तो उसने उत्तर दिया, भूल गया था।"

"उस दूध के पीने से मेरा सिर भारी होने लगा। मैंने डाक्टर से कहा तो उसने अपने बैग में से एक औषधि देते हुए कहा, हम इस समय दस हजार फीट की ऊंचाई पर जा रहे हैं, ऐसा होता ही है।"

"उस दवाई के खाने से मुझको नींद आ गई। मेरी जाग वहां जाकर खुली जहां हमने उतरना था। डाक्टर ने बताया कि अगला स्टेशन बर्न है। पर हमारा सैनिटोरियम यहां से समीप पड़ेगा। हम दोनों उतर

श्राए। कुलियों ने सामान उतारा और हम स्टेशन से बाहर खड़ी टैक्सी में बैठ गए। गाड़ी में जाते-जाते मुझको पुन नींद आने लगी। मैं सो गई और अनेकों स्वप्नों को देखने के पश्चात् यहाँ आकर नींद खुली है।"

"क्या मैं लाहौर लिख दूँ कि अब आप ठीक हैं ?"

"किसको ?"

"माता जी को।"

"हाँ, पर मिस्टर चोपड़ा को न लिखना। अभी मैंने निश्चय नहीं किया कि वापिस लाहौर जाऊँ या नहीं।"

इस बातचीत के लगभग एक सप्ताह पीछे की बात है कि लाहौर से प्रेमनाथ को पत्र आया। उसमें मिस्टर चोपड़ा पर चल रहे मुकद्दमे का उल्लेख था। चिट्ठी में लिखा था कि शच्यूमैन मिस्टर चोपड़ा की कोठी में होने वाली हत्याओं के दिन लाहौर नीडोज होटल में ठहरा हुआ था। इससे यह सन्देह होने लगा कि शायद ये हत्यायें उसी आदमी ने की हैं।

इस पत्र का उत्तर ऐमिली ने स्वस्थ होकर जनेवा से तार द्वारा दिया। इस तार के पहुँचने पर मिस्टर नार्टन ने लाहौर से तार दिया कि हम शच्यूमैन को हिन्दुस्तान में भेजे जाने की मांग स्विस सरकार से कर रहे हैं।

हिन्दुस्तान की मांग स्विस सरकार से यह है कि शच्यूमैन ने हिन्दुस्तान में हत्यायें की है, वे हत्यायें किसी पुलिटिकल उद्देश्य से नहीं की गईं। इस कारण इस हत्यारे को जाँच के लिए हिन्दुस्तान भेज दिया जाए। स्विस सरकार की नीति यह थी कि किसी भी देश का राजनीतिक कैदी स्विटजरलैंड में सुरक्षित है। चरित्र सम्बन्धी अपराधी यदि स्विटजरलैंड का हो तो विदेशी सरकार को नहीं दिया जायेगा, परन्तु चरित्र सम्बन्धी विदेशी अपराधी उसके देश में रक्षा नहीं पा सकता।

इस कारण हिन्दुस्तान की इस मांग पर यह जाँच की गई कि शच्यूमैन किस देश का नागरिक है। जाँच करने पर पता चला कि वह स्विस नागरिक नहीं है। वास्तव में वह किसी भी देश का नागरिक नहीं था।

वह एक जिप्सी कबीले का लड़का था, जो कबीला स्विटजरलैंड, इटली, आस्ट्रिया, हंगरी और जर्मनी में घूमा करता था। यह जाँच करने पर शच्यूमैन को हिन्दुस्तान सरकार के पास भेज दिया गया।

इस समय तक ऐमिली पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर चुकी थी। प्रेमनाथ और मिली दोनों उसके साथ थे। जनेवा में ऐमिली ने यह निश्चय किया कि वह हिन्दुस्तान वापिस जायेगी और मिस्टर चोपड़ा के मुकद्दमे में सहायता करेगी।

ऐमिली का यह निर्णय सुन प्रेमनाथ ने पूछा, "आप किसकी सहायता करने जा रही हैं ?"

मिली म्यूरी भी पास ही बैठी एक फ्रेंच नावल पढ़ रही थी। ऐमिली के इस निर्णय को सुन वह भी समीप आ गई और ऐमिली का प्रेम के प्रश्न पर उत्तर सुनने के लिए पुस्तक छोड़ दत्तचित्त हो गई।

ऐमिली ने उत्तर देने से पूर्व मिली से पूछा, "मेरे उत्तर में तुम को भी रुचि है क्या ?"

"हाँ मम्मी !" वह भी ऐमिली को इसी तरह पुकारा करती थी। "मेरा भविष्य इनसे बधा प्रतीत होता है। आपके जाने पर इनका यहाँ से जाना और मेरा भविष्य निर्भर है।"

"तो सुनो ! मैं पहले जहाज से, जिसमें स्थान मिल जाये, जाने का प्रबन्ध कर रही हूँ।"

"और आप ?" उसने प्रेम की ओर देखकर पूछा।

"मैं इनके साथ ही हिन्दुस्तान चला जाऊँगा।"

"और मेरे लिए आप क्या कहते हैं ?"

"यह तो एक बार आपने स्वयं कहा था कि आपके पास जाने भर के लिए खर्चा है और आने का नहीं। तो चले चलिए। पीछे देखा जायेगा।"

"ठीक है ! मैं आज ही अपने बैंकर्ज को लिख देती हूँ। मेरे पास तीन सौ लूईस हैं। इनसे कुछ न कुछ प्रबन्ध हो ही जायेगा।"

"पर मैं तुमसे पूछती हूं।" ऐमिली ने मिली से पूछा, "तुम इनके साथ किस रूप में जा रही हो ?"

"जिस रूप में ये ले जायें।"

"बताओ, प्रेम क्या विचार है तुम्हारा।"

"मम्मी, ये कहती है कि मेरे साथ विवाह करेगी।"

"और तुम क्या कहते हो ?"

"मुझको यह बहुत अच्छी लगती है।"

"परन्तु मिली, एक बात तुमको समझ लेनी चाहिये। हिन्दुस्तान यूरोप से सर्वथा भिन्न देश है। वहां का रहन-सहन और विचारधारा यूरोप जैसी नहीं है। वहां यह भाषा, जो तुम समझ सकती हो और बोलती हो, प्राय लोग नहीं जानते।"

मिली विस्मय में ऐमिली का मुख देखती रह गई। वह इसका अर्थ नहीं समझ सकी। पश्चात् समझने के लिए उसने पूछा, "मम्मी, एक बात पूछूं ?"

"हां, पूछो !"

"आपको वह देश पसन्द है ?"

"देश तो अच्छा नहीं, प्रकृति ने तो ठीक बनाया है परन्तु मनुष्य ने उसको सुखमय बनाने में कुछ नहीं किया। यहां शीत का बाहुल्य होने पर भी मनुष्य ने इसे आराम देनेवाला बना रखा है। परन्तु मिली, मैं देश की बात नहीं कर रही। देश में रहनेवालों की बात कहती हूं।"

"वे कैसे हैं।"

"जो तो यूरोपियन बनने का यत्न नहीं कर रहे, वे ठीक हैं। कई अंशों में तो वे लोग यूरोपियनों से भी अच्छे हैं। परन्तु जो लोग यूरोपियन बनने की नकल कर रहे हैं, वे अपने आचार के आधार को छोड़ पतित होते जाते हैं। आचार-विचार देश की वायु के अनुकूल होने चाहियें।"

"ये कैसे हैं ?" मिल्ली ने प्रेम की ओर संकेत करते हुए पूछा।

"स्वच्छ सोना है", ऐमिली ने मुस्कराते हुए कहा।

"तो मेरा निर्णय हिन्दुस्तान जाने का अन्तिम है ।"

"यदि जाना चाहती हो, हिन्दुस्तानी आज से ही सीखना आरम्भ कर दो । जिस देश को अपना निवास-स्थान बनाना चाहती हो, उसकी भाषा को सीखे बिना सुख और रस मिल नहीं सकेगा ।"

"यह तो मैंने स्विटज़रलैंड से ही सीखनी आरम्भ करदी है ।"

"तब तो ठीक है, तुम दोनों का विवाह लाहौर में चलकर ही हो सकेगा ।"

मिली उठकर पुनः दूर अपनी कुर्सी पर जा बैठी और अपनी पुस्तक खोलकर पढ़ने लगी । ऐमिली ने बताया कि वह न्याय की सहायता करने जा रही है । यहां बैठी हुई वह नहीं जान सकी कि न्याय किस ओर है ।

कर्म फल टारे नहीं टरे

१

शच्यूमैन के लाहौर पहुँचने में तीन मास लग गये। जब तक वा
वहां नहीं आया, तब तक मुकद्दमा स्थगित रहा। उसके आ जाने से
मिस्टर नार्टन का मुकद्दमा पूर्ण हो गया। उसने शच्यूमैन की पहचान
नीडोज होटल के कर्मचारियों से करवा दी और होटल के रजिस्टर से
उसकी उपस्थिति लाहौर में उस दिन सिद्ध कर दी, जिस दिन हत्याएं
हुई थीं। शच्यूमैन का मिस्टर चोपड़ा से मिलने जाना भी चपरासियों से
प्रमाणित करा दिया गया।

शच्यूमैन हत्याओं के अगले दिन नीडोज होटल से चला गया था
और तीसरे दिन बम्बई से जहाज में सवार होकर ब्रिडसी के लिये चल
पड़ा। मिस्टर नार्टन से पुलिस का सहयोग स्थापित नहीं हो सका, अन्यथ
डांट-डपटकर कोई-न-कोई सरकारी गवाह बना लिया जाता, जो ठी
गोली चलने के समय की बात बता सकता।

ऐमिली भी लाहौर आ पहुची थी। वह नीडोज होटल में ठहर
थी। उसका पहला काम था मिस्टर नार्टन और सूरजमोहन से मिलक
मुकद्दमे की पूरी परिस्थिति को जानना। जब वह इन दोनों से मिस्ट
चोपड़ा के पक्ष-विपक्ष की बात जान रही थी, तब शान्ता भी उससे मिल
कर अपने मन की बात कह रही थी।

शान्ता का कहना था, "मैंने मुकद्दमे की वह सब बातें जानी हैं, जो
मेरी समझ में आ सकती है। मैं समझती हूँ कि मिस्टर चोपड़ा इन
हत्याओं के विषय में निरपराध हैं। क्योंकि पुलिस ने इस मुकद्दमे में
उदासीनता प्रकट की है, इस कारण मिस्टर चोपड़ा की सफाई नहीं
हो रही।"

ऐमिली शान्ता की इस मनोवृत्ति को देख बहुत चकित रह गई, उसने विस्मय में पूछा, "आप क्या चाहती है कि मिस्टर चोपड़ा बच जायें ?"

"बच जायें अथवा न बचें, इससे मेरा सम्बन्ध नहीं। वह मेरे बच्चों का पिता है। इस कारण उसको अन्याय से दंड दिये जाने का विरोध कर रही हूँ।"

"क्या उसने बच्चों के साथ पिता-सा व्यवहार किया है ?"

"यह उनका कार्य है। उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि हम भी अपने कर्तव्य का पालन न करें।"

"हमारा क्या कर्तव्य है ? क्या उस आदमी को, जिसने हमारे बच्चों के साथ न्याय नहीं किया, अकारण बचाने का यत्न करें ? यह कर्तव्य है अथवा अकर्तव्य ?"

"यह प्रश्न पृथक् है। जिस बात का दंड उनको दिया जा रहा है उस बात में वे दोषी नहीं है। एक अपराध का दंड किसी काल्पनिक अपराध के लिये कहाँ तक उचित है ?"

"कर्मों की गति अति गहन है। सब लोग इसको नहीं समझ सकते। एक कर्म के बार-बार करने से विशेष मनोवृत्ति बन जाती है, जो फिर अन्य कर्मों के करने में कारण बन जाती है, इसलिये यह कहना कि उस मनोवृत्ति से उत्पन्न एक कार्य का फल उसी से उत्पन्न किसी अन्य कार्य के फल से नहीं मिलना चाहिये, ठीक मालूम नहीं होता। फल मनोवृत्ति को मिलता है कर्म तो साधन मात्र बन जाता है।

"देखो बहिन ऐमिली ! मैं तो यह कह रही हूँ कि उनकी मनोवृत्ति की परीक्षा नहीं हो रही। मनोवृत्ति पर मुकद्दमा होता तो उसकी बात विचारणीय थी। उसके औचित्य अथवा अनौचित्य पर मतभेद हो सकता है। इस समय विचारणीय और मुकद्दमे का विषय है कि उन्होंने हत्यायें करवाई है अथवा नहीं ? इस विषय में मेरी समझ में वह निर्दोष है।"

"पर प्रकृति ने उनको विकृत प्रवृत्ति का जो फल निश्चय किया है,

उसमें हम क्यों हस्ताक्षेप करें ? परमात्मा के किसी कार्य को करने का ढग विचित्र होता है। हम क्षुद्र जीव इसको समझ नहीं सकते।"

"यही तो मै कहती हूं। पुलिस और मिस्टर नार्टन को व्यर्थ में प्रकृति के कामों में हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिये।"

इससे ऐमिली शान्ता का मुख विस्मय में देखती रह गई। शान्ता न पुन अपनी बात समझाने का यत्न किया, "न्याय की मांग है कि हत्याओं के विषय में निर्णय किया जाये। शेष जो कुछ भी उसका अपराध है, वह जब अदालत से विचारणीय हो तो अदालत से और यदि प्रकृति के सन्मुख विचारणीय हो तो प्रकृति से उनका फल मिलना चाहिये।"

ऐमिली को समझ नहीं आया। इस पर भी वह इस विषय में विचार करने पर विवश हो गई। शान्ता से इस भेंट के पश्चात् वह दूसरे ही ढग से विचार करने लगी। उसी सायकाल जब मिस्टर नार्टन आया तो उसने कहा—

"मिस्टर नार्टन ! आपने जिस योग्यता से यह मुकद्दमा खड़ा किया है उसकी तो श्लाघा ही करनी चाहिये। परन्तु क्या यह ग़लत है कि अभी तक भी हत्यारों के रहस्य को आप खोल नहीं सके ?"

मिस्टर नार्टन ने उत्तर में कहा, "मै तो मन में यह समझ चुका हूँ कि मिस्टर चोपड़ा एक घृणित जन्तु है। वह इस ससार में विष-बीज है। उसको जलाकर भस्म कर देने में ही मानव समाज का हित है। मै तो मिस्टर चोपड़ा को ससार से बाहर करने का यत्न कर रहा हूँ। हत्यायें तो गौण स्तर की वस्तुएँ है। मुख्य बात है वह प्रेरणा, जिससे हत्याओं के होने के लिये वातावरण तैयार हुआ।"

'यह प्रकृति के बहाव को आप बांध लगाना चाहते हैं। जितना सीमित कार्य आपको मिला है उसी तक अपने यत्न को सीमित क्यों नहीं रखते ?"

मिस्टर नार्टन ऐमिली के इस प्रश्न पर चकित रह गया। वह तो यह समझा था कि मिस्टर चोपड़ा के कारण जितना कष्ट उसको हुआ

है, उसके प्रतिकार में वह चोपड़ा का येन केन प्रकारेण सत्यानाश चाहेगी। परन्तु यह मनोवृत्ति उसको अस्वाभाविक प्रतीत हुई। वह यह विचार ही नहीं सकता था कि कैसे वह मिस्टर चोपडा जैसे आदमी की रक्षा के लिये युक्ति कर सकती है।

उसने कहा, "देखिये मिसेज़ चोपडा! मेरी मिस्टर चोपडा के साथ न तो मैत्री है न ही द्वेष। मेरी तो सत्य, न्याय, धर्म, भलमनसाहत और शान्ति से मित्रता है। मैं अपनी कानूनी और सफलता प्राप्त करने की योग्यता से इनका ससार में बोलबाला करने के लिये प्रयोग कर रहा हूं। जेबुलनिसा की मौसी ने मुझको इस मुकद्दमे के लिये केवल दो हज़ार रुपया दिया है और मैंने जो समय और मेहनत इस पर लगाई है वह इस रक़म से कहीं अधिक है। मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह ससार में शान्ति के अंशो की घोषणा करने के लिए कर रहा हूं। मिस्टर चोपड़ा इस विचार से संसार में रहने योग्य व्यक्ति नहीं है।"

इतना कह वह उठकर चला गया। ऐमिली इस विचारधारा को सुन चकित रह गई। वह स्वयं डांवाडोल अवस्था में थी। कभी तो उसके मन में आता था कि मिस्टर चोपड़ा फांसी चढ़ता है तो चढ जाये। उसको इससे क्या प्रयोजन है? कभी वह समझती थी कि यदि हत्यारा मिस्टर चोपड़ा नहीं है तो उसे क्यों हत्यारा घोषित किया जाये? इसके साथ ही वह अपना शच्युमैन द्वारा किया अपमान और दुर्व्यवहार याद करती थी, तो समझती थी कि मिस्टर चोपड़ा सत्य ही फांसी दिये जाने योग्य है। परन्तु वह जब शान्ता की ओर देखती थी, तो पुनः अथाह विचार-सागर में तैरने लगती थी।

इस समय बच्चों के स्कूल से उनसे मिल सकने की स्वीकृति आ गई। उसने आते ही स्कूल के प्रिन्सिपल को लिखा था कि वह बच्चो से मिलने आना चाहती है। इस पर प्रिन्सिपल ने जेल में मिस्टर चोपड़ा से पूछा था। इसमें तीन दिन लग गये थे। इस कारण वह अभी बच्चो को मिलने नहीं जा सकी थी।

इस स्वीकृति के आते ही वह टैक्सी लेकर स्कूल में जा पहुंची और सोमा आदि आये तो वह भागकर उनसे गले मिली। बच्चे जानते नहीं थे कि उनकी माँ से क्या और कैसे बीती है। हाँ, वे अपने पिता के जेल में चले जाने का समाचार जानते थे। यही कारण था कि माँ से गले मिल कर रोने लगे थे।

ऐमिली ने उनको प्यार किया और उनके रोने का कारण पूछा। उसको सन्देह था कि वे उसके कष्टों से परिचित हैं। सोम ने जब कहा "मम्मी पिता जी पकड़े गये हैं।" तो वह समझ गई।

उसने कहा, "हाँ! इसी कारण मैं योरुप से लौट आई हूँ।"

"तो अब तुम उनको छुड़ा लोगी?"

ऐमिली इस प्रश्न से असमंजस में पड़ गई। उसने धीरे से कहा "मैं इसमें क्या कर सकती हूँ?"

"जब पिता जी अफसर थे तो तुम उनके साथ बड़े-बड़े अफसरों से मिलने आया करती थीं और अब तुम आ गई हो तो उनसे मिलकर पिता जी को छुड़ा लोगी।"

"पर वे मेरा कहना मानेंगे?"

"तो मुलाकात का लाभ ही क्या हुआ?"

"पर सोम, यदि उन्होंने हत्यायें की होंगी, तो फिर अफसर लोग कैसे छोड़ेंगे?"

"पर उन्होंने हत्यायें नहीं कीं।"

"यह तुम कैसे कहते हो?"

"हमारे पिता जी ऐसी बात नहीं कर सकते।"

"तुमको विश्वास है?"

"तो मम्मी! तुमको विश्वास नहीं क्या?"

"मैं यह नहीं कह रही। मैं पूछती हूँ कि परमात्मा के विषय में जानते हो क्या?"

"वह कौन है?"

"गॉड को समझते हो क्या ?"

"हाँ ! जिसका बेटा प्रभु यीशु मसीह है।"

"तो उससे प्रार्थना करो। वह नेक आदमियों की रक्षा करता है।"

इससे सोम और दूसरे बच्चे भी अपनी माँ का मुख देखने लगे। ऐमिली ने उसको कहा, "वह, मेरा अभिप्राय भगवान से है, सर्व-शक्तिमान् है। वह सत्य और न्याय का पक्षपाती है। इस कारण बेटा, उससे प्रातः-सायं प्रार्थना किया करो। वह हम लोगो की अवश्य सुन लेगा।"

सरस्वती ने कहा, "मम्मी, अब हमको पाकेट मनी नहीं मिलता। वार्डन साहब कहते हैं कि हमारा खर्चा भी नहीं आ रहा।"

"मैं जाने से पूर्व सब बात निश्चय कर जाऊँगी।"

रामनाथ ने कुछ माँग उपस्थित नहीं की। जब ऐमिली ने उससे पूछा, "तुम क्या चाहते हो राम ?"

उसने माँ के मुख की ओर देखते हुए कहा, "मैं इस स्कूल में पढ़ना नहीं चाहता।"

"क्यों ?"

"मेरा दिल यहाँ नहीं लगता। मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।"

"अच्छी बात। प्रबन्ध करूँगी।"

जब ऐमिली बच्चों से विदा होने लगी तो प्रिन्सिपल ने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। इस कारण वह उससे मिलने चली गई। प्रिन्सिपल ने बच्चो का स्कूल का बिल जो पन्द्रह सौ रुपये के लगभग हो गया था, ऐमिली को देते हुए कहा, "यह कौन देगा ?"

"वही, जिसकी आज्ञा से तुमने बच्चों को मुझसे मिलने से भी मना कर दिया था।"

"पर वह तो अब क़ैद है।"

"मैं इसमें क्या कर सकती हूँ। तुमने मेरी मिलने की इच्छा की पूर्ति तब तक नहीं की जब तक वहाँ से स्वीकृति नहीं आ गई।"

"मैंने आपके पत्र के साथ यह बिल मिस्टर चोपड़ा के पास भेजा था,

उसने लिखा है कि हम लोग तुम से बातचीत करें।"

"पिछले बिल के विषय में मैं कहाँ से दूँ, मैं नहीं जानती। यदि भविष्य में वे आपको इनका खर्चा नहीं दे सकते तो मैं सोचूँगी कि मैं दे सकती हूँ या नहीं। यदि नहीं दे सकूँगी तो बच्चों को आपके स्कूल से उठा लूँगी।"

"पिछले व्यय के लिये हम क्या करें ?"

"आप आजतक मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं मानते थे। इस कारण मैं आज तक के बिल देने का उत्तरदायित्व नहीं मानती।"

प्रिन्सिपल इस युक्ति से निरुत्तर हो गया। इस पर उसने कहा, "जब हमको स्कूल का शुल्क और भोजनादि का व्यय नहीं मिला, तब हम चाहते तो बच्चों को धक्के मारकर सड़क पर निकाल देते। परन्तु बड़े माता-पिता के बच्चे नि सहाय कहाँ जायें, हम नहीं जानते थे। दया के भाव से हमने उनको चार महीने से नि शुल्क रखा हुआ है। आपके बच्चे हैं। आपको अब इनका उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेना चाहिये।"

"मैं इस सब बात को समझती हूँ। यह भी समझती हूँ कि आपने उस समय कितना क्रूर व्यवहार अपनाया था, परन्तु मैं तो उस बात को छोड़ती हूँ। कठिनाई यह है कि मैं नहीं जानती कि मेरे पास इस महँगी शिक्षा के देने को पैसा होगा या नहीं। मैं अपनी परिस्थिति का अनुमान एक-दो दिन में लगाकर आपसे बात-चीत करूँगी।"

२

ऐमिली के लिये यह एक और समस्या उत्पन्न होगई थी। वह बच्चों को स्कूल में रखे तो चार सौ रुपये मासिक के लगभग व्यय होता था। घर ले जाये तो होटल में इतना भोजन पर ही व्यय हो जायेगा। इस अवस्था में उसको घर बनाना पड़ेगा। कोई मकान रहने योग्य लेना होगा। वह अपनी इस और अनेक अन्य कठिनाइयों का कटु अनुभव मन

में कर रही थी और अभी तक इनके सुलझाने का उपाय समझ नहीं पाई थी।

वहां से चल वह मिस्टर चोपड़ा से भेंट करने जेल में जा पहुंची। ऐमिली मिस्टर चोपडा को देख चकित रह गई। वह बहुत ही दुर्बल हो गया था और उसकी मानसिक अवस्था में भारी अन्तर पड़ गया था। मिस्टर चोपड़ा आया तो बिना बोले सामने कुर्सी पर बैठ गया। ऐमिली ने बात आरम्भ कर दी, "आपका स्वास्थ्य कैसा है ?"

"छोड़ो इस बात को। इस दिखावे की बात से कुछ लाभ नहीं। मिस्टर सूरजमोहन मुझको कल मिला था और कह रहा था कि तुम मिस्टर नार्टन की मेरे विरुद्ध सहायता कर रही हो।"

"मैं समझती थी कि आपके पाप का घड़ा भर गया है और अब डूबे बिना नहीं रहेगा। जो कुछ आपने मेरे साथ किया है उसका फल यही होना चाहिये था कि आपकी डूबती नौका को शीघ्र डूबने में सहायता देती, परन्तु......"

ऐमिली चुप हो गम्भीर विचार में पड़ गई। जब कितनी ही देर तक वह नहीं बोली तो चोपड़ा ने पूछा, "परन्तु क्या ? कहो न। रुक क्यों गई हो ?"

"मैं सोच रही थी कि वह पवित्र नाम आपके सामने लूं भी या नहीं। अब सुनो, शान्ता देवी की यह इच्छा है कि मैं आपको छुड़ाने में सहायता दूं। मुझको मिस्टर नार्टन ने बताया है कि वह कई बार उसके पास भी जाकर दया की प्रार्थना कर चुकी है। उस देवी को अभी भी विश्वास है कि आपने हत्यायें नहीं कीं।"

"इसके साथ आपका पुत्र सामनाथ रो-रो कर मुझको कह रहा था, कि मैं आपको बचाऊं। इस कारण मैं अपने दृढ़ संकल्प से जिसको लेकर मैं जनेवा से यहां आई थी, बदल रही हूं।"

"पर तुम क्या कर सकोगी ?"

"यदि आप मुझको अपनी पूर्ण कथा, सत्य-सत्य बता दें और बता

दें कि किसने हत्या की है, तो मैं आपको बचाने की योजना बना सकती हूँ।"

"और यदि तुमने मुझसे भेद लेकर मुझको ही फंसा दिया तो ?"

"यदि मुझ पर विश्वास नहीं तो मत बताइये। मैं बिना जाने जो कुछ कर सकूंगी, करूंगी।"

"मुझको विचारने का अवसर दो।"

"हां! कहिये तो कल-परसों फिर आऊँ ?"

"आना। मैं सोच रखूंगा। एक बात बता देना चाहता हूँ कि हत्यायें मैंने नहीं कीं। अभी और कुछ नहीं बताऊंगा।"

"अच्छी बात है। मैं फिर कल आऊंगी। एक बात और है, बच्चों के लिये स्कूल की फीस का लगभग पन्द्रह सौ रुपया हो गया है। वह मैं कहां से दूं ?"

"मैं जब कैद हुआ था, मेरे पास नक़द बीस हजार रुपया था और अब मैंने अपनी पचास हजार की पालसी पेड-अप करवा ली है। वह ग्यारह हज़ार की पेड-अप हुई है। उस पर सात हजार का कर्जा लिया जा सकेगा। सब मिल कर सत्ताईस हजार रुपया हुआ। सूरजमोहन से पूछ लेना, कितना उसके पास शेष बचा है। मुकद्दमा तो अभी सेशन कोर्ट में चलेगा। फिर हाईकोर्ट में और फिर मेरा बस चला तो प्रिवि-कौन्सिल में भी। इस सब के लिये सत्ताईस हजार कुछ भी नहीं।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि बच्चों की शिक्षा बंद करनी पड़ेगी।"

"मैं कुछ नहीं कह सकता।"

"ठीक है। मैं यह भी निपट लूंगी। बच्चों को वहां से निकाल लेना पड़ेगा। शहर के भीतर कोई मकान लेना पड़ेगा और किसी न किसी प्रकार निर्वाह करना पड़ेगा।"

यह भेंट मिस्टर चोपड़ा के मन में विपरीत प्रभाव करने वाली सिद्ध हुई। उसको सन्देह हो गया कि उसका भेद लेकर उस ही के विरुद्ध कार्यवाही की जायेगी। अगले दिन उसने सूरजमोहन से ऐमिली की

बात बताई तो सूरजमोहन ने भी कहा, "वह क्या कह सकती है ? न तो वह वकील है, न ही धनवान्, आखिर वह किस प्रकार सहायता कर सकती है ? जब तक यह न बताये तब तक वास्तविक भेद नहीं बताना चाहिये।"

मिस्टर चोपड़ा इससे सतर्क हो गया और अगले दिन जब ऐमिली आई तो चोपड़ा ने कह दिया, "मैं केवल इतना ही बता सकता हूँ कि हत्यायें मैंने नहीं कीं।"

"इतना ता मुझको पहले भी मालूम था।" ऐमिली ने क्रोध में दांत पीसते हुए कहा। इस समय भी इस पुरुष को अपनी स्त्री पर अविश्वास करते देख वह अति दुःख से अपने होंठो को चबाती हुई खड़ी रह गई।

उसने केवल यही कहा, "इस पर भी जो मेरे वश में है सो करूंगी। अपने बच्चों को इस लांछन से बचाने के लिये कि वे किसी हत्यारे की सन्तान हैं, मैं भरसक यत्न करूंगी कि आप छूट जायें।"

"अच्छा, अब मैं चलती हूँ। पुनः हाईकोर्ट में दर्शन होंगे।" अगले दिन उसने बांसमंडी अनारकली में एक मकान ले लिया। बच्चों को स्कूल से उठा लिया और उनका पिछला खर्चा जो बारह सौ रुपये के लगभग बनता था स्कूल वालों को दे दिया।

३

प्रेमनाथ के लाहौर आ जाने से जो प्रसन्नता उसकी माता को हुई उसका पारावार नहीं था। सबसे विस्मय कारक बात मिली का साथ होना था। मिली डी० ला० म्यूरो, प्रेमनाथ की माँ के मकान में ठहरी थी। यद्यपि उसको लाहौर का रहन-सहन और प्रेमनाथ की आर्थिक व्यवस्था भली भांति विदित थी तो भी फ्रांस के सामने इनकी अवस्था इतनी हीन थी कि कुछ दिन तक तो वह अचम्भे में अपनी वर्तमान और भावी अवस्था पर विचार करती रही।

प्रेमनाथ को लाहौर आकर पता चला कि इन्द्रा का विवाह हो चुका है। इससे उसको हार्दिक प्रसन्नता हुई। मिली का उसने माँ को केवल मात्र यह परिचय दिया था, "माँ, यह मेरी परिचित् लड़की है। बहुत ही नेक और समझदार है। भारतवर्ष में आई है। वहाँ इसने मम्मा की खोज में और टहल-सेवा में बहुत ही सहायता की थी।"

प्रेमनाथ ने अपना विचार विवाह करने का अभी नहीं बताया। वह समझता था कि मिली को कुछ दिन वहाँ रहकर उनके घर की बातों को जानने और समझने का अवसर मिलना चाहिये। पीछे विवाह की बात होगी। मिली प्रेम की माँ के साथ सोने लगी।

मिली को पहले तो हिन्दुस्तानी जीवन-स्तर और फिर वहाँ के रहने का ढंग कुछ विचित्र प्रतीत हुआ। साथ वह यह देखकर चकित रह गई कि हिन्दुस्तानी लड़कियाँ और औरतें घर से बाहर का कोई काम नहीं करतीं। यहाँ का पहरावा और भोजन भी उसको कुछ पसन्द नहीं आया। इन सब बातों के कारण वह गम्भीर विचार में पड़ चुप रह गई।

प्रेमनाथ की माँ के घर का काम इतना संक्षिप्त था कि सब काम मिली के प्रात उठने से पहले ही हो चुका होता था। जब मिली आँखें मलती हुई उठती थी, घर की सफाई और प्रात का अल्पाहार बनकर तैयार हो जाता था।

जब उसने प्रेमनाथ के साथ हिन्दुस्तान आने का निश्चय किया था तब से ही उसने हिन्दुस्तानी सीखनी आरम्भ कर दी थी और अभी तक प्रेमनाथ से एक घंटा नित्य सीख रही थी। इस कारण अब वह कुछ-कुछ बातें माता जी से कर सकती थी। एक दिन उसने प्रात. उठकर खाटपर आँखें मलते हुए कहा, "माता जी ! मुझको प्रात उठा लेतीं तो मैं भी काम करती।"

"क्या करती बेटी ?"

"सफाई।"

"राम !राम ! तुम हमारी मेहमान हो। तुमसे हम ऐसा काम नहीं करा सकते।"

"पर प्रेम की बहू से तो कराते न ?"

"उसकी बात दूसरी है। वह घर की मालकिन होती।"

"बहुत बड़ी पदवी आप दे देंगी ?"

"हाँ, और उत्तरदायित्व भी। अपने बेटे की जान उसके हाथ सौंप दूंगी।"

"इतना बड़ा उत्तरदायित्व तो किसी बहुत ही भाग्शाली लड़की को मिलेगा।"

"पर बेटी, हम बहुत निर्धन भी हैं। हमारे निर्वाह का अभी कोई पक्का प्रबन्ध नहीं है। प्रेम एक दुकान खोलने का विचार कर रहा है। तब लोग समझेंगे कि हमारे घर का भी कोई व्यवसाय है।"

"तो अब फौज की नौकरी नहीं करनी ?"

"वह तो छूट चुकी है। युद्ध समाप्त हुए एक वर्ष होने जा रहा है। हिन्दुस्तान में फौजें तोड़ी जा रही हैं। जो अधसिखी थीं और जिनने रण-भूमि नहीं देखी, वे तोड़ी जा चुकी हैं।"

"आपके निर्वाह का स्रोत क्या है ?"

"कराची पोर्ट ट्रस्ट के कुछ हिस्से खरीदे हुए हैं। उनकी आय से निर्वाह होता है।"

"क्या हम कुछ काम नहीं कर सकते ?"

"करते तो हैं। घर का सब काम मैं करती हूं। जिससे प्रेम को बाहर का काम करने का अवकाश रहे।"

"परन्तु इससे तो समय व्यतीत नहीं होता। कुछ ऐसा काम करना चाहिए जिससे कुछ धनोपार्जन भी हो।"

"अच्छी बात है।"

अगले दिन पांच रुपये व्यय कर प्रेम की माँ एक चर्खा और आठ आने की रूई खरीद लाई। वह स्वयं सूत कातने लगी। मिलो के लिये

यह एक नवीन वस्तु थी। उसने बच्चों की किताबो में वूढी स्त्रियों के सूत कातने की कहानी पढ़ी थी। परन्तु उसने इस यन्त्र को कभी देखा व छुआ तक नहीं था। प्रेम की माँ पजाब की स्त्रियों की भाँति अच्छा बारीक सूत कातना जानती थी। उसने लगभग एक घटा भर काता और उस काल में दो गुच्छो भर सूत कातकर रख दिया।

मिलो ने भी चलाने का यत्न किया। उसने अनुभव किया कि यह काम बहुत अभ्यास रखता है। इस पर भी प्रेम की माता को यह कार्य सुगमता से करते देख वह स्वय भी प्रयत्न करती रही। पहले दिन तो रूई खराब करने और तकली को टेढा कर देने के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कर सकी। अपने काम का फल खराब हुई रूई और खड-खड करते तकले को देख वह परेशान हो रही थी कि प्रेम की माँ रामायण का पाठ समाप्त कर वहाँ आई और उसको इस अवस्था में देख हँस पडी, "क्या हुआ है बेटी?"

"देखिये तो क्या हो गया है, माँ जी!" उसने चर्खा घुमाकर दिखाया।

प्रेम की माँ हँस पडी। उसने कहा, "कोई भी कार्य बिना तपस्या के सिद्ध नहीं होता। धैर्य से करती जाओ। निश्चय कर सकोगी।"

"वह तो ठीक है। पर इसका क्या होगा?" उसने टेढे हुए तकले की ओर सकेत कर पूछा।

"यह ठीक हो जावेगा।"

प्रेम की माँ ने तकले को निकाला और सिल के ऊपर रखकर एक साफ पत्थर से रगडकर सीधा कर दिया। पजाब में स्त्रियाँ इस साधारण परन्तु बहुत ही आवश्यक क्रिया को जानती ह। पाँच मिनट में तकला सीधा कर चर्खे में चढ़ा और थोड़ा सूत कात तकले की परीक्षा कर मिलो को पुन बिगाडने के लिये दे दिया।

प्रेमनाथ माँ और मिलो की परस्पर बातचीत सुना करता था।

आज मिली को चर्खे के साथ जुता देख हँस पड़ा, "यह क्या हो रहा है मिली ?"

"यह चाहती थी कि धन कमानेवाला काम किया जाये ! हम जैसे साधनहीन मनुष्यों के लिये यह काम ही उपलब्ध है।" माँ ने कहा।

"इससे क्या मिलेगा ?"

"यदि एक आदमी दो घंटा नित्य इसको काता करे तो अपने लिये आवश्यक कपड़ों का सूत तो कात सकता है।"

"लाभ कितना होगा ?"

"आधी कीमत पर कपड़ा मिल सकेगा।"

"यह तो कुछ न हुआ।"

"जिस योग्य हूँ, उतना ही तो कमा सकती हूँ ?"

"पर माँ जी ! मैं तो इसके लिये कह रहा हूँ। मारसेल्ज़ में यह पचास रुपये के लगभग एक सप्ताह में कमा लेती थी।"

"तो जब मारसेल्ज़ जायेगी, उतना फिर कमा लेगी। यहां तो भले घर की लड़कियाँ दुकानों पर काम नहीं करतीं।"

"पर इसने वहां जाना है क्या ? कब जाना है ?"

माँ ने मिली की ओर, प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा, तो मिली ने पूनी में से तार निकालते हुए कहा, "मेरे पास वापिस जाने के लिये समय नहीं है।" इतना कहते-कहते तार टूट गया। इस पर उलहाने की मुद्रा बनाकर उसने प्रेमनाथ की ओर देखा और कहा, "देखिये न ! मारसेल्ज़ जाने के नाम से तार टूट गई है। वहाँ जाने की बात बनती दिखाई नहीं देती।"

प्रेमनाथ बात को इस प्रश्न पर लाना चाहता था। इससे वह माँ और मिली के सामने चटाई पर बैठ गया और बोला, "वहां जाने का समय नहीं। चर्खा कातने से तो जीवन भर अवकाश नहीं मिलेगा।"

"तो न मिले ! मुझको वहां जाने के लिये कोई विवश कर रहा है क्या ?"

अब प्रेम की माँ ने बात स्पष्ट करने के लिये कहा, "देखो बेटी, इस देश में तुम्हारी आयु की लड़कियों का विवाह हो जाता है। यदि तुमको अपने देश नहीं जाना तो तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध करना पड़ेगा।"

"तो कर दीजिये न, माँ जी!"

"पर तुम्हारी जात-बिरादरी का लड़का ढूँढ़ने में यहाँ कठिनाई होगी।"

"क्यों? मुझको तो यहाँ अपनी जात-बिरादरी के लोग बहुत से दिखाई देते हैं।"

"मैं घर से बाहर कम निकलती हूँ। इस कारण देख नहीं पाती और फिर तुम लोग अपना वर आप ढूंढ लेती हो।"

"मैं यही सोच रही थी कि मेरी इस धृष्टता को आप किस दृष्टि से देखेंगी।"

"अपने-अपने देश का रिवाज है बेटी! इन्द्रा के लिये वर ढूँढ़ा तो उसने विवाह के पीछे ही उसका मुँह देखा था। अब चिट्ठी-पत्री से पता चलता है कि दोनों एक दूसरे से प्रसन्न हैं। तुम्हारे देश में तुम लोग जैसा करती हो वैसा यहाँ भी कर सकती हो। बताओ, कोई लड़का है तुम्हारी दृष्टि में?"

"तो मैं उससे कहूँगी कि आपसे मिलकर मेरे विषय में बात करले। अब यहाँ मेरी माँ तो आप ही हैं न?"

"हाँ! मैं एक और कन्यादान कर बहुत पुण्य की भागी बनूँगी।"

अगले दिन मिली ने प्रेमनाथ के साथ माल पर घूमते हुए कहा, "कल माता जी मेरी बात समझ नहीं पायीं।"

"तुमने जो कहा था सो तो वह समझ गई थीं। और जो तुमने नहीं कहा था सो कैसे समझ सकती थीं?"

"मेरे कहने का अर्थ निकल सकता था।"

"किसी दूसरे की बेटी के वर के विषय में बिना कहे कैसे कोई अनु-

मान लगा सकता है।"

"तो मैं अभी आपकी मां की बेटी नहीं बनी क्या ?"

"यही तो कठिनाई है। माँ की बेटी विवाह के पीछे बनोगी।"

"तो विवाह कर दीजिये, जिससे वे मां जी का अधिकार पा जावें।"

"यही तो वे कहती हैं। तुमने वर को उनके पास भेजने को कहा है न ?"

"और वर को ही तो कह रही हूँ। देखिये, मैंने अपना निर्णय जनेवा में ही दे दिया था।"

"परन्तु तुमने वहां हमारी निर्धनता को देखा नहीं था।"

"मैं तो इसको निर्धनता नहीं मानती। इसको सादगी कहते हैं और यह मुझको पसन्द है।"

"तुम यहां आने के पीछे कई दिन तक चिन्तित प्रतीत होती रही हो। इससे मैंने समझा था कि शायद तुम्हारे विचारों में परिवर्तन हो रहा है।"

"परिवर्तन तो प्रतिदिन होते रहते हैं। परन्तु मेरे मन के परिवर्तन तो मुझको आपके समीप ही ले जा रहे हैं। आपकी माता जी का सौम्य व्यवहार, धर्म और भगवान में निष्ठा, सत्याचरण और सादगी निःसन्देह अति प्रिय प्रतीत हुई हैं।"

"तो तुम्हारा मतलब यह है कि मैं मां से कहूँ ?"

"मुझसे कहलाते आपको लज्जा नहीं लगेगी ?"

"ठीक है। मैं समय पाकर बात करूँगा।"

४

ऐमिली ने मकान लिया और बच्चों को उसमें बुला लिया। इस प्रकार एक कार्य से निवृत्त हो वह मुकद्दमे के विषय में सोचने लगी। वह सूरजमोहन के पास गई तो उसने बात करनी पसन्द नहीं की। उसने जब

यह पूछा, "मिस्टर चोपडा के छूटने की सम्भावना क्या है," तो सूरज-मोहन बोला—

"कुछ नहीं ! परिस्थिति ऐसी है कि मिस्टर चोपडा के अतिरिक्त कोई दूसरा हत्यारा प्रतीत ही नहीं होता। मिस्टर चोपडा दण्ड से बच नहीं सकते। हाईकोर्ट की बेंच ने मुकद्दमे के विषय में अपनी सम्मति लिखते हुए मिस्टर चोपडा के विरुद्ध इतना लिखा है कि अब उसका बच निकलना असम्भव है।"

ऐमिली वहां से निराश लौटी। उसे एक बात सूझी। उसने एक सागरचन्द नाम के साधारण बैरिस्टर से कहा कि वह अपने को शच्यूमैन का वकील घोषित कर उससे भेंट करे और उससे रहस्य प्रतीत करने का यत्न करे।

शच्यूमैन परदेस में किसी को अपना सहायक नहीं पाता था। इस कारण जब जेल के दारोगा ने उसको बुलाकर कहा कि उसका वकील उससे बातचीत करने आया है, तो वह अवाक् मुख दारोगा का मुख देखता रह गया। मुलाकात के कमरे में, एक गंदमी रंग के सूट-बूट पहने, दुबले-पतले आदमी को देख पूछने लगा, "आप मेरे वकील हैं ?"

"हां।"

"किसने भेजा है आपको।"

"मिसेज चोपडा ने।"

"मुझको उस पर विश्वास नहीं।"

"यह स्वाभाविक है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आप मुझसे सत्यता का व्यवहार करेंगे तो मैं आपको इन हत्याओं से बचाने का यत्न करूंगा। जहां तक आपके विरुद्ध मिसेज चोपडा का आरोप है, वह नहीं लगाया जायेगा।"

"मुझको इसका विश्वास कैसे होगा ?"

"मिसेज चोपडा के बयान अदालत में होने वाले हैं। वह आपके विरुद्ध कुछ नहीं कहेंगी। परन्तु यह तब हो सकेगा यदि आप सब भेद,

हत्याओं के विषय में, बता देंगे।"

"आपको यह किसने बताया है कि मैं हत्याओं के विषय में कुछ जानता हूँ ?"

"मिस्टर चोपडा ने नये बयान दिये हैं, जिनमें उन्होंने सब दोष आप पर फेंकने का यत्न किया है। साथ ही चौकीदार ने आपको पहचान लिया है और उसके भी दुबारा बयान होनेवाले हैं ?"

"मुझको इसका विश्वास नहीं होता।"

"मिसेज़ चोपडा का यह कहना है कि आपके सैनिटोरियम की कथा प्रेमनाथ, मिली डी-ला-म्यूरी और वह स्वयं बताकर एक ओर, और चोपडा दूसरी ओर यह बयान देकर कि तुमने पिस्तौल उसकी दराज से निकाली और दोनों औरतों पर चलाई और फिर चपरासी को डराने के लिये बरामदे में गोली चलाई, तुमको फाँसी दिलवा देंगे। यदि यहाँ की बात तुम बता दो तो योरुप की बात मिसेज चोपडा नहीं कहेंगी।"

"बात यह है कि मिस्टर नार्टन के सब प्रकार का यत्न करने पर भी मुकद्दमा नहीं बना। हम लोग आशा करते हैं कि हम सब छूट जायेंगे। मैं यदि अपने साथियों के साथ दगा करूँ और फिर बचूं भी नहीं तो बात और भी बिगड जायेगी।"

"यदि हम तुमको सरकारी गवाह बनवा दें तो।"

"पुलिस तो मुकद्दमे में रुचि प्रकट नहीं कर रही। फिर सरकारी गवाह की बात ही नहीं बन सकती।"

वकील को यह बात समझ में आई कि दोनों अभियुक्त एक दूसरे की राय से काम कर रहे हैं। इस राय में उनका वकील भी सम्मिलित है। इससे यह सिद्ध होता है कि वकील भी हत्याओं के षड्यन्त्र में सम्मिलित है। वह मिस्टर चोपड़ा का मित्र था। जूआ खेलने और शराब पीने में उसका साथी था। मनमोहिनी के पति का भी मित्र है। इस कारण इन अभियुक्तों को छोड़ अन्य लोगों से भेद जानने का यत्न करना चाहिये।

इस विचार से उसने मिस्टर शच्यूमैन से कहा, "मैं इस मुकद्दमे में

वास्तविक दोषी को पकड़वाने में रुचि रखता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि हत्यारा आप दोनों में से कोई नहीं है। परन्तु यदि मैं सफल नहीं हुआ तो आप फांसी पर लटकेंगे और मिस्टर चोपड़ा जीवन भर की कैद भोगेंगे। मिसेज चोपड़ा यह चाहती थीं कि यदि वास्तविक हत्यारे का पता चल जाये तो आपको बचाने का यत्न किया जा सकता है।"

शच्यूमैन नहीं माना। इस पर भी मिस्टर चोपड़ा और शच्यूमैन की बातों से यह पता चल गया था कि असली हत्यारे को दोनों जानते हैं और वह उनके विचार में बच जावेगा।

तीन महीने पश्चात् मुकद्दमा सैशन कोर्ट में पुन आरम्भ हुआ। शच्यूमैन के बयान हुए, "बर्लिन का पी०एच०डी० हूँ। मैंने साईकोलोजी का बहुत अध्ययन किया है। मैं बम्बई में था जब मुझको मिस्टर चोपड़ा की चिट्ठी मिली कि उनकी स्त्री का मस्तिष्क खराब हो गया है। उसका इलाज करने के लिए मुझको कहा गया। मैंने इनको स्विटजरलैंड की जलवायु में भेजने का आग्रह किया। वे मान गये और मिसेज चोपड़ा वहाँ भेज दी गई। वहाँ मैंने इनको एक हाऊसकीपर की देखरेख में रखा। वहाँ इनकी अवस्था कुछ अधिक बिगड़ गई थी। पीछे मुझको पकड़ लिया गया। मैं नहीं जानता क्यों?"

इस पर मिस्टर नार्टन से प्रश्नोत्तर हुए। इसमें उसने बताया कि अपनी स्त्री को भेजने में मिस्टर चोपड़ा का बहुत खर्चा हो गया था। इस कारण उसको दस हजार रुपया मिसेज चोपड़ा को दस वर्ष तक रखने के लिये देने में देर हुई और वह टिका रहा। मिसेज चोपड़ा का प्रोग्राम इटली के कई नगरों को देखते हुए जानने का था। इस कारण मुझको यहाँ ठहरकर रुपया प्राप्त करने के लिये समय था।"

"तुमको रुपया कब मिला?"

"मुझको रुपया मेरे यहाँ से जाने के दो दिन पहले मिल चुका था। मेरे जहाज के जाने में समय था। इस कारण मैं यहीं ठहरा रहा।"

"तो आपने हिन्दुस्तान के कौन-कौन से नगर देखे हैं?"

"बम्बई और लाहौर।"

"तो इतनी दूर आप केवल ये दोनो नगर देखने आये थे ?"

"मैं तो केवल बम्बई देखकर ही चला जाने वाला था । मिस्टर चोपड़ा का पत्र मिला तो मैं और ठहर गया और लाहौर देखने चला आया ।"

मिस्टर नार्टन के प्रश्न पूछने के पश्चात् मिस्टर सागरचन्द ने शच्यूमैन से प्रश्न पूछने की स्वीकृति प्राप्त कर ली । उसने पूछा, "हत्या के दिन आपको एक चैक दस सहस्र रुपए का देने के लिए एक आदमी आया था । वह कौन था ?"

"मैं उसको नहीं जानता ।"

"आपने वह चैक वापिस क्यों कर दिया था ?"

"मैंने वापिस नहीं किया था । इस आदमी ने मुझ से चैक पर हस्ताक्षर ले लिये थे और कहा था कि नक़द रुपया लाकर वह देगा ।"

"आपने दस सहस्र रुपये के लिये अनजान आदमी पर विश्वास कैसे किया ?"

शच्यूमैन घबरा गया। इस पर वकील ने पूछा, "अब आप बताइये कि वह आदमी कौन था ।"

"मैंने उसको मिस्टर चोपडा के घर कई बार देखा था ।"

"आप उसका नाम जानते हैं ? बता दीजिये ।"

"मैं नाम नहीं जानता ।"

"देखिये, आपने उस चैक पर लिखा था, "प्लीज़ पे दी अमाउंट टू ...... ।"

"मुझको स्मरण नहीं ।"

"यह जो रुपया आपको दिया गया था, यह किस बात का था । जब आप कह चुके हैं कि आपको दो दिन पूर्व रुपया मिल चुका था ?"

इससे शच्यूमैन के माथे पर पसीने की बूँदें आने लगीं। इस पर बैरिस्टर साहब ने कहा, "क्या यह रुपया इन हत्याओं के करने के लिए था ?"

"मत बताओ। कानून तो खून का बदला खून से लेगा। अब वह ा हो या कोई दूसरा, मुझको इससे क्या!"

५

शान्ता नित्य ऐमिली से मिलकर मुकद्दमे की प्रगति का पता लेती ़ती थी। जिस दिन से यह चैक का मामला हुआ उसी दिन शान्ता को ा चल गया। ऐमिली भी इस बात से परेशान प्रतीत होती थी। शान्ता पूछा, "अब क्या होगा?"

"बात यह है कि मैं उनसे कई बार कह चुकी हूँ कि असली हत्यारे । पता बता दें तो फिर नार्टन इत्यादि को कहकर मुकद्दमे की गतिविधि ़ली जा सकती है। परन्तु उनकी बुद्धि में यह बात समाती ही नहीं। यही कहते हैं कि यदि उन्होंने असली अपराधी का नाम बता दिया तो न उनको भली भाँति फँसा सकेंगे। वे मुझ पर अथवा किसी पर भी ़श्वास नहीं करते।"

शान्ता ने कहा, "क्या था और क्या हो गया? कहाँ से चले और हाँ पहुच गये हैं। देखो बहिन! हमको किसी दूसरे के कामों से अपना र्तव्य-निर्माण नहीं करना। हमको तो अपना कर्तव्य अपने विचार से ़ाना है।"

"ठीक है। पर मैं सोचती हूँ कि अपने साधारण से साधनों को इस ार्य के प्रयास पर क्यों व्यय कर दूँ। सोम ने इस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा है, वह पास हो जावेगा। उसको भी किसी काम पर लगाने के लिये ाधनों की आवश्यकता होगी।"

"तो वह कालेज में पढेगा नहीं?"

"क्या लाभ होगा? एक तो उसको उच्चशिक्षा देने के लिये धन हीं है, फिर वह शिक्षा प्राप्त कर किसी सरकारी उच्च पद पर नियुक्त हीं हो सकेगा। उसके पिता की करतूतों की परछाईं उसके जीवन र मँडराती रहेगी। मैंने तो एक बात विचार की है। सोम के परीक्षा

पास करने पर उसको और प्रेम को साझेदारी में पुस्तकों की दुकान करवा दूं। प्रेम ने मुझसे कहा है कि वह मोहनलाल रोड पर दुकान करना चाहता है। मैं चाहती हूं कि अनारकली बाजार में दुकान करवा दी जाये।"

शान्ता चुप रही। इस पर ऐमिली ने पूछा, "प्रेम का विवाह कब कर रही हो ?"

"इस प्रकार विवाह कैसे होगा ? कौन लड़की देगा हमको ?"

"क्यों, प्रेम ने कुछ कहा नहीं ?"

"क्या नहीं कहा ?"

"उसको तो बीवी मिल गई है। बहिन ! तुम भी बिल्कुल भोली हो। देख नहीं रही कि सात हजार मील से चलकर कोई लड़की ऐसे थोड़े ही आई है।"

"तो आपका मतलब मिली से है। उसने अभी उस दिन कहा था कि वह एक लड़के से विवाह करना चाहती है और उस लड़के से कहेगी कि मुझसे मिलकर निश्चय करे।"

"तो वह लड़का मिला नहीं तुमको ?"

"अभी तक तो नहीं मिला।"

ऐमिली हँस पड़ी। उसने कहा, "वह लड़की आपके सामने पहेली डाल गई है और तुम उसकी पहेली को समझ नहीं सकी।"

"तो तुम्हारा अभिप्राय है कि वह प्रेम से विवाह करना चाहती है ?"

"हां, और प्रेम उससे करना चाहता है।"

शान्ता का मुख प्रफुल्लित हो उठा। उसने कहा, "लड़की तो अच्छी है। स्वभाव की अति शील और सभ्यता से बात करती है। बहुत मेहनत करती है। आजकल चर्खा कातने का अभ्यास करती रहती है। पर क्या उन्होंने तुमसे यह सब कुछ कहा है ?"

"हां ! वहां से आते समय यह सब कुछ निश्चय हो चुका था।"

"तो मेरा बेटा मुझसे हँसी कर रहा था। आज जाकर उसके कान

खीचूंगी।"

सोम, सरस्वती और राम बाजार से घूमकर आये तो शान्ता के चारों ओर बैठकर उसे तंग करने लगे। कहने लगे, "मौसी! भजन सुनाओ न आज।"

शान्ता मीरा और कबीर के भजन गाया करती थी। एक बार वे उसके घर गये थे और वहां उसको भजन गाते सुन आये थे। सोम ने कहा, "मौसी! गाओ न।"

"बेटा! भजन तो मैं अपने घर ही गाती हूँ। वहां चलो, सुनाऊंगी।"

इस पर राम गर्दन से लटककर बोला, "यहां क्यों नहीं?"

"तुम्हारी मम्मी पसन्द नहीं करेंगी।"

"मम्मी!" अब सरस्वती ने उसके गले में बांह डालकर कहा, "मम्मी, तुम कहो न, ये बहुत अच्छा गाती है।"

ऐमिली ने बात टालते हुए कहा, "देखो, ये अपने घर जा रही हैं। इनके साथ चले जाओ। वहां प्रेम भैया की सगाई की बात हो रही है। मिठाई भी मिलेगी और भजन भी सुनना।"

"तब तो तुम भी वहां चलो।" सोम ने कहा, "तो तुम प्रेम भैया की सगाई पर नहीं चलोगी?"

ऐमिली हंस पड़ी। फिर कुछ सोचकर बोली "मैं पुष्प-मालायें और कुछ भेंट लेकर आती हूँ।"

विवश शान्ता और सोम आदि चल पड़े। जब मकान पर पहुँचे तो मिली और प्रेमी भी सायंकाल की सैर कर लौट रहे थे। शान्ता ने दरवाजा खोला तो वे भी आ पहुँचे। शान्ता ने कहा, "ऊपर आओ प्रेम! तुमको आज दंड देने आई हूँ। तुमने मुझसे धोखा किया है?"

"क्या दंड है मां!" प्रेम ने चिन्ता के भाव से मां की ओर देखकर पूछा। सोम इसका अर्थ न समझकर विस्मय से मौसी का मुख देखने लगा था।

सब ऊपर गये तो शान्ता ने कहा, "मिली! इधर आओ तो।"

मिली पास गई तो उसको अपने सामने चटाई पर बैठाया और प्रेम को सामने खड़ा कर कहा, "तुमको दंड तो पीछे दूंगी। तुमने इतने दिन तक जो मुझको उल्लू बनाया है। पहले देखो, ये सोम इत्यादि तुमसे मिठाई खाने आये हैं। बाजार से पाच रुपये की मिठाई ले आओ। देखो! जल्दी आना। देर की तो दंड दुगना हो जावेगा। जाओ जल्दी जाओ।"

प्रेम विस्मय से मुख देखता हुआ खड़ा रह गया। प्रेम की मा ने अपनी अंटी में से पांच रुपये का नोट निकालकर प्रेम को दिया और कहा, "बढ़िया मिठाई लाना। लाहौरी दरवाजे के बाहर से। जाओ न!"

"पर मा! क्या हो गया है आज। मुझको दंड मिलेगा और सोम को मिठाई?"

मिली हँस पड़ी और प्रेम समझ गया। वह मिठाई लेने भाग खड़ा हुआ। जब वह चला गया तो मां ने मिली के सिर पर हाथ फेरकर कहा, "चिरजीवी होवो बेटी, मुझको पहले बताया क्यों नहीं? देखो सोम, ये हैं तुम्हारी भाभी।"

"मिली! यह भाभी है। ओ, तब तो मजा रहेगा। बरात लेकर कहीं जाना नहीं पड़ेगा।" अब सरस्वती ने मिली के गले में बाह डालकर उसकी ठुड्डी ऊपर उठाकर कहा, "भाभी, देखो तो हमारी ओर। देखो न! हमसे लड़ोगी तो नहीं?"

मिली ने ज़ोर से आंखें मीच लीं। इस पर सब हँसने लगे। अब राम ने कहा, "मौसी, अब गाना सुनाओ।"

"हा, भगवान का धन्यवाद करना चाहिए न। तो सब बैठ जाओ। मैं गाती हूँ। तुम भी मेरे पीछे-पीछे गाना।" सब मिली के चारो ओर बैठ गये। शान्ता ने अपने छैने निकाल लिये और उनको घंटी की भाँति बजाकर गाने लगी।

"प्रभु मेरे अवगुण चित्त न धरो,
समदर्शी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो। प्रभु मेरे······
उसके साथ बच्चे भी गाने लगे—

"समदर्शी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो। प्रभु मेरे

इस प्रकार गाना चल रहा था। शान्ता साथ-साथ छैने बजाती थी और गाती थी। बच्चे भी तालियों से ताल दे-देकर गा रहे थे।

इस समय ऐमिली मिठाई और फूलों की मालायें लेकर आ गई। उसने शान्ता के पास बच्चों को बैठ गाते और तालियां बजाते देखा तो खिलखिलाकर हँस पड़ी। इससे सब गाना छोड़ उसकी ओर देखने लगे। उसने मिली को सबके बीच बैठे देख पूछा, "प्रेम कहा है ?"

सोम ने उत्तर दिया, "भैया मिठाई लेने गये है।"

"मम्मी" सरस्वती ने कहा, "यह भाभी है।" उसने मिली के गले में बांहें डाल दीं।

"तुमको पसन्द है ?"

"हां। मुझको बहुत प्यारी लगती है।"

६

प्रेमनाथ का विवाह मिली से हो गया। विवाह आर्य समाज के पुरोहित ने कराया और मिली का हिन्दुस्तानी नाम, बहुत विचारोपरात, दमयन्ती रखा गया। विवाह के तुरन्त पीछे प्रेम और सोम के लिए कमर्शल बिल्डिंग में एक दुकान का प्रबन्ध कर दिया गया, जिसमें पुस्तक-भण्डार खोल दिया गया।

सैशन कोर्ट में मुकद्दमे का निर्णय मिस्टर चोपड़ा और शच्यूमैन के विरुद्ध हुआ। निर्णय में यह कहा गया कि शच्यूमैन ने हत्या की और मिस्टर चोपड़ा ने कराई है। शच्यूमैन को फांसी दिये जाने की आज्ञा हुई और चोपड़ा को आजन्म कैद।

इस समाचार से नगर में धूम मच गई। प्राय. लोग इस निर्णय से सन्तोष अनुभव करते थे। कोई विरला ही ऐसा था जो मिस्टर चोपड़ा से सहानुभूति रखता था। शान्ता और ऐमिली पर इसका प्रभाव भिन्न-भिन्न हुआ। शान्ता का विचार था कि ऐमिली अथवा उसने स्वय जो

भी प्रयत्न किया था, उसमें यद्यपि सफलता नहीं हुई तो भी करने योग्य था। वैसे वह समझती थी कि जो कुछ भी होता है वह भले के लिये ही होता है। इस कारण जिस समय निर्णय का पता चला, वह चुपचाप बैठी रह गई।

ऐमिली को न्यायालय का निर्णय सुन क्रोध चढ़ आया। वह न्यायालय पर क्रोध नहीं कर रही थी। उसका क्रोध मिस्टर चोपड़ा पर था। उसने अपने रहस्य में उसको भागीदार नहीं बनाया था।

निर्णय के पश्चात् वह उससे मिलने गई तो चोपड़ा ने अपने किये पर शोक प्रकट करने के स्थान पर ऐमिली को गाली देनी प्रारम्भ कर दी, "तुम जैसी बदकार औरत का मैं मुख नहीं देखना चाहता।"

"क्यों ?" ऐमिली ने यह गाली सुन आँखों में आँसू भरकर कहा, "मैंने क्या किया है इसमें ? आपने मुझ पर विश्वास नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो कोई भी आपकी सहायता करता रहा है वह आपके विपरीत पड़ती रही है। वह चैक की बात आपकी सहायता कर सकती थी। यदि आप वह नाम बता देते जिसके नाम वह चैक ऐन्डोर्स किया गया था। आपने वह क्यों नहीं बताया ?

"उस चैक का इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं।"

"तो आपके वकील को यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये थी।"

"वह बदमाश का बच्चा सब रुपया खर्च कर गया है।"

"सूरजमोहन ?"

"हाँ।"

"और मेरा मन कहता है कि वही हत्यारा है।"

"नहीं ! यह बात नहीं। पर इमसे अब क्या लाभ ?"

हाईकोर्ट में अपील की गई। इसमें कलकत्ता से मिस्टर दास, बैरिस्टर बुलाये गये। वह एक हज़ार रुपया रोज़ पर बहस करने आया। तीन दिन तक बहस हुई। इसके विपरीत मिस्टर नार्टन ने स्वयं हाईकोर्ट में बहस की।

हाईकोर्ट में बहस का कुछ परिणाम नहीं हुआ। दण्ड ज्यूं का त्यूं रहा। इसके पश्चात् प्रिवि कौंसिल में अपील की गई। वहां पर बहस और सिफारिश दोनों की गईं और इसका परिणाम यह हुआ कि प्रिवि-कौंसिल ने यह बात मान ली कि मिस्टर चोपड़ा दण्डनीय है परन्तु कानून का अभिप्राय केवल सात वर्ष कैद के दण्ड से पूर्ण हो जावेगा। जहां तक शच्यूमैन का सम्बन्ध था, उसको प्राणदण्ड बदलकर आजीवन कैद का दण्ड दे दिया गया।

बात यहां आकर टिक गई। सूरजमोहन ने हिसाब दिया। मुकद्दमे पर अड़तीस हज़ार रुपये व्यय हुए थे। ग्यारह हज़ार उसने अपने मित्रों से उधार लेकर व्यय किया था। इस समय समस्या बहुत स्पष्ट थी। प्रेम के पिता को अब उधार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं थी। सात वर्ष तक के लिए वह कैद कर दिया गया था। शच्यूमैन को कालेपानी भेज दिया गया था।

अब शान्ता और ऐमिली इकट्ठी रहती थीं। शान्ता के बच्चे भली-भांति जीवन में स्थिर हो चुके थे। ऐमिली के बच्चों में सोम ही दुकान पर बैठा था, सरस्वती और राम अभी तक स्कूल में पढ़ते थे। इस पर भी शान्ता अपनी पूर्ण शक्ति से घर को साफ सुथरा रखती थी। इससे भी अधिक यह बात थी कि शान्ता और ऐमिली दोनों परस्पर बहिनों की भांति रहती थीं। कभी भी एक दूसरे से ईर्ष्या और द्वेष का प्रश्न नहीं था।

७

इस घटना के छः वर्ष पीछे की बात है। अमरनाथ चोपड़ा लाहौर सैन्ट्रल जेल से छूटा तो उसके सब बाल सफेद हो चुके थे। मुख पर झुर्रियां पड़ चुकी थीं। आंखों की ज्योति क्षीण हो चुकी थी। कमर टेढ़ी और हाथों में कम्प वायु का प्रकोप हो गया था।

प्रेम और सोम मोटर लेकर पिता को लेने जा पहुंचे। मिस्टर चोपड़ा

जेल से निकला तो दोनो ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा, "आइये पिताजी, गाड़ी लाये हैं।"

"क्यो ?" मिस्टर चोपडा ने आश्चर्य से पूछा।

"आपको घर ले चलने के लिए।"

"वहाँ कौन-कौन हैं ?"

"सब हैं। सोमनाथ है, रामनाथ है, सोम का विवाह हो चुका है। रामनाथ की सगाई हो चुकी है।" प्रेम ने उत्तर दिया।

"तुम्हारी माता ?"

"दोनो माताएँ हैं। वे आतीं, परन्तु आपके छूटने से उनको इतनी खुशी हुई है कि वे आ नहीं सकीं।"

"सरस्वती कहाँ है ?"

"उसका विवाह हो गया है। वह बम्बई रहती है।"

यह सुन चोपडा खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने हँसने के पश्चात् कहा, "भाग जाओ तुम दोनों, मैंने उन दोनो औरतो को मारा था और तुमको भी मार डालूगा।"

मिस्टर चोपड़ा की बात सुन और उसकी आँखो में अस्थिरता देख लड़को को उसके बिगडे मस्तिष्क का आभास हुआ। उन्होने एक बार पुनः अपने पिता को चलने के लिए कहा, परन्तु जब वह उनको वास्तव में

धक्का दे घर से भाग खड़ा हुआ ।

बहुत कठिनाई से उसको पकड़कर वापिस लाया गया और बांध कर रखा गया । ज्यूं-ज्यूं उसकी चिकित्सा और सेवा-सुश्रूषा की गई त्यूं-त्यूं उसका उन्माद बढ़ता गया । कई बार उसने ऐमिली को घायल किया और एक बार समय पाकर तो उसने शान्ता का गला घोट देना चाहा । यदि प्रेम समीप न होता तो एक और हत्या का भागी बन जाता ।

अन्त में यही उचित समझा गया कि मिस्टर चोपड़ा को पागलखाने में भर्ती करा दिया जाये ।

उदय—हाँ-हाँ, तथागत! उस दिन से देवी यशोधरा काषाय वस्त्र ही पहनती हैं, फल-फूल ही खाती हैं और वह भी दिन में एक ही बार और पृथ्वी पर कुश की साथरी बिछाकर उसी पर सोती हैं।

बुद्ध—घर में रहकर भी ऐसी साधना!

उदय—देवी यशोधरा को देखकर और उनकी साधना की कथा सुनकर किसके मुँह से आह नही निकलती है, तथागत! उस रात जिस शय्या पर आप सोये थे, उस शय्या को उसी रूप में सजाकर रखे हुई हैं। प्रतिदिन प्रात उसे धूप-आरती दिखाती हैं और प्रतिदिन सध्या को अनेक दीप-मलिकाओ से उसे जगमग कर देती हैं! इस विषाद में भी उनका मुखमण्डल सदा उदीप्त रहता है और शोकसतप्त रानी प्रजावती से वह कहा करती हैं—माताजी, वह अवश्य आयेंगे, आकर ही रहेगे।

बुद्ध—हाँ, हाँ, छदक के द्वारा मैंने सवाद भेजा था कि मैं अवश्य लौटूँगा।

उदय—और एक उपहार भी तो छदक-द्वारा भेजा था! आपके उन अनमोल लटो को एक रत्न-खचित मजूषा मे रखकर आपकी शय्या पर उन्होने धर दिया है। प्रति दिन प्रात-सध्या उन लटो को निकालती हैं, आँखो मे लगाती हैं, चूमती हैं, फिर अश्रु-सिक्त नयनो से बार-बार देखती हुई उसे मजूषा में बन्द कर देती है। एक दिन तो भावावेष में वह उस मजूषा को लिये हुए रानी प्रजावती तक दौड गई और बोली—माँ माँ, देखिये, ये बाल बढ रहे हैं! माँ, आर्य-पुत्र लौटेंगे, अवश्य लौटेंगे।

बुद्ध—यशोधरा को मै जानता हूँ, उदयी! अब उसकी व्यथा-कथा मत बढाओ। मौसी प्रजावती का क्या हाल है?

उदय—सयोग ही कहिये कि उन्हे राहुल का आसरा मिल गया, नहीं तो वह कब न स्वर्ग में अपनी बहन से जा मिली होती। दिन भर राहुल को गोद में लिये फिरती हैं और रात में उस भवन के द्वार पर सोती है, जिसमें राहुल-कुमार सुलाये जाते हैं,। वह कहती हैं—बेटी यशोधरे, तुम्हारी नीद अच्छी नही है, बेटी! तू सोती रही और मेरा बेटा चल दिया! अब राहुल पर मैं स्वय पहरा दूँगी।

मेरी तकदीर बुरी है, बहुत बुरी! न जाने राहुल भी कहीं भाग जाय! और, यथार्थ बात यह है शास्ता, कि वह रात भर सोती ही कहां है? और, जरा-सा भी खटका हुआ कि बोल उठती हैं—'राहुल! यशोधरे, जगी तो हो बेटी?'

बुद्ध—रहने दो, रहने दो उदयी। कपिलवस्तु के दुख. .।

उदय—यदि दुख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा के, धर्म के मध्यम मार्ग के उपदेश की कहीं आवश्यकता है, तो कपिलवस्तु में ही तथागत? बुढापा, बीमारी और मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेवाले जिस आष्टांगिक मार्ग का आपने पता लगाया है, उसके सबसे उपयुक्त पात्र कपिलवस्तु के नर-नारी हैं, सारा शाक्यकुल है। अपने होने के अपराध से उन-लोगों को अधिक दिनों तक अपनी ज्ञान-धारा से वंचित न रखिये, तथागत!

बुद्ध—मैं कुछ दिनों से सोच रहा था उदयी, कि मुझे कपिलवस्तु जाना चाहिये। बार-बार मैं कानों में एक पुकार सुनता रहा, हृदय में एक आकर्षण अनुभव करता रहा, किन्तु

उदय—किन्तु अब अधिक विलम्ब नहीं तथागत! देखिये, वसन्त का यह कैसा सुहावना समय है! खेतों में तरह-तरह के दलहन और तेलहन फूल रहे हैं, बगीचे में बौरों और भौंरों की भरमार है, पथ में धूल नहीं, धूप नहीं, नदियाँ सिमट कर यात्रियों को अनायास रास्ता दे देती है। चला जाय, तथागत, देखिये, वह उत्तर दिशा देखिये! और सुनिये—कपिलवस्तु अपने सिद्धार्थ कुमार को, संसार के तथागत को किस आर्तवाणी में पुकार रही है।

बुद्ध—तथास्तु! उदयी, भिक्षुओं से कहो, वे कपिलवस्तु चलने की तैयारी करें।

५

[प्रत्यावर्तन :: कपिलवस्तु में यशोधरा का कक्ष]

यशोधरा—तब क्या हुआ परिचारिके?

परिचारिका—ज्यों ही कपिलवस्तु के लोगों को मालूम हुआ कि कुमार आ रहे हैं, सारी नगरी उमड पडी। आगे-आगे बच्चे थे,

उनके पीछे युवक-युवतियाँ, सबके पीछे वृद्धो की मडली। सब-के-सब पैदल थे। सबके हाथो में स्वागतार्थ पुष्प-माला या रोली-आरती। सबके मुँह से स्वागत का जयनाद निकल रहा था कि लोगो ने देखा बीस सहस्र भिक्षुओ के साथ कुमार आ रहे हैं।

यशोधरा—बीस सहस्र भिक्षुओ के साथ !

परिचारिका—हाँ, छोटी रानीजी, बीस सहस्र भिक्षुओं के साथ ! उन बीस सहस्र भिक्षुओ के आगे कुमार थे। वे ऐसे दिप रहे थे, जैसे तारो के बीच चन्द्रमा। न वह तेजी से चल रहे थे, न धीमे—मद्धिम गति से उनके पैर उठ रहे थे। उनकी आँखें सिर्फ जूये भर आगे देखती थी—अगल-बगल भी उनकी दृष्टि नही जाती थी। चेहरे पर एक अजीब तेजपुज—सौम्यता। समूचे शरीर से एक आभा-सी फूट रही थी !

यशोधरा—उन्होने तपस्या भी तो ऐसी ही की है, परिचारिके ! फिर क्या हुआ ?

परिचारिका—पुरवासियो ने उनका आगत-स्वागत किया, फिर राजधानी की सर्वश्रेष्ठ वाटिका में ले जाकर उन्हें टिकाया। बीस सहस्र भिक्षुओ की मत्र-ध्वनि से वह वाटिका ध्वनित-प्रतिध्वनित हुई !

(नेपथ्य में मत्रध्वनि का स्वर सुनाई पड रहा है)

यशोधरा—अब भी वह मत्र-ध्वनि सुनाई पड रही है, परिचारिके !

परिचारिका—ऐं ! हाँ, यह तो मत्रध्वनि ही है—इतनी निकट ? तो क्या भिक्षुवृन्द नगर मे आ रहे है ?

यशोधरा—तू देख तो आ कि यह क्या है ?

(परिचारिका जाती है)

यशोधरा—हाँ, हाँ, यह मत्रध्वनि ही तो है ! तो क्या वह नगर में आ रहे है ? क्या वह यहाँ भी आवेगे ? आना ही पडेगा उन्हे ! क्यो नही आवेगे वह? हृदय, हृदय ! तू शकाशील मत बन ! मस्तिष्क, मस्तिष्क ! तू भूलभूलैया में मत डाल। वह आवेगे ! अवश्य आवेगे ! अरे, मत्रध्वनि तो अब बिल्कुल निकट होती आ रही है ! क्या ! वह आ रहे हैं ! आ रहे है !

(दौडता हुआ राहुल आ रहा है)

राहुल—माँ, माँ, वे लोग आ रहे हैं! ओह, माँ, कितनी बडी भीड है, कैसे लग रहे हैं वे! तू क्यो नही देखती माँ! प्रकोष्ठ पर चल न!

यशोधरा—नही, नही! अधीर मत बन बेटा! तू यही रह, यही रह! यही आवेगे, वे यही आ रहे हैं!

राहुल—यही आवेगे? तो दादाजी क्यो उस ओर दौडे हुए जा रहे थे, माँ?

यशोधरा—तुम्हारे दादाजी जा रहे थे?

(परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—हाँ, छोटी रानी! महाराज भी वहाँ जा पहुँचे हैं! आह!

यशोधरा—इतनी व्याकुल मत बन परिचारिके! बता, क्या देख आई?

परिचारिका—उफ! सारे नगर मे शोक का समुद्र उमड रहा है, छोटी रानी! कुमार अपनी भिक्षु-मडली को लेकर नगर में भिक्षाटन के लिए प्रवेश कर रहे हैं! राजपथ पर अपार भीड है। अट्टालिकाओ पर नर-मुड ही नर-मुड। झरोखो से कुल-कामिनियाँ झाँक रही हैं। द्वारो पर मातायें सर्वोत्तम भिक्षा लिये खडी हैं। सबकी आँखों में आँसू! उन आँसूओ के समुद्र में ज्वार तब आया ओह!

यशोधरा—बोल, परिचारिके, बोल! हाँ, उन आँसुओ के समुद्र में ज्वार तब आया . ..

परिचारिका—उन आँसूओ के समुद्र में ज्वार तब आया छोटी-रानी, जब लोगो ने देखा, महाराज पाँव-पयादे, धोती का छोर सम्हालते, दौडते हुए आ रहे हैं। वह दौडते हुए कुमार के सामने जा खडे हुए और बोले—'बेटा, बेटा, यह क्या कर रहे हो?' सुनकर कुमार मुस्कुरा पडे और अपने भिक्षापात्र को आगे बढाते हुए कहा—'अपने कुल का धर्म निवाह रहा हूँ, महाराज!'

यशोधरा—कुल का धर्म?

परिचारिका—हाँ, कुमार ने यही कहा। सुनकर महाराज बोले—'शाक्यकुल का धर्म भिक्षाटन करना नही है।' तुरत कुमार का चेहरा

गम्भीर हो गया और वह बोले—'महाराज, यह आपके सामने जो खडा है, वह शाक्यकुल का सिद्धार्थ नही है, यह तो बुद्धकुल का तथागत है!'

यशोधरा—शाक्यकुल का नही, बुद्धकुल का तथागत!

परिचारिका—हाँ, कुमार ने यही कहा। सुनते ही महाराज की आँखो से एकबारगी आँसू झरने लगे। महाराज फूट-फूट कर रोने लगे, सारे लोग रोने लगे। द्वारो पर मातायें रोने लगी, छज्जो पर गृह-देवियाँ रोने लगी। किन्तु महाराज को जैसे तुरत भान हुआ, यह क्या कर बैठे वह! वह सम्हल कर बोले—'तो पहली भिक्षा मेरे ही द्वार पर ग्रहण करें तथागत!' और, छोटी रानी, कुमार अपनी मडली के साथ यही आ रहे हैं!

(प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—बेटी, बेटी, सिद्धार्थ द्वार पर खडा है बेटी और तू यहाँ बैठी है? चल बेटी, उसकी अगवानी कर। इस भीड-भाड में भी उसकी आँखें जैसे तुम्हें ही खोज रही हैं, बेटी।

यशोधरा—खोज रही हैं, तो खोज ही लेंगी माताजी।

प्रजावती—हाँ, खोज लेंगी, पर अगवानी करना तो तुम्हारा धर्म है, यशोधरे।

यशोधरा—माताजी, क्षमा करे—मैंने उनको नही छोडा था, उन्होने मुझे छोडा था! और अब यह उनका धर्म है कि

प्रजावती—मान मत कर बेटी, मान मत कर। आधे युग के बाद मेरा बेटा लौटा है।

यशोधरा—आप घबरायें नही माताजी, अगर मेरा प्रेम सच्चा है, अगर मेरी साधना सच्ची है, तो उन्हे मेरे पास आना ही पडेगा, माताजी। वह सोई को छोड सकते थे, जगी उन्हे

(बुद्ध का प्रवेश)

बुद्ध—मैं आ गया भद्रे!

यशोधरा—आ गये! आह! (चरणो पर गिर पडती है)

बुद्ध—उठो भद्रे! (उठाते हैं)

यशोधरा—नाथ!

बुद्ध—कल्याण हो भद्रे! तुम्हारा हठ रहा न? अब विदा दो!

यशोधरा—इस बार आप अकेले न जा सकेंगे, नाथ!

बुद्ध—अभी कपिलवस्तु मे कुछ दिन रहूँगा, भद्रे! इस समय तो चला। (मुंडकर चलते हैं)

राहुल—माँ, माँ!

यशोधरा—ओह, तू कहां था बेटा? देख, तेरे पिताजी वह आँगन में जा रहे हैं, उनसे अपनी पैतृक सम्पत्ति माँग!

राहुल—(बुद्ध के निकट दौडकर जाता है) भन्ते, आपकी छाया बडी सुखद है!

बुद्ध—क्यो, पैतृक सम्पत्ति चाहिये तुम्हें?

राहुल—माँ ने आज्ञा दी है!

बुद्ध—तो सारिपुत्र, राहुल को प्रवज्जित करो!

प्रजावती—बेटे, बेटे, यह क्या कर रहे हो बेटे! राहुल राहुल! ओ मेरे मुन्ना! तुम्हारे बिना कैसे जीऊँगी—कैसे जीऊँगी रे! हाय! आह! (फूट कर रोने लगती है)

यशोधरा—माताजी, किसी बच्चे को उसकी पैतृक सम्पत्ति से वचित करना उचित नही। राहुल जा, प्रवज्जा ले!

६

[शुद्धोदन का मनस्ताप :: कपिलवस्तु का राजप्रासाद]

शुद्धोदन—(अकेले घूमते और कहते जाते हैं) सब चले गये, सभी चले गये। जब एक गया, तो दूसरे, तीसरे को देखकर जीता रहा! अब सब जा रहे है! नन्द! तुम्हे भी यह क्या सूझा बेटे। विलास में जो डूबा था, सुन्दरियो मे जो चिपका था, बेटा, यह क्या जादू हुआ, कि तुम भिक्षु बन गये। नन्द और भिक्षु!

(भीतर से समवेत स्वर—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय')

हां, बहुनो के हित के लिए, बहुनो के सुख के लिए, नन्द भी भिक्षु बन गया। वह भी चला। अच्छा। तुम दोनो भाई गये—सिद्धार्थ

गया, नन्द गया। किन्तु, यह कहाँ का न्याय था बेटे, कि राहुल को भी लेते गये। राहुल! मेरे जीवन का एक मात्र सहारा। उसके बिना क्या मैं जी सकूँगा? तुम बहुतो के हित को, बहुतो के सुख की बात कहते हो, तो क्या उन बहुतो में मैं भी एक नही हूँ? फिर मुझे क्यो दुख में रखे जा रहे हो। ओह!

(प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—महाराज, यह विलाप शाक्यकुल के अनुरूप नही!

शुद्धोदन—ओह, प्रजावती, प्रजावती, सब चले गये प्रजावती, सभी चले गये! सिद्धार्थ गया, नन्द गया, राहुल गया। उदयी गया, आनन्द गया, अनिरुद्ध गया! शाक्यकुल में एक भी प्रतिभावान नही बच रहा, प्रजावती! सब चले गये, सभी चले गये! उपाली नाई तक गया। उपाली, उपाली! तुम्हारा भी एक भाग्य था भाई! सुना, सबसे पहले तुम्हे ही भिक्षु बनाया गया, जिसमें शाक्य-कुल के सभी राजकुमार तुम्हे ही प्रणाम किया करे! सिद्धार्थ, कैसी समता की धारा बहा दी है तुमने? क्षत्रियकुमार नाई को प्रणाम किया करें। प्रजे, प्रजे! एक नई धारा बह गई है प्रजे। वह धारा किसी के पैर को स्थिर नही रहने देगी, सबको भसा ले जायगी, बहा ले जायगी!

प्रजावती—देख रही हूँ महाराज, देख रही हूँ!

(भीतर से फिर सवेत स्वर—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय')

शुद्धोदन—हाँ हाँ, बहुजन हिताय! बहुजन सुखाय! बहुतो के हित के लिए, बहुतो के सुख के लिए, दो दो बेटे गये, पोता गया, परि-जन गये, पुरजन गये! सब गये, सभी गये, सारा शाक्यकुल जा रहा है—जाओ, जाओ!

(यशोधरा का प्रवेश)

यशोधरा—पिताजी, आज्ञा

शुद्धोदन—आज्ञा! ओहो, तो तुम भी चली! बेटे गये, पोता गया, अब पतोहू भी चली! बहुतो के सुख के लिए, बहुतो के हित के लिए! तो प्रजावती, तुम भी क्यो नही जाती? जाओ भाई, जाओ, तुम सब चले जाओ! जाओ, सारे राज-भवन को सूना कर दो, सारी कपिलवस्तु को सूना कर दो! सभी जाओ, एक-एक स्त्री पुरुष जाओ! बहुतो के सुख के लिए, बहुतो के हित के लिए!

(सवेत स्वर—'वहुजन हिताय, वहुजन सुखाय')

हाँ, उच्च स्वर से गाओ, ऐसे स्वर से कि ससार मे कोई दूसरा स्वर नही सुनाई पडे। इतने उच्च स्वर से कि ससार का सारा विलाप-प्रलाप इसमें ढँक जाय—सारा हाहाकार और आर्त्तनाद ढँप जाय। (प्रजावती और यशोधरा की ओर ध्यान देकर) तो तुम दोनो यहाँ खडी क्यो हो—जाओ, जाओ। प्रजावती, तुम भी आज्ञा माँग रही हो, प्रजावती। तुम्हारा मुँह नही खुल रहा, किन्तु तुम्हारी आँखें आज्ञा माँग रही हैं प्रजे। हाँ, हाँ, वाप अपने वेटे को भले ही छोड दे, सास अपनी पतोहू को क्यो छोडे? जाओ, तुम दोनो भी जाओ—आह! आज माया न हुई, नही तो वह भी जाती ..

प्रजावती—महाराज, महाराज, ऐसा अधीर

शुद्धोदन—अधीर और मै न होऊँ? दो-दो वेटे गये, पोता गया, परिजन गये, पुरजन गये, पत्नी चली, पतोहू चली, और मैं अधीर न होऊँ? ओह! लेकिन तुमलोग यहाँ क्यो खडी हो? जाओ, जाओ

(दोनो चरण छूकर जाती हैं)

चले गये, सव चले गये! वहुतो के हित के लिए, वहुतो के सुख के लिए! किन्तु शुद्धोदन, तुम यहाँ क्यो हो? किनके लिए, किनके लिए! उत्तर क्यो नही देते शुद्धोदन, उत्तर क्यो नही देते शुद्धोदन? शुद्धोदन!

[प्रमत्त-सी चेष्टाः यवनिका पतन]

विरोध और विजय

१

[देवदत्त का विरोध   राजगृह का एक अचल]

आनन्द—तुम यहाँ कैसे देवदत्त! तथागत के धर्ममार्ग ने आखिर तुम्हें भी खीच ही लिया?

देवदत्त—तथागत! तथागत! ये ढोग की बाते राजगृह के भोलेभाले निवासियो के लिए रहने दो, आनन्द! जिसने अपने कुल-धर्म को डुबोया, जिसने कुल को डुबोया, उसका नीच मार्ग तुम ऐसे नीचो को ही खीच सकेगा!

आनन्द—देवदत्त, देवदत्त! इस तरह की वातें जिह्वा पर मत लाओ! मानता हूँ, तथागत जब सिद्धार्थकुमार थे, तभी से तुम उनसे प्रतिस्पर्द्धा करते रहे, जलते रहे, किन्तु ईर्ष्या की भी एक सीमा होती है देवदत्त! अब तथागत जहाँ पहुँच गये हैं

देवदत्त—वहाँ से उसे नीचे ढकेलूँगा, उसे रसातल भेजूँगा। ढोग, ढोग! इस ढोग ने देश का काफी सर्वनाश किया, अब इसे रोकना ही है आनन्द!

आनन्द—सर्वनाश किया! कैसी झूठी बाते कर रहे हो, देवदत्त! तथागत की इस मध्यम प्रतिपदा ने देश में जीवन की एक नई लहर दौडा दी है! चारो ओर हृदय-मथन हो रहा है, क्षुद्र कुटीरो से

लेकर अट्टालिकाओ तक में जीवन के प्रति लोगो मे एक नये प्रकार की धारणा जग रही है। बहुत लोगो के हित के लिए, बहुत लोगो के सुख के लिए, लोक-कल्याण के लिए, देवताओ की प्रसन्नता के लिए, देश के नवयुवक सुख-ऐश्वर्य पर, औज-मौज पर लात मार रहे हैं। ऐसा दृश्य इस आर्यभूमि में कभी देखा गया था देवदत्त ?

देवदत्त—हिम् क्या बके जा रहे हो ? तुम देखते नही, इसने ऐसी सनक देश में चला दी है कि सारे देश में कोहराम मच रहा है। माताओ की गोद से यह बच्चो को खीच रहा है, पत्नियो की सुहाग-शय्या से यह पतियो को खीच रहा है— बहनें भाइयो के नाम पर रो रही है, बाप बेटे के लिए उसाँसे भर रहे हैं। जहाँ देखो, वही माताओ, पत्नियो, बहनो के चीत्कार, हाहाकार ! नही नही, इस अनर्थ को रोकना होगा, इस सनक को रोकना होगा ! तथागत, तथागत ! दम्भ मे इस तरह बातें करता है कि जैसे ईश्वर का अवतार ही हो। इस दम्भ को धूल में न मिला दूँ, तो मैं शाक्यकुल

आनन्द—शाक्यकुल की शपथ मत खाओ, देवदत्त ! जो करना हो करो। उस कुल का नाम लेकर उसे अपवित्र करने का तुम्हे कोई अधिकार नही, जिसने ससार को इतना बडा महात्मा दिया ! तुम न होगे, हम न होगे, किन्तु तथागत .

देवदत्त—फिर तथागत ! जाओ आनन्द, अपने तथागत से कह दो—देवदत्त राजगृह में आया है, वह सावधान रहे। जिस सम्राट् बिम्बसार के बल पर वह अपनी धौंस ससार पर जमा रहा है, वह बिम्बसार भी अपनी खैर मनावे ! (गुस्से में) सिद्धार्थ, सम्हलो, बिम्बसार, सम्हलो !

आनन्द—मार भी जिसका कुछ न बिगाड सका, उनका तुम क्या कर लोगे देवदत्त ?

देवदत्त—मार न बिगाड सका, क्योकि वह कल्पना का देवता है ! देवदत्त ठोस मानव है। फिर मार ने क्या किया और क्या नही, इसका कोई प्रमाण है ? किन्तु देवदत्त जो करेगा, उसे ससार देख लेगा ससार ! जाओ, सिद्धार्थ से कहो—सम्हले ! जाओ, बिम्बसार से कहो, सम्हले ! जब बिम्बसार की जगह अजातशत्रु राज करेगा, और तथागत की जगह देवदत्त ..

आनन्द—ओहो ! ऐसी महत्त्वाकाक्षा ! जाता हूँ देवदत्त, जाता हूँ ! तुमसे बहस करके कौन समय बर्बाद करे। अर्हत तुम्हे सुबुद्धि दें !

२

[षड्यन्त्र . गृध्रकूट का प्रान्तर]

(नेपथ्य में चट्टान टूटकर गिरने की आवाज)

उदय—आनन्द, आनन्द! यह कैसी ध्वनि है आनन्द!

आनन्द—अरे, शायद चट्टान टूटकर गिर रही है! चट्टान! चट्टान!

(आवाज नजदीक आती है)

उदय—बचो, बचो, आनन्द!

आनन्द—हटो, हटो, भिक्षुओ!

उदय—आनन्द, आनन्द, तथागत कहाँ हैं आनन्द?

आनन्द—तथागत! तथागत तो वहाँ एक शिला-पट पर बैठकर ध्यान कर रहे थे! अहो, यह चट्टान तो उसी तरफ लुढकती मालूम पडती है!

उदय—(चिल्लाता है) तथागत!

आनन्द—(उदय के स्वर में स्वर मिलाकर) तथागत!

(नेपथ्य से आवाज आती है—'तथागत!' तथागत!' फिर जोरो का अट्टहास सुनाई पडता है)

उदय—ओह! यह तो देवदत्त का स्वर मालूम होता है!

आनन्द—हाँ, हाँ! यह देवदत्त का स्वर है! यह उसीका षड्यन्त्र मालूम होता है, उदयी! ओह, तथागत को बचाओ।

(दोनो नेपथ्य में जाते हैं! भीतर से जोरो की आवाज, बाहर गर्द-गुबार! फिर शान्ति! उदय और आनन्द आते हैं!)

आनन्द—कैसी विचित्र लीला उदयी! उफ, हम देख रहे थे, चट्टान सीधे तथागत के सिर पर लुढकती आ रही थी, लुढकी आ रही थी कि अचानक वह दो टुकडे होकर दोनो तरफ बिखर गई!

उदय—और, तथागत उसी प्रकार ध्यानस्थ बैठे रहे! सम्यक् समाधि का कैसा ज्वलन्त उदाहरण! तथागत सचमुच अवतार है आनन्द! चट्टान भी उनपर फूल बनकर गिरती है—अहा!

आनन्द—एक दिन तो मैंने इसमें भी एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा था, किन्तु किसीसे कहा नहीं। क्योंकि कहीं लोग अलौकिकता के पीछे उनके लौकिक सन्देश को न भूल जायें।

उदय—क्या देखा था आनन्द?

आनन्द—मालूम होता है, देवदत्त ने तथागत के विरुद्ध षड्यन्त्र का एक जाल-सा बिछा रखा है। और इस षड्यन्त्र में राजपुरुष, श्रेष्ठिवर्ग और पुरोहित विशेषरूप में भाग ले रहे हैं। वे तथागत और सम्राट बिम्बसार के प्राण के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं।

उदय—अरे-अरे!

आनन्द—उस दिन श्रीगुप्त सेठ की पत्नी आई थी न तथागत को निमन्त्रण देने?

उदय—हाँ-हाँ-! तुम ही तो तथागत के साथ गये थे।

आनन्द—जब श्रीगुप्त को मालूम हुआ कि उनकी धर्मानुगामिनी पत्नी ने तथागत को निमन्त्रित किया है, तब वह आगबबूला हो उठा—ओहो, यह बीमारी मेरे घर में भी घुस गई! अच्छा, तो मैं इस बीमारी के मूल को ही आज समाप्त कर देता हूँ, ऐसा निश्चय कर . .

उदय—उसने तथागत की जान लेने की साजिश की! क्यों? तो क्या हुआ आनन्द?

आनन्द—श्रीगुप्त ने एक गर्हित षड्यन्त्र किया था। जिस पथ से तथागत को जाना था, उसके बीच उसने एक खाई खुदवाई थी और उसमें जलते हुए कोयले रखवा कर ऊपर इस तरह गह बनवा दी थी कि नीचे का रहस्य मालूम न हो। मेरे मन में श्रीगुप्त के प्रति कुछ खटका था, मैंने निवेदन किया कि श्रीगुप्त नीचातिनीच कार्य कर सकता है, आप उसके घर न जायें। किन्तु तथागत ने कहा—भिक्षु निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सकता।

उदय—आह, कैसी महानता!

आनन्द—तो भगवान उस ओर चले। उस खाई पर पहुँचे, निकट जाते ही भाँप गये, मुस्कुरा पड़े और कहा—आनन्द, तुम यहीं ठहर जाओ, मुझे कुछ दूर निकल जाने दो। मैं खड़ा हो गया। भगवान आगे बढ़े, बढ़ते गये। अब वह खाई के उस पार थे और लो, यह क्या? जहाँ खाई थी, जिसमें दहकते कोयले थे, वहाँ एक सरोवर हो गया और

बुद्ध—गौतमी, अधीर मत बन गौमती! बात क्या है, क्यों तू इस तरह बिलख रही है!

गौतमी—मैं अभागी हूँ, ऋषिवर। उफ, कैसी अभागी! गरीब के घर जन्मी, धनी के घर ब्याही गई। गरीब की बेटी, धनी के घर! वहाँ मेरा अपमान होता रहा ऋषिवर! दिन-रात अपमान! तब यह बच्चा आया, गोद में यह हँसा कि मेरा भाग्य हँसने लगा! पूर्णचन्द्र-सा मेरा बेटा, पूर्णिमा की रात-सी मैं—सौभाग्य की चन्द्रिका से ओतप्रोत। किन्तु, हाय तथागत! यह क्या हुआ तथागत? हाय, हाय!

बुद्ध—क्या हुआ गौतमी? यह रोना, ऐसा रोना। रोना अनार्य है, गौतमी!

गौतमी—अनार्य? क्या कहा देव! रोना अनार्य? हाय, चाँद-सा बेटा चल बसे और माँ न रोये! हाँ-हाँ, चाँद-सा हँसता, उजाला फैलाता अभी वह घर से निकाला था, यह कहते कि तुम्हारी पूजा के लिए फूल लाने जा रहा हूँ माँ! मेरा फूल मेरी पूजा के लिए फूल लाने गया और उसे यह क्या हो गया? 'साँप साँप!' चिल्लाता हुआ मेरा बेटा आँगन में आ गिरा! अरे, यह क्या? उसके मुँह से झाग निकल रहा, उसका शरीर पीला पड रहा—फिर नाक से रक्त! मैं उसे गोद में समेटे थी कि लोगो ने कहा—गौतमी, तू अभागी है, छोड दे इसे, यह चल बसा! देव, देव, मेरे बच्चे को बचाइये देव, इसे जिलाइये देव! मैं आपका पैर छोड नही सकती, आपका पिंड छोड नही सकती! मेरा बच्चा, फूल-सा बच्चा!

बुद्ध—ओहो, तो केवल इसी के लिए इतना रुदन! तुम्हारा बच्चा अभी जी उठेगा गौतमी, अभी!

गौतमी—जी उठेगा? देव! देव! नाथ! नाथ!

बुद्ध—हाँ-हाँ, अभी जी उठेगा। लेकिन एक काम करना है तुम्हे। तुम जाओ और एक मुट्ठी पीली सरसो उस घर से माँग लाओ, जिस घर में कभी कोई मरा न हो। सरसो आई और छूमंतर हुआ! हाँ, उस घर से, जिसमें कोई मरा नही हो!

गौतमी—जो आज्ञा देव, जो आज्ञा नाथ! मैं अभी चली, मैं अभी गई! (जाती है)

[रगमच की रोशनी थोडी देर के लिए मद पड जाती है]

बुद्ध—(रोती आती हुई गौतमी को देखते हुए) क्यो गौतमी! क्या बात है? सरसो मिली न? लाओ सरसो, अभी तेरा बेटा जी उठता है! अभी!

गौतमी—(उसांसे लेती हुई, हिचकियो मे) न मिली, देव, न मिली! जिन-जिन घर में गई, सबने अपनी ही विपता सुनाई,—किसी का बेटा मर चुका था, किसी का पति; किसी का भाई, तो किसी का देवर! किसी के घर आज ही मरा था, किसी के कल, किसी के परसो, किसी के तरसो! परसो, तरसो, नरसो—लेकिन एक भी घर नही मिला, जहां से मुझे सरसो मिल पाती! हाय, मेरा बच्चा!

बुद्ध—और तू इसके बाद भी रो रही है, गौतमी! दुनिया में ऐसा कोई नही है, जो मर नही जायगा। दुनिया में ऐसा कोई घर नही, जिसमें कोई मर न चुका हो। मृत्यु आर्य सत्य है, गौतमी! सबको मरना है, सबको जाना है। फिर रोना क्यो, धोना क्यो? कोई आज गया, कोई कल जायगा! जाना आवश्यक है— मृत्यु अनिवार्य है! हां, आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है, अमरता प्राप्त कर सकता है। उस अमरता का मार्ग ही सत्य का मार्ग है गौतमी! रोना धोना छोडो, सत्य का मार्ग ग्रहण करो! सत्य का मध्यम मार्ग!

गौतमी—धन्य हो तथागत, धन्य! मृत्यु और अमरता का व्याव-रिक ज्ञान देकर आपने आज मेरी आंखे खोल दी—ससार की आंखें इसी तरह खुले!

४

[फिर षड्यंत्र :: श्रावस्ती का पूर्वाराम]

नन्द—तथागत ने एक बार कहा था—'रमणीय आनन्द राज-मणीय गृद्धकूटो पर्वतो!' वही तथागत श्रावस्ती मे इस तरह है कि मालूम होता है, उनका यह स्थायी आवास हो चला है!

ा—ठीक कह रहे है आनन्द, आप। जहां राजगृह मे पांच ्िया, वहां श्रावस्ती मे पच्चीस वर्षावास करते हो गये।

अनाथ पिंडक धन्य है और धन्य है उसके द्वारा सब को प्रदत्त जेत-वन। कहा जाता है, इस विहार की भूमि पर सोने की मुद्रायें बिछाकर अनाथ पिंडक ने राजकुमार जेत से क्रय किया था। उसकी वे स्वर्ण-मुद्रायें धन्य हुई।

आनन्द—और, जो कसर थी, उसे पूरा कर दिया मृगार-माता विशाखा ने। अपने नौ करोड के आभूषणो को बेचकर उसीसे उसने यह पूर्वाराम क्या बनाया, तथागत को सदा के लिए भक्ति-सूत्र में बाँध लिया।

उदय—अग देश की यह कन्या उरुवेला की सुजाता की ही तरह इतिहास में अमरता प्राप्त करेगी, आनन्द।

(रुनझुन की ध्वनि)

उदय—इस कुवेला में यह कौन नागरिका आ रही है, आनन्द।

आनन्द—माणविका है, चेचा माणविका। यह सदा कुसमय आती है और कुसमय लौटती है। इसके नित्य नये शृगार। यह चकमक, यह रुनझुन। मुझे इसका चलन अच्छा नही दिखाई पडता है उदयी।

उदय—तो तथागत से क्यो नही कह देते, कि इसे सघ में प्रवेश न करने दें।

आनन्द—इतने दिनो तक साथ रहने पर भी तथागत को तुम नही समझ सके, उदयी। लोगो की नजरो में जो जितना अधिक पतित, तथागत का वह उतना ही अधिक प्यारा। पतितो पर प्रयोग करने में उन्हे वही आनन्द आता है जो मणिधर नागो से खिलवाड करने में सँपेरे को। किन्तु, सँपेरे को तो कुछ भय भी होता है, पर जिसने मार पर विजय प्राप्त कर ली, उसके लिए भय कहाँ?

उदय—शायद यहाँ भी देवदत्त की आत्मा काम कर रही हो, इसलिए हमें सचेत रहना चाहिये, आनन्द।

आनन्द—शायद की क्या बात? काम कर रही है, उदयी। मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनो से अनाथ पिंडक को लेकर, महाराज प्रसेनजित को लेकर और खासकर विशाखा को लेकर तरह-तरह की बातें उडाई जा रही है। तरह-तरह के षड्यत्र की भनक भी लगी है मुझे। मुझे तो ऐसा लगता है, माणविका भी उसी षड्यत्र का एक पुर्जा न हो। सुना है, वह कुछ बहकी-बहकी बातें भी किया करती है

उदय—क्या कहती है?

आनन्द—उसे जिह्वा पर लाना भी पाप होगा उदयी!

उदय—ओह!

५

[सत्य की विजय :: पूर्वाराम का सभामंच]

माणविका—(नेपथ्य के भीतर) मुझे क्यों रोकते हो, भिक्षु, मुझे जाने दो, जाने दो। मुझे भगवान से निवेदन करना है, मुझे जाने दो। जाने दो।

बुद्ध—कौन किसको रोक रहा है? धर्म का द्वार सबके लिए खुला है!

आनन्द—शास्ता, वह माणविका मालूम होती है। माणविका के लक्षण अच्छे नहीं हैं। वह अट-सट बकती फिरती है। मैंने ही भिक्षुओं को कह दिया था कि भगवान के निकट मत आने दो।

बुद्ध—नहीं-नहीं, आनन्द यह अनुचित है, यह अनुचित! जिज्ञासुओं को रोकना ज्ञान-मन्दिर का द्वारा बन्द कर देना है। यह अपराध है—घोर अपराध! भिक्षुओ, उसे आने दो।

(गर्भिणी के रूप में माणविका आती है)

माणविका—अभी अभी आपका उपदेश सुन रही थी, तथागत! ओह, आपका उपदेश—कितना मधुर, कितना सुन्दर, कितना कोमल! किन्तु, (अपने फूले हुए पेट की ओर इंगित करती) कब तक मैं इसे छिपाऊँ, तथागत? अब तो नवाँ महीना आ गया! आपने जो आशीर्वाद दिया, वह पूर्णतः प्रतिफलित हो चुका! मैं इस फल को अब कहाँ रखूँ? न मुझे प्रसूति-गृह बताते हो, न इसके लिए कोई प्रबंध करते हो! तुम्हारे उपासकों में कोशलराज है, अनाथ पिंडक है, महा उपासिका विशाखा है। इनमें से किसी को बोल दीजिये न!

(श्रोताओं में हलचल, तरह-तरह की बातें—'महान अनर्थ', 'महान अनर्थ'! 'तथागत पर अभियोग', 'यह घृणित अभियोग' 'महान अनर्थ' 'महान अनर्थ!')

माणविका—हाँ, महान अनर्थ! तथागत पर अभियोग? मैं तो इसीलिए भागती रही, किन्तु तथागत, आप बोलते क्यो नही? क्यो मुझे कुबेला बुलाते रहे? क्यो असमय रोकते रहे! मै तो इसीलिए भागती रही, लेकिन अब क्या करूँ? तथागत, तुम्हारा जादू-टोना मुझपर तो चला, किन्तु इसपर (पेट की ओर इगित) कुछ काम न कर सका। अब तो यह बच्चा प्रसूति-गृह माँगता है! मै कहाँ जाऊँ? आह! मैं कहाँ बैठकर इस अभागे का जन्म दूँ? ओह, ओह! (रुदन)

(श्रोतामडली में कोलाहल बढता जाता है—'ओहो, अनर्थ', 'महान अनर्थ!' 'तथागत बोलते क्यो नही हैं?' 'राजा प्रसेनजित का सिर झुका जा रहा है?' 'अनाथ पिडक और विशाखा की दशा तो ' किन्तु तथागत क्यो नही बोल रहे?')

बुद्ध—तथागत बोलेंगे, जिज्ञासुओ, तथागत बोलेगे! सत्य को प्रकट होने में समय लगता ही है, जिज्ञासुओ! (माणविका से) क्या है बहन माणविका, क्या बात है? तू यह क्या बोल रही है? तेरे कहने की झुठाई-सचाई को या तो तू जानती है, या मै जानता हूँ, बोल, बात क्या है?

माणविका—हाँ, महाश्रमण, या तो आप जानते हैं, या मै जानती हूँ! चुपचाप किये का फल ऐसा होता ही है। आज आप मुझे बहन कहकर पुकार रहे है—आह, अपने प्रेम-सम्बोधनो को भी आप भूल गये! हाय

बुद्ध—हाय-हाय मतकर माणविके, इधर देख और बोल!

माणविका—ओह, ओह, मैं कहाँ फँस गई—मैं इसे क्या करूँ! (पेट पीटने लगती है)

(इसी समय बिजली कटक उठती है, सारी सभा स्तब्ध हो जाती है, लोग देखते हैं, पेट पर काठ की जो हडिका माणविका ने बाँध रखी थी, वह उसके पैरो पर गिर गई है और उसकी उँगुलियो को काट डाला है। नागरिक लोग—'यह क्या माणविके!' 'लकडी की हाँडी बाँधकर तूने गर्भ बनाया था।' 'धिक्कार है तुझे कलमुँहे।'—'ओह तू तथागत पर, सम्यक्सम्बुद्ध पर दोष लगा रही!' आदि बोलते है)

बुद्ध—बोल बहिन, बोल! यह क्या हुआ? भडा फूट गया!

माणविका—(पैरो पर गिरती हुई) क्षमा करें तथागत, क्षमा करे! हमें दुष्टो ने बरगला दिया था! ओह! मै दुनिया मे कौन-सा

मुँह दिखाऊँगी! पृथ्वी, तू मेरे लिए क्यों नहीं फटती! क्षमा, प्रभो, क्षमा! (पैरों पर गिरती है)

बुद्ध—तथागत के धर्ममार्ग में ही क्षमा है, माणविके! नागरिको, असत्य का भंडा यों ही फूटता है! आप घबराये नहीं—सत्य के मार्ग पर यों ही अडंगे आते हैं। हम सम्यक् दृष्टि रखें, सम्यक् संकल्प रखें, सम्यक् वचन बोलें, सम्यक् कर्म करें, हमारी जीविका सम्यक् हो, हमारे प्रयत्न सम्यक् हों, फिर सम्यक् स्मृति प्राप्त कर हम सम्यक् समाधि प्राप्त करेंगे ही! यही धर्म का मार्ग है—सत्य का मध्यम मार्ग है! सदा सत्य की विजय होती है।

बुद्ध—मगधपति मातृहता, पितृहता कहलायें, सचमुच यह महान शोक का विषय है। अहा, बिम्बसार ऐसे धर्मप्राण सम्राट् और बन्दी-गृह में तडप-तडप कर प्राण दें!

अजातशत्रु—तथागत, उन दिनो की स्मृतियाँ बिच्छू-सी अन्तरतम में डक मारती रहती हैं! मेरी पाप-वृत्ति, उनकी धर्म-भक्ति,—उफ! जब उन्हें कैद में रखा, उन्होने कहा—'बेटा, ऐसी जगह ही कैद करो, जहाँ से मैं दिन-रात गृद्धकूट देखा करूँ!' आह! मैने यह क्या किया! (फूटकर रोता है)

बुद्ध—यो रोना-धोना उचित नही है, मगधपति! पीछे के कर्मो का प्रायश्चित आगे के कर्मो से ही किया जा सकता है! तुम अब भी ऐसा कर सकते हो कि बिम्बसार द्वारा प्रतिष्ठित धर्म का बिरवा इस राजगृह में सदा के लिए फूलता-फलता रहे!

अजातशत्रु—अब इस राजगृह में मैं नही रह सकता भगवान! यहाँ के कण-कण मुझे काटते रहते हैं। यह राजप्रासाद, इसके कक्ष, इसके प्रकोष्ठ, ये राजपथ, ये अट्टालिकायें सब जैसे मेरा विद्रूप करते हैं। मैं सचमुच यहाँ नही रह सकता तथागत! आज्ञा दीजिये कि एक नया राजगृह बसाऊँ और उसी को केन्द्र बनाकर तथागत के सत्य-मार्ग का ससार में प्रचार कराऊँ।

बुद्ध—नया राजगृह! अच्छी बात, इस नवीन धर्म के केन्द्र रूप एक नवीन नगर ही बसे, मगधपति!

महापरिनिर्वाण

[सप्त अपरिहारणीय धर्म :: गृद्धकूट का शिखर]

बुद्ध—उत्तर ओर देखो, आनन्द! वर्षा के बाद आकाश इतना स्वच्छ हो गया है कि यहाँ से भी हिमालय की धुंधली छाया दिखाई पड़ती है! हिमालय की तराई! हाँ, कैसी स्निग्ध, सुन्दर! जिसकी गोद में वैशाली है, पावापुरी है, लुम्बिनी है, कपिलवस्तु है! चलो न आनन्द, फिर एक बार उत्तरापथ की ओर! आह, वैशाली को देखे तो कितने दिन हो गये!

आनन्द—वैशाली से तो आये दिन निमन्त्रण आ रहा है तथागत! और, इस समय आपके उपदेशों की आवश्यकता भी शायद वैशाली को है!

बुद्ध—'इस समय' से तुम्हारा क्या आशय है आनन्द? क्या वैशाली में कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न हुई है?

आनन्द—हुई नहीं, लेकिन होगी, तथागत!

बुद्ध—तुम्हारा आशय क्या है?

आनन्द—तथागत, वैशाली के सिर पर इस समय बादल मँड़रा रहे हैं! अभी थोड़ी देर हुई, मगधपति के प्रधान मंत्री वस्सकार आये

थे, भगवान से यह पूछने कि सम्राट् वैशाली पर चढाई करना चाहते हैं, भगवान की क्या आज्ञा होती है।

बुद्ध—क्या कहा, वैशाली पर चढाई। अरे, अब भी अजातशत्रु पर मार का प्रभुत्व है आनन्द। वैशाली का सुन्दर गणतंत्र, उत्कृष्ट गणतंत्र, गणतंत्रो में सर्वश्रेष्ठ गणतंत्र। क्या उसपर उसके विष के दाँत गडे हैं। (उत्तेजना में) आनन्द, आनन्द।

आनन्द—तथागत, क्या आज्ञा है, तथागत?

बुद्ध—आनन्द, अजातशत्रु समझ नही रहा हैं कि वह क्या करने जा रहा है। वह वैशाली पर चढाई करना चाहता है, उसपर विजय प्राप्त करने का हौसला रखता है। यह उसकी धृष्टता है, धृष्टता।

आनन्द—क्यो, ऐसा क्यो कहते हैं शास्ता।

बुद्ध—क्यो? क्या तुम भूल गये? अच्छा तो, बताओ आनन्द, तुमने सुना है न कि वैशाली के वज्जि अपनी परिषदो में सारे कामधाम छोडकर नियत समय पर भरपूर उपस्थित होते हैं।

आनन्द—हाँ तथागत, मैंने ऐसा ही सुना है।

बुद्ध—और क्या आनन्द, तुमने सुना है कि वज्जि अपनी सभा में समान आसन पर एक साथ बैठते, एक मन होकर विचार करते और एक ही निश्चय पर पहुँच कर सब उसे कार्यरूप में परिणत करने को जुट पडते हैं?

आनन्द—हाँ, तथागत, मैंने ऐसा सुना है।

बुद्ध—और, आनन्द, क्या तुमने सुना है कि वज्जि कभी अविहित को विहित नही करते और विहित का उच्छेद नही करते, बल्कि उसे शिरोधार्य कर उसीके अनुसार चलते है।

आनन्द—हाँ, तथागत, मैंने सुना है।

बुद्ध—और आनन्द, तुमने सुना है, कि वज्जि अपने वृद्धो का आदर-सत्कार करते हैं, उन्हे पूजते हैं, मानते हैं? यो हाँ, आनन्द, तुमने सुना है न कि वज्जि अपनी कुल-स्त्रियो और कुल-कुमारियो की प्रतिष्ठा करते हैं, उनके साथ अमर्यादा का व्यवहार नही करते?

आनन्द—हाँ, तथागत, मैंने ऐसा सुना है।

बुद्ध—और सुना है आनन्द तुमने कि वज्जि अपने धर्मस्थानों, देवस्थानों, सभास्थानों की रक्षा करते, उनके दिये दानों का लोप नहीं करते? और सुना है न आनन्द, वज्जि सभी महात्माओं, जनसेवकों और विद्वानों को आमन्त्रित करते और उनका आदर-सत्कार करते हैं?

आनन्द—हां, तथागत, मैंने ऐसा भी सुना है!

बुद्ध—तो आनन्द, वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। कोई उन्हें जीत नहीं सकता। कोई हरा नहीं सकता। जब मैं वैशाली के सारन्द-चैत्य में था, तो उन्हें राष्ट्रों को पतन से बचानेवाले ये सात नियम—सप्त अपरिहारणीय धर्म—बताये थे आनन्द! इन नियमों पर जब तक वे चलेंगे, तबतक वज्जियों पर संसार की कोई शक्ति विजय नहीं प्राप्त कर सकती।

आनन्द—तथागत, आपने फिर आज इसे दुहराकर आनेवाले राष्ट्रों और राज्यों को भी उन्नति का पथ बता दिया है— अपने शासन के प्रति भक्ति, निर्णयों के प्रति कर्तृत्व, अपने विधान के प्रति आदर, अपने बडे-बूढों के प्रति सम्मान, अपनी नारी-जाति के प्रति श्रद्धा, अपनी सांस्कृतिक संस्थानों के प्रति रक्षा-भावना एव देश विदेश के महात्माओं एव विद्वानों के प्रति ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा, सचमुच ये सात राज्यों और राष्ट्रों के लिए अपरिहारिणीय प्रतिपदा—अनिवार्य कर्तव्य हैं शास्ता!

बुद्ध—आनन्द, तुमने सही ढंग से रखा। तुम वस्सकार से कहला दो कि वह अजातशत्रु को दलदल में नहीं घसीटे! गंगा के दोनों तटों के सम्मिलन में ही दोनों के कल्याण हैं, आनन्द! विदेह और वज्जियों का, मगध और अंग के लोगों के साथ जितना ही प्रेम बढेगा, उतनी उन्नति दोनों भूभागों की होगी! मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनों में यह होकर रहेगा! वस्सकार इन दोनों के बीच कलह का बीज न बोये! नहीं तो दोनों का कल्याण नहीं!

आनन्द—आपकी आज्ञा मैं तुरत उसके पास भेजवा देता हूँ। किन्तु वह कुछ करने पर तुला-सा मालूम होता है, शास्ता!

बुद्ध—तो दोनों के लिए बुरे दिन आ रहे हैं आनन्द!

२

[भविष्यवाणी . अम्बपाली का आम्रवन]

बुद्ध—राजगृह से नालन्दा, नालन्दा से पाटलिग्राम, फिर यह वैशाली! चारो एक ही माला के चार मनके-से लगते हैं, आनन्द! उनमें पाटलिग्राम! उसका भविष्य इन सबमें महान मालूम होता है!

आनन्द—शास्ता ने हमें कहा था और उसपर आनेवाली तीन विपत्तियो की भी चर्चा की थी! इस नगर को सदा आग से, पानी से और आपस की फूट से भय रहेगा। मैंने पाटलिग्राम के निवासियो से इसकी चेतावनी भी दे दी है, तथागत!

बुद्ध—हाँ पाटलिपुत्र को आग, पानी और आपसी फूट से बचना होगा आनन्द! देखो, वह क्या अम्बपाली आ रही है?

आनन्द—हाँ भन्ते, वही तो है!

(अम्बपाली का प्रवेश बुद्ध के चरणो में सिर झुकाती है)

बुद्ध—तो आपने निश्चय कर लिया भद्रे!

अम्बपाली—जिस दिन भगवान ने मेरी आम्रबाटिका में आवास किया और सारी वैशाली के निमत्रण को अस्वीकार कर प्रथम मेरा भोजन ही ग्रहण किया, मेरे निश्चय का प्रारम्भ उसी दिन हो गया था, भगवान! किन्तु यह मेरा मोह था, अहम्मन्यता थी, दुर्भाग्य था कि मै अबतक कीचड में बैठी उसे चन्दन समझ रही थी। उफ, मेरा दुर्भाग्य!

आनन्द—दुर्भाग्य! जिसकी एक भ्रूभगिमा पर सारी वैशाली हिल्लोलित, तरगित हो उठती है, उसका दुर्भाग्य!

अम्बपाली—भिक्षुवर! तपस्वियो को सिर्फ ऊपर नही देखना चाहिये! आह, इस हिल्लोल, इस तरग के भीतर !

(उसाँसे लेती है)

बुद्ध—सत्य, राजनर्त्तकी, सत्य! तपस्वियो को ऊपर ही नही देखना है! और, अब तो आपके भीतर का हाहाकार आपके मुखडे पर स्पष्ट छाप डाल चुका है! तो आप प्रवज्जा लेना चाहती हैं?

अम्बपाली—यह मेरा आम्रकानन, यह मेरी सारी सम्पत्ति भिक्षु-सघ को अर्पित है। अब मेरे लिए सघ के किसी कोने में थोडा स्थान दें भगवान?

बुद्ध—तथास्तु! जायें, आप प्रवज्जा की तैयारी करे।

(अम्बपाली जाती है)

आनन्द—तथागत?

बुद्ध—तुम्हारी आपत्ति समझ रहा हूँ, आनन्द! रानी प्रजावती और यशोधरा के संघ-प्रवेश पर मैंने आपत्ति की थी; नारियों के संघ-प्रवेश के संकट में मैं अपरिचित नहीं, किन्तु, इस राजनर्तकी को मैं 'ना' नहीं कह सकता था, आनन्द। यह विचित्र नारी है और इसके प्रवेश से संघ का कल्याण ही होगा!

आनन्द—शास्ता की जो अनुज्ञा।

बुद्ध—मैं सब कामों में शीघ्रता कर रहा हूँ, इसका एक कारण है आनन्द! और, उसे तुमसे छिपाना क्या है? अब इस पृथ्वी पर मेरे दिन पूरे हो रहे हैं!

आनन्द—यह क्या तथागत? आप हमें छोड़कर जाने का सोच रहे हैं?

बुद्ध—हाँ, कल मुझे इसका स्मरण दिलाया गया कि अब मात्र तीन महीने यहाँ रहना है!

आनन्द—किसने स्मरण दिलाया, शास्ता?

बुद्ध—यह सब पूछने की बात नहीं है, आनन्द! तुम देख नहीं रहे हो कि मेरा यह शरीर कितना खिन्न हो रहा है! बार-बार अस्वस्थ हो जाया करता हूँ। जो रथ था, वह भार बन रहा है। भार को कंधे से उतारना ही अच्छा है, आनन्द!

आनन्द—शास्ता! (गला रुँध जाता है)

बुद्ध—विलाप अनार्य है, शोक अनार्य है! मृत्यु आर्य सत्य है, सबको मरना है, सबको जाना है। उन्तीस वर्ष की आयु में मुझे बोधि प्राप्त हुई, तब से इक्कावन वर्ष तक मैं लगातार धर्म का सन्देश देता रहा! क्या उनसे तृप्ति नहीं हुई? जहाँ तक इस शरीर से हो हो सकता था, हो चुका। अब यह बंधन है और बंधन जितना शीघ्र टूटे, उतना ही अच्छा!

आनन्द—ओह, कुछ समझ में नहीं आता शास्ता! आह, आपके बिना यह पृथ्वी कितनी सूनी लगेगी—जिस तरह अचानक सूर्य डूब जाय और सारी पृथ्वी को अंधकार ढँक ले!

बुद्ध—सत्य का सूर्य कभी नहीं डूबता है आनन्द! चिर-नूतन होने के लिए वह कुछ देर के लिए आँखों से ओझल मात्र होता है। देखो, सन्ध्या हुई, भिक्षुओं से कह दो, वे कल प्रात ही चलने की तैयारी करें। पावापुरी, कुशीनारा, कपिलवस्तु सब मुझे पुकार रहे हैं आनन्द! अब हमें शीघ्रता करनी है!

३

[निर्वाण की ओर कुशीनारा में हिरण्यवती का तट]

बुद्ध—आनन्द, आज वैसाख पूर्णिमा है न?

आनन्द—हाँ, शास्ता। आज वैसाख की पूर्णिमा है! देखिये न, पूर्ण चन्द्र किस तरह पूर्व क्षितिज पर उदय हो रहा है!

बुद्ध—तथागत का आगमन वैसाख पूर्णिमा को हुआ था, महा-प्रयाण भी इसी तिथि को होना चाहिए, आनन्द!

आनन्द—भगवान, यह क्या कह रहे है?

बुद्ध—जो होने जा रहा है, वही कह रहा हूँ आनन्द! मेरा आसन शाल के उन दोनो पेडो के बीच लगा दो। सिरहाना उत्तर दिशा की ओर हो! रात के उत्तर भाग में तथागत का निर्वाण होगा!

आनन्द—भगवान, भगवान!

बुद्ध—हाँ, हाँ, तथागत की यह अन्तिम शय्या होने जा रही है, आनन्द! अहा! अस्सी वर्षो का बन्धन आप ही जीर्ण-शीर्ण होकर आज टूटने जा रहा है! (हिचकियो की आवाज) आनन्द, आनन्द! यह कौन हिचकियाँ ले-लेकर रो रहा है, आनन्द!

आनन्द—यह चुद कर्मार है, भगवान!

बुद्ध—समझ गया आनन्द! चुद सोच रहा है कि मेरा ही भोजन खाकर तथागत बीमार पडे—दुनिया मुझे क्या कहेगी? किन्तु, आनन्द, चुद से कह दो, ससार में दो भोजन सदा ही वदनीय, स्पृह-णीय समझे जायँगे—एक सुजाता की खीर, जिसको खाकर तथागत ने बुद्धत्व प्राप्त किया और दूसरा चुद की खिचडी जिसे खाकर तथागत निर्वाण प्राप्त करने जा रहे है!

आनन्द—क्या शास्ता सचमुच हमें छोडने जा रहे हैं?

बुद्ध—हाँ, आनन्द! यह पूर्णिमा का चन्द्रमा जब तीन चौथाई रास्ता तय कर लेगा, तथागत का महापरिनिर्वाण होगा! अहा, इस धवल चन्द्रिका की ही तरह निर्वाण का शुभ्र, शीतल, सुन्दर पथ यहाँ से ही दिखाई पड रहा है आनन्द! आनन्द, देखो-देखो, आकाश की ओर देखो!

(बुद्ध बहुत देर तक ध्यानमग्न हो जाते हैं—उनकी टकटकी आकाश की ओर बँधी है, फिर आनन्द को पुकारते हैं!)

बुद्ध—आनन्द, आनन्द!

(आनन्द का कोई शब्द नही सुनाई पडता, रोने की आवाज)

एक भिक्षु—आनन्द तो विहार मे जाकर एक खूंटी पकडकर बिलख बिलख कर रो रहे है, शास्ता!

बुद्ध—आनन्द को बुलाओ! कहो, तथागत बुला रहे है!

(आनन्द आते है, बुद्ध के चरणो में लिपट कर फूट फूट कर रोने लगते है)

बुद्ध—आनन्द, आनन्द! ओह, तुम भी रोने लगे! मैने पहले ही कहा था न, कि सभी प्रियो की जुदाई होनी है। जो नाश होनेवाला है, उसे कोई बचा नही सकता। फिर क्यो शोक, क्यो विलाप! आनन्द, तुम तो धन्य हो कि तुमने तथागत की सेवा चिरकाल तक मन, वचन और काया से की है। तुम्हे यह सौभाग्य मिला, तुम्हे तो प्रसन्न होना चाहिए आनन्द!

आनन्द—जो निर्वाण ही प्राप्त करना है, तो भगवान, किसी प्रसिद्ध स्थान मे—राजगृह मे, वैशाली मे, श्रावस्ती में, कौशाम्बी मे

बुद्ध—ससार मे चार स्थान सदा अति पवित्र माने जायेंगे, आनन्द! एक वह, जहाँ तथागत उत्पन्न हुए, दूसरा वह, जहाँ तथागत ने बोधि प्राप्त की, तीसरा वह, जहाँ तथागत ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया और चौथा वह, जहाँ तथागत ने निर्वाण प्राप्त किया। इनसे बढकर भी कोई स्थान पवित्र हो सकता है, आनन्द?

आनन्द—आप तो जा रहे है शास्ता, अब हमारे लिए कौन पथ-प्रदर्शन का काम करेगा

बुद्ध—यह क्या बोल गये आनन्द! मै जा रहा हूँ, किन्तु सत्य का अष्टागिक मार्ग अब प्रशस्त हो चुका। जो कुछ मैं कह चुका हूँ, उसे ही अपना आचार्य, अपना प्रदीप, अपना कोश समझना! अब वही तुम्हारा शास्ता है, उपदेशक है! उसीकी आवृत्ति करना, उसे ही जीवन मे उतारना, जैसा कि आजतक करते आये हो।

आनन्द—भगवान, क्या चलते समय कुछ उपदेश हमें न देंगे?

बुद्ध—क्या उपदेशो से तृप्ति नही मिली आनन्द! हाँ, ज्ञान की पिपासा सदा बनी रहे, यही अच्छा है। सो आनन्द, मेरा आसन शाल के उन दोनो पेडो के बीच में, जैसा बता चुका हूँ, लगा दो! और वही भिक्षु-सघ को एकत्र करो।

४

[अन्तिम प्रवचन दो शालों के बीच का आसन]

बुद्ध—(शोकमग्न भिक्षुओ से) भिक्षुओ, क्या मेरे लिए शोक करना उचित है, जो तुम कर रहे हो? जबकि दुखो की यह समष्टि समाप्त हो रही है, जन्म-मरण का भय उन्मूलित हो रहा है, जबकि मैं महादु ख से विदा ले रहा हूँ, तब तुम्हे रोना चाहिये? भिक्षुओ, आनन्द मनाओ, आनन्द मनाओ।

अब मैं नही रहूँगा, मेरे दर्शन न हो सकेंगे, यह समझकर शोक मत करो भिक्षुओ। कठोर कर्म-मार्ग के बिना मेरे दर्शन-मात्र से ही निर्वाण नही प्राप्त हो सकता। जो सत्य-मार्ग को जानेगा, उसपर चलेगा, वह मेरे दर्शन के बिना भी दु ख-जाल से मुक्त होगा।

जो इस धर्म-मार्ग को—सत्य की मध्यम प्रतिपदा को—जानता है, उसपर चलता है, वह मुझसे दूर होकर भी मेरे निकट है और रहेगा, और जो धर्म-विमुख है, श्रेय-विमुख है, वह निकट रहकर भी दूर है और रहेगा।

इसलिए सदा आलस्य-रहित होकर मन को वश में रखो और परिश्रमपूर्वक श्रेय को प्राप्त करो।

ससार में बाघ, साँप, जलती आग या शत्रु से उतना नही डरना चाहिये, जितना कि अपने ही चचल चित्त से, जो मधु को देखता है, किन्तु सकट को नही। इसलिए चित्त पर अधिकार करो, उसकी चचलता को रोको।

औषधि की मात्रा के समान ही भोजन करो, इससे न अनुराग-रखो, न इससे घृणा करो। उतना ही खाओ, जितना कि क्षुधा-शान्ति और शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है।

जैसे उद्यान में रसपान करते हुए भौंरे फूलो को नष्ट नही करते, वैसे ही अन्य मतावलम्बियो का विनाश नही करते हुए अपने धर्म-पथ पर बढे चलो।

भारी बोझ दोनो के लिए बुरा है, बैल के लिए और आदमी के लिए भी। उतना ही बोझ अपने सिर पर लो, जितने का निर्वाह कर सको।

शील ही उत्तम वस्त्र है, शील ही आभूषण है, शील ही मार्ग-भ्रष्टो के लिए अकुश है, इसलिए किसी अवस्था में भी शील को नही छोडो।

यदि कोई आदमी तलवार से तुम्हारी भुजाये और अग काट डाले तो भी तुम्हे उसके प्रति पाप-भाव का पोषण नही करना चाहिए न उसे अशान्त शब्द ही कहना चाहिए।

क्षमा के समान कोई तप नही, जो क्षमावान है, उसे ही शक्ति मिलती है, उसे ही धर्म प्राप्त होता है। जो दूसरो का कठोर व्यवहार नही सह सकता, वह न तो धर्म-सस्थापको के मार्ग पर चलता है और न उसका त्राण ही होता है।

क्रोध को थोडा-सा भी अवकाश न दो। वह धर्म और यश को नष्ट करता है—वह रूप का शत्रु है, लक्ष्य की अग्नि है और गुणो का सर्वनाशक है।

यदि तुम्हारे हृदय मे अभिमान का उदय हो, तो सुन्दर वालो से विहीन अपने मस्तक को छूकर, अपने काषाय वस्त्र और भिक्षा-पात्र को देखकर एव दूसरो के शुभ कर्म और सदाचार का चिन्तन कर उसे दूर करना ।

कपट और धर्माचरण—दोनो मे कोई मेल नही। इसलिए कुटिल उपायो का सहारा न लो। छल और छद्म ठगने के लिए है, किन्तु जो धर्म मे लगे हुए है, उनके लिए ठगना जैसी कोई चीज नही।

बडी-बडी इच्छायें रखनेवाले को जो दुख होता है, वह अल्प इच्छावाले को नही होता। इसलिए अल्पैषणा का अभ्यास करना चाहिए, विशेषत उन्हे, जो गुणो की परिपूर्णता चाहते है।

यदि निर्वाण चाहते हो, तो सतोष का अभ्यास करो। सतोष होने पर सुख मिलता है और सतोष ही धर्म है। सन्तुष्ट मनुष्य भूमि पर भी शान्तिपूर्वक सोते हैं और असन्तुष्ट मनुष्य स्वर्ग मे भी जलते रहते है।

आसक्ति दुख का निवास-वृक्ष है, इसलिए अपने और पराये दोनो से आसक्ति छोडो। आसक्ति मे पडकर मनुष्य दुख मे वैसे ही फँसता है, जिस तरह बूढा हाथी कीचड में।

धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर बहनेवाली नदी की धारा से चट्टान

को सतह भी घिस जाती है। उद्योग के लिए कुछ भी दुर्लभ नही है इसलिए सतत उद्योगी बनो।

जहाँ परिश्रम है, वहाँ सिद्धि है। परिश्रमपूर्वक सदा रगडने से लकडी से ही मनुष्य आग पैदा कर लेता है।

प्रज्ञा जरामरण-रूपी महासागर का नौका है, मोहान्धकार का प्रदीप है। सब व्याधियो को दूर करनेवाली औषधि है, दोष-रूपी वृक्षो को काटने वाली तीक्ष्ण कुल्हाडी है। इसलिए प्रज्ञा की वृद्धि के लिए विद्या, ज्ञान और भावना का सतत अभ्यास करो।

अप्रमाद का अभ्यास करो, प्रमाद का परित्याग करो। अप्रमाद द्वारा इन्द्र ने राज्य प्राप्त किया, प्रमाद द्वारा उद्धत असुरो ने अपना विनाश किया।

जहाँ कही भी रहो—पर्वत पर, जगल में या भवन में, सदा प्रयत्न-शील रहो। भिक्षुओ, बहुतो के सुख के लिए बहुतो के हित के लिए देवताओ की प्रसन्नता के लिए, बढते जाओ, बढते जाओ!

चर हे भिक्खव, बहुजन हिताय! बहुजन सुखाय!!

(बुद्ध आँखें मूँद लेते है। भिक्षुगण सवेत स्वर से मन्त्र पढते हैं—बुद्ध शरण गच्छामि! सघ शरण गच्छामि! धर्म शरण गच्छामि!)

[पटाक्षेप]

सिंहल-विजय

[एकांकी]

पात्र-पात्रियाँ

पात्र

अशोक

कुणाल

कुमार महेन्द्र

मोग्गलिपुत्र
(आहत)

भिक्षुगण

सिहल-नरेश तिष्य

पात्रियाँ

माया

सघमित्रा

१

[सम्राट् अशोक का राजप्रासाद—सम्राट् का कनिष्ठ पुत्र कुणाल वीणा बजा रहा है। वीणा बजाने में वह तल्लीन हो चला है कि सम्राट् का बडा बेटा कुमार महेन्द्र उसके कक्ष में प्रवेश करता और म्यान से तलवार खींचता है। शब्द सुनकर कुणाल मुड़कर देखता और अचानक चिल्ला पड़ता है—]

कुणाल—ओह, ओह ! भैया, भैया

कुमार महेन्द्र—ह ह ह ! डर गये कुणाल ! डर गये ! ह ह ह !

कुणाल—भैया, भैया ! यह क्या भैया ?

महेन्द्र—यह क्या भैया ? ह ह ह ! क्या इसे पहचानते नही हो कुणाल ? यही है शत्रु-मर्दिनी, सहार-कारिणी, साम्राज्य-प्रसारिणी, वीरभुज-शोभिनी . ह ह ह, समझे कुणाल ?

कुणाल—भैया, भैया !

महेन्द्र—भैया भैया क्या कुणाल ? तुम गाया करो, बजाया करो ! मुझे तो सदा सन्देह होता है, तुम्हारे बनाने मे भगवान ने कुछ भूल अवश्य की है। यह कलाई, ये उँगलियां, यह चेहरा, ये आँखें—भगवान को चाहिए था, तुम्हे नारी बनाकर भेजते ! ह ह ह ।

कुणाल—(सिर नीचा करते हुए) भैया !

महेन्द्र—आंखो की चर्चा हुई और तुम शरमा गये ! हां, हां, ये आंखें मर्दो की नही है कुणाल ! मर्दो की आंखें वे है जिनसे चिनगारियाँ टपकें—

दुश्मन देखें, तो उन्हें काठ मार जाय, दोस्त देखें, तो वे मंत्रमुग्ध हो रहे ! और तुम्हारी ये आँखें ?—ह ह ह ! मुझे डर है कुणाल, इन आँखो के चलते तुम कभी किसी झंझट में न पड़ जाओ !

कुणाल—मेरी चिन्ता मत कीजिये, भैया, मुझे चिन्ता है, आज फिर

महेन्द्र—हाँ, हाँ, बोलो-बोलो ! क्यो रुक गये ? यही न पूछते थे कि आज फिर मेरी यह शत्रु-मर्दिनी क्यो निकली ? ह ह ह —कितनी सुन्दर यह है मेरी तलवार, कुणाल !

कुणाल—तलवार और सुन्दर ? भैया !

महेन्द्र—सौन्दर्य सिर्फ सुकुमारता में नही है कुणाल ! सुकुमारता और सौन्दर्य को जो एक समझते है, वे कुछ रुचिभ्रष्ट है। कमल की पंखडियो में, वासन्ती मलय-समीरण में, शरद की चन्द्रिका में या कामिनियो के कपोलो में ही जिन्होने सौन्दर्य का आरोप किया, उनकी बुद्धि पर तरस आनी चाहिये कुणाल ! वट-वृक्ष की विशालता में, आंधी के प्रचण्ड झोको में, अमा-निशीथ के अंजन-वर्ण अन्धकार में और वीरो की प्रशस्त भुजाओ में भी प्रकृति ने सौन्दर्य की प्रचुरता भर रखी है ! इन सौन्दर्यों को जो न देख सके, न परख सके, वे नेत्र ही दोष-पूर्ण हैं।

कुणाल—प्रशस्त भुजाओ में ! (अपनी कलाई को उदासी से देखता है)

महेन्द्र—हाँ प्रशस्त भुजाओ में कुणाल ! किन्तु कुणाल, तुम्हें उदास नही होना चाहिये। शायद तुम्हारी रचना ही इसीलिए हुई है कि गाते रहो, बजाते रहो, राजप्रासाद की भीषणता को संगीत की झंकार से ढँके रहो। अच्छा, तो तुम गाओ, बजाओ, मै तो चला कलिंग-विजय करने।

कुणाल—विजय ! विजय ! भैया, यह विजय की भूख कभी शान्त नही होगी ?

महेन्द्र—न होगी, न होनी चाहिये। विजय राज्य का भोज्य है कुणाल ! विजय की आकांक्षा गई, राज्य गया। ह ह ह। और एक बात कहूँ मेरे प्यारे भाई ? विजय एक नशा है। एक बार होठो से लगा, तो फिर छूट नही सकता— फिर एक घूंट ,फिर एक घूंट, फिर एक घूंट ! ह ह ह ह ह ! !

कुणाल—आज कलिंग, कल

महेन्द्र—अभी बहुत देश शेष है कुणाल ! बहुत । पूरब मे स्वर्णभूमि, दक्षिण मे सिंहलद्वीप .

कुणाल—सिंहल द्वीप ? लका—जिसपर राम ने विजय की थी ? आप वहाँ तक विजय करने की आकाक्षा रखते है भैया ?

महेन्द्र—ससार मे कुछ वस्तुये असीम है कुणाल ! महासागर की कोई सीमा नही, यो ही मानव की अकाक्षाओ की भी सीमा नही होती। तुमने देखा नही, गगा-तट पर हमने समुद्र-गामी जल-पोतो का निर्माण प्रारम्भ करा दिया है !

कुणाल—ओह !

महेन्द्र—आह-ओह नही कुणाल, नही । आदमी को गरुड की तरह जीना चाहिए—कभी इधर एक झपट्टा, कभी उधर एक झपट्टा। जिधर चले, आगे एक भगदड, पीछे एक हहास । ह ह ह ।

कुणाल—जैसे पृथ्वी पर कोयल के लिए जगह नही !

महेन्द्र—है। तभी तो एक ही घर मे महेन्द्र भी है, कुणाल भी, लेकिन छोडो इन बातो को। आज मै तुम्हे एक आमत्रण देने आया हूँ।

कुणाल—आमत्रण ! मुझे ?

महेन्द्र—हाँ, आमत्रण तुम्हे आज मै तुम्हें आमन्त्रित करने आया हूँ कि चलो, एक बार अपने बडे भाई की भुजाओ का बल और इस शत्रु-मर्दिनी का जौहर देख लो।

कुणाल—भैया, मै तो युद्ध का नाम सुनते ही

महेन्द्र—ह ह ह ह ! युद्ध का नाम सुनते ही तुम काँप उठते हो ! अरे कुणाल ! हम राज-पुत्र है ! कौन कहे, तुम्हारी भुजाओ को भी एक दिन तलवार उठानी पडे, तुम्हारी आँखो को भी एक दिन युद्ध के भयानक दृश्य देखने पडें !

कुणाल—उन दृश्यो के देखने के पहले मै अपनी आँखो को निकाल लिया जाना पसन्द करूँगा, भैया !

महेन्द्र—चुप ! चुप, कुणाल ! मूर्खता की भी सीमा होती है ! ऐसी बात जीभ पर मत ला। हाँ, तुम्हे चलना ही पडेगा । मैने पिता जी को भी आमन्त्रित किया है कि इस बार स्वय रण-भूमि मे चलकर मेरे उस रण-कौशल को देखें, जिसने सारे भारतवर्ष को पराजित कर उन के श्रीचरणो के निकट डाल दिया है। तुम्हे चलना ही है कुणाल !

दुश्मन देखें, तो उन्हे काठ मार जाय, दोस्त देखें, तो वे मत्रमुग्ध हो रहे। और तुम्हारी ये आँखें ?—ह ह ह ! मुझे डर है कुणाल, इन आँखो के चलते तुम कभी किसी झझट में न पड जाओ !

कुणाल—मेरी चिन्ता मत कीजिये, भैया, मुझे चिन्ता है, आज फिर .

महेन्द्र—हाँ, हाँ, वोलो-बोलो ! क्यो रुक गये ? यही न पूछते थे कि आज फिर मेरी यह शत्रु-मर्दिनी क्यो निकली ? ह ह ह —कितनी सुन्दर यह है मेरी तलवार, कुणाल !

कुणाल—तलवार और सुन्दर ? भैया !

महेन्द्र—सौन्दर्य सिर्फ सुकुमारता में नही है कुणाल ! सुकुमारता और सौन्दर्य को जो एक समझते हैं, वे कुछ रुचिभ्रष्ट हैं। कमल की पखडियो में, वासन्ती मलय-समीरण में, शरद की चन्द्रिका में या कामिनियो के कपोलो में ही जिन्होने सौन्दर्य का आरोप किया, उनकी बुद्धि पर तरस आनी चाहिये कुणाल ! वट-वृक्ष की विशालता में, आधी के प्रचण्ड झोको में, अमा-निशीथ के अजन-वर्ण अन्धकार में और वीरो की प्रशस्त भुजाओ में भी प्रकृति ने सौन्दर्य की प्रचुरता भर रखी है ! इन सौन्दर्यों को जो न देख सके, न परख सके, वे नेत्र ही दोष-पूर्ण हैं।

कुणाल—प्रशस्त भुजाओ में ! (अपनी कलाई को उदासी से देखता है)

महेन्द्र—हाँ प्रशस्त भुजाओ में कुणाल ! किन्तु कुणाल, तुम्हे उदास नही होना चाहिये। शायद तुम्हारी रचना ही इसीलिए हुई है कि गाते रहो, वजाते रहो, राजप्रासाद की भीषणता को सगीत की झकार से ढँके रहो। अच्छा, तो तुम गाओ, वजाओ, मैं तो चला कलिंग-विजय करने।

कुणाल—विजय ! विजय ! भैया, यह विजय की भूख कभी शान्त नही होगी ?

महेन्द्र—न होगी, न होनी चाहिये। विजय राज्य का भोज्य है कुणाल ! विजय की आकाक्षा गई, राज्य गया। ह ह ह। और एक वात कहूँ मेरे प्यारे भाई ? विजय एक नशा है। एक वार होठो से लगा, तो फिर छूट नही सकता— फिर एक घूंट ,फिर एक घूंट, फिर एक घूंट ! ह ह ह ह ह ! !

कुणाल—आज कलिंग, कल

महेन्द्र—अभी बहुत देश शेष है कुणाल ! बहुत। पूरब मे स्वर्ण, दक्षिण मे सिंहलद्वीप .

कुणाल—सिंहल द्वीप ? लका—जिसपर राम ने विजय की थी आप वहाँ तक विजय करने की आकाक्षा रखते है भैया ?

महेन्द्र—ससार मे कुछ वस्तुयें असीम है कुणाल ! महासागर व कोई सीमा नही, यो ही मानव की अकाक्षाओ की भी सीमा नही होती तुमने देखा नही, गगा-तट पर हमने समुद्र-गामी जल-पोतो का निर्माण प्रारम्भ करा दिया है !

कुणाल—ओह !

महेन्द्र—आह-ओह नही कुणाल, नही। आदमी को गरुड की तरह जीना चाहिए—कभी इधर एक झपट्टा, कभी उधर एक झपट्टा। जिधर चले, आगे एक भगदड, पीछे एक ठहास। ह ह ह ।

कुणाल—जैसे पृथ्वी पर कोयल के लिए जगह नही !

महेन्द्र—है। तभी तो एक ही घर मे महेन्द्र भी है, कुणाल भी, लेकिन छोडो इन बातो को। आज मै तुम्हे एक आमत्रण देने आया हूँ।

कुणाल—आमत्रण ! मुझे ?

महेन्द्र—हाँ, आमत्रण तुम्हे आज मै तुम्हे आमन्त्रित करने आया हूँ कि चलो, एक बार अपने बड़े भाई की भुजाओ का बल और इस शत्रु-मर्दिनी का जौहर देख लो।

कुणाल—भैया, मै तो युद्ध का नाम सुनते ही

महेन्द्र—ह ह ह ह . ! युद्ध का नाम सुनते ही तुम कॉप उठते हो ! अरे कुणाल ! हम राज-पुत्र है ! कौन कहे, तुम्हारी भुजाओ को भी एक दिन तलवार उठानी पडे, तुम्हारी ऑखो को भी एक दिन युद्ध के भयानक दृश्य देखने पडें !

कुणाल—उन दृश्यो के देखने के पहले मै अपनी ऑखो को निकाल लिया जाना पसन्द करूँगा, भैया !

महेन्द्र—चुप ! चुप, कुणाल ! मूर्खता की भी सीमा होती है ! नी बात जीभ पर मत ला। हाँ, तुम्हे चलना ही पडेगा। मन पता जी ो भी आमत्रित किया है कि इन बार स्वय रण-भूमि में चलकर मेरे र रण-कौशल को देखें, जिसने सारे भारतवर्ष को पराजित कर उन श्रीचरणो के निकट डाल दिया है। तुम्हे चलना ही है कुणाल !

दुश्मन देखें, तो उन्हे काठ मार जाय, दोस्त देखें, तो वे मंत्रमुग्ध हो रहे! और तुम्हारी ये आँखें ?—ह ह ह! मुझे डर है कुणाल, इन आँखो के चलते तुम कभी किसी झंझट में न पड़ जाओ!

कुणाल—मेरी चिन्ता मत कीजिये, भैया, मुझे चिन्ता है, आज फिर

महेन्द्र—हाँ, हाँ, बोलो-बोलो! क्यो रुक गये? यही न पूछते थे कि आज फिर मेरी यह शत्रु-मर्दिनी क्यो निकली? ह ह ह —कितनी सुन्दर यह है मेरी तलवार, कुणाल!

कुणाल—तलवार और सुन्दर? भैया!

महेन्द्र—सौन्दर्य सिर्फ सुकुमारता में नही है कुणाल! सुकुमारता और सौन्दर्य को जो एक समझते हैं, वे कुछ रुचिभ्रष्ट हैं। कमल की पखडियो में, वासन्ती मलय-समीरण में, शरद की चन्द्रिका में या कामिनियो के कपोलो में ही जिन्होने सौन्दर्य का आरोप किया, उनकी बुद्धि पर तरस आनी चाहिये कुणाल! वट-वृक्ष की विशालता में, आधी के प्रचण्ड झोको में, अमा-निशीथ के अजन-वर्ण अन्धकार में और वीरो की प्रशस्त भुजाओ में भी प्रकृति ने सौन्दर्य की प्रचुरता भर रखी है! इन सौन्दर्यों को जो न देख सके, न परख सके, वे नेत्र ही दोष-पूर्ण हैं।

कुणाल—प्रशस्त भुजाओ मे! (अपनी कलाई को उदासी से देखता है)

महेन्द्र—हाँ प्रशस्त भुजाओ में कुणाल! किन्तु कुणाल, तुम्हे उदास नही होना चाहिये। शायद तुम्हारी रचना ही इसीलिए हुई है कि गाते रहो, बजाते रहो, राजप्रासाद की भीषणता को सगीत की झकार से ढँके रहो। अच्छा, तो तुम गाओ, बजाओ, मैं तो चला कलिंग-विजय करने।

कुणाल—विजय! विजय! भैया, यह विजय की भूख कभी शान्त नही होगी?

महेन्द्र—न होगी, न होनी चाहिये। विजय राज्य का भोज्य है कुणाल! विजय की आकाक्षा गई, राज्य गया। ह ह ह। और एक बात कहूँ मेरे प्यारे भाई? विजय एक नशा है। एक बार होठो से लगा, तो फिर छूट नही सकता— फिर एक घूंट, फिर एक घूंट, फिर एक घूंट! ह ह ह ह ह!!

कुणाल—आज कलिंग, कल

महेन्द्र—अभी बहुत देश शेष है कुणाल ! बहुत। पूरब मे स्वर्णभूमि, दक्षिण मे सिंहलद्वीप ..

कुणाल—सिंहल द्वीप ? लका—जिसपर राम ने विजय की थी ? आप वहाँ तक विजय करने की आकाक्षा रखते है भैया ?

महेन्द्र—ससार मे कुछ वस्तुये असीम है कुणाल ! महासागर की कोई सीमा नही, यो ही मानव की अकाक्षाओ की भी सीमा नही होती। तुमने देखा नही, गंगा-तट पर हमने समुद्र-गामी जल-पोतो का निर्माण प्रारम्भ करा दिया है !

कुणाल—ओह !

महेन्द्र—आह-ओह नही कुणाल, नही। आदमी को गरुड की तरह जीना चाहिए—कभी इधर एक झपट्टा, कभी उधर एक झपट्टा। जिधर चले, आगे एक भगदड, पीछे एक हहास। ह ह ह।

कुणाल—जैसे पृथ्वी पर कोयल के लिए जगह नही !

महेन्द्र—है। तभी तो एक ही घर मे महेन्द्र भी है, कुणाल भी, लेकिन छोडो इन बातो को। आज मै तुम्हे एक आमत्रण देने आया हूँ।

कुणाल—आमत्रण ! मुझे ?

महेन्द्र—हाँ, आमत्रण तुम्हे आज मैं तुम्हे आमन्त्रित करने आया हूँ कि चलो, एक बार अपने बड़े भाई की भुजाओ का बल और इस शत्रु-मर्दिनी का जौहर देख लो।

कुणाल—भैया, मैं तो युद्ध का नाम सुनते ही . .

महेन्द्र—ह ह ह ह ! युद्ध का नाम सुनते ही तुम कांप उठते हो ! अरे कुणाल ! हम राज-पुत्र है ! कौन कहे, तुम्हारी भुजाओ को भी एक दिन तलवार उठानी पडे, तुम्हारी आंखो को भी एक दिन युद्ध के भयानक दृश्य देखने पडें !

कुणाल—उन दृश्यो के देखने के पहले मै अपनी आँखो को निकाल लिया जाना पसन्द करूँगा, भैया !

महेन्द्र—चुप ! चुप, कुणाल ! मूर्खता की भी सीमा होनी है ! ऐसी बात जीभ पर मत ला। हाँ, तुम्हे चलना ही पडेगा। मन पता जी को भी आमन्त्रित किया है कि इस बार स्वय रण-भूमि में चलकर मेरे उस रण-कौशल को देखे, जिसने सारे भारतवर्ष को पराजित कर उन के श्रीचरणो के निकट डाल दिया है। तुम्हे चलना ही है कुणाल !

कुणाल—चलना ही है ! तो, चलूँगा। सुना है, कलिंग के लोग बड़े कलाविद् होते हैं।

महेन्द्र—सच ! तब तो उन पर विजय पाना और भी आसान होगा कुणाल ! कला!—कला हृदय को कोमल, शरीर को सुकुमार और उँगलियो को नाजुक बना देती है। कला आई, शौर्य गया ! ह ह ह ह ।

कुणाल—यह कला को एकांगी देखना है, भैया ?

महेन्द्र—ऐसा ही हो। तो चलो, देख लो, कला और शौर्य में विजय किसकी होती है। क्यो ? ह ह ह ह ।

२

[पृष्ठभूमि में कोलाहल छाया हुआ है। "मारो मारो" "काटो, काटो" की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। 'कलिंग की जय'-'सम्राट अशोक की जय' के तुमुल नाद भी बीच-बीच में होते हैं। फिर, चीख-पुकार 'आह' 'ओह' आदि सुनाई पड़ते हैं। स्थानः कलिंग की युद्धभूमि।]

महेन्द्र—(अट्टहास करता हुआ) ह ह ह ! ह ह ह ! ह ह ह ! ह ह ह ह !

कुणाल—(कातर स्वर में) उफ, आप हँस रहे हैं ! आह ! .

महेन्द्र—ह ह ह ! ह ह ह !

कुणाल—भैया, भैया ! आपको क्या हो गया है, भैया !

महेन्द्र—ह ह ह। ह ह ह। मुझे क्या हो गया है कुणाल ? कुणाल, ह ह ह ! मुझे नही, उन्हें क्या हो गया कुणाल ? ह ह ह !

कुणाल—(गम्भीर होकर) भैया, मुझे क्षमा कीजिए। मानवता के इस भीषण संहार पर यो अट्टहास करना कभी मानवोचित कर्म नही समझा जा सकता। और, इतनी निर्दयता से संहार कराकर अब आप उनके आर्त्तनाद पर अट्टहास कर रहे हैं !

महेन्द्र—और तुम्हे भी यह क्या हो गया है कुणाल ? ह ह ह ।

कुणाल—भैया, मैं चला। मैं यह सब देख-सुन नही सकता !

महेन्द्र—मैं चला ! ह ह ह ह ! नहीं, नहीं , रुको कुणाल, रुको। अरे, उन्हे यह क्या हो गया है ? अरे, तुम्हे यह क्या हो गया है ? ह ह ह

कुणाल—मैं रुक नहीं सकता भैया, रुक नही सकता !

महेन्द्र—नही, तुम्हे रुकना है कुणाल, रुकना है। ह ह ह । ह ह ह ! और, तुम ने क्या यह समझा है कि मैं उन बेचारो के आर्त्त-नाद पर हँस रहा हूँ ? नहीं, कुणाल, नहीं। मुझे तो हँसी आ रही है, पिता-जी पर

कुणाल—पिताजी पर ?

महेन्द्र—हाँ कुणाल, पिताजी पर। जानते हो, इस समय वह एक लाश को छाती से लगा कर रो रहे हैं—सिसक-सिसक कर। ह ह ह।

कुणाल—रो रहे हैं ?

महेन्द्र—हाँ कुणाल, रो रहे हैं ! बच्चो की तरह बिलख-बिलख कर रो रहे है !

कुणाल—तो इसमें हँसने की क्या बात है भैया ?

महेन्द्र—सारी बातें हँसने की है, हँसी की है, कुणाल ! ह ह ह ! पिता जी ने समझ क्या रखा था ? क्या युद्ध बिना रक्त-पात के होता है ? और, जब रक्तपात युद्ध के साथ अनिवार्य है, तो जितना ही अधिक रक्तपात, उतना ही शानदार युद्ध ! और जानते हो कुणाल, वह यह भी कह रहे है कि आज से युद्ध न करूँगा। ह ह ह—युद्ध नही करूँगा ! जैसे युद्ध किसी शासक या सम्राट् की मर्जी पर निर्भर करता हो !

कुणाल—भैया, भैया ! (क्रोधावेश से वह कांप रहा है)

महेन्द्र—और, मुझे तुम पर भी हँसी आ रही है कुणाल, तुम पर भी। अहा ! जीवन में पहली बार तुममें यह क्रोध देखा है। जानते हो कुणाल, हमारे किसी शास्त्र में भगवान को क्रोध कहा गया है। और सच कहता हूँ, जब किसी को मैं क्रोध मे देखता हूँ, तो उसमें भगवानके दर्शन करता हूँ, आनन्द-मग्न हो जाता हूँ ! ह ह ह।

कुणाल—भैयाजी, आपके ये विचार . .

महेन्द्र—भीषण है, क्यो ? ह ह ह ! किन्तु, तुम इन्हे घृणित नहीं कह सकते कुणाल ! जब तक साम्राज्य है, तब तक युद्ध अनिवार्य

है। और जब तक मानव-मन रागात्मक है, क्रोध भी आवश्यक रहेगा कुणाल! ह ह ह!

कुणाल—तो साम्राज्यो का नाश हो, मानव-मन को रागो से निवृत्ति मिले। मानवता का कल्याण इसीमें है भैया!

(दूर से आह! आह! ओह! ओह! आदि स्वर तीव्र होते जा रहे हैं)

महेन्द्र—सुन रहे हो कुणाल, सुन रहे हो!

कुणाल—भैया, क्या आपका हृदय इन शब्दो को सुनकर द्रवित नही होता?

महेन्द्र—द्रवित होता है! किन्तु करुणा से नही, आनन्द से। आनन्द मारने में नही है कुणाल, आनन्द है तडपने का तमाशा देखने में। जानते हो, शेर अपने शिकार को एकबारगी नही मारता—घायल करके छोड देता और अलग बैठ कर उनके तडपने और दम तोडने का तमाशा आँखें फाड-फाड कर देखा करता है!

कुणाल—रहने दीजिये, रहने दीजिये भैया! उफ, मानव! हायरी मानवते!

महेन्द्र—उफ रे मानव,! हाय री मानवते! ह ह ह! कैसा भोला भाई मिला है मुझे! उफ रे मानव! हाय री मानवते! ह ह ह!

३

[सम्राट अशोक के राज-भवन में घंटे-घडियाल बज रहे हैं। रह-रह कर 'बुद्ध शरण गच्छामि, धर्म्म शरण गच्छामि, संघ शरण गच्छामि' का स्वर सुनाई पडता है। अपने कक्ष में बेचैनी से कुमार महेन्द्र टहल रहा है। इतने ही में उसकी पत्नी माया आती है]

माया—नाथ!

महेन्द्र—(कुछ नही बोलता, टहलता ही रहता है)

माया—नाथ!

महेन्द्र—(फिर कुछ नहीं बोलता, टहलता रहता है)

माया—नाथ ! सुनिये नाथ !

महेन्द्र—सुन रहा हूँ, माया, सुन रहा हूँ । सब सुन रहा हूँ। इस भिक्षु ने राजप्रासाद को बौद्ध विहार बना डाला है। सुन रहा हूँ माया, यह घंटा-घड़ियाल, यह बुद्ध शरण, धर्म्म शरण ! सुन रहा हूँ—सब सुन रहा हूँ ! उफ ! (पैर पटकता है)

- माया—नाथ !

महेन्द्र—नहीं, मैं अब इस राज-भवन मे रह नहीं सकता, माया ! नही, नही । यह घंटा घड़ियाल, यह मंत्र-तंत्र ! नहीं, यह स्थान किसी राजकुमार के लिए नही रह गया। यह मोग्गलि-पुत्र—यह ढोंगी भिक्षु । ओहो, महास्थविर कहलाता है यह । ढोंगी ! किन्तु,—ह ह ह ! कितने होशियार होते है ये साधु-सन्यासी ! जब देखते है आदमी किसी मानसिक उलझन मे पड गया है, ये धम्म से आ जाते है उसके सामने भूत की तरह, और फिर तो उसे भूता-भिभूत की तरह नचाया करते हैं। स्थविर स्थविर ह ह ह धूर्त्तता की भी हद होती है भिक्षु

माया—नाथ, आप यो बेचैन

महेन्द्र—माया, हाँ मै बेचैन हूँ। तुम नही समझती हो, यह क्या हो रहा ? किन्तु मै समझता हूँ। यह हमें इस घर से हटाने का षड्यन्त्र है, माया !

माया—षड्यन्त्र ! घर से हटाने का ?

महेन्द्र—हाँ, षड्यन्त्र—इस हमें घर से हटाने का ! जिस घर में वीरता की आवश्यकता नहीं, विजय की आवश्यकता नहीं, उस घर में महेन्द्र के लिए कौन-सी जगह है माया ? तुम क्या समझती हो कि मै अपनी इस प्यारी शत्रु-मर्दिनी (तलवार निकालता हुआ) को छोडकर हाथ में मनके ले सकता हूँ—नहीं, नहीं ! और पिताजी के राज्य का उत्तराधिकारी तो अब वही न होगा, जो हाथ मे उन्हीं की तरह मनके ले और उस धूर्त्त भिक्षु की तरह होंठो पर मंत्र बुदबुदाता रहे ! यह षड्यन्त्र है, माया, मुझे, राज्य-सिंहासन से वंचित करने का ! षड्यन्त्र, षड्यन्त्र ! किन्तु, यह शत्रु-मर्दिनी ऐसे सहस्र-सहस्र षड्यन्त्रों को (तलवार घुमाता है)

माया—नाथ, नाथ ! यह क्या सोच रहे है नाथ ?

महेन्द्र—सोच चुका हूँ, सोच चुका हूँ, माया! सोच चुका हूँ और तय कर चुका हूँ। जो इतने दिनों तक शूर-वीरों की गर्दनें उतारती रही, उसीसे इन भिक्षुओं के सिर उतारना पड़ेगा।

माया—(विह्वलता में चिल्लाती हुई) भिक्षुओं के सिर! नाथ

महेन्द्र—चिल्लाओ मत माया! भिक्षुओं के सिर! ये मुंडे हुए सिर, ये पोपले सिर, ये खुराफाती सिर। हाँ, ये खुराफाती सिर हैं—इसीलिए इन्हें उतारना ही पड़ेगा! ठीक, यह क्रूर-कर्म है—निरस्त्रों पर शस्त्र उठाना, यह नीच कर्म है! किन्तु, नीचता के निवारण के लिए कभी-कभी नीचता पर उतरना होता है, माया!

माया—नाथ, नाथ!!

महेन्द्र—हटो माया, हटो। मेरा क्षत्रित्व जाग उठा है, हटो। हटो! (रोती हुई माया जाती है—महेन्द्र फिर टहलने लगता है)

४

[संघमित्रा अशोक-राजप्रासाद के अपने एकान्त कक्ष में गा रही है]

संघमित्रा—

उठ रहा तूफान,
शान्त मन, उद्भ्रान्त क्यों है?
उच्छ्वसित तन क्लान्त क्यों है?
ऊँघता एकान्त क्यों है?

आदि की यह आदि ही
क्यों पा गई अवसान?

गा रहा तूफान,
नीड़ खोकर विहग विह्वल
तटी वेकल, तरी चंचल
हो रहे हैं एक जल-थल

हँस न पाया था कि
देखो डूबता दिनमान!

(कुणाल का प्रवेश)

कुणाल—मित्रे, इस घर में सिर्फ हमी दो सुखी हैं, मित्रे!

संघमित्रा—कुणाल भैया, ओहो! बड़ी कृपा की भैया!

कुणाल—हम पर भगवान की ही कृपा है, मित्रे! मुझे बजाना दिया, तुम्हें गाना दिया। गाना-बजाना, मालूम होता है—संसार में ये ही दो शाश्वत सत्य हैं, और सब मिथ्या हैं। देखती हो न पिताजी को, कैसी कायापलट? और भैया के बारे में सुना है?

संघमित्रा—सुना है, देखा है, बातें भी की हैं। वहाँ भी काया-पलट की ही एक क्रिया चल रही है, कुणाल भैया! मुझे ऐसा लगता है, वीरवर महेन्द्र, कहीं भिक्षु महेन्द्र न बन जायँ।

कुणाल—महेन्द्र भैया और भिक्षु! अरे!

संघमित्रा—जब अधिक ऊमस होती है, पानी बरस कर रहता है। पानी अधिक गरम होता है, भाफ बनकर उड़ जाने के लिए। इतनी ऊमस, इतनी गर्मी! उफ, भैया पागल हो रहे हैं .

कुणाल—हाँ, वह तो पागल हो रहे हैं मित्रे!

संघमित्रा—पाटलिपुत्र का यह सारा राज-भवन पागल हो रहा है, कुणाल भैया! कलिंग हार कर भी जीत गया, पाटलिपुत्र जीत कर भी हार चुका!

कुणाल—तुम यह क्या बोल गई, मित्रे?

संघमित्रा—जो आँखों से देख रही हूँ!

कुणाल—तुम एक बहुत बड़ा सत्य अनायास ही कह गई, मेरी प्यारी बहिन। सचमुच ही कलिंग हारकर जीत गया, पाटलिपुत्र जीत कर हार गया। किन्तु इसका अर्थ तुमने समझा?

संघमित्रा—अर्थ?

कुणाल—हाँ, हाँ, इसका अर्थ! इसका अर्थ यह हुआ कि कला हारकर जीत गई और शौर्य जीतकर हार गया! विजेता गरुड़ पंख फटफटा कर तड़प रहा है और विजयिनी कोयल कल भी गाती थी, आज भी गा रही है!

संघमित्रा—भैया, सच कहती हूँ, मुझे तो ऐसा मालूम होता है, इस घर में ही पागलपन आ घुसा है। कलिंग के भूत हम सबके सिर पर आ चढ़े हैं और न जानें हममें से किसको, कब, कहाँ ले जायँ?

कुणाल—मित्रे, क्या तुम भी कुछ उलझन में हो ? ओहो, तभी तो वह तुम्हारा गीत—"उठ रहा तूफान—गा रहा तूफान ?"

सघमित्रा—लेकिन घवडाइए मत भैया ! सब कही न कही टिकाने लग जायँगे। ऐसा ही होता आया है, जो उठता है, गाता है, वह सोता भी है। सुनिये—

सो रहा तूफान !
प्रकृति का वह कोप हमसे दूर
दूर झझा के झकोरे क्रूर
शान्ति चारो ओर अव भरपूर
रवि गया, पर वह चमकता चाँद है द्युतिमान।
सो रहा तूफान ॥

५

[आधीरात के सन्नाटे का आलम—गगा के उस पार की तट-भूमि—कुमार महेन्द्र वालू पर अकेला टहल रहा है—एक टिटहरी बोल उठती है]

महेन्द्र—अन्धकार ! टिटहरी ! वाहर अन्धकार भीतर अन्धकार ! वाहर टिटहरी, और भीतर ? वहाँ भी कुछ वोल रहा है ! क्या वोल रहा है ? अव तक क्यो नही वोला था ? टिटहरी अन्धकार में ही वोलती है ! उफ, मेरा हृदय यह कहाँ से अन्धकार आया इसमें ? कुछ नही सूझता वाहर नही सूझता, भीतर भी नही सूझता ! किन्तु यह क्या वक रहा हूँ मै ? क्या मै पागल होने जा रहा ? पागल, ह ह ह ! और मैं हूँ कहाँ ? हाँ, सामने गगा के उस पार वह राजप्रासाद है। राजप्रासाद ! नही, अव तो वह वौद्ध-विहार है ! पिताजी यह क्या कर रहे है ? किन्तु क्या वह होश में हैं ? उनके सिर पर तो भूत सवार है भूत भूत ! (सामने देख कर) अरे, वह भूत है क्या ? भूत ! ह ह ह। महेन्द्र ! अव तुम भूत से भी डरने लगे !

(एक चीख—भागने का शब्द—महेन्द्र उस ओर दौडता है) कौन ? कौन ?

आहत का स्वर—आह ! आह !

महेन्द्र—(घायल व्यक्ति के निकट पहुँच कर, झुककर) ओहो, तुम कौन हो ? क्या हुआ है ? किसने मारा है तुम्हे ? किसने मारा है ? अन्धकार में प्रहार, कैसी राक्षसता ?

आहत—पानी .पानी

महेन्द्र—अभी लाया पानी । (दौड़ता हुआ जाता है)

आहत—आह ! आह !

महेन्द्र—(लौटकर) लो यह पानी। तुम हो कौन ? किसने मारा तुम्हे ? बताओ, अभी उसे सबक सिखाता हूँ। पाटलिपुत्र में जहाँ कही होगा, वह दड भुगत कर रहेगा। वह जायगा कहाँ ?

आहत—द . ड ! द ड, नही ! दड -नही।

महेन्द्र—दड नही ? अपराधी को दड मिलता ही है, मिलकर रहेगा।

आहत—भिक्षु न दड देता है, न दिलाता है। उसके कोष मे यह शब्द भी नही है।

महेन्द्र—तो तुम भिक्षु हो ? उफ !

आहत—तुम्हे पश्चात्ताप हो रहा है कि क्यो जल पिलाकर एक भिक्षु को बचा लिया ?

महेन्द्र—हाँ, पश्चात्ताप हो रहा है, महान पश्चात्ताप ! मैंने भिक्षुओ का सहार करने की प्रतिज्ञा की है।

आहत—तो उनलोगो से साँठ-गाँठ करो, जो अभी मुझ पर प्रहार करके भगे है। पाटलिपुत्र मे ऐसे आदमी तुम अकेले नही हो अपरिचित !

महेन्द्र—मै अन्धेरे में प्रहार करने वालो में नही हूँ, भिक्षु !

आहत—सत्य पर अन्धेरे मे ही प्रहार हो सकता है अपरिचित ! या तो अन्धकार हो, या तुमने आँखे मूँद ली हो—या तुम्हारी आँखो पर पर्दा हो—किसी कपडे का या किसी नशीली वस्तु का ! सरेआम, दिन-दहाड़े, खुली आँखो, सत्य पर प्रहार हो नही सकता, हो नहीं सकता है अपरिचित !

महेन्द्र—तुम यह क्या बोल रहे हो ?

आहत—मैं जो वोल रहा हूँ उसके समझने में अब अधिक देर तुम्हें नही लगेगी, मेरे प्राण-रक्षक !

महेन्द्र—उफ, जहाँ जाता हूँ, वही

आहत—वही भिक्षु मिलते हैं, क्यो ? किन्तु इसमें बुरा क्या है अपरिचित ? घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार को छोड कर बहुतो के हित के लिए, बहुतो के सुख के लिए अपने को उत्सर्ग कर देना क्या बुरा है ?

महेन्द्र—तुम लोग कायरता फैला रहे हो, नपुसकता फैला रहे हो। तुम हमारे देश को रसातल में लिये जा रहे हो भिक्षु !

आहत—वीरता क्या सिर्फ तलवार भाँजने में हैं अपरिचित ? किसी निर्बल देश पर चढ दौडना, किसी शान्त जनपद को रौंद डालना, कितने निरीह प्राणियो की हत्या करना, शहरो को लूटना, गाँवो को जलाना— क्या तुम वीरता इसी को समझते हो, मेरे प्राणरक्षक ? यह वीरता नही, वर्बरता है । यह विजय नही, अभि-शाप है !

महेन्द्र—विजय! विजय ! आह! विजय क्या वस्तु है, तुम क्या समझो भिक्षु ? (उसासें लेता है)

आहत—विजय ! विजय ! विजय कौन नही चाहता है, अपरिचित ? किन्तु सवाल यह है कि विजय कहाँ—शरीर पर या मन पर, तलवार के जोर से या प्रेम के वल पर ? विजय ! विजय को तो सारा ससार पडा है, किन्तु विजेता कहाँ दिखाई पडता है अपरिचित ?

महेन्द्र—(आवेश में) विजेता कहाँ ? यह तुम किसके सामने वोल रहे हो भिक्षु !

आहत—एक ऐसे व्यक्ति के सामने, जो मुझसे भी अधिक घायल है ! मैं तो यह जानता हूँ कि घाव कहाँ लगा है, किन्तु जो यह भी नही जानता कि उसका घाव कहाँ है, किन्तु पीडा से जो पागल वना है ! तुम जो कोई भी हो, मेरा आशीर्वाद लेते जाओ प्राणरक्षक—भगवान तथागत तुम्हे शान्ति का मार्ग शीघ्र प्रदर्शित करे !

महेन्द्र—शान्ति मरण है ।

आहत—हाँ, शान्ति मरण है। ऊपर की शान्ति मरण है। किन्तु भीतर की शान्ति जीवन है, अपरिचित ! तुम्हे वह जीवन-दायिनी, अमरतादायिनी शान्ति मिले।

महेन्द्र—नही, नही, ! भिक्षु, मुझे शान्ति नही, विजय चाहिए। (वहाँ से उद्विग्न होकर वडवडाता हुआ चल देता है) मुझे विजय चाहिए, विजय विजय विजय !

६

[कुमार महेन्द्र का कक्ष—सम्राट् अशोक का प्रवेश]

महेन्द्र—पिताजी ! (चरण छूता है)

अशोक—तुम्हारे लिए विजय का सन्देश लाया हूँ, प्यारे बेटे !

महेन्द्र—(आनन्द-विभोर होकर) विजय का सन्देश ! विजय का विजय ! विजय ! पिताजी, पिताजी, यह क्या सुन रहा हूँ ? विजय का सन्देश ?

अशोक—हाँ महेन्द्र, विजय का सन्देश ! सिहल-विजय का !

महेन्द्र—सिहल-विजय का ? अहा ! पिताजी, पिताजी ! कितने दिनो से मैं यह आकाक्षा हृदय में पोसे हुए था ! सिहल-विजय—उस लका पर विजय, जिसपर विजय प्राप्त कर राम ने इतनी कीर्ति कमाई ! अहा ! एक बार फिर उनके स्वर्ण-सौध पर हमारी विजय-पताका फहरायगी ! पिताजी, पिताजी, कब जाना है उस ओर ?

अशोक—जब चाहो। वहाँ से निमत्रण आया है।

महेन्द्र—(साश्चर्य) निमत्रण ! किसने निमत्रण भेजा ? क्या लका मे हर युग में विभीषण पैदा होते रहेगे ? उफ् रे अभागा द्वीप !

अशोक—विभीषण वहाँ होता है, जहाँ रावण होता है। अब वहाँ न रावण है, न कोई विभीषण। सिहल-अधिपति महाराज तिष्य ने स्वय ही आमत्रण भेजा है। अभी उनका जल-पोत यहाँ आया है—रत्नो से भरा। इन अमूल्य उपहार के साथ उन्होंने विजय के लिए सदेश भेजा है।

महेन्द्र—उपहार के साथ! (कुछ उदास होता हुआ) तो उसे मैत्री का सन्देश कहिये पिताजी! विजय यो आप ही घर नही आया करती!

अशोक—क्यो बेटे, क्या विजय के साथ शत्रुता अनिवार्य है? पुत्र पिता पर, पत्नी पति पर, मित्र मित्र पर विजय प्राप्त करते हैं, तो क्या शत्रुता के ही चलते? और क्या हृदय की यह विजय सबसे बडी विजय नही है? महेन्द्र, महेन्द्र, एक नया युग प्रारम्भ हो रहा है, प्यारे बेटे! एक नया इतिहास लिखा जा रहा है। क्या उस इतिहास में महेन्द्र का नाम नही होगा—महेन्द्र का, वीरवर महेन्द्र का, विजेता महेन्द्र का?

महेन्द्र—पिताजी, आप क्या कह रहे है? समझ में नही आता।

अशोक—जानता हूँ बेटे, जानता हूँ। मेरा बेटा इन दिनो कितना उद्विग्न है, कितना विह्वल है, कितना व्याकुल है—क्या मै नही जानता? क्या बाप अपने बेटे की भावनाओ से अपरिचित रह सकता है? किन्तु क्या करूँ, यह समझ मे नही आ रहा था। मेरे बेटे को विजय चाहिये—विजय, विजय! जिस विजय की खोज में वह निस्तब्ध रात्रि में गगा-तट पर विक्षिप्त-सा घूमा करता है!

महेन्द्र—यह किसने आपसे कहा पिताजी?

अशोक—(उसके प्रश्न से उदासीन) और यह भी एक सयोग कि अन्धकार में प्रकाश की रेखा खोजने वाली दो आत्मायें एक दिन उस तट-भूमि पर अचानक मिली

महेन्द्र—कौन किससे मिला पिताजी?

अशोक—कुमार महेन्द्र मिले महास्थविर मोग्गलिपुत्र से।

महेन्द्र—एँ! तो वह महास्थविर थे, जिनपर आघात किया गया था?

अशोक—हाँ, महेन्द्र! तुम्हारी मनोवृत्ति से उन्हे भी कम कष्ट नही हो रहा है। तुम कोई साधारण आदमी तो नही हो कि जिसकी उपेक्षा की जाय। बडा आदमी जो कानोकान कहता है, वह भी गभीर घोष बनकर जनसाधारण के निकट पहुँच जाता है। तुम्हारी विरोध-भावना कितनी बडी है, तुमने उस रात में स्वय देखा जब कुछ दुष्टो ने गुरुदेव को मारने की चेष्टा की

महेन्द्र—ओह! ओह!

अशोक—'विजय' 'विजय' 'विजय' चिल्लाते तुम भागे। तबसे गुरुदेव इस पर विचार कर रहे थे कि अचानक विजय का यह सन्देश पहुँचा और गुरुदेव ने मुझे यहां भेजा है।

महेन्द्र—गुरुदेव ने आपको भेजा है?

अशोक—हां, गुरुदेव ने।

महेन्द्र—यह भी उनकी चाल है पिताजी! मैं उनके घपले में नहीं आ सकता, नहीं आ सकता।

अशोक—उत्तेजित मत हो बेटे! सत्य की सबसे पुरानी और बड़ी शत्रु है पूर्वधारणा। पिछली धारणाओं और मान्यताओं को छोड़ कर ही हम सत्य तक पहुँच सकते हैं। तनिक इस पर विचार करो, गहरे उतर कर विचार करो। फिर कहता हूँ बेटे, एक नया युग प्रारम्भ हुआ है, एक नया इतिहास लिखा जा रहा है। उस इतिहास में अपने महेन्द्र का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा देखूं, मेरी यही आकांक्षा है और मेरी आशा है, मेरा बेटा इस आकांक्षा की पूर्ति करके मेरे हृदय को आह्लादित और पुलकित करेगा।

महेन्द्र—पिताजी!

अशोक—विजय हमने कलिंग में भी प्राप्त की थी, किन्तु यह सिंहल-विजय इतिहास में अपूर्व होने जा रहा है, मेरे बेटे! विचार करो, सोचो और विजय के लिए प्रस्थान करो—तुम्हारा पथ सदा मंगल-मय होगा!

७

[कुणाल का कक्ष। महेन्द्र और कुणाल में बातें हो रही हैं]

महेन्द्र—मैं सिंहल-विजय को जा रहा हूँ, कुणाल!

कुणाल—सिंहल-विजय को?

महेन्द्र—हाँ, पिताजी मुझे भेज रहे हैं!

कुणाल—तो क्या धर्म का, संघ का भूत उतर गया? अच्छा हुआ भैया, अच्छा हुआ! घंटे-घड़ियाल के नीचे मेरी वीणा का स्वर ढँका जा रहा था।

महेन्द्र—जो आ जाता है, वह जल्द जाता नही है कुणाल! फिर यह कोई साधारण वस्तु तो है नही, यह एक ज्वार है, ज्वार! ऐसा ज्वार जो किसी चन्द्रमा पर निर्भर नही, जो किसी तिथि से बँधा नही। शताब्दियो, सहस्राब्दियो के वाद ऐसा ज्वार आता है और जव आता है तो किसी गजराज की क्या वात, गिरि-राज का सिर भी उन्नत नही रहने देता! वह सारे ससार पर छा जाता है। नदी, नाले, खड्ड, खाई, टीले-टेकडी, कछार और घाटी सबको एक कर देता है। तुम देख नही रहे कुणाल?

कुणाल—इतना वडा सत्य और न देखूँ! लेकिन सोचता था, भैया एक ऐसा वज्र-शिखर हैं जिसपर टकराकर यह ज्वार अपनी व्यर्थता का अनुभव कर लेगा।

महेन्द्र—मैं भी ऐसा ही समझता था, सोचता था। मैंने उसकी तरगो से युद्ध भी कम नही किया। किंतु देख रहा हूँ कुणाल, तरगो से लडते हुए डूब मरने में जीवन की सार्थकता नही, भले ही इति-हास में उसका उल्लेख हो। जव ज्वार आता है, तो उसकी तरगो पर चढकर, उसके सदेश को दूर-दूर तक ले जाने में, पहुँचाने में ही विश्व का अधिक कल्याण है कुणाल!

कुणाल—तो आप सिंहल में उस ज्वार का सदेश लिये जा रहे हैं—और उसीको कहते हैं सिंहल-विजय!

महेन्द्र—हाँ, कुणाल! यह भी विजय है। जव युग वदलता है, भाषा भी वदलती है, पुरानी भाषा का अर्थ भी वदलता है। नये युग की विजय का, नई विजय का, अर्थ भी नया होगा। भाषा को वदलने में महेन्द्र का भी नाम रहे—इसलिए यह विजय-यात्रा! मैं एक नया प्रयोग करने जा रहा हूँ, कुणाल। हाँ, नया प्रयोग—विलकुल नया प्रयोग! और मुझे लगता है, यदि यह प्रयोग सफल हुआ, तो ससार के इतिहास में एक स्वर्ण-युग का सुप्रभात होगा।

कुणाल—स्वर्ण-युग का सुप्रभात। वह तो कभी न कभी होकर रहेगा भैया! मेरी कला भी यही कहती है। किंतु मुझे लगता है, उस सुप्रभात के लाने में शायद कितने ही अमूल्य प्राणो की वलि देनी पडे और कितनी ही शताब्दियाँ

महेन्द्र—सहस्राब्दियाँ कहो, कुणाल! असीम काल में शता-ब्दियो और सहस्राब्दियो की क्या गणना है? और जितना लम्बा प्रयोग होगा, उतनी ही गहराई का सत्य प्रकाश में आयगा।

कुणाल—भैया, कलिंग-विजय के अवसर पर आपने मुझे आमंत्रित किया था, क्या सिंहल-विजय—

महेन्द्र—नहीं, नहीं, कुणाल! तुम्हें यहीं रहना है। मित्रा भी मेरे साथ जा रही है न!

कुणाल—(चौंककर) क्या? मित्रा! मित्रा भी जा रही है? मित्रा सिंहल जा रही है!

महेन्द्र—हाँ, मित्रा भी जा रही है संघमित्रा बनकर। वह जल-पथ से जा रही है और मैं थल-पथ से। तुम तो जानते ही हो, पहाड़ो को रौंदने, अरण्यो को चीरकर आगे बढने में मुझे सदा आनंद प्राप्त होता रहा है। विन्ध्या की चोटियाँ, किष्किन्धा की तलेटियाँ—इन्हें रौंदते आगे बढो, हाँ, राम भी तो थल-पथ से ही गये थे! और रास्ते में विदिशा में जाकर माताजी के चरणो का दर्शन भी कर लेने का विचार है!

कुणाल—माताजी! उफ, भाई जा रहे हैं, बहिन जा रही है। अकेला मैं यहाँ! भैया, माताजी से कहियेगा कि वह राजधानी लौटें! मुझ पर कृपा करें!

महेन्द्र—भूल करते हो कुणाल, भूल करते हो। अभी पाटलिपुत्र में जो प्रयोग चल रहा है, अच्छा है, माताजी उससे दूर ही रहे। तुम माता का हृदय नही जानते। सोचो, आज यहाँ माताजी होती! और अभी क्या हुआ है? मैं देख रहा हूँ, अभी बहुत कुछ होना शेष है। देखना, सम्हल कर रहना मेरे छोटे भाई!

कुणाल—(करुण स्वर में) भैया!

महेन्द्र—तुम्हारी कला पीडित मानवता को शान्ति का संदेश दे, यही आशीर्वाद दिये जा रहा हूँ, कुणाल!

८

[विन्ध्या की घाटी · चट्टानो पर चढ़ते-चढते भिक्षुओ की मंडली थक जाती है—महेन्द्र से उनकी बातें होती हैं]

पहला भिक्षु—कुमार, कुमार! हम लौट चले। न जाने अभी सिंहल कहाँ है? हम थक गये कुमार!

महेन्द्र—थक गये? हम थक गये है? कही विजय के लिए प्रस्थान की हुई सेना भी थकती है?—थकती है? रुकती है? लौटती है?

दूसरा भिक्षु—नही कुमार, नही! आगे बढने की हममें न शक्ति रह गई है, न साहस। हमें

महेन्द्र—(उत्तेजना में) न शक्ति, न साहस! यह क्या बोल रहे, हो भिक्षुओ? न शक्ति, न साहस! छि छि क्या तुम्हारी धमनियो मे बहनेवाली रक्त-धारा सूख गई? क्या तुम्हारी छाती में स्फुरण पैदा करने वाली धडकनें रुक गई? न शक्ति, न साहस! तब तुम इस विजय-अभियान में सम्मिलित ही क्यो हुए थे? क्या विजय के मार्ग को तुमने फूलो का मार्ग समझ लिया था? फूलो का मार्ग—तब तुम पाटलिपुत्र के विहारो मे रहकर क्यो नही आनद मनाते रहे, मत्र बुदबुदाते रहे? तुम भिक्षु नही, निकम्मे हो, भगोडे हो, जो ससार से भागकर विहारो में विहार करने चले थे!

पहला भिक्षु—आप भिक्षुओ का अपमान कर रहे है, कुमार!

महेन्द्र—भिक्षुओ का अपमान मै नही कर रहा हूँ, बल्कि वे भिक्षु कर रहे हैं जो लक्ष्य की ओर पग उठाकर, अब विघ्न-बाधाओ को देख, पीछे मुडना चाहते हैं। सत्य-पथ पर चलने वाले कायर नही होते। जो लक्ष्य-पथ के मध्य में मुडकर देखें, वे कायर हैं, पातकी हैं, नारकी है! ऐसे लोग न गृहस्थ है, न भिक्षु—दोनोके लिए कलक हैं! कलक! कलक

दूसरा भिक्षु—कुमार, वीरता की भी सीमा होती है!

महेन्द्र—होती है, भिक्षुओ, होती है! वीरता की सीमा होती है बलिदान! वीर या तो लक्ष्य पर पहुँचते है, या बलि हो जाते हैं। हम चल चुके है, या तो सिहल पहुँचेगे या रास्ते में मर मिटेंगे। सिहल, सिहल! ओह! भिक्षुओ, क्या तुम सुन नही रहे—सिहल तुम्हे पुकार रहा है! भिक्षुओ, क्या तुम देख नही रहे—सिहल तुम्हे बुला रहा है! (एक चट्टान पर चढकर) अरे, सुनो, वह सिहल तुम्हे पुकार रहा है। देखो, वह समुद्र लहरा रहा है! वह देखो लका के स्वर्ण-सौध चमक रहे है! वे तुम्हे पुकार रहे हैं, भिक्षुओ! भिक्षुओ, तुमने यह क्या कह दिया कि हम थक गये हैं? थकावट! जब तक हमारे कान हमारे पद-चाप गिनने और नेत्र रास्ते की ऊँचाई-नीचाई निहारते रहेगे, तब तक थकावट आयगी ही, अवसाद

आयगा ही! अरे, हम लक्ष्य की पुकार सुनें, हम लक्ष्य का संकेत देखें! फिर कहाँ थकावट? फिर कहाँ अवसाद? बढो भिक्षुओ, बढो—

पहला भिक्षु—(उत्साह में) हम बढेंगे कुमार, हम बढेंगे।

दूसरा भिक्षु—(पश्चात्ताप में) हम धोखे मे थे, कुमार, धोखे मे। अहा, हम सुन रहे हैं—लका हमें पुकार रही है। अहा, हम देख रहे हैं, लका के स्वर्ण-सौध हमें इगित से बुला रहे हैं।

महेन्द्र—हमारे लिए यह अभूतपूर्व अवसर आया है भिक्षुओ। लका राम भी गये थे—वानरी सेना लेकर, उसे जलाने के लिए, उसका सहार करने के लिए! दूसरी बार हम जा रहे हैं, मानवी सेना के साथ, लका में से रही-सही राक्षसता दूर करने के लिए, उसे शाति-धर्म की शिक्षा देने के लिए। विजय राम की भी हुई, किंतु हमारी यह विजय इतिहास में एक नया अध्याय लिखने जा रही है, भिक्षुओ!

सभी भिक्षु—हम बढें! हम बढ़ते चलें! बढते चलें! बढते चलें! बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय!

दूसरा भिक्षु—अरे, तीर लगे है उसे। किस तरह रक्त की बूँदे पथ पर लकीर बनाती जा रही है! आह!

महेन्द्र—ओहोहो! इसकी रक्षा करो, भिक्षुओ।

(सहसा सिंहल-नरेश तिष्य का प्रवेश)

महाराज तिष्य—आप लोग? आप लोग कौन है? यह मेरा आखेट

महेन्द्र—मेरा आखेट! तुम्हारा आखेट! आखेट, आखेट! आदमी कब तक आखेट करता रहेगा? कब तक? बोलो महाराज! कब तक?

महाराज तिष्य—महाराज! ओहो! आपने यह सम्बोधन कैसे किया?

महेन्द्र—आदमी अब तक यही करता आया था, महाराज तिष्य! निरीह प्राणियो के प्राण लेने मे, निर्बलो को सताने में ही उसने अपनी वीरता की पराकाष्ठा समझी थी। किंतु एक नया सदेश ससार पर छाता जा रहा है

महाराज तिष्य—नया सदेश? क्या आप पाटलिपुत्र से आ रहे है? सम्राट् अशोक

पहला भिक्षु—आपके सामने सम्राट् अशोक के सुपुत्र कुमार महेन्द्र खडे है!

महाराज तिष्य—कुमार महेन्द्र! और! यह काषाय वस्त्र?

महेन्द्र—सारा भारत ही काषाय वस्त्र से तप रहा है, महाराज! राजभवन से झोपडी तक को यह काषाय वस्त्र प्रभासित कर रहा है, महाराज तिष्य!

महाराज तिष्य—कैसे आये आपलोग यहाँ तक! हम तो प्रतीक्षा में ही थे।

महेन्द्र—आप ही बतायें, हम कैसे आये?

महाराज तिष्य—मेरे प्रश्न का अभिप्राय है, थल-मार्ग से या जल-मार्ग से?

महेन्द्र—क्या मार्ग सिर्फ ये दो ही है? सिंहलनरेश, धर्म का मार्ग इन दोनो से भिन्न भी हो सकता है!

महाराज तिष्य—अब मुझे विश्वास हुआ। मेरा अभिवादन स्वीकार करें और हमारी राजधानी में पधार कर सिंहलवासियों को कृतकृत्य करें।

पहला भिक्षु—महाराज, कुमारी संघमित्रा जल-पथ से पधार रही हैं! वह अपने साथ बोधिवृक्ष की एक शाखा उपहार के लिए ला रही हैं—भारत ने यही उपहार सिंहल के लिए भेजना उचित समझा है।

महाराज तिष्य—अहा, आज सिंहल के भाग्य खुले! बोधिवृक्ष की शाखा! या सत्य की विजय-पताका! यह पताका सिंहल पर युग-युग तक फहराती-लहराती रहे!

१०

[बोधिवृक्ष के नीचे महेन्द्र और संघमित्रा—संध्या समय—घंटा-घड़ियाल आदि के शब्द—धीरे-धीरे शान्ति]

महेन्द्र—पांच वर्ष हो गये हमें आये हुए मित्रे!

संघमित्रा—हां, भैया, पांच वर्ष!

महेन्द्र—तुम से 'भैया' नहीं छूटा! ह ह ह, अच्छा हुआ कि संघ ने तुम्हें इसके लिए आज्ञा दे दी है!

संघमित्रा—भैया, सात समुद्र पार इस देश में हृदय थोड़ा अपनापा खोजता ही है। हां, पांच वर्ष हो गये हमें यहां आये!

महेन्द्र—और, इन पांच वर्षों में ही कैसी कायापलट हो गई है इस सिंहल की! विजय, यथार्थ विजय यही है, संघमित्रे! विजय, जिसमें एक बूंद रक्त नहीं बहाया जाय। विजय, जिसमें पराजय का कहीं नाम भी नहीं हो! विजय, जहां विजेता और विजित में अन्तर नहीं रह जाय! कहां कलिंग-विजय! कहां यह सिंहल-विजय!

संघमित्रा—कलिंग में तो हम जीते नहीं, हारे थे भैया, हमारी यथार्थ विजय तो हुई है इस सिंहल में। विजय, जिसमें विजित के

हृदय में विजेता के प्रति घृणा न हो, विजय, जिसमें विजेता की आकाक्षा हो अधिक से अधिक सेवा करना और जिसमें विजित की आकाक्षा हो विजेता को अपने हृदयासन पर बिठाये रखना! सचमुच, यही विजय यथार्थ विजय है भैया!

महेन्द्र—यह अन्तिम बात तुमने पते की कही मित्रे! देखो न, ये हमें अपने देश को वापस भी नही जाने देते! जब-जब मैंने चर्चा चलाई कि अब हम भारत लौटेंगे इन्होने कैसी उदासी प्रकट की और हमें स्नेहाभिभूत कर के रोक ही दिया!

सघमित्रा—भैया, यदि मुझे ये भगाना भी चाहे, तब भी मैं लका नही छोड सकती। मेरा मन तो इस भूमि में रम गया है! भूमि कितनी सुन्दर, लोग कितने सरल! किसने इन्हें राक्षस कहा ?

महेन्द्र—जिन्होने राक्षस कहा, उनकी सीता यहाँ बन्दिनी बनी! हमने इन्हे मानवता का सदेश दिया, हमारी सघमित्रा यहाँ की पूजनीया देवी बन गई है!

(महाराज तिष्य का आगमन)

महाराज तिष्य—हाँ, हाँ, देवी सघमित्रा हमारी पूजनीया देवी हैं और कुमार महेन्द्र हमारे आदरणीय देवता। हमने अपनी इस देवी और इस देवता के लिए—जब तक वे हमलोगो की तरह चलते-फिरते हैं—अपने हृदय में सिंहासन बना रखा है! और, जब वे इहलीला समाप्त करेंगे, तब के लिए देखिये कुमार, वहाँ, उस सुन्दर प्रदेश में हमने 'ऋषि-भूमि-अगन' सजा कर रखा है! उनकी समाधि के फूल भी युग-युग तक हमारे लिए उतने ही वदनीय, पूजनीय होगें!

[पटाक्षेप]

शकुन्तला

[रेडियो रूपान्तर]

१

[रथ की घरघर, घोडे की टाप और हिरन की चौकडी के शब्द]

दुष्यन्त—उफ, यह हिरन कितनी दूर तक हमें खीच लाया, सारथि! अरे—देखो, देखो, कितना सुन्दर! गर्दन को मोडकर यह बार-बार हमारे रथ को देखता है, तीर लग जाने के भय से शरीर के पिछले भाग को जैसे अगले भाग में घुमा लेना चाहता है, थकावट के कारण उसका मुँह खुल जाने से आधी-आधी चबाई घासो से रास्ता भर रहा है और, और, ऊँची-ऊँची छलांग भरता हुआ यह उडता-सा ही दीखता है। (साश्चर्य) ओहो! अब तो यह मुश्किल से दिखाई पडता है, सारथि!

सारथी—जमीन ऊँची-नीची है, इसलिए रास खीचकर रथ की गति धीमी कर दी थी, महाराज! अब समथर भूमि आई है, हिरन जायगा कहाँ?

दुष्यन्त—तो रास ढीली कर दो।

सारथी—जैसी आज्ञा, महाराज! (रथ में तीव्र गति) अहा, देखिये, देखिये, महाराज,—रास ढीली करते ही ये घोडे ऐसे भगे कि इनके सूमो से उठी धूल भी इन्हें नही पकड पाती, चाल ऐसी सम है कि सिर की कलँगी तक नही हिलती-डुलती, अहा, अपने दोनो कानो को उठाये-लटाये ये इस तरह जा रहे हैं कि समझ में नही आता कि ये दौड रहे हैं या तैर रहे है!

दुष्यन्त—(सानन्द) ओहो, हमारे घोडो ने हिरन को भी मात दे दी—जो पहले सूक्ष्म दीखती थी, वह अचानक स्थूल हो रही है,

जो बीच से कटी-सी मालूम होती थी, वह जुड-सी रही है, जो स्वभावत ही टेढी थी, वह सीधी दीखने लगी है, रथ की गति ऐसी क्षिप्र है कि इसका निर्णय कठिन हो रहा है कि कौन-सी चीज नजदीक और कौन-सी चीज दूर है।

सारथी—देखिये, वह सामने हिरन है—निशाना लगाइये।

दुष्यन्त—अभी-अभी

(दूर से एक तपस्वी के शब्द)

तपस्वी—रुको! रुको महाराज! यह आश्रम का मृग है—इसे मत मारो, मत मारो!

सारथी—महाराज, आपके वाण और मृग के बीच म आश्रम के दो तपस्वी खडे हैं।

दुष्यन्त—(ससम्भ्रम) रास खीचो, रथ खडा करो!

सारथी—जैसी आज्ञा महाराज!

(एक तपस्वी अपने शिष्य के साथ)

तपस्वी—महाराज, यह आश्रम का मृग है, इसे मत मारिये, मत मारिये! कहाँ वज्र के समान आपके तीखे वाण और कहाँ हिरन के चचल प्राण! रूई के गोदाम में आग फेंकना और इन हिरनो के कोमल शरीर पर वाण मारना—दोनो एक हैं महाराज! आप ऐसे प्रतापी राजा के वाण आर्त्तों की रक्षा के लिए होने चाहिए न कि निरपराधो की हत्या के लिए! धनुष से वाण उतारिये, महाराज!

दुष्यन्त—प्रणाम तपस्विवर! आपकी आज्ञा सिर-आँखो पर!

तपस्वी—पुरुवश की मर्यादा के अनुरूप ही आपकी यह नीति है महाराज! भगवान आपको चक्रवर्ती पुत्र दें!

तपस्वी का शिष्य—हाँ, आपको चक्रवर्ती पुत्र ही प्राप्त हो।

दुष्यन्त—ब्राह्मण का आशीर्वाद सिर झुकाकर ग्रहण करता हूँ।

तपस्वी—महाराज, हमलोग यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने के लिए समिधा लेने जा रहे हैं। यह देखिये, मालिनी के तट पर हमारे कुलपति महर्षि का आश्रम दिखाई पड रहा है। यदि कोई हर्ज न हो, तो वहाँ जाकर आतिथ्य ग्रहण करे और देखें कि वाणो के घर्षण मे आपकी जिन भुजाओ में घिस्से पड गये हैं, वे ऋषियो की तपश्चर्या को किस प्रकार निर्विघ्न सम्पन्न करा रही हैं।

दुष्यन्त—क्या वहीं कुलपति हैं?

तपस्वी—अभी-अभी अतिथि-सत्कार का भार अपनी कन्या शकुन्तला को सौंपकर वह उसके भाग्य की बुरी रेखा को मिटाने के लिए सोमतीर्थ गये हैं।

दुष्यन्त—अच्छा, तो मैं जा रहा हूँ, वह मेरी भक्ति देखकर ऋषि से निवेदन कर देगी, ऐसी आशा है।

तपस्वी—हमलोग भी चलते हैं, महाराज! जय हो! जय हो!

दुष्यन्त—सारथी, रथ को बढ़ाओ!

सारथी—जैसी आज्ञा!

दुष्यन्त—अहा, बिना कहे ही यह ज्ञात हो जाता है कि हम तपोवन में आ गये हैं, सारथि! खोते में बैठे हुए सुग्गो के बच्चों के मुँह से गिरी धान की बालियाँ पेड़ो के नीचे बिखरी पड़ी हैं, इंगुदी की फलियाँ तोड़ने से चिकने बने पत्थर के टुकड़े जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ते हैं, हिरनो में इतना विश्वास है कि वे हमारे रथ के घर्रघर्र शब्द सुनकर भी चौंकते नहीं हैं और नदी-तट के मार्ग पर वल्कल से चूए जल से रेखाएँ-सी खिंच गई हैं!

सारथी—हाँ, महाराज!

दुष्यन्त—और भी देखो—हवा से चचल बनी लहरियों से तट-भूमि के वृक्षों की जड़ें धुली-पुँछी हैं; यज्ञाग्नि के धूएँ से किसलय की लालिमा और ही रंग की हो गई है और जिनसे कुश के अंकुर उखाड़ लिये गये हैं, ऐसी उपवनभूमि में हिरन के बच्चे किस तरह निश्शक होकर धीरे-धीरे चर रहे हैं!

सारथी—बहुत ही सही कह रहे हैं, महाराज!

दुष्यन्त—सारथि, अब रथ रोक दो और लो यह मेरे धनुषबाण और राजकीय वस्त्राभूषण! आश्रम में विनीत भाव से ही प्रवेश करना चाहिए न?

सारथी—हाँ, हाँ, महाराज!

दुष्यन्त—और जबतक मैं आश्रमवासियों के दर्शन करके लौटूँ तब तक तुम घोड़ो को भी ठंडा कर लो।

सारथी—जैसी आज्ञा महाराज की।

(आश्रम में प्रवेश)

दुष्यन्त—यह आश्रम है! अरे, यह क्या? इस शान्त तपोवन

में दाहिनी भुजा क्यों फड़क उठी? यहाँ इसकी सार्थकता? या होन-हार के लिए हर जगह दरवाजा खुला रहता है।

दूर से शब्द—इधर, इधर आओ, सखियो!

दुष्यन्त—ओहो, यह कैसी आवाज! यह तो दाहिने ओर की वृक्षों की झुरमुट से आ रही है। तो उधर ही चला जाय। (बहुत दूर बढ़कर) ये तो ऋषिकन्यायें हैं। किस तरह अपने प्रमाण के अनुरूप छोटे-बड़े घड़े लिए पौदों को सींचने के लिए आ रही हैं! कितनी सुन्दर लग रही हैं ये! जो रूप महलों में भी दुर्लभ है, उसकी आश्रम में ऐसी बहुलता! अहा, वन-लताओं ने उद्यान-लताओं को भी परास्त कर दिया। खैर, इस छाया-तले खड़ा होकर जरा चुपके-चुपके उन्हें देखूँ तो!

(सखियों सहित शकुन्तला का प्रवेश)

एक सखी—अरी शकुन्तले! मालूम होता है तात कण्व को तुमसे अधिक प्रिय हैं ये आश्रम-वृक्ष! तभी तो नवमल्लिका की कोमल कुसुम-कलिका-सी सुकुमार तुमपर इन्हें सींचने का भार सौंपा है उन्होंने।

शकुन्तला—बहन अनुसूये, केवल पिता की आज्ञा ही नहीं है, मेरा भी तो इनपर सहोदर जैसा स्नेह है!

दूसरी सखी—सखी शकुन्तले, ग्रीष्मकाल में फूल देनेवाले आश्रम-वृक्षों को तो तुम सींच चुकी, अब हम उन वृक्षों को सींचें जिनका फूल देने का समय बीत चुका। निष्काम कर्म महान् फलदायक समझा जाता है न?

शकुन्तला—प्यारी प्रियम्वदे, तुम्हारी राय बड़ी ही रमणीय है!

दुष्यन्त—क्या यही कण्व-तनया शकुन्तला है? तो भगवान कण्व, क्षमा करें, आप में दूरदर्शिता का नितान्त अभाव है। ऐसी कन्या और उसे आश्रम-कर्म में नियुक्त कर रखा है आपने? ऐसे स्वाभाविक मनोहारी शरीर से जो तपस्या की साधना की इच्छा रखता है, वह मानो नील कमल के पत्ते की धार से शाल का पेड़ काटना चाहता है! जो हो, मैं इस पेड़ की आड़ से इस रूप का रसपान करूँ! (छिप-कर खड़ा होता है)

शकुन्तला—बहन अनुसूये, उफ, प्रियम्वदा ने वल्कल को किस तरह कसकर बाँध दिया है, मुझे कष्ट हो रहा है, जरा इसे ढीला तो कर दे सखि!

प्रियम्वदा—(हँसती हुई) अरी, मुझे क्यो दोष दे रही है, दोष दे अपनी जवानी को जो क्षण-क्षण तुम्हारे वक्षस्थल को विशाल और विस्तृत बनाये जा रही है।

दुष्यन्त—(कुज से) ठीक ही कह रही है यह प्रियम्वदा। अहा, कांधे पर बंधी हुई महीन गांठवाले और दोनो स्तनो को बिल्कुल ढक रखनेवाले इस वल्कल से उसकी नई जवानी अपनी पूरी शोभा उस प्रकार नही दिखा पाती है जैसे पीले पत्तो के दोनो में रखे हुए फूलो की एक झलक मात्र ही हमें प्राप्त होती है। लेकिन क्या ऐसा कहना भी उचित है? सेवार से घिरी हुई कमलिनी और भी सुन्दर लगती है और दागो से भरे चन्द्रमा की मलिन चांदनी और भी खिलती है। यो ही इस वल्कल में भी यह तन्वी मनोरम ही लगती है—भला, सौन्दर्य के लिए शृ गार क्या चीज? और, एक बात और भी—इस मृगनयनी के लिए निस्सदेह यह वल्कल कठोर है, तो भी यह सुन्दर ही लगता और मन में जरा भी रुचि-भग नही लाता है, जैसे विकसित कमलिनी जब जल से ऊपर सिर उठाती है तो उसके कर्कश वृ तजाल उसकी शोभा में और भी वृद्धि कर देते है।

शकुन्तला—सखियो, यह आम का पेड हवा से हिलती हुई अपनी पत्तियो की उँगलियो से, जैसे कुछ कहने को, हमें बुला रहा है! चलो, जरा उसका मान रख दें। (जाती है)

प्रियम्वदा—यहां आई, तो थोडी देर यहां खडी रहो सखि! देखती नही, तुम्हारे निकट रहने से यह आम का वृक्ष इस तरह सनाथ हो रहा है जैसा कि उसने लता ही पा ली हो।

दुष्यन्त—(कुज से) प्रियम्वदा सच कह रही है। इस बाला के लाल-लाल अधर किसलय है, दोनो बाहुएँ शाखाएँ है और फूल के समान प्रलोभक यौवन इसके अग-अग में खिला पडता है।

अनुसूया—प्यारी शकुन्तले, क्या तुम भूल गई कि इस आमवृक्ष की वधू यह नवमल्लिका है, जिसने स्वय इसे वरा है और जिसे तुमने वन-तोषिणी अभिधा दे रखी है।

शकुन्तला—यदि इसे भूलूँ, तो अपने को भूल जाऊँ सखि! अहा, इन दोनो के सम्मिलन का शुभ मुहूर्त्त जैसे निकट आ गया है। नवमल्लिका नई कलियो से लद-सी गई है और आम वृक्ष फलो के बोझ से विह्वल-सा बन रहा है।

प्रियम्वदा—शकुन्तला को यह वन-तोषिणी क्यों पसंद है, जानती हो सखि अनुसूये!

अनुसूया—क्यों? जरा सुनाओ तो।

प्रियम्वदा—इसलिए कि जिस तरह इसे अनुरूप वृक्ष मिला, उसी तरह मुझे भी अनुरूप वर मिले!

शकुन्तला—यह तुम्हारे अपने मन की बात है, प्रियम्वदे!

अनुसूया—ओहो, इस नोकझोक में इस माधवी-लता को तुम भूली जा रही हो शकुन्तले!

शकुन्तला—जिसे पिताजी ने मेरे साथ ही सींच-सींचकर बड़ा किया है, उसे, और भूल जाऊँ? (साश्चर्य) किन्तु सखि, अरे, यह क्या? असमय में ही नीचे से ऊपर तक क्यों फूलों से लद गई है यह माधवी-लता?

प्रियम्वदा—क्योंकि तुम्हारा ब्याह शीघ्र होनेवाला है। ओहो, मुहँ क्यों बना रही है? तात कण्व ने ही तो एक बार ऐसा कहा था!

दुष्यन्त—(कुंज से) क्या यह ऋषि कण्व की किसी दूसरे वर्ण से उत्पन्न हुई कन्या है? मुझे ऐसा लगता है कि यह क्षत्रियों के ग्रहण करने योग्य है—नहीं तो मेरा मन इसकी ओर क्यों आकृष्ट होता? जहाँ संशय का विषय हो, वहाँ अन्तःकरण की स्वतः प्रवृत्तियों को ही प्रमाण बनाना चाहिए न।

(अचानक शकुन्तला चिल्ला उठती है)

शकुन्तला—सखियो, इस दुष्ट भौंरे से मुझे बचाओ!

अनुसूया—क्या हुआ, क्या हुआ शकुन्तले!

शकुन्तला—नवमल्लिका के थाले में पानी पड़ते ही यह भौंरा भन्न-भन्न करता उड़ा और अब मेरे चेहरे पर चक्कर काट रहा है।

दुष्यन्त—(कुंज से) अहा! भौंरे से अपने-को बचाने में यह कैसी सुन्दर लग रही है। जिस-जिस ओर भौंरा जा रहा है, उस-उस ओर अपने सुन्दर नेत्रों को घुमाती हुई मानो भय के बीच भी यह सुन्दरी अपनी भवों को कमान-लीला सिखा रही है! और, ओ मधुकर! कमाल, कमाल! बार-बार हाथों से हटाये जाने पर भी तू उसके चंचल नेत्रों को चूम ही लेता है, उसके कानों के निकट पहुँचकर अपनी प्रेम-कथा कह ही आता है और, अरे, उसके रति-सर्वस्व अधरों का

रसपान करने मे भी तू नही चूकता। मै यहां उवेड़बुन मे ही रहा और उधर तूने वाजी मार ली।

शकुन्तला—वचाओ सखियो, वचाओ।

दुष्यन्त—(कुज से) अहा, अव कहाँ भ्रमर-निवारण? यहाँ तो अव विना साज के ही नृत्य प्रारम्भ हो गया है जैसे। हाँ, हां, सारी वातें नृत्य की-सी ही तो हो रही हैं। अपनी भवे आडी-तिरछी करती यह अपनी चचल नजरे इधर-उधर डाल रही है, शरीर का मध्य भाग कुछ टेढा होकर रह-रह कर तरगायमान वन जाता है, पल्लवो की तरह कोमल-चिकनी हथेलियो और उँगलियो को रह-रहकर झटकार देती है और जव-जव भय से सी-सी कर उठती है तो मालूम होता है आलाप के लिए अभी-अभी उनके अधर खुल रहे है।

शकुन्तला—सखियो, सखियां। यह दुष्ट भौरा नही मान रहा। मै जहाँ भागती हूँ, यह पिड नही छोड रहा। वचाओ, वचाओ।

प्रियम्वदा—हम कौन होती है तुम्हे वचानेवाली। राजा दुष्यन्त को क्यो नही पुकारती जिनके ऊपर इस सारी तपोभूमि की रक्षा का भार है।

दुष्यन्त—मेरे प्रकट होने का यही सुअवसर है। (प्रकट होता है) जव तक इस पृथ्वी पर दुष्टो का शासन करने वाले पुरुवशी राजाओ का राज्य है, तव तक कौन दुष्ट इन भोलीभाली ऋषि-कन्याओ के साथ अविनय का व्यवहार करनेवाला होता है।

अनुसूया—कोई वडी वात नही हुई है आर्य। यह मेरी प्रिय सखी एक दुष्ट भौंरे से तग किये जाने के कारण घवरा गई थी।

दुष्यन्त—(शकुन्तला से) क्यो देवि, आपकी तपस्या में कोई विघ्न तो नहीं हो रहा?

अनुसूया—मेरी सखी कुछ सकोच-शीला है, आर्य। जव आपके ऐसे अतिथि पहुँच गये, तो फिर विघ्न कहाँ?

प्रियम्वदा—स्वागत आर्य, स्वागत। (शकुन्तला से) अरी शकुन्तले, क्या सिर नीचा किये खडी है, जा कुटिया मे फल-मूल तो ले आ, हाथ-मुँह धोने के लिए यह घडे का जल तो है ही।

दुष्यन्त—आप लोगो की मीठी वातो से ही मेरा पूरा सत्कार हो गया।

अनुसूया—कम-से-कम इस सप्तपर्णी वेदिका की शीतल छाया में थोडी देर विश्राम तो कर लीजिए!

दुष्यन्त—आप भी तो थकी-सी मालूम होती हैं—आइए, आपलोग भी थोड़ी देर बैठ लीजिए।

प्रियम्वदा—सखि शकुन्तले! चलो हम भी बैठें, अतिथि का आग्रह कैसे टाला जायगा!

(सब वेदिका पर बैठते हैं)

दुष्यन्त—अहा, कितना रमणीय लगता है आप लोगो का यह समान वय और रूप! और, फिर आप लोगो की मित्रता भी तो वैसी ही लगती है!

अनुसूया—आर्य, आपके मधुर भाषण से उत्पन्न ढिठाई आपसे कुछ पूछने को विवश कर रही है। क्या आप बता सकेंगे, आप किस राजवश को अलकृत करते है? किस देश को विरहोत्कठित करके यहाँ पधारे है? और किस कारण से अपने सुकुमार शरीर को आपने तपोवन आने के घोर परिश्रम मे डाला है?

दुष्यन्त—यदि आग्रह है, तो सुनिये—मै एक वेदज्ञ पडित और राजा के दरबार का धर्माधिकारी हूँ। पवित्र आश्रमो को देखने के प्रसग मे इस तपोवन मे आ गया हूँ।

अनुसूया—आपके आने से हम तपस्वी कृतार्थ हुए।

प्रियम्वदा—(धीरे से) सखि शकुन्तले! यदि आज तात कण्व यहाँ होते!

शकुन्तला—तो क्या होता?

प्रियम्वदा—तो अपने जीवन का सर्वस्व इस विशेष अतिथि को समर्पण कर कृतार्थ कर देते।

शकुन्तला—(अनखा कर) फिर तू शैतानी कर रही है प्रियम्वदे! जाओ, मै तुम्हारी बाते नही सुनती।

दुष्यन्त—क्या मै आपकी इस सखी के बारे मे कुछ पूछ सकता हूँ?

अनुसूया—अनुग्रह मे भी अभ्यर्थना?

दुष्यन्त—पूज्य महर्षि कण्व तो आजन्म ब्रह्मचारी है। फिर यह उनकी पुत्री

अनुसूया—राजर्षि कौशिक का नाम तो आपने सुना होगा।

दुष्यन्त—भगवान कौशिक को कौन नही जानता?

अनुसूया—मेरी सखी के पिता वही है। जब यह त्याग दी गई, तो तात कण्व ने इसे पिता की तरह पाला-पोसा।

दुष्यन्त—त्याग दी गई?

अनुसूया—हां, आर्य! बहुत दिन हुए राजर्षि कौशिक उग्र तपस्या कर रहे थे कि देवताओं को भय हुआ और उन्होंने उनकी तपस्या भंग करने को मेनका नाम की अप्सरा भेजी।

दुष्यन्त—दूसरों की तपस्या देखकर देवताओं को भय होता ही है। फिर क्या हुआ?

अनुसूया—वसंत का आगमन था। सुहावना समय, एकान्त, मेनका का उन्मादक रूप

दुष्यन्त—अब कहने की आवश्यकता नहीं। तो आपकी सखी अप्सरा से उत्पन्न हुई हैं।

अनुसूया—हां, महाराज!

दुष्यन्त—मैं भी यही सोच रहा था, मनुष्य जाति की स्त्री से ऐसे रूप की उत्पत्ति हो नहीं सकती। भला कहिये, बिजली की तरल ज्योति क्या पृथ्वी से निकल सकती है? और

प्रियम्वदा—आर्य, मालूम होता है आप कुछ और कहना चाहते थे?

दुष्यन्त—आपका अनुमान बिल्कुल ठीक है।

प्रियम्वदा—तो अधिक सोच-विचार करने की क्या आवश्यता? तपस्वियों से पूछने के लिए कोई विशेष नियम नहीं होता।

दुष्यन्त—तो सुनिये—आपकी सखी कामदेव की गति रोकने-वाले तपस्वियों का यह वेश विवाह के पहले तक ही रखेंगी या समाननेत्री होने के कारण हिरनों के साथ ही अपना सारा जीवन इसी तरह व्यतीत करेंगी?

प्रियम्वदा—अभी मेरी सखी धर्मानुष्ठान में लगी है। लेकिन, पिताजी का विचार इसे किसी अनुरूप वर को सौंप देने का है।

शकुन्तला—बहन अनुसूये, मैं चली। जाती हूं और ये सारी उटपटांग बातें माता गौतमी से कहकर रहूंगी।

अनुसूया—अरे, यह क्या? अभी तो इनका अतिथि-सत्कार भी नहीं किया और छोड़ चली। आश्रमवासियों का क्या यही धर्म है?

प्रियम्वदा—ओहो, बडी गुस्सेवाली बनी है तू। लेकिन तू जा नही सकती।

शकुन्तला—(तिनक कर) क्यो?

प्रियम्वदा—क्योकि अभी दो वृक्ष सीचने को जो रह गये है। अपना कर्त्तव्य पूरा कर ले, तो जाना।

दुष्यन्त—भद्रे, इन वृक्षो के सीचने से ही आपलोग थक गई हैं। देखिये न इन्हे। (शकुन्तला की ओर) बार-बार घडे उठाने से इनकी दोनो हथेलियाँ लाल-लाल हो गई है। दोनो कधे झुके-से दीखते है। जोर-जोर से साँस लेने के कारण उन्नत वक्षस्थल नीचे-ऊपर हो रहे हैं। मुँह पर पसीने की बूँदें छहर रही हैं जिनसे कानो के शिरीष-कुसुम चिपक गये हैं। और, केवल एक हाथ द्वारा लपेटी गई चिकुर-राशि, बधन खुल जाने से, इधर-उधर बिखरी पडी है। रह गई कर्त्तव्य-पूर्त्ति की बात तो उसके बदले में लीजिए यह अँगूठी।

प्रियम्वदा—(अँगूठी लेकर) यह अँगूठी

दुष्यन्त—यह अगूठी राजा ने मुझे दी थी। इसपर राजा का नाम है।

प्रियम्वदा—वत्ता, अब कैसे जाती है?

(दूर से स्वर सुनाई दे रहा है)

तपस्वियो, सावधान! राजा दुष्यन्त इस वन में आखेट करने को आ रहे है। उसके घोडो की टापो से उडी हुई लाल धूल गीले वल्कल जिनपर सूखने को डाले गये थे, उन वृक्षो पर पड रही है। एक पागल हाथी भी भडका हुआ आ रहा है जिसका एक दाँत वृक्षो पर आघात करने से टूट गया है। जगली मृग चारो ओर भाग रहे हैं। सावधान!

अनुसूया—आर्य, अब हमें कुटिया पर जाने की आज्ञा दें। शकुन्तले, माता गौमती घबरा रही होगी, अब हमलोग चले।

शकुन्तला—अरे यह क्या? मेरे पैर में यह झिन-झिनी-सी लग गई है। मुझसे तो चला नही जाता, बहन!

दुष्यन्त—आप लोग घबरायें नही, मैं आश्रम-वासियो को कष्ट नही होने दूँगा।

अनुसूया—आह, हम आपकी सेवा भी नही कर सके। फिर दर्शन दीजिएगा महाभाग! चलो, शकुन्तले!

शकुन्तला—बहन अनुसूये, देखो न इस कुश को भी इसी समय मेरे पैर में गड़ना था और मेरा वल्कल इस झरबेरी से उलझ रहा है। थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आई। (गब जाती है)

दुष्यन्त—सब चली गई, चली गई। मैं भी चलूँ। इस मुनि-बाला ने चलते-चलाते मेरी अजीब हालत कर दी। अब मेरा शरीर तो आगे जा रहा है और मन? जैसे रेशमी झंडा हवा लगने से पीछे की ओर ही उड़ता है, मेरा मन भी शरीर की प्रतिकूल दिशा में ही भागा जा रहा है।

शकुन्तला—सचमुच तपोवन की रक्षा करने वाले राजर्षि जब से इन नेत्रो के सम्मुख हुए हैं

अनुसूया—यह लजाने की बात नही है शकुन्तले! महानदी समुद्र से ही जाकर मिलती है, और नये पत्तो वाली माघवी-लता आम के वृक्ष का ही सहारा ढूँढती है।

शकुन्तला—तो ऐसा उपाय करो कि मैं उनकी रानी नही तो अब मैं बच नही आह! मुझे याद रखना सखियो!

दुष्यन्त—(अलग से ही) ओहो, कैसी दशा हो गई है इसकी! मुँह सूख गया है, गाल धँस गये हैं। वक्षस्थल शिथिल पड गये हैं, कटि और भी पतली हो गई है। कधे झुक गये हैं और देह पीली पड गई है! किन्तु इसकी यह करुणमूर्त्ति भी कितनी सुन्दर लग रही है!

प्रियम्वदा—बहन अनुसूये, तुरत ही कोई उपाय करना है!

अनुसूया—लेकिन कैसे? क्या राजा

प्रियम्वदा—मैंने राजा की आँखें देखी हैं सखि! और, तुमने ध्यान नही दिया, वह भी दुबले हुए जा रहे हैं!

अनुसूया—तो क्या किया जाय?

प्रियम्वदा—शकुन्तले, तुम एक प्रेमपत्र उन्हे लिखो! मैं फूलो में छिपाकर, देवता के प्रसाद के बहाने, उनके पास पहुँचा दूँगी!

अनुसूया—हाँ, ठीक, ठीक!

शकुन्तला—किन्तु, कही उन्होंने उसका तिरस्कार किया तो?

प्रियम्वदा—अपने गुणो का आप अपमान करनेवाली लाडिली! ससार में ऐसा कौन होगा जो शरद की तापहारिणी स्निग्ध ज्योत्स्ना को छाता लगाकर अपने ऊपर आने से रोके?

शकुन्तला—अच्छा, तो मैं तैयार हुई? लेकिन, सखियो, लिखूँ तो किस चीज पर, किस तरह! लिखने की सामग्री तो यहाँ नही!

प्रियम्वदा—सुग्गे की छाती की तरह कोमल इस कमलिनी के पत्ते पर एक-एक पद अलग-अलग करके नखो से लिख डालो।

शकुन्तला—लो, लिख डाला सखियो!

अनुसूया—सुनाओ, सुनाओ!

शकुन्तला—"ओ निठुर, मैं तुम्हारे हृदय को तो नही जानती,

किन्तु मैंने अपनी सारी अभिलाषाएँ तुम्हारे हाथों में सौंप दी है। ऐसी अवस्था मे मदन-देवता दिन-रात मुझे तपाता रहता . ."

दुष्यन्त—प्रकट होने के लिए फिर ऐसा सुअवसर कौन होगा? (प्रकट होकर) आर्ये कृशांगि, तुझे तो वह सिर्फ तपाता भर है; लेकिन मुझे तो जलाये डाल रहा है। सूर्यदेवता जितना मलिन चन्द्रमा को वना देता है, उतनी कमिलिनी को नही।

अनुसूया—ओहो, आप आ गये! जिनके द्वारा कामना पूरी हो सकती है, उन्हे यहाँ आने में कष्ट तो नही हुआ?

शकुन्तला—(उठना चाहती है)

दुष्यन्त—वस, वस, कष्ट करने की आवश्यकता नही। जिनसे करवटें वदलने कारण फूलो की पखुडियाँ दलमल गई हैं और मृणाल के ककण मर्दित हो गये है, गुरुतर सताप मे पीडित आपके ये अग लोकाचार पालन करने मे समर्थ नही रह गये हैं, सुन्दरि!

अनुसूया—इसी पत्थर की पटिया पर आप भी वैठ जाइए महाभाग!

दुष्यन्त—लीजिए, मै वैठ गया। अव तो आपकी सखी का ताप कुछ कम हुआ?

प्रियम्वदा—औषध मिली, तो ज्वर उतरेगा ही!

अनुसूया—राजन्य, यद्यपि आप दोनो का अनुराग प्रकट है, तथापि एक निवेदन

शकुन्तला—सखि, अत पुर के वियोग से उत्कठित राजर्षि मे कुछ निवेदन करना क्या समुचित होगा?

दुष्यन्त—मेरे इस अनन्य-परायण हृदय को, ओ हृदयहारिणी, यदि किसी दूसरी जगह आरोपित करोगी तो समझ लो, ओ खजन-नयने, कि कामदेव-द्वारा मारा गया मैं दुहरा मारा जाऊँगा।

अनुसूया—वात यो है कि हम सुना करती हैं, राजाओं को वहुत-सी प्रेमिकाएँ हुआ करती हैं

दुष्यन्त—हुआ करें, ऋषिकन्याओ! लेकिन मेरे कुल की मर्यादा के अनुरूप मेरी दो ही प्रेयसी हो सकती हैं—एक तो समुद्रवेष्टित यह पृथ्वी, या आपकी यह प्यारी सखी!

अनुसूया—धन्य महाराज, धन्य! अव हम निश्चित हुई।

प्रियम्वदा—वहन अनुसूये, देखो, देखो, वह हिरन का वच्चा

अपनी माँ से बिछुडकर विलला रहा है, चलो, हम उसे माँ से मिला दें।

शकुन्तला—मुझे यहाँ अकेली छोडकर

प्रियम्वदा—अरी, तुम्हारे निकट पृथ्वीनाथ बैठे हैं, तो भी तुम अकेली ?

(सखियाँ जाती हैं)

दुष्यन्त—वे चली गईं, तो भी घबडाने की क्या बात ? आपकी सेवा के लिए मैं हूँ ही। कहिए तो इस जल-विंदु-शोभित क्लान्तिहारी शीतल कमल-पत्र से आपपर पखा झलूँ या नवल कमल पुष्प-से लाल-लाल इन चरणो को अपनी गोद में

शकुन्तला—रहने दीजिए, राजर्षि ! मुझे अपराधिनी मत बनाइए ! मुझे भी जाने दीजिए !

दुष्यन्त—(स्वगत) धन्य हैं ये वन-कन्याएँ ! इच्छा रखते हुए भी इनका प्रतिकूल व्यवहार होता है, मिलन-सुख की कामना करती हुई भी ये आत्मसमर्पण से घबडाती हैं। दुनिया को कामदेव सताता है, ये उसे भी सता मारती हैं !

शकुन्तला—मैं चली महाराज !

दुष्यन्त—क्या सच ! तो जाते-जाते (अचल पकडने की चेष्टा)

शकुन्तला—पुरुवशी, शिष्टाचार की रक्षा कीजिए। देखते नही, चारो ओर ऋषि लोग आ-जा रहे हैं।

दुष्यन्त—ऋषिकन्याओ का गान्धर्व विवाह सदा से होता आया है, सुन्दरि ! ऋषि कण्व भी यह सुनकर प्रसन्न ही होगे !

शकुन्तला—क्षमा कीजिए, मैं चली। आपकी इच्छा पूर्ति न कर सकी किन्तु सिर्फ सम्भाषण से परिचित इस दासी को न भूलियेगा।

दुष्यन्त—सुन्दरि, जैसे दिन ढलने पर छाया वृक्ष से दूर चली जाती है, किंतु तो भी उसके मूल को नही छोडती, उसी प्रकार तुम दूर भले ही चली जाओ, किंतु मेरे हृदय को नही छोड सकोगी !

शकुन्तला—(कुछ आगे बढने के बाद) अरे, यह क्या ? मेरा मृणाल-ककण कहाँ गिर पडा ? (लौटकर) महाराज, क्या आपने मेरा मृणाल-ककण देखा है ? तो दीजिये और देखिये कही ऋषियो की नजर न हम पर पड जाय।

दुष्यन्त—पाया है और दूँगा, लेकिन एक शर्त।

शकुन्तला—कौन-सी शर्त?

दुष्यन्त—मैं स्वय पहना दूँ इसे।

शकुन्तला—उफ, आप तो .अच्छा, यही सही। (हाथ बढाती है)

दुष्यन्त—(हाथ पकडकर) अहा, कितना सुन्दर स्पर्श है। शिव ने कामदेव को जला दिया, तो विधाता ने उसपर अमृत छिडककर यह नवाकुर उत्पन्न किया है?

शकुन्तला—आर्यपुत्र, शीघ्रता कीजिए।

दुष्यन्त—आपने क्या कहा, आर्यपुत्र। तो .

शकुन्तला—तो . तो क्या आर्यपुत्र।

दुष्यन्त—अपने इन सुन्दर, स्पदित, अछूते अधरो . . . (चूमने की चेष्टा करता है)

(नेपथ्य से एक आवाज)

ओ चकवी, रात हो गई, अब अपने चकवे को विदा करो।

शकुन्तला—आर्यपुत्र। विदा, विदा। आर्या गौतमी शायद मेरा हाल जानने को पधार रही हैं, इसीलिए सखियो ने सकेत किया है। विदा, विदा, आर्यपुत्र।

३

(भय-सूचक वाद्य के बाद)

अनुसूया—आखिर शकुन्तला को अनुकूल वर प्राप्त हुआ, किन्तु भय होता है, प्रियम्वदे, कि राजा अपनी राजधानी में जाकर अपनी पटरानियो मे कही शकुन्तला को भूल न जायें।

प्रियम्वदा—नही, नही, उनके ऐसे रूप-गुण वाले पुरुष धोखा नहीं दे सकते। बहन मुझे तो भय है पिता कण्व का।

अनुसूया—वह तो प्रसन्न ही होगे। लडकी को योग्य वर मिले, पिता को इससे बढकर और किसी दूसरी बात मे प्रसन्नता नही होती।

प्रियम्वदा—भगवान करे, ऐसा ही हो। तो, बहन, हमलोग अब काफी फूल चुन चुके, अब आश्रम मे चले।

अनुसूया—काफी? अरी, आज शकुन्तला के सौभाग्य-देवता की भी तो पूजा करनी है! कुछ और चुन—ओहो यह क्या? कोई अतिथि पुकार रहे हैं!

(नेपथ्य से दुर्वासा का स्वर)

दुर्वासा—ओ, देख, मैं हूँ, मैं!

प्रियम्वदा—हाँ, कोई अतिथि ही मालूम होते हैं, तो क्या हुआ, शकुन्तला तो वहाँ है ही।

अनुसूया—है तो, लेकिन उसका शरीर ही है वहाँ—मन तो राजा के साथ गया!

(नेपथ्य से फिर दुर्वासा का स्वर)

दुर्वासा—ओरी, तू अतिथि का निरादर करती है तो ले जिसके ध्यान में तूने तपस्वी का निरादर किया है, वह बार-बार याद दिलाने पर भी तुझे उस तरह भूल जायगा जिस तरह पागल अपनी कही गई बात भूल जाता है!

प्रियम्वदा—हाय, हाय, वही हुआ, जिसकी आशंका थी! मालूम होता है, शून्यहृदया शकुन्तला किसी पूज्य व्यक्ति से कोई अपराध कर गई!

अनुसूया—और कौन होगा, तुनुकमिजाज दुर्वासा ऋषि होंगे! वह देखो, इतना बडा वज्रपात करके किस तरह जल्दी-जल्दी पैर बढाते हुए चले जा रहे हैं।

प्रियम्वदा—हाँ, आग के सिवा दूसरा और कौन जला सकता है? लेकिन, बहन अनुसूये, तुम जाकर उन्हें शान्त करो, हाय

(जाती है)

अनुसूया—आपके पैरो पडती हूँ भगवान! उसे क्षमा कर दीजिए, वह एक भोली बालिका है, तपस्वो का प्रभाव बेचारी क्या जाने? फिर उसका यह पहला अपराध है महर्षि!

दुर्वासा—मेरी बात अन्यथा नही हो सकती! लेकिन तू गिडगिडा रही है, तो जा, जब उसके प्यारे को कोई याद दिलानेवाला अलंकार दिखाया जायगा, तब शाप की निवृत्ति हो जायगी। हटो, मैं चला!

(दुर्वासा क्षिप्र वेग से चले जाते हैं।)

प्रियम्वदा—अब कुछ धीरज हुआ! राजा ने चलते समय एक

अँगूठी शकुन्तला को दी है, अब यह अँगूठी ही उसकी रक्षिका सिद्ध होगी।

अनुसूया—किन्तु प्रियम्वदे, यह बात अभी हमी दोनो के बीच रहे। क्योकि कोमल-हृदया शकुन्तला इस शाप की कथा सुनकर क्या जीवित रह सकेगी?

प्रियम्वदा—देखो तो वहाँ बहन, शकुन्तला किस तरह बायें हाथ पर गाल रख तस्वीर की तरह बैठी है! आह! प्रियतम के ध्यान में वह इतनी निमग्न है कि यह जान भी न सकी कि उसके सिर पर कौन-सा बादल अभी-अभी उमड कर गाज गिरा गया है!

४

[करुण स्वर में वाद्य के वाद]

कण्व—आज शकुन्तला जायगी। इस कल्पना ने ही मेरे हृदय को विषाद से भर दिया है। आँसुओ को रोकता हूँ, तो वे गले को गीला कर आवाज को रुँध देते है। सामने की चीजें भी धुँधली हुई जा रही है। मै वनवासी हूँ, तो भी स्नेह से इतना विह्वल हो रहा हूँ, तो गृहवासी अपनी कन्या को विदा करते समय कितना दुखित होते होगे!

गौतमी—बेटी शकुन्तले, देख, वह तुम्हारे पिता आ रहे है—उनकी आँखो में डबडबाये आँसू तुम्हारे आलिगन को व्याकुल है। उठ, आशीर्वाद ले!

शकुन्तला—(चरणो में लिपटी हुई) पिताजी! (गला भर आता है)

कण्व—बेटी! भगवान तुम्हारा कल्याण करे! जैसे शर्मिष्ठा ने ययाति का प्रेम प्राप्त किया था, उसी तरह तुम भी पति-प्रेम प्राप्त करो और पुरु की तरह तुम्हे भी सम्राट् पुत्र प्राप्त हो!

गौतमी—बेटी, महर्षि कण्व ने यह आशीर्वाद नही दिया है, बल्कि वरदान दिया है तुम्हे।

कण्व—बेटी, जिसमें तुरत आहुति पडी है, इस यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कर लो! यह यज्ञाग्नि तुम्हारा मगल करे और इसकी हवि की सुगध की तरह तुम्हारी कीर्ति दिग्दिगन्त में फैले।

ओ शारगरव, ओ शारद्वत! इधर आओ बेटे!

दोनों शिष्य—गुरुदेव !

कण्व—बेटो, अपनी बहन को मगल-पथ पर ले जाओ !

दोनों शिष्य—बहन शकुन्तले, हम अब चले।

कण्व—ओ तपोवन के तरुओ ! जो शकुन्तला तुम्हे सीचे बिना जल भी नही पीना चाहती थी, जो अलकार की अनुरागिनी होने पर भी मारे स्नेह के तुम्हारे पल्लवो को नही तोडती थी, तुम्हारे पहले फूल को देखकर जो उत्सव मनाने लगती थी, वह आज अपने पति के घर जा रही है, तुम लोग उसे आज्ञा दो !

ओर बेटी! कमल के पत्तो से हरे-भरे सरोवर तुम्हारे मार्ग को सुन्दर बनावे, घनी छायावाले वृक्ष सूर्य के ताप से बचावे, रास्ते की धूल में कमल-पराग की कोमलता हो, और शान्त-स्निग्ध पवन तुम्हारे पीछे-पीछे पखे झलता हुआ चले।

(कोयल का स्वर)

सारगरव—अरे, यह कोयल कूक उठी ! पिताजी, आपकी आज्ञा मानकर वन-देवता ने इस कूक के बहाने शकुन्तला को विदा का सन्देश दे दिया !

गौतमी—हाँ, हाँ, बेटी ! वन-देवता ने तुम्हे जाने की अनुमति दे दी, उन्हे प्रणाम करो।

शकुन्तला—सखि प्रियम्वदे, आर्यपुत्र की दर्शन-लालसा मुझे आगे खीच रही है, किन्तु आह, मेरे पैर इस आश्रम को छोडने के लिए उठ नही रहे हैं !

प्रियम्वदा—तुम्हारी ही यह दशा नही है सखि, सारे आश्रम को देखो—हिरनी चबाती हुई कुश को उगले दे रही है, नाचती हुई मयूरी अचानक रुक गई और लताएँ पीले पत्ते गिराकर मानो आँसू टपका रही हैं !

शकुन्तला—पिताजी, मुझे इस लता-बहन माधवी से अनुमति लेने दीजिए !

कण्व—मैं जानता हूँ बेटी, तुम्हारा उसपर कितना स्नेह है। देख, वह तुम्हारी दाहिनी ओर है !

शकुन्तला—(लता से लिपटती हुई) बहन माधवी, अपनी शाखा-बाहुओ से मुझे कस लो, क्योकि आज से फिर भेंट नही होगी

हमारी-तुम्हारी। बहन अनुसूये, सखि प्रियम्वदे, इस माधवी-लता को तुम्हे ही सौंपे जा रही हूँ, सखियो।

अनुसूया—(कातर स्वर में) किन्तु हमे किसे सौंपे जा रही हो सखि।

प्रियम्वदा—(रोती हुई) प्यारी सखि। ओह, हमे किसे सौंपे जा रही हो।

कण्व—बेटी अनुसूये, प्रियम्वदे। तुम लोग यह क्या कर रही हो। रोओ मत बेटियो शकुन्तला को ढाढन बँधाओ।

शकुन्तला—(आँसू पोछती हुई) गर्भ-भार के कारण आश्रम के आस-पास ही मदमद घूमती रहनेवाली यह हिरनी जब सुखपूर्वक बच्चा दे ले, तो उसकी खबर मुझे अवश्य दीजिएगा, भूलिएगा नही पिताजी।

कण्व—तुम्हारा अतिम आग्रह, और मैं भूलूँ?

शकुन्तला—और यह कौन मेरे पैरो मे लिपटकर मेरा आँचल खीच रहा है।

कण्व—कुश के नुकीले अग्रभाग से जिसका मुँह छिल जाने पर तुमने बार-बार ईंगुदी का तेल लगाकर जिसे अच्छा किया, जो तुम्हारे हाथ के एक मुट्ठी साँवे पर पलकर इतना बडा हुआ, जो तुम्हारे पुत्र-सा ही लगता था, वह मृगछौना आज तुम्हारा रास्ता रोके खडा है, बेटी।

शकुन्तला—बेटा, जो तुम्हे छोडकर जा रही है, उसका पीछा तू क्यो कर रहा है रे? जब तेरी माँ मर गई थी, मैंने तुझे पाला-पोसा था, अब पिताजी तेरी खोज-खबर लेगे, इसलिए जा, पिताजी के पीछे लग बेटा। (रोती हुई चलती है)

कण्व—बेटी, रोओ मत। स्थिर हो और रास्ता देखो। तुम्हारी बरौनियाँ ऊपर उठ गई है, इसलिए इन आँसुओ के कारण तुम रास्ता ठीक से देख नही पाती, इस ऊबड-खाबड मे तुम्हारे पैर लडखडा रहे है।

सारगरव—गुरुदेव, प्रियजन को जलाशय तक ही पहुँचाना चाहिए। देखिये, वह सरोवर आ गया।

अनुसूया—शकुन्तले, तपोवन में ऐसा कोई सहृदय प्राणी नही है जो तुम्हारे वियोग मे दुखी न हो। कमलवन की ओट मे पडी

चकई पुकारे जा रही है, लेकिन तो भी वह चकवा बोल नही रहा है—अपने मुख में मृणाल रखे किस कातर दृष्टि से वह तुम्हारी ओर देख रहा है?

शकुन्तला—(सिसकती है)

कण्व—बेटी, चुप हो! चलते समय तुम्हें एक शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझ रहा हूँ—जाओ, सुख से अपने पति के घर पहुँचो। वहाँ गुरुजनो की सेवा में नही चूकना, सौतो को भी प्रिय सखी समझना, पति कदाचित् अपमान करे तो भी क्रोध करके उनसे मत झगड बैठना, दास-दासियो से उदारता का व्यवहार रखना और अपने सौभाग्य पर कभी नही गर्व करना! बेटी, यही कुल-कामिनियो का धर्म है।

गौतमी—हाँ, बेटी, इससे बढ कर नारी के लिए कोई दूसरा उपदेश हो नही सकता।

कण्व—बेटी, आओ, फिर हम मिल ले।

शकुन्तला—पिताजी, मलय-पर्वत से उखाडी गई चदन-लता की तरह आपकी गोद से दूर होकर मै किस तरह जी सकूँगी? आह!

कण्व—अधीर मत हो बेटी! पति का अपार स्नेह पाकर, भरे-पूरे घर की गृहिणी बनकर और पूर्व दिशा की तरह सूर्य-सा प्रतापी पुत्र पाकर तुम इस विरह-दुःख को शीघ्र भूल जाओगी बेटी!

शकुन्तला—पिताजी! प्रणाम पिताजी!

कण्व—मेरी इच्छा पूरी हो, बेटी!

शकुन्तला—बहन अनुसूये, प्यारी प्रियम्वदे—तुमलोग भी एक बार फिर मिल लो बहन!

(दोनो मिलती है)

अनुसूया—राजा को यदि पहचानने में कठिनाई हो, तो वह अँगूठी दिखा देना!

शकुन्तला—तुम्हारी इस बात से तो मेरा हृदय काँप उठा!

प्रियम्वदा—डरो नही सखी, प्रेम में खटका हुआ ही करता है!

सारंगरव—देवि, अब वेला बहुत चढ गई—अब शीघ्रता की जाय!

शकुन्तला—पिताजी, भूलियेगा नही!

कण्व—(ठंडी साँस लेकर) पर्णकुटी के द्वार पर तुम्हारे हाथों से लगाये नीवार में जब तक कोपलें आती रहेंगी, तब तक तुम्हें किस तरह भूल सकूँगी बेटी। अच्छा, जाओ—शिवास्ते सन्तु पन्थान!

५

[विरह-सूचक वाद्य-ध्वनि के बाद]

दुष्यन्त—आह! जब उस मृग-नयनी ने बार-बार अपने प्रणय की याद दिलाई, तब तो, ओ मेरा हृदय, तू सोया रहा। और अब जब उसे पा नहीं सकता, तो संताप भोगने के लिए जागृत हो गया है।

कंचुकी—महाराज की जय हो जय हो!

दुष्यन्त—जाकर मंत्री से कह दो कि आज मैं धर्मासन पर नहीं बैठ सकूँगा। रात को बड़ी देर तक जगा रहा। जो काम हो, उसकी सूचना मेरे पास भेज दें।

विदूषक—अच्छा हुआ कि आपने इन मक्खियों को झाड़-बुहार कर अलग कर दिया। अब इस मनोहर प्रमद-वन में थोड़ी देर आनन्द कीजिए।

दुष्यन्त—मित्र, ठीक कहा गया है कि विपत्तियाँ जरा-सी सुराख पाकर ही आ धमकती हैं। जिसने शकुन्तला की याद में बाधा पहुँचाई, वह मोह मुझे छोड़ भी न सका था कि देखो, यह कामदेव अपने धनुष पर आम्र-मंजरी का बाण चढ़ाकर सामने आ खड़ा हुआ है। अब आनन्द कहाँ!

विदूषक—कहिए, मैं अपनी लाठी से कामदेव के इस बाण को अभी तोड़े-फोड़े डालता हूँ।

दुष्यन्त—रहने दो अपनी वीरता। आह! यह अँगूठी! तू अबतक कहाँ थी? अपनी प्रियतमा को मुझसे अकारण छुड़ाकर अब मेरे हाथ में आई है। उफ, आज शकुन्तला के उस प्रथम मिलन का सारा वृतांत मुझे याद आ रहा है। मित्र, मित्र, मेरी रक्षा करो!

विदूषक—महाराज, आपके लिए ऐसा विचलित होना शोभनीय नहीं, प्रबल झंझा में भी पर्वत नहीं हिलता-डुलता है, महाराज!

दुष्यन्त—ओहो, जब बार-बार याद दिलाये जाने पर भी मैंने उसका परित्याग कर दिया और वह निराश हो जब मुनि-शिष्यों के साथ लौटने लगी तो उन्होंने भी उसे डाँट दिया और कहा तुम्हें यहीं

दुष्यन्त—तो मेरा चिरवांछित मनोरथ पूरा हो गया! आओ बेटे, मैं तुझे गोद में ले लूँ—आह!

बालक—मुझे छोड दो, छोड दो। मै माँ के पास जाऊँगा!

दुष्यन्त—मेरी गोद में ही चलकर माँ का अभिनन्दन करो बेटे!

पहली तपस्विनी—सुव्रते! क्या देख रही हो—जाकर बहन शकुन्तला को यह सुसंवाद सुनाओ। यह पौरव-कुल-कमल-दिवाकर दुष्यन्त हमारे सामने हैं!

दुष्यन्त—वह कौन आ रही है? क्या शकुन्तला है? आह, कैसी सूख गई है! ये धूसरित वस्त्र, यह मुर्झाया चेहरा, यह एकमात्र वेणी—प्रिये! प्रिये!

शकुन्तला—नाथ, नाथ!

बालक—माँ, यह कौन है?

शकुन्तला—तुम्हारा भाग्य अब उदय हुआ बेटे, पिताजी को प्रणाम करो!

(कश्यप का प्रवेश)

तुम दोनो का यह पुनर्मिलन सुखमय हो! इन्द्र तुम्हारी प्रजा पर हमेशा जल बरसाते रहे, तुम सदा यज्ञ करके उन्हे सन्तुष्ट किये रहो और सौ युगो तक मिल-जुलकर ससार का कल्याण करते हुए तुम दोनो उत्कर्ष और प्रशसा प्राप्त करो! तुम्हारी जय हो, जय हो!

शुभाकाक्षा—

राजा सदा प्रजा की भलाई में लगे रहे, वाणी की वीणा ससार-भर में झकृत होती रहे और नील-लोहित भगवान शकर हमें आवा-गमन से मुक्त कर दें।

[समाप्त]

राम-राज्य

[रेडियो रूपक]

राम-राज्य

(प्रवक्ता)

आज से ठीक सौ वर्ष बाद। याद रखिये, आज से ठीक सौ वर्ष बाद अर्थात् बीस सौ इकावन ईस्वी में। जरा अपनी कल्पना को तीव्र होने दीजिए— आज की पार्थिवता को पीछे ढकेल कर उसे उड़ान भरने दीजिए और चले चलिए २०५१ ईस्वी में।

(१)

(हवाई जहाज के उड़ने और उतरने के शब्द)

स्वागताधिकारी—नमस्कार श्रीमतीजी, नमस्कार महोदय।

स्त्री—नमस्कार।

पुरुष—नमस्कार।

स्वागताधिकारी—आप कहाँ से पधार रहे हैं? आपकी शुभ यात्रा का उद्देश्य?

पुरुष—हम दक्षिण-ध्रुव प्रदेश से आ रहे हैं। वहाँ पर हम-लोग एक उपनिवेश बसाने जा रहे हैं। उस ध्रुव-प्रदेश में हम जो एक नवीन समाज बनाने जा रहे हैं, उसकी आधार-शिला क्या हो, इसके लिए भिन्न-भिन्न देशों की सामाजिक पद्धति के अध्ययन के लिए, हमने भिन्न-भिन्न देशों में शिष्टमण्डल भेजे हैं। आपके देश में आने का सौभाग्य हम दोनों को मिला है।

स्वागताधिकारी—बड़ा ही शुभ उद्देश्य! हम आपका हृदय से स्वागत करते हैं। आपको ज्ञान ही होगा, हमने तो अपने यहाँ बापू के आदर्श के अनुसार रामराज्य की स्थापना कर ली है और,

हमारी आशा है, एक दिन सारा ससार बापू के उस आदर्श को अपनायगा।

स्त्री—हाँ, पूज्य गाँधी जी के महान् देश को अपनी आँखो से देखने के लिए ही तो हम यहाँ भेजे गये है।

स्वागताधिकारी—हम आपलोगो को सारी सुविधाएँ देंगे। हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही अतिथि को देवता माना गया है—अतिथि देवो भव! (पुकारता है) परिचालक!

परिचालक—महोदय!

स्वागताधिकारी—आप इन्हे जवाहर-अतिथिशाला में ले जायँ। (आगत व्यक्तियो से) हमने अपने विदेशी अतिथियो के लिए जो विश्रामागार बनाया है, उसके नाम के साथ अपने प्रथम प्रधान मत्री का नाम जोड रखा है—क्योंकि उन्होने ही हमें सर्वप्रथम अन्तर-राष्ट्रीय बन्धुत्व का पाठ सिखाया था।

स्त्री—हम उनके स्मारको और स्मृति-चिन्हो को भी देखना चाहेंगे।

स्वागताधिकारी—आपको सारी चीजें देखने की सभी सुविधाएँ दी जायँगी। (पुरुष से) लेकिन आप अतिथि-शाला में जायँ, उसके पहले एक निवेदन।

पुरुष—आज्ञा दीजिये!

स्वागताधिकारी—हमारे यहाँ आज्ञा नही दी जाती, निवेदन किया जाता है। (मुस्कान) निवेदन यह है कि यदि आप के पास कोई अस्त्र-शस्त्र हो, तो उसे यहीं रख दीजिये।

पुरुष—(शकित) ओहो! तो आप मुझे नि शस्त्र करना चाहते हैं। यह तो किसी परदेशी पर अत्याचार है।

स्वागताधिकारी—(हँसता हुआ) ह-ह-ह-! हर विदेशी ऐसा ही कहता है! महोदय, हम आपसे शस्त्र यही रख देने को इसलिए कहते हैं कि हमारे यहाँ शस्त्र रखना वर्बरता और पशुता का चिह्न समझा जाता है। आदमी ने शस्त्र का प्रयोग वनैले भैसो, बाघ-सिंहो और विपधर नागो से सीखा! पूज्य वापू नें हमें अहिंसा का पाठ सिखाया था, हमारे गले के नीचे भी पहले यह वात नही उतरती थी।

पुरुष—किन्तु, यदि हम पर प्रहार किया जाय, तो हम आत्मरक्षा कैसे करेंगे?

स्वागताधिकारी—प्रहार! हमारे देश में, वापू के इस राम-राज्य में, कोई किमी पर प्रहार नही करता! हम अव पूर्ण सभ्य हो चले हैं—

आदमी जितना बर्बर और असभ्य रहता है, उतना क्रूर और हिंसक होता है। ज्यों-ज्यों सभ्यता आती जाती है, त्यों-त्यों वह दयालु और अहिंसक होता जाता है। सभ्यता की पहचान ही है अहिंसा।

स्त्री—आपकी बातें सत्य के बहुत निकट मालूम होती हैं।

स्वागताधिकारी—बापू कहा करते थे, अहिंसा का सन्देश सबसे पहले स्त्रियाँ और बच्चे समझते हैं। बापू के कथनानुसार पहला सत्याग्रही एक बच्चा था।

पुरुष—तो क्या आपके देश में सेना भी नहीं रखी जाती? यहाँ इस हवाई अड्डे के अगल-बगल कहीं किसी सैनिक या प्रहरी को नहीं देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हो रहा था।

स्वागताधिकारी—नहीं! हमारे देश में सेना नाम की कोई चीज नहीं है। जब हम स्वतंत्र हुए थे, कुछ दिनों तक हमने सेना रखी। हम लड़ाइयों में भी शामिल हुए। किन्तु धीरे-धीरे उसकी व्यर्थता सिद्ध हो गई।

पुरुष—और, यदि कोई आपके देश पर चढ़ाई करे, तब?

स्वागताधिकारी—कैसी बातें करते हैं आप? क्या इस वैज्ञानिक युग में देशों पर चढ़ाई करने की जरूरत रह गई है, जबकि एक छोटी-सी पुड़िया सारे संसार को भस्म कर सकती है? इन परमाणु अस्त्रों के बाद फिर सेना की क्या सार्थकता रह गई? वह तो जहाँ की तहाँ खड़ी रह जायगी या ढेर हो जायगी।

पुरुष—आपके देश को भस्म नहीं करके आप को गुलाम तो बनाया जा सकता है!

स्वागताधिकारी—ह-ह-ह! गुलाम बनाया जा सकता है? एक बार हमें गुलाम बनाया गया था। उनका शस्त्र-बल भी असीम समझा जाता था। किन्तु बापू की अहिंसा के सामने उनकी कोई शक्ति काम आई? और उस समय तक अहिंसा पर हमें ऐसी आस्था भी नहीं थी। बस, देश में सिर्फ एक मुट्ठी लोग अहिंसक थे। उन्हीं को लेकर बापू ने उस समय के संसार के सबसे बड़े शक्तिशाली राष्ट्र को भगा दिया। आज तो हमारा बच्चा-बच्चा अहिंसा का मर्म समझ चुका है।

पुरुष—तो लीजिए, यह पिस्तौल! (पिस्तौल निकाल कर देता है)

स्वागताध्यक्ष—आह! उफ

स्त्री—अरे! आप इस तरह विचलित क्यों हो गये? महोदय, महोदय!

स्वागताध्यक्ष—आह! यदि यह कलमुँही संसार में नहीं आई

होती, तो बापू को उस दिन उस प्रकार मरना नही पडा होता। श्रीमतीजी, पिस्तौल देखते ही हमारे हृदय में घृणा की जो भावना उमड पडती है, क्या आप लोग उसकी कल्पना भी कर सकेंगे? उफ—

स्त्री—गाँधीजी की हत्या! उसकी कल्पना तो हमें भी कँपा देती है, महाशय!

स्वागताधिकारी—और, उसके बाद भी आपलोग अस्त्र-शस्त्र की बातें करते हैं? खैर, अभी अतिथिशाला जाइये। फिर कभी बातें होगी। नमस्कार। परिचालक, रथ लाइये।

स्त्री—नमस्कार, नमस्कार!

पुरुष—नमस्कार, नमस्कार!

(मोटर के निकलने की आवाज)

(२)

(मोटर के ठहरने की आवाज

प्रबंधक—स्वागत श्रीमती जी, स्वागत महोदय!

स्त्री—नमस्कार!

पुरुष—नमस्कार!

प्रबंधक—अभी हवाई अड्डे से हमें सूचित किया गया है कि आप दोनो पधार रहे हैं। आइये, आपकी सुख-सुविधा का सारा प्रबन्ध हमने कर रखा है? अतिथिशाला का यह मानचित्र है (कागज खोलने का शब्द)। इनमें ये आवास-कक्ष इस समय खाली हैं।

स्त्री—और, भोज्य-पदार्थों की सूची भी तो होगी।

प्रबंधक—हाँ, यह लीजिये (कागज का शब्द)।

पुरुष—कक्ष और भोजन के लिए हमें क्या देने पडेंगे? क्या आप हमें बता सकेंगे?

प्रबंधक—ह ह ह—क्या देने पडेंगे? क्या लेने पडेंगे—विदेशियो के मुँह से यह सुनते-सुनते हम तो हैरान हैं। महोदय, क्या आपको वायु के लिए कोई मूल्य देना पडता है? जल के लिए कोई मूल्य चुकाना पडता है? फिर भोजन के लिए मूल्य क्या? यह तो मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकता है! और, क्या अपनी छाया के लिए कोई वृक्ष मूल्य खोजता है, जो यह कक्ष आपसे कुछ माँगे?

स्त्री—तो यहाँ भोजन और आवास

प्रबंधक—हाँ, बापू के राम-राज्य में भोजन और आवास पाने का अधिकार सब नागरिक को प्राप्त हैं। फिर, आप तो अतिथि हैं।

पुरुष—धन्य है आपका देश, धन्य है बापू का राम-राज्य! हम इसी राम-राज्य को देखने तो आये हैं। उनके लिए क्या प्रबंध रहेगा!

प्रबंधक—आपकी सेवा में पथ-प्रदर्शक पहुँच जायेंगे। आप जहाँ चाहें, निस्संकोच जा सकते हैं। आप क्या क्या देखेंगे?

पुरुष—कुछ तो उतरते ही देख चुका। मैं विशेषत: उद्योग-धंधे और खेतीबारी

स्त्री—और, मैं बच्चों की शिक्षा और पारिवारिक जीवन!

प्रबंधक—अच्छा चुनाव! पुरुषों के जिम्मे उद्योगधंधे, खेतीबारी, स्त्रियों के जिम्मे पारिवारिक जीवन, भावी नागरिकों की शिक्षा-दीक्षा! बापू के रामराज्य में भी यही व्यवस्था है और यही व्यवस्था उचित भी है। क्यों?

(स्त्री और पुरुष हँस पड़ते हैं)

(३)

(दूर से सामूहिक गीत और वाद्य की झंकार)

पुरुष—हमें आप कहाँ ले आये? यहाँ क्या कोई संगीतशाला है?

स्त्री—अहा, कितनी मधुर झंकार।

पथ-प्रदर्शक—संगीतशाला नहीं, यह तो श्रमशाला है, जिसे पहले कारखाना कहा जाता था! पहले हम कारबार पर जोर देते थे, अब श्रम को ही महत्त्व देते हैं।

पुरुष—कारखाने में संगीत?

पथप्रदर्शक—श्रम और संगीत में प्रारंभ से ही अविच्छेद्य संबंध रहा है न। संगीत की उत्पत्ति ही श्रम से हुई। हमारी स्त्रियाँ प्रारम्भ से ही चक्की पीसते समय, धान कूटते समय, गाती रही हैं। हमारे मछुए नाव खेते समय, हमारे शिल्पी बड़ी-बड़ी शहतीर उठाते समय भी गाते रहे हैं। किन्तु ज्यों-ज्यों हम तथाकथित सभ्य होते गये, श्रम से संगीत को अलग करते गये। फल यह हुआ कि आज मेहनत एक झंझट-क्रिया हो चली है—ऊबानेवाली, थकानेवाली, अकाल वृद्ध बनानेवाली! अब फिर से हमने श्रम को संगीत के साथ नत्थी करके काम को खेल बना दिया है।

पुरुष—पहले हमें कार्यालय में ले चलिये, वहाँ मैनेजर से कुछ बातें करके तब भीतर चलेंगे।

पथप्रदर्शक—मैनेजर! अब हमारी श्रम-शालाओ में किसी मैनेजर की आवश्यकता नही रह गई है। प्रारम्भ में हमने प्रबधक रखा था। क्योकि उस समय तक हममें पुरानी आदते थी, जो हमें कामचोर बनाती थी! किन्तु, धीरे-धीरे वह आदत दूर हो गई। अब तो लोग स्वय श्रमशाला में उसी प्रकार आ जाया करते है, जैसे पहले सिनेमाघरो में खुशी-खुशी जाते थे।

पुरुष—तो वेतन आदि का निर्णय कैसे करते है आप लोग?

पथप्रदर्शक—वेतन? ह-ह-ह-! वेतन कौन दे और किसको दे? समाज की श्रमशाला है, समाज उसके फलो का उपभोक्ता है। अपनी शक्ति के अनुसार सभी श्रम करते हैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार सब उपयोग करते हैं।

स्त्री—किंतु, कितने ही देशो में तो यह प्रयोग असफल हुआ।

पथप्रदर्शक—क्योकि उनलोगो ने दवाव और जोर से काम लेना चाहा। वापू की कर्मविधि तो अन्त प्रेरणा के जगाने पर निर्भर होती है। हमने उनकी विधि अपनाई, हम सफल हुए। हाँ, एक वात और—

स्त्री—क्या?

पथप्रदर्शक—बापू बडे-बडे कारखाने के विरुद्ध रहे हैं। बडे-बडे कारखानो में मशीन ऊपर रहती है, आदमी उसके नीचे कुचलता रहता है। इससे मनुष्यता विकास नही पाती। फलत मनुष्य और मशीन में द्वन्द्व रहता है, उत्पादन में त्रुटि होती है। फिरएक बडे कारखाने के बद होने से देश भर में हाहाकार मच जाता है। अत हमने छोटी-छोटी श्रमशालाएँ ही बनाई हैं—जहाँ हर आदमी हर आदमी को पहचान सके, अपना सके, अपना भाई बना सके। और, यदि एकाध श्रमशाला में उत्पादन कम भी हुआ, तो देशव्यापी कुप्रभाव नही पड सके।

(भोपू की आवाज)

स्त्री—अरे, क्या कारखाना वन्द होने जा रहा है? आह, हम इस अलौकिक प्रयोग को देख न सके।

पुरुष—हाँ, इस विचित्र प्रयोग को हम आँखो देखना चाहते थे, महाशय!

पथप्रदर्शक—भोपू तो वज गया, किन्तु जल्द निकलता कौन है? काम को तो हमने खेल बना दिया है। वच्चे क्या खेल के मैदान को जल्द छोडते हैं? तीन वार ऐसा भोपू वजेगा, तव कही श्रमशाला खाली होगी। (सगीत का स्वर तेज होता है) सुनिये, भोपू वजते ही सगीत

कितना ऊँचा हो गया—चलते-चलाते थोडा और श्रम, थोडा और सगीत।

स्त्री—तो हम तेजी से चले।

पुरुष—हाँ-हाँ, तेजी से ही।

(४)

(बच्चो का कलरव सुनाई पडता है)

एक बच्चा—देखो, देखो, मेरे गुलाब में यह कितना सुन्दर फूल खिल आया है। इसका रग है गुलाब का और गध रजनी-गधा की। कैसी कमाल किया है मैने।

दूसरा बच्चा—और इधर देखो, क्या ऐसा आलू तुमने कही देखा था? मैंने इसके लिए खास खाद बनाई थी। गुण टमाटर का स्वाद नासपाती का।

तीसरा बच्चा—अरे भाई, दोनो इधर आओ और देखो मेरी यह पुस्तक-धारिणी! इसपर पुस्तके फेंक भी दो, तो वे आप-ही-आप पक्तियो मे सज जायेंगी। कैसी कारीगरी की है मैने?

शिक्षक—बच्चो, अब इधर आ जाओ, थोडा सैद्धान्तिक ज्ञान भी तो ले लो!

सब बच्चे—आया गुरुदेव!

(स्त्री, पुरुष और पथप्रदर्शक का प्रवेश)

स्त्री—क्यो महोदय, यही आपकी पाठशाला है?

शिक्षक—हाँ, यह हमारी पाठशाला ही तो है।

पुरुष—यह पाठशाला है या उद्योगशाला!

शिक्षक—यो समझिये तो पाठशाला, उद्योगशाला और प्रयोगशाला—तीनो एक साथ! बापू ने शिक्षा का यह नवीन प्रयोग प्रारम्भ किया था, जिसे वह मौलिक शिक्षा-पद्धति कहते थे। बच्चो का सबसे पहला काम होता है, दूध पीना, फिर खेलना। भोजन के साथ खेल को जोड दीजिए और फिर इन दोनो का सम्बन्ध शिक्षा से कर दीजिए; बस शिक्षा का यही मूलसूत्र पकड कर हम आगे बढते है। उसी से यह मौलिक शिक्षा कहलाती है।

स्त्री—आपके रामराज्य की सब चीजें ही विचित्र है। क्या मैं इन बच्चो से बाते कर सकती हूँ?

शिक्षक—क्यो नही? रामू! इनसे बातें तो कर बेटा!

स्त्री—आप किस वर्ग में पढ रहे है ?

बच्चा—वर्ग ? वर्ग क्या है ? बापू के समाज में वर्ग ?

स्त्री—(शिक्षक से) यह बच्चा क्या कह रहा है ? क्या यहाँ पाठशालाओ में वर्ग नही रखे जाते है ?

शिक्षक—नही श्रीमती जी, (बच्चे से) रामू, यह जानना चाहते है कि तुम क्या सिख रहे हो ?

बच्चा—जमीन और बीज के भेदो को समझ चुका हूँ अब मौसम के भेद से जमीन और बीज के भेद के बारे में प्रयोग कर रहा हूँ। क्या ऐसा गेहूँ नही बनाया जा सकता जो धान के मौसम में .

स्त्री—रहने दो बच्चे, मैं समझ गई

बच्चा—नही, नही, मैं और भी सीख चुका हूँ। मै ऐसी कुर्सी बनाने में लगा हूँ जो बैठते ही मनचाही दिशा में पहुँचा दे।

स्त्री—रहने दीजिए, मैं समझ गई, समझ गई। धन्य है आपके शिक्षक जिन्होने ऐसे छोटे-से बच्चो में इतना ज्ञान भर दिया है।

बच्चा—शिक्षक ? शिक्षक किसे कहते है ?

स्त्री—तो उन्हे आप क्या कहते हैं ?

शिक्षक—श्रीमती जी, हमारे यहाँ शिक्षक नही होते ! शिक्षक वह है, जैसा आपने कहा है, जो बच्चो में ज्ञान भरे। बच्चो में ज्ञान भरने का पेशा हमारे यहाँ नही रह गया है। हमें बच्चो में जो ज्ञान निहित है, उसे उभाडना भर है। इसलिए जो लोग उन्हे इस कर्म में सहायता पहुँचाते है, वे शिक्षक नही कहला कर शिक्षा-सहायक कहलाते है। शिक्षक शब्द हमने जानबूझ कर छोड दिया है। क्योकि सहायक शब्द से बच्चे सदा यह अनुभव करते हैं कि उन्हे स्वय शिक्षित होना है, हमारा काम सिर्फ सहायता देना है उन्हें।

(सगीत का स्वर)

बच्चा—वह नया पाठ प्रारभ हो रहा है, अब मै जा सकता हूँ ?

स्त्री—शिक्षण मे भी आपने सगीत को प्रमुखता दे रखी है !

शिक्षक—श्रम के साथ सगीत और सगीत के साथ शिक्षण—शिक्षण और श्रम को जोडनेवाली कडी तो सगीत ही है न ? सगीत को बन्द कर दीजिए, श्रम और शिक्षण दोनो नीरस, शुष्क, और उकतानेवाले, ऊबानेवाले बन गये।

स्त्री—आपके यहाँ सब कुछ विचित्र है।

(५)

(एक अनहद संगीत वंशी का स्वर' कोयल की कूक)

पुरुष—आप हमें किस मायापुरी में लिए जा रहे हैं?

स्त्री—हाँ, यह मायापुरी ही तो है, चारों ओर लहराते हुए खेत। कहीं फल-फूल, कहीं बालियाँ! बीच-बीच में बगीचे—कहीं बौरों से लदे, कहीं फलों से लदे। हवा पराग से बोझीली। फिर यह अनहद संगीत! अहा!

पथप्रदर्शक—ओहो, आप कवि भी हैं। हाँ, हर स्त्री कुछ कवि होती है! किन्तु यह मायापुरी नहीं, यह तो मायापुरी का पड़ोस है, मायापुरी तो देखिए, वहाँ है।

पुरुष—वह तो कोई नगर-सा है? कौन सा नगर है?

स्त्री—किन्तु आप तो हमें गाँव दिखलाने ले आये थे न?

पथप्रदर्शक—वह गाँव ही तो है!

पुरुष—गाँव है? जहाँ के मकान यहीं से यों चमक रहे हैं, शायद कोई नमूने का गाँव बसाया है आपने।

पथप्रदर्शक—नहीं, हमारे सारे गाँव ऐसे ही हैं। बहुत दिनों की बात है। हमारे बापू की एक शिष्या थी—विलायत की। उन्होंने भारतीय गाँव पर लिखा था कि जब रास्ता पकड़ कर मैं चलती हूँ और दुर्गन्ध से नाक फटने लगती है, तो मैं समझती हूँ, मैं गाँव के निकट आ गई। काश, वह देवी आज होती! खैर वह न सही, आप तो हैं। कहिये, आपकी नाक तो नहीं फट रही!

स्त्री—मेरे तो नाक, कान, और आँख—सब तृप्त हुए जा रहे हैं, चलिए, हम जरा आपके गाँव को निकट से देखें।

पुरुष—क्या सचमुच ये गाँव है! पंक्तियों में बने ये सुन्दर-सुन्दर मकान! बीच-बीच में पतली, सुथरी पगडंडियाँ। हर घर के सामने रंग-बिरंगी फुलवारियाँ और, यह शायद बिजली भी . . .

पथप्रदर्शक—हाँ, हाँ, बिजली ही तो है। बिजली खेतों को पटाती है, जोतती है, घरों को जगमग करती और चोके पर से सारी मनहूसियत को दूर रखती है! यह बिजली की कृपा है, जिसने हमारे शहरों और गाँवों के भेद-भाव को सदा के लिए दूर कर दिया है!

पुरुष—किन्तु गांधीजी तो ग्राम-उद्योगों के पक्षपाती थे न? फिर ये वैज्ञानिक साधन . . .

पथप्रदर्शक—ग्राम-उद्योग का पक्षपाती होने का अर्थ क्या वैज्ञानिक साधनो से असहयोग करना है ? बापू ने रेल, मोटर, रेडियो, प्रेस सबका प्रयोग किया था। जहाँ विज्ञान मानवता को पीसता है, हम उसे दूर रखते हैं। विज्ञान को हमने विशाल उद्योगो के एकाधिकार से हटाकर ग्राम-उद्योगो में जोत दिया है, उसने हमें स्वावलवी बनने में प्रचुर सहायता की है। बापू का मूलमत्र था स्वावलबन। हर व्यक्ति स्वावलवी हो, हर कुटुंब स्वावलबी हो, हर गांव स्वावलवी हो और हो सारा राष्ट्र स्वावलबी।

(चर्खे के चलने की घर्र-घर्र आवाज)

स्त्री—अरे, क्या आप लोगो के घरो में आज भी चर्खे चलाये जाते हैं ?

पथप्रदर्शक—क्या चर्खे को हम कभी भूल सकते है ? जिसने हमें स्व-राज्य दिलाया, जिसको हमने अपने झडे पर रखा, उसे भूल जाना तो अपने इतिहास को, अस्तित्व को भूल जाना है। फिर बापू कहा करते थे, चर्खा ग्रामीण अर्थशास्त्र की धुरी है। धुरी को छोड दें, तो गाडी चलेगी क्या ?

पुरुष—किन्तु चर्खा तो पुराण-पथिता का प्रतीक है।

पथप्रदर्शक—हमारे नये चर्खे को देखिए, तो कहिये ! बापू ने अठारहवी सदी के चर्खे को वीसवी सदी के योग्य वनाया, हमने उसे इक्कीसवी सदी के योग्य बना दिया है। हमारा एक चर्खा पूरे परिवार को वस्त्र-स्वावलवी बना देता है। हम बापू के सपूत हैं न ?४

(लडकियो के हँसने की आवाज)

स्त्री—ओहो, इधर लडकियाँ आ रही हैं। कितनी सुन्दर ?

पुरुष—तितलियो जैसी—

पथप्रदर्शक—हाँ, रूप में तितलियाँ, किन्तु काम में मधुमक्खियाँ। हमारी स्त्रियाँ युगो से घरेलू कामो पर एकाधिकार रखती आई हैं, अव तो वे कृषि आदि उद्योगो में भी हमारा हाथ बँटाती हैं !

पुरुष—तव तो आप के यहाँ भी स्त्री-पुरुष में सघर्ष होगा !

पथप्रदर्शक—जी नही। जहाँ अधिकार की बात होती है, वहाँ सघर्ष ! यहाँ तो कर्त्तव्य की वात है। हमारे शास्त्रो ने स्त्री को पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी कहा है—सामाजिक और पारिवारिक कर्मो का आवा वोझ अपने ऊपर लेकर उन्होंने उसे सार्थक वना दिया है। हमारी नारियो का आदर्श माता कस्तूरवा है—इसे आप न भूले।

स्त्री—पूज्य बा! वह तो संसार की नारियों के लिए सदा नमस्य रहेंगी।

पुरुष—हाँ, एक बात! आपके यहाँ कुछ लोग जो हरिजन कहलाते थे, गाँव में उनकी बस्ती किस तरफ है? जरा उधर तो चलिए।

पथप्रदर्शक—ह-ह-ह! आप सुदूर भूत की बात कर रहे हैं। बापू ने कहा था—हमें एक वर्गहीन-वर्णहीन समाज बनाना है! हमने वैसा ही समाज बना लिया है—हमारे यहाँ न कोई धनी है न कोई गरीब, न कोई कुलीन है, न कोई अन्त्यज! सब एक साथ रहें, सब एक साथ उपभोग करें और एक साथ राष्ट्र को बलवान बनायें—इस प्राचीन आदर्श को हमने नये साँचे में ढाल दिया है। देखते नहीं, गाँव के सारे घर एक से हैं। गाँव के घर ही एक-से नहीं हैं, हमारे हृदय भी एक हो चुके हैं।

(दूर से मृदंग-झाँझ आदि का स्वर)

स्त्री—वह? कोई उत्सव हो रहा है क्या?

पथप्रदर्शक—हमारा हर दिन उत्सव का दिन है। उत्सव से हम दिन का प्रारंभ करते हैं और उत्सव से ही दिन की समाप्ति होती है। संध्या होने को आई न? अब 'जन-गृह' में गाँव के स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बच्चे सब-के-सब एकत्र होंगे। वहाँ नृत्य होगा, गान होगा, नाटक होंगे, प्रहसन होंगे। रेडियो लगा है, देश-देश की वार्त्तायें सुनी जायेंगी—फिर लोग खुशी-खुशी अपने घर जायेंगे और सुख की नींद सोयेंगे।

पुरुष—कितना सुखी समाज बना रखा है आप लोगों ने!

स्त्री—सचमुच, माया-पुरी बनाई है आपने। मेरी तो इच्छा होती है, यहीं बस जाऊँ!

पथप्रदर्शक—आप दोनों अपनी बात कह गये—पुरुष प्रतिस्पर्द्धी होता है, नारी आत्म-समर्पिणी! किन्तु हम कहेंगे, आप जाइए और अपने देश में बापू के इस राम-राज्य का संदेश दीजिए।

पुरुष—अब हम वापस जाना चाहते हैं, क्या अपने राष्ट्रपति के दर्शन हमें करा सकेंगे आप?

पथप्रदर्शक—राष्ट्रपति? राष्ट्रपति हमारे देश में अब नहीं होते। पति शब्द से प्रभुत्व सूचित होता है। हमने उसके बदले, प्रमुख

राष्ट्रसेवक शब्द रखा है। आप उनसे अवश्य मिलें। मिलकर आप प्रसन्न हो जायेंगे।

स्त्री—कौन-से वह सौभाग्यशाली सज्जन हैं, जिन्हे ऐसे राष्ट्र का प्रमुख सेवक होने का गौरव प्राप्त है?

पथप्रदर्शक—जिस दिन बापू का अलौकिक बलिदान हुआ, उसके ठीक एक दिन पहले उन्होंने प्रवचन किया था कि मैं प्रसन्न तब होऊँगा, जब गाँव में हल जोतनेवाला व्यक्ति राष्ट्र के राज्य-सिंहासन पर बैठे। एक वैसे ही सज्जन हमारे प्रमुख राष्ट्रसेवक हैं—और उन्होंने बापू की छत्र-छाया में काम भी किया था।

स्त्री—अरे, तो उनकी क्या उम्र है?

पथप्रदर्शक—यही, १२० वर्ष के लगभग। बापू की इच्छा थी, वह १२० साल जीयें। वह तो चल बसे, किंतु उम्र की यह धरोहर हमें दे गये हैं। हमारे प्रमुख राष्ट्रसेवक उनकी इच्छा की पूर्त्ति कर सके हैं, यह हमारे लिए सौभाग्य की ही बात है।

पुरुष—एक हल जोतनेवाला व्यक्ति इस सर्वोच्च पद पर कैसे पहुँचेगा? क्या आपके यहाँ उम्मीदवारों में प्रतिद्वंद्विता नही होती?

पथप्रदर्शक—हमारे यहाँ चुनाव में कोई उमीदवार नही होता। बापू क्या कभी किसी पद के उमीदवार हुए? तो भी वह हमारे सब कुछ थे। हमने वही पद्धति ली है। बापू की जयन्ती-दिवस को हम उत्सव मना कर लौटते हैं, तो इस पद के लिए किसी एक के लिए अपना मत डाल कर। मत पाने के लिए कोई प्रचार करना तो हमारे यहाँ शिष्टता के प्रतिकूल समझा जाता है और हमारे राष्ट्र में कोई अशिष्ट नही, यह हमारा दावा है।

स्त्री—सबकुछ विचित्र है आपके देश में। चलिए, हम उनके दर्शन कर लें।

(६)

(मोटर के भोंपू का शब्द)

स्त्री—नमस्कार!

पुरुष—नमस्कार!

राष्ट्रसेवक—नमस्कार देवी जी, नमस्कार महोदय! आइये, पधारिये। तो देख लिया हमारे बापू के रामराज्य को!

पुरुष—देख लिया, प्रसन्न हुआ।

स्त्री—प्रसन्न ही क्यों, हम तो विस्मय-विमुग्ध हैं। और जो कसर थी, उसे आपके दर्शन ने पूरा कर दिया। आप गांधी जी के साथी. .

राष्ट्रसेवक—साथी नहीं, साथी नहीं, उनका अनुयायी। मैं तो तब बारह-तेरह वर्ष का था। हाँ, ये आँखें धन्य हैं, जिन्होंने उनकी सूरत देखी थी, और यह शरीर धन्य है कि यह उन्हें अर्पित था। देखिए, यह .

स्त्री—ओ हो!

पुरुष—अरे!

राष्ट्रसेवक—जब बापू ने १९४२ में क्रान्ति का नारा दिया, मैं बच्चा ही था। एक थाने पर चढाई हुई, उसपर राष्ट्रीय झंडा फहराने के लिए मैं बन्दर की तरह उछल कर जा चढा। नीचे से गोली दागी गई, उसी का यह चिह्न!

स्त्री—उफ, कैसी यह बर्बरता!

पुरुष—शासन का मोह हमसे क्या नहीं करा सकता है?

राष्ट्रसेवक—इसीलिए बापू कहा करते थे कि सबसे अच्छा शासन वह है जिसमें कम-से-कम शासन किया जाय। आपने हमारे राष्ट्र में कहीं ऐसा देखा है, जहाँ शासन का कोई दबाव आपको अनुभव करना पडा हो। धीरे-धीरे हम शासन को सिमट रहे हैं और शायद उसका एकमात्र चिह्न यह पद रह गया है, जिसे देकर मुझे सम्मानित किया गया है।

स्त्री—सेना नहीं, शासन नहीं! एक विचित्र समाज बना रखा है आपलोगों ने।

राष्ट्रसेवक—किन्तु, यहाँ तक पहुँचने मे हमें किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पडा है, काश, उसे आप लोग जान पाते। जब बापू ने राम-राज्य कहा, लोगो ने खिल्लियाँ उडाईं—उन्हें सनकी कहा, पागल बताया। हमें उनकी बात कुछ इतनी पागल सी मालूम हुई, कि हम बर्दाश्त नहीं कर सके उन्हें. . उफ, उनकी हत्या . . . .

पुरुष—हाँ, वह तो संसार-भर के लिए एक दुखद घटना हुई थी—गांधी जी ऐसे सन्त को गोली से मारा जाना। लेकिन, क्षमा कीजिए, तो पूछूँ।

राष्ट्रसेवक—क्षमा! आप क्या कह रहे हैं यह? आप सब-कुछ पूछ सकते हैं।

पुरुष—क्या धर्म का भेदभाव

राष्ट्रसेवक—बस, बस, रहने दीजिए। धर्मका भेद भाव तो बापू के रक्त से ही धुल गया। हाँ, जो उसका धब्बा-सा बच गया था, उसे भी हमने दूर कर लिया—यद्यपि उसमें प्रयत्न काफी करने पडे। अब हमारे यहाँ विश्वासो की विभिन्नता, विचारो की विभिन्नता उसी तरह स्वाभाविक मानी जाती है, जैसी मुखाकृति की विभिन्नता। किसी दो के चेहरे एक है? फिर हृदय और मस्तिष्क कैसे एक-से होगे। किन्तु अलग-अलग चेहरे रखकर भी हम सभी मानव है, कुटुम्बी है, बाप हैं, भाई हैं, पति हैं, पत्नी हैं, बहन है, बेटी हैं, एक-साथ रहते हैं, आनन्द मनाते है। उसी तरह अलग विश्वास और विचार रख कर भी हम परस्पर प्रेम और आनन्द से रह सकते है, रहते हैं।

पुरुष—धन्य है आप और धन्य है आपका देश जहाँ एक ऐसा समाज प्रस्फुटित हुआ है, जो ससार के लिए अनुकरणीय है।

राष्ट्रसेवक—धन्य न हम है, न हमारा देश है। धन्य है बापू, जिनके चरणो का अनुसरण कर हम यहाँ पहुँचे हैं।

स्त्री—मै तो अपने भाई-बहनो से कहूँगी, बापू का पथ ही विश्व-कल्याण का पथ है—हमें उसी ओर बढना चाहिए। जहाँ मानव मानव का भेद नष्ट हो चुका हो, जहाँ श्रम के साथ सगीत जुडा हो और सगीत के साथ शिक्षण, जहाँ बच्चे फूल की तरह स्वत प्रस्फुटित होते हो और नारियाँ तितलियो की तरह सुन्दरता रखकर मधुमक्खियो की तरह सचयशील हो, और सबसे बढकर जहाँ शस्त्र बर्बरता के चिह्न माने जाते हो और शासन व्यक्तित्व के लिए बधन, भला वह समाज अनुकरणीय न होगा, तो और कौन-सा समाज!

राष्ट्रसेवक—आप तो कविता करने लगी।

स्त्री—सत्य कविता का स्वप्न है। जिन्होने इतने बडे सत्य का स्वप्न देखा, क्या बापू से बढकर भी कोई कवि होगा।

राष्ट्रसेवक—बापू! तुम्हे नमस्कार है, बापू!

पुरुष—अपने देश की ओर से हम भी उनकी स्मृति में सर झुकाते हैं—नमस्कार बापू!

स्त्री—नमस्कार बापू!

पुरुष—तो हमें विदा की आज्ञा दीजिए!

राष्ट्रसेवक—आप दोनो का पथ मगलमय हो!

नेत्र-दान

[एकांकी]

विश्व-इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए एच० जी० वेल्स ने अशोक की भूरि-भूरि प्रशसा की है। सिर पर सोने का ताज पहन कर और हाथ में फौलादी तलवार लेकर जहाँ ससार के अन्य राजाओ ने सहार का भयानक दृश्य उपस्थित किया, वहाँ एक यह भी सम्राट् थे, जिन्होने भिक्षुओ का बाना धारण कर ससार के कोने-कोने में शाति-धर्म का सन्देश भेजा।

प० जवाहर लाल नेहरू ने भी अपनी 'विश्व-इतिहास की झलक' में अशोक का उल्लेख बडे गौरव के साथ किया है।

किन्तु, इतिहास बताता है, अशोक सदा वह अशोक नही थे, जिनके शुभ्र कर्तृत्वो की चर्चा ससार के इन दो महापुरुषो ने तथा अन्य इतिहासकारो ने इस प्रकार बारम्बार की है।

अशोक, अपने प्रचड स्वभाव के कारण, चडाशोक के नाम से भी अभिहित थे। कहा जाता है, उन्होने अपने सौ भाइयो की हत्या कर उनके सिर एक कुएँ में डलवाये थे, जिसे आजकल अगमकुआँ कहते हैं, जो पटना से सटे अशोककालीन खडहरो में आज भी कायम है।

इतिहास यह भी कहता है, उनमें विजय की बडी आकाक्षा थी और भारत के कई भूखडो को सैन्यबल से जीत कर उन्होने अपने राज्य में मिलाया था।

विजय और राज्य की इसी आकाक्षा के कारण उन्होने कलिंग पर चढाई की और भीषण नर-सहार के बाद उसे पराजित किया।

किंतु, कलिंग की इस विजय ने ही उनके जीवन को एक नया मोड दे दिया।

कहते है, कलिंग में की गई निर्मम और भीषण हत्याओ के कारण उनके प्रचड स्वभाव में भी परिवर्त्तन हुआ और उन्होने प्रतिज्ञा की कि अब से वह फिर कभी युद्ध नही करेगे।

उस समय बुद्ध का शाति-धर्म भारत में फैल रहा था।

उन्होने उस धर्म को स्वीकार किया और अपना शेष जीवन ससार में इसी शाति-धर्म के प्रचार के लिए उत्सर्ग कर दिया।

इस उत्सर्ग का चरम बिन्दु यह रहा कि उन्होने अपनी पुत्री सघमित्रा और पुत्र महेन्द्र को सिंहल भेज दिया।

अब भी सिंहल में सघमित्रा और महेन्द्र से सम्बन्धित अवशेष पाये जाते हैं और बोधि-वृक्ष की जो डाल उनलोगो द्वारा सिंहल ले जाई गई, वह एक महान वृक्ष के रूप में आज भी जीवित है।

कुणाल

कुणाल अशोक का कनिष्ठ पुत्र था और उसके सम्बन्ध में एक बड़ी ही करुण कथा बौद्ध-साहित्य में पाई जाती है।

कुणाल की सौतेली माँ थी तिष्यरक्षिता। वह सिंहलनरेश तिष्य की पुत्री थी।

कुणाल बड़ा ही सुन्दर था, विशेषतः उसकी आँखें बड़ी ही सुन्दर—मादक और मोहक—थीं।

कहते हैं, उन आँखों पर तिष्यरक्षिता मोहित हो गई।

इसी समय अशोक ने कुणाल को उत्तर-पश्चिमी सीमा पर होनेवाले विद्रोह को दबाने के लिए राजधानी से बाहर भेज दिया।

तिष्यरक्षिता चिढ़ गई। उसने अपना अपमान बोध किया और अशोक की मुहर लेकर एक जाली आज्ञापत्र उसके पास भेजवा दिया कि अपनी आँखें निकाल कर भेज दो।

पितृ-भक्त कुणाल ने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया।

वह अंधा होकर अपनी पत्नी कंचनमाला के साथ इधर-उधर घूमता रहा।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अंधे कुणाल की मर्मव्यथा को अपने 'कुणालगीत' में सूत्रबद्ध कर हिन्दी-साहित्य को एक अभूतपूर्व देन दी है।

बौद्ध-साहित्य कहता है, कुणाल गाता, भीख माँगता, कंचनमाला के साथ एक दिन अनजाने पाटलिपुत्र आ पहुँचा।

तब सारी बातें खुलीं। अशोक ने तिष्यरक्षिता को दंड दिया। कहते हैं, कुणाल को फिर आँखें भी प्राप्त हुई।

यह नाटक

किंतु, इस नाटक में कथा का अन्तिम भाग समाहित नहीं है।

कहा जा चुका है, कलाकार बाध्य नहीं है कि वह इतिहास को पूरा-पूरा, जैसे-का-तैसा, दुहराये।

यदि वह ऐसा करे, तो ऐतिहासिक इतिवृत्ति और कलाकृति में भेद ही क्या रह जाय?

पहले मैं चाहता था कि अशोक पर ही एक नाटक लिखूँ। किन्तु, जब इसके लिए मैंने आवश्यक सामग्रियों की खोज-

ढूँढ शुरू की, तो मुझे अशोक से अधिक अशोक-परिवार कलाकृति के लिए कोमल, आकर्षक जँचा।

संघमित्रा, महेन्द्र और कुणाल—तीनो के चरित को लेकर मैने तीन एकाकी लिखे। ये तीनो रेडियो से प्रसारित हुए तथा कई स्थानो पर अभिनीत भी हुए।

'नेत्रदान' कुणाल-सम्बन्धी एकाकी है।

एकाकी का यह नाम सिर्फ मौलिकता की खोज में ही नही रखा गया, बल्कि मैं इस घटना की जैसी व्याख्या रखना चाहता था, उसके उपयुक्त यही नाम था।

इस करुण घटना का मूल-स्रोत मैं कलिंग के युद्ध तक ले जाना चाहता था।

युद्ध मानवता का सदा अभिशाप रहा है। कल वह अभिशाप था, आज भी अभिशाप है और आगामी कल में भी वह मानवता के लिए अभिशाप ही रहेगा।

जो युद्ध करते हैं या कराते है, उन्हे प्रायश्चित देना होगा। चाहे आज दें, या कल देने को बाध्य हो!

सम्राट् अशोक की हिय की आँखें तुरत खुली। उन्होने प्रायश्चित देने में कोई कसर नही उठा रखी। इसीसे वह इतिहास में अमर हुए।

किंतु, उनके परिवार को भी इस प्रायश्चित में शामिल होना पड़ा!

सबसे पहले संघमित्रा और महेन्द्र को—स्वत, स्वेच्छा से। कुणाल सबसे कोमल था, अत सभी उसे बचाना चाहते थे।

किन्तु क्रूर नियति ने उससे वह प्रायश्चित वसूल किया, जिसकी किसी ने कल्पना तक नही की थी!

नाटक की रूपरेखा

बौद्ध-साहित्य कहता है, जब सम्राट् अशोक ने बुद्ध का शान्ति-धर्म स्वीकार किया, तो सिंहल-नरेश ने अपना दूत उनके पास भेज कर निवेदन किया कि इस धर्म के प्रचार के लिए वह किसी योग्य व्यक्ति को उसके देश में भेजें।

तब संघमित्रा और महेन्द्र दोनो वहाँ भेजे गये।

वही, इस बात का भी उल्लेख है कि सिंहल-नरेश ने अपनी पुत्री को उपहार-रूप में अशोक के पास भेज दिया था।

अत मैंने इस नाटक का प्रारम्भ विहार से ही किया है।

तिष्यरक्षिता पाटलिपुत्र जा रही है, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात सघमित्रा के लिए और क्या हो सकती है? वह फूली नही समा रही है, किन्तु महेन्द्र के मन में आशका जगती है।

आशका—किसके लिए?

एक दुर्बल, कोमल, असहाय प्राणी के लिए।

हाँ, कुणाल को मैंने एक कलाकार के रूप में चित्रित किया है और कलाकार से बढ़कर इस प्रपंची ससार में दुर्बल, कोमल, असहाय प्राणी और कौन है?

इसके बाद, रक्षिता पाटलिपुत्र आती है— वहीं से, जहाँ उनकी प्यारी बहन और पूज्य अग्रज है, अत कुणाल स्वभावत ही उसकी ओर आकृष्ट होता है।

और, जब उसे यह पता चलता है, रक्षिता भी कला की उपासिका है और वह एकाकीपन से घबराती है, तब ममता-वश उसका आकर्षण और बढ़ता जाता है।

दूसरे दृश्य का सार यही है।

उधर अशोक राजपाट और धर्म-प्रचार मे फँसे है, इधर एक युवक और युवती की एकान्त कला-साधना चलती है।

इसकी परिणति क्या होगी?

स्वभावत ही अब कुणाल की पत्नी कचनमाला चिंतित होती है।

कुणाल को वह जानती है, उसपर उसका विश्वास है। वह अपनी परिचारिका से कहती है—"परिचारिके, मैं कुमार को जानती हूँ। वह कला की उस सीमा तक पहुँच चुके है जहाँ वासनाओं की छाया भी नहीं पहुँच सकती। उज्ज्वलता ही जहाँ का रग होता है, पवित्रता ही जहाँ की गध होती है।"

किन्तु यह राज-परिवार ठहरा—न जाने कब क्या तूफान खड़ा हो जाय?

इसी समय कुणाल पहुँचते है और कलाकार-सुलभ सरलता में ही कुछ ऐसी बाते कह जाते है कि कचनमाला की चिन्ता भय में परिणत हो जाती है।

इसीलिए, जब पता लगता है कि कुणाल को सम्राट् बाहर भेजना चाहते है, तो वह इसे वरदान ही मान लेती है।

तीसरा दृश्य यहाँ समाप्त होता है।

चौथे दृश्य में कुणाल के बाहर चले जाने के बाद रक्षिता के हृदय में उठनेवाली प्रतिक्रियाओ के घात-प्रतिघात के चित्र प्रस्तुत किये गये है।

वह अपमान बोध करती है। फिर इसमें उसे अपने देश और अपने वर्ण के अपमान का बोध होता है—

"मै सिंहल से आई हूँ न? सिंहल में राक्षसी बसती है न?" वह आप ही आप कहती है—

"रक्षिते, तू राक्षसी है न? वे तुम्हे राक्षसी समझते हैं। . फिर क्यो कोमल भावना? जिसने मानवी रक्षिता का अपमान किया, वह राक्षसी रक्षिता का प्रकोप सहे।"

सबसे बढकर वह इस अपमान में कचनमाला का हाथ देखती है। आग में घी पडता है। वह निश्चय कर लेती है—

"चेहरे पर आँखें—कितनी सुन्दर। किन्तु, इन काली हथेलियो पर "

और इस निश्चय का फल पाँचवे दृश्य में देखिये।

कचनमाला के कधे पर हाथ रखे कुणाल पाटलिपुत्र के निकट पहुँचता है। यहाँ की हवा में, यहाँ के वातावरण में वह कुछ ऐसी चीजें पाता है जिससे उसे लगता है, वह किसी परिचित स्थान में पहुँच गया। इस हवा में गगा की—पाटलिपुत्र के निकट की गगा की—शीतलता है क्या? और, कोयल की इस काकली में आम के बौरो की गध भी घुली है क्या?

मानता हूँ, इसमें मेरा पाटलिपुत्र-सम्बन्धी पक्षपात बोलता है, किन्तु मैं अपने को इससे बचा नही सकता था।

यही पर मैंने, कुणाल की ही कलाकार-सुलभ वाणी में, उस करुण घटना का वर्णन दिया है कि किस तरह उसने अपनी आँखें स्वय निकाल कर भेजी थी।

और जब उसे पता चलता है, यह उसकी छोटी माताजी का कुचक्र था, तो वह बोल उठता है—

"तुमने सुना है न कचने, प्रेम अधा होता है। क्या कला भ अधी होती है?"

नाटक लिखते समय जो वाक्य अनायास लिख गया, उसव मार्मिकता से आज भी मैं अभिभूत हूँ।

यदि सिर्फ प्रेम और कला का द्वंद्व ही मुझे दिखाना होता, तो नाटक को यहीं समाप्त किया जाना चाहिये था। कई कला-प्रेमी मित्रों ने भी ऐसी राय दी थी।

किन्तु, मैंने कला को कभी मानसिक विलास या विहार का साधन नहीं माना।

अनावश्यक रूप से सोद्देश्यता लाना भी कला की हत्या करना है। किन्तु, उसे आवश्यकता से अधिक उन्मुक्त विचरण करने देना तो मानव-कर्तव्यों के प्रति उदासीनता दिखाना है।

छठे और अन्तिम दृश्य में हम फिर सिंहल पहुँच जाते हैं और फिर संघमित्रा और महेन्द्र के वार्तालापों में डूब जाते हैं।

इस घटना को जानकर भिक्षुप्रवर महेन्द्र भी विचलित हो उठे हैं, और जब संघमित्रा को इसकी खबर होती है, वह तो बेहोश हो जाती है।

किंतु, मानव-चेतना अन्ततः अपना ऊर्ध्वगामी रूप दिखाती है। महेन्द्र इस घटना की व्याख्या करते हैं—"कलिंग, अशोक, संघ- मित्रा—सिंहल, तिष्यरक्षिता, कुणाल ये सब एक ही घटना-शृंखला की कड़ियाँ हैं।"

नाटक के पहले दृश्य में उन्होंने कहा था—"कलिंग में हमने जो हत्यायें कीं, रक्त बहाया, अभी शायद उसका पूरा प्रायश्चित नहीं हो पाया है।"

किंतु, अब स्वीकार करते हैं—"मित्रे, कलिंग का प्रायश्चित पूरा हुआ। हमने असंख्य गर्दनें काट कर जो रक्त बहाया, उसका मूल्य हमें आँखों के रक्त से चुकाना पड़ा—सुन्दरतम आँखों के रक्त से।"

यही नहीं, महेन्द्र चाहते हैं, इस घटना से लोग पाठ ग्रहण करें—

"फिर कलिंग न बने, बहुत ठीक। लेकिन कलिंग न बने, इसके लिए एक नया संसार बनाना होगा, मित्रे! .. उठो, चलो—आँसू पोंछो, प्रयत्न में लगो। यदि एक-एक व्यक्ति अपने कर्तव्य को समझे, उसमें जुट जाय, तो फिर नया संसार बन कर रहेगा, बनकर, बनकर रहेगा।"

इन्हीं शब्दों के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाट्य-कला

किसी भी कलाकृति का निर्माण सरल और सहज कार्य नहीं। नाटक की रचना तो और भी कठिन है।

नाटक दृश्य-काव्य है। नाटक पढा भी जाता है, किन्तु उसका उद्देश्य तो होता है रगमच पर खेला जाना।

कुछ गज लम्बे-चौडे स्थान में, कुछ घडियो के अन्दर, उन सब बातो का अवतरण करना जो एक व्यक्ति या समूह के जीवन में भिन्न-भिन्न स्थानो पर, भिन्न-भिन्न समयो में घटित हुई।

फिर यदि नाटक का नायक ऐतिहासिक व्यक्ति हुआ, तो जिम्मेवारी और बढ जाती है।

कलाकार को कुछ स्वाधीनता प्राप्त है, किन्तु उस स्वाधीनता की भी सीमा है, जिसका अतिक्रमण कर वह समाज के सामने अपराधी बन जा सकता है।

अत कलाकार को पग-पग पर चौकस और सावधान रहना पडता है।

"नेत्रदान" की रचना के समय भी ऐसे प्रसग आये है।

बौद्ध-कथा के अनुसार तिष्यरक्षिता कुणाल की आँखो पर मोहित हुई।

एक नाटककार यह भी कर सकता था कि रगमच पर ही रक्षिता कुणाल से प्रणय की भीख माँगे।

कुछ रसिको को यह अच्छा भी लगता, मुझे दुख और खेद के साथ कहना पडता है कि ऐसा किया भी गया है, किन्तु क्या यह भारतीय परम्परा के अनुरूप होता?

और, आँखो पर मोहित होने का अर्थ क्या सदा वासना ही है?

मैंने अपने नाटक में इसे रहस्यमय ही रहने दिया है। आँखो पर मोहित होने की बात को सत्य मानकर उससे होने वाली भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की प्रतिक्रियाओ से मैंने भ्रमो और भ्रान्तियो का ताना-बाना बुना। और यह ताना-बाना स्वभावत ही इस करुण घटना का स्वाभाविक कारण बना।

एक स्थान पर मैंने कहा है, कला का काम उठाना है, गिराना हीन। बौद्ध युग की इस मनोरम कथा का उपयोग जिन्होने नैतिक पतन के लिए किया है, उन्होने अशोक-परिवार के प्रति महान अपराध किया है, जिसे इतिहास कभी क्षमा नही करेगा।

यो ही रगमच पर ही कुणाल से आँखे निकलवा कर एक करुण दृश्य उपस्थित कराया जा सकता था, जो दर्शको के मुँह से अचानक चीख निकलवा देता।

किन्तु, भारतीय नाट्य-परम्परा इसे भी रोकती है और मेरा विचार है, यह उचित ही है।

हाल ही मैंने पेरिस में एक प्रसिद्ध ग्रीक ट्रेजडी (शोकान्त नाटक) का अभिनय देखा था। उसमें नायक पश्चाताप में अपनी आँखें आप फोड लेता है। वहाँ भी देखा, यह आँख फोडने की क्रिया वह रंगमंच पर नहीं करता। हाँ फूटी हुई आँखों को लिए, अंधा बना, करुणा की प्रतिमा-सा, वह रंगमंच पर आता है और अपने पश्चाताप-मिश्रित हृदयोद्‌गारो से दर्शकों को भाव-विभोर बना डालता है।

जब मैं वह नाटक देख रहा था, मुझे अपने कुणाल की याद आ रही थी।

सबसे कठिन बात रही तिष्यरक्षिता की मनोवेदना के चित्रण की। वह अपनी मनोव्यथा किससे कहे? विदेश में आई एक राज-कुमारी अपनी हृदय-कथा किसके सामने उँडेले? पाटलिपुत्र की किसी सखी या परिचारिका की क्या बात, सिंहल से उसीके साथ आई किसी दासी से भी तो वह मुँह खोलकर ये बातें नहीं कर सकती थी।

अतः मैंने एक नई पद्धति से काम लिया है। नाट्य-साहित्य में यह पद्धति विरल है। अपने ही दर्पण में अपनी छाया को देखती हुई वह सारी बातें कह जाती है। इससे लम्बी स्वोक्ति सम्बन्धी ऊब भी नहीं आती और अभिनय के लिए पूरा मौका भी मिलता है।

मुझे सन्देह था, यह पद्धति रंगमञ्च पर कैसी उतरेगी। किन्तु अभी-अभी एक मित्र ने बताया है, एक विख्यात कालेज की कुछ लडकियों ने जब इस नाटक का अभिनय किया, यह दृश्य बडा ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ।

समय के अनुसार रंगमंच में और अभिनय कला में भी परि-वर्तन हो रहे हैं। मैंने इसे लिखते समय दोनों पर ध्यान रखा है।

कथोपथन

नाटक का प्राण होता है उसका कथोपकथन। यदि वह जान-दार और जोरदार नहीं रहा, तो नाट्य-कला सम्बन्धी सारी साव-धानियों के बावजूद नाटक फीका-फीका रह जायगा।

अपनी भाषा और शैली पर मुझे अनायास प्रशंसा मिल चुकी है। कथोपकथन का सम्बन्ध इससे अधिक है। यदि भाषा में प्रवाह

और शैली में बाँकपन नहीं रहा, तो कथोपकथन में जान आ नही सकती। खुरदरे वाक्य, बोझिल शैली और लम्बे-लम्बे सलाप कथोपकथन की हत्या ही कर डालते हैं। मैंने सदा ही इन दुर्गुणो से बचने की कोशिश की है।

कथोपकथन में कही, कोई ऐसा वाक्य या वाक्याश हो, जो सारे नाटक में भिन्न-भिन्न लोगो के मुँह से भिन्न-भिन्न प्रसगो में आवे, किन्तु वह किसी खास बात की ओर ही इशारा करे, तो यह तार-तम्य, समूचे शरीर में व्याप्त प्राण की तरह, उसे सचमुच प्राणवान बना डालता है।

पहले दृश्य में ही कुणाल के लिए दुर्बल, कोमल असहाय विशेषण का जो प्रयोग हुआ, वह नाटक के अन्त तक बार-बार आता है और यो सारे नाटक को एक सूत्र में बाँधता है। एक-सूत्रता नाटक की सबसे बड़ी खूबी समझी जाती है।

किन्तु, इस तरह के प्रयोग के लिए बहुत कौशल चाहिए, नही तो बार-बार का यह प्रयोग उसे भोडा भी बना दे सकता है।

यो ही यदि कथोपकथन में आगत घटना की ओर भी सकेत हो जाय, तो नाटक सजीव हो उठता है।

कुणाल की आँखो की सुन्दरता की चर्चा हो रही है कि वह कचनमाला के कक्ष में प्रवेश करता है। फिर सादगी-सादगी में बताता है, इन आँखो को छोटी माताजी बहुत पसद करती हैं और चाहती हैं वह सदा इन्हे देखती रहे। किंतु, यह कैसे हो? तुम जो हो। फिर वह कह उठता है—

"कचने, उस समय मुझे एक दिल्लगी सूझ गई। मैंने कहा, आर्ये, यदि आप इन आँखो से दूर नही रहना चाहती, तो मैं एक काम करूँ—आँखें निकाल कर आपके समर्पित करता हूँ, शरीर कचन के पास रहेगा।"

इस पर कचनमाला व्याकुल हो जाती है। और, उसकी व्याकुलता कैसी सार्थक सिद्ध होती है।

यदि स्वभावत ही कुछ सूक्तियाँ कथोपकथन में आ जायँ, तो वह आभूषण के रत्नो की तरह उसकी शोभा को और भी चमका देती हैं।

"कभी सुन्दरतम वस्तु ही ससार में सर्वनाश का कारण बन जाती है।"

"घर छोडना, पति या पुत्र छोडना उतना कठिन नहीं है, जितना सच्चे कलाकार के लिए, कला का त्याग करना—सच्चे कलाकार के लिए कला उसके जीवन की साँस होती है।"

"हँसी और रुदन जुड़वे भाई-बहन हैं।"

"जवानी की राह फिसलन-भरी है, तो उसके पैरों में शक्ति और दृढ़ता भी है।"

"बुढ़ापा—जिन्दगी की लाश!"

"जितना ही आदमी धर्म की ओर प्रेरित हो, सतत्र, उसके हृदय में कहीं उतनी ही बड़ी अशांति है!"

"हर कहने में कुछ-न-कुछ मानी छिपा भी रहता ही है।"

"खंडहर बताता है, इमारत बुलन्द रही होगी।"

"जो मानव का अपमान करता है, वह लांछन पाता ही है।"

"भिखारी के लिए नाम क्या, धाम क्या?"

"पवित्र से पवित्र धरोहरों की भी चोरी होती आई है।"

"क्या कला भी अंधी होती है?"

"ममता मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है।"

"किसी भी महान यज्ञ में सुन्दरतम की बलि देकर ही पूर्णाहुति की जाती है।"

ये सब सूक्तियाँ इस नाटक के लिए शृंगार का काम करती होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

किन्तु, सच कहता हूँ, ऐसी सूक्तियाँ प्रसंगवश आपसे आप आ गई हैं। जहाँ प्रयत्न करके सूक्तियाँ लाने की चेष्टा होगी, कथोप-कथन का सारा शीराजा बिखर जायगा!

भाषा और शैली

भाषा के रूप को लेकर हिन्दी-संसार में कुछ दिनों से एक बखेर-खाता चल रहा है।

एक जमाना था, जब हिन्दी को उर्दू से मिला-जुला कर एक नई भाषा गढ़ने की कोशिश की गई थी और उसका नाम रखा गया था——हिन्दुस्तानी!

अब हिन्दी में संस्कृत ठूँसठाँस कर एक नई भाषा गढ़ी जा रही है और इसके एक प्रबल समर्थक ने इसके लिए एक नया नाम

और शैली में बाँकपन नही रहा, तो कथोपकथन में जान आ नही सकती। खुरदरे वाक्य, वोझिल शैली, और लम्बे-लम्बे सलाप कथोपकथन की हत्या ही कर डालते हैं। मैंने सदा ही इन दुर्गुणो से वचने की कोशिश की है।

कथोपकथन में कही, कोई ऐसा वाक्य या वाक्याश हो, जो सारे नाटक में भिन्न-भिन्न लोगो के मुँह से भिन्न-भिन्न प्रसगो में आवे, किन्तु वह किसी खास वात की ओर ही इशारा करे, तो यह तार-तम्य, समूचे शरीर में व्याप्त प्राण की तरह, उसे सचमुच प्राणवान वना डालता है।

पहले दृश्य में ही कुणाल के लिए दुर्वल, कोमल असहाय विशे-षण का जो प्रयोग हुआ, वह नाटक के अन्त तक वार-वार आता है और यो सारे नाटक को एक सूत्र में वाँधता है। एक-सूत्रता नाटक की सवसे वडी खूवी समझी जाती है।

किन्तु, इस तरह के प्रयोग के लिए वहुत कौशल चाहिए, नही तो वार-वार का यह प्रयोग उसे भोडा भी वना दे सकता है।

यो ही यदि कथोपकथन में आगत घटना की ओर भी सकेत हो जाय, तो नाटक सजीव हो उठता है।

कुणाल की आँखो की सुन्दरता की चर्चा हो रही है कि वह कचनमाला के कक्ष में प्रवेश करता है। फिर सादगी-सादगी में वताता है, इन आँखो को छोटी माताजी वहुत पसद करती हैं और चाहती हैं वह सदा इन्हे देखती रहें। किंतु, यह कैसे हो? तुम जो हो। फिर वह कह उठता है—

"कचने, उस समय मुझे एक दिल्लगी सूझ गई। मैंने कहा, आर्ये, यदि आप इन आँखो से दूर नही रहना चाहती, तो मैं एक काम करूँ—आँखें निकाल कर आपके समर्पित करता हूँ, शरीर कचन के पास रहेगा।"

इस पर कचनमाला व्याकुल हो जाती है। और, उसकी व्या-कुलता कैसी सार्थक सिद्ध होती है।

यदि स्वभावत ही कुछ सूक्तियाँ कथोपकथन में आ जायँ, तो वह आभूषण के रत्नो की तरह उसकी शोभा को और भी चमका देती हैं।

"कभी सुन्दरतम वस्तु ही ससार में सर्वनाश का कारण वन जाती है।"

ससार के जितने वडे साहित्य-स्रष्टा हुए है, उनकी भापा ऐसी रही है कि साधारण जन भी उसका स्वाद ले सके।

फिर, मुझे यह सदा याद रहा है कि मेरी रचनाये सबसे पहले मेरे बाल-बच्चे ही पढा करते है। छपती तो है ये पीछे, मूल प्रति के रूप में ही वे उसे पढने के लिए छीना-झपटी करने लगते हैं।

अत भापा में सरलता और भावो मे शिष्टता का मुझे सदा स्मरण रहा है।

फिर एक बात और ! चूँकि मैं भापा का आदि-स्रोत जनता को मानता हूँ, अत जनता में प्रचलित शब्दो और मुहावरो को लेने मे मुझे जरा भी झिझक नही रही है।

यह मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि विहार की जनता की जिह्वा पर चढे और मँजे मँजाये कितने शब्दो और मुहावरो को मेरी रचनाओं द्वारा साहित्य मे प्रवेश करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है !

"नेत्रदान" में भी ऐसे शब्दो और मुहावरो की कमी नही है।

मैं चाहता हूँ, यह मेरी हार्दिक कामना है, कि विहार की अगली पीढी के लोगो में यह प्रवृत्ति दिन-दिन बढे।

रही शैली की बात। शैली तो व्यक्तित्व का एक अंग होती है। व्यक्तित्व के विकास के साथ ही शैली का विकास होता है। होते-होते वह दिन भी आता है कि विना नाम-मुहर के भी लाखो के बीच, व्यक्तित्व की ही तरह, शैली भी आप से आप पहचानी जा सकती है।

यह मेरा दूसरा सौभाग्य है कि मेरी शैली भी हिन्दी ससार मे एक विशिष्ट स्थान बना सकी है।

छोटे-छोटे वाक्य, चलते-फिरते मुहावरे, साफ-सुथरे शब्द, यहाँ तक कि छोटे-छोटे पैराग्राफ को मैं उत्तम शैली के प्रमुख उपादान मानता हूँ।

शैली अभ्यास खोजती है। और व्यक्तित्व के निर्माण की तरह शैली का निर्माण भी प्रारम्भ मे कुछ पथ-प्रदर्शन चाहता है।

यह धृष्टता मैं नही कर सकता कि मेरी शैली का अनुसरण किया जाय, सिर्फ यही कहूँगा कि यदि प्रारम्भ मे ही ऐसी चेष्टा की जाय तो हर व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त शैली का निर्माण कर सकता है।

मैं अपनी भावी पीढी से यह भी आशा करता हूँ कि वह इस ओर भी सदा सचेष्ट रहेगी।

एकांकी

चलते-चलाते यह भी जान लेना है कि यह नाटक का छोटा रूप एकाकी है।

जिस तरह काव्य के वाद खडकाव्य की ओर प्रवृत्ति बढी और उपन्यास की जगह कहानियाँ ले रही हैं, उसी प्रकार नाटक के क्षेत्र में एकाकी भी अपने लिए स्थान वना रहा है।

समय और सुविधा, दोनो ही लोगो की प्रवृत्ति को छोटी चीजो की ओर खीच रहे हैं।

नाटक में कई अक होते हैं, एक-एक अक में कई दृश्य होते हैं—यद्यपि अव रगमच पर ध्यान देकर एक ही दृश्य मे एक अक समाप्त करने की चेष्टा की जाती है।

किन्तु, एकाकी में एक ही अक होता है और उसी के अन्दर कई दृश्यो में उसे समाप्त किया जाता है।

जहाँ नाटक में कथा का फैलाव होता है, पात्रो की भरमार होती है, वहाँ एकाकी में किसी वडी घटना का एक ही पक्ष ले लेते हैं और उसे कुछ ही पात्रो द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

हिन्दी में धीरे-धीरे एकाकी नाटको का चलन बढता जा रहा है।

खास कर स्कूलो और कालेजो के लिए तो एकाकी वहुत ही उपयुक्त होता है, क्योकि थोडे से पात्र-पात्रियो और कम सावनो से ही इन्हे खेल लिया जा सकता है।

अव्ययन-अध्यापन में भी एकाकी में वहुत सुविधायें हैं।

कोमलमति किशोरो के मस्तिष्क में एकवारगी अनेक पात्रो के चरित भरने की चेष्टा उन्हे भ्रमजाल में डाल दे सकती है। एकाकी द्वारा पहले उनमें नाटक के प्रति रुचि पैदा की जाय, फिर उनके सामने पूरे नाटक रखे जायें।

यो तो मै मानता हूँ कि ऐसे नाटक भी हो सकते हैं, जो अनेक अको और दृश्यो के वावजूद किशोरो के लिए वहुत ही उपयुक्त हो और उन्हे भी कम सावनो के साथ खेला जा सकता हो।

'नेत्रदान' का जो विषय है, उसपर वडे-वडे काव्य, आख्यान,

नाटक लिखे जा सकते हैं—लिखे भी जायेंगे। किन्तु मैंने जान-बूझ कर इसे एकांकी में ही भरने की कोशिश की है।

गागर में सागर भरना आसान नहीं है, किन्तु यदि इसमें सफलता मिली, तो यह एक कमाल ही माना जा सकता है।

कमाल का मेरा दावा नहीं, किन्तु मुझे इसका सन्तोष अवश्य है कि 'नेत्रदान' ने इस करुण घटना को एक नये रूप में अवश्य प्रस्तुत किया है।

यह दीवाल पर की बड़ी और बहुरंगी चित्रकारी नहीं, किन्तु हाथी दाँत पर की एक छोटी-सी चमकती तस्वीर जरूर बन गई है।

अन्त में

मेरी आँखों के सामने दुनिया का जो नक्शा है, वह बड़ा ही सुन्दर और मोहक है।

गेहूँ से गुलाब की ओर—एक वाक्यांश में वह नक्शा यह है।

मेरा विश्वास है आज जो अन्नाभाव है, नंगापन है, गरीबी है, गंदगी है, अज्ञान है, अविचार है, स्वतन्त्र भारत में, हम सबके प्रयत्नों से, ये सब शीघ्र दूर होंगे।

और, इनके स्थान में सुख, ऐश्वर्य, स्वास्थ्य, स्वच्छता, ज्ञान-विज्ञान, कला-साहित्य सबकी दिन-दिन वृद्धि होती जायगी।

यही दुनिया मेरी गुलाब की दुनिया होगी—जहाँ चारों ओर मस्ती होगी, आनन्द होगा, उल्लास होगा, हास्य होगा।

आज हमें फुर्सत कहाँ कि आनन्द भी मना सकें। किन्तु, उन दिनों हम अधिकाधिक इस ओर प्रवृत्त होंगे।

तब हम अधिक कविता चाहेंगे, संगीत चाहेंगे, नाटक चाहेंगे, नृत्य चाहेंगे।

जैसा शुरू में ही कह चुका हूँ, बिहार के लिए यह सौभाग्य की बात है कि उसका प्राचीन इतना महान और रंगीन है कि उसके बेटों और बेटियों को इन सबके लिए पात्र या पात्रियाँ चुनने में कठिनाई नहीं होगी।

हमारा प्राचीन इतिहास सदा भारतीय साहित्य को उत्तमोत्तम पात्र और पात्रियाँ देता रहा है। यह हमें भी देता रहेगा।

अभी हमारे इतिहास के कितने ही सुनहले पृष्ठ बंद ही पड़े

है। किन्तु, जिनपर रचनायें हो चुकी हैं, मुझे लगता है, हमें फिर से उनपर भी अपनी कलम या कूचीं का प्रयोग करना पड़ेगा।

दो उदाहरण लीजिये—सीता और चन्द्रगुप्त।

एक भवभूति को बाद दीजिये, तो क्या सीता की करुण कथा को उस गौरव के अनुरूप चित्रित किया जा सका है, जिसकी वह अधिकारिणी है।

और, क्या यह बात नही है कि चन्द्रगुप्त के नाम से आज तक चाणक्य की महत्ता का ही चित्रण होता रहा?

मेरा विश्वास है, बिहार की आनेवाली पीढ़ी अपने पूर्वजो की कीर्ति को उनके गौरव के अनुरूप ही नाना रूपो में ढालेगी।

'नेत्रदान' उस सुनहले भविष्य की ओर एक अंगुलि-निर्देश मात्र है।

यदि इसने ऐसी प्रेरणा हमारे किशोरो और किशोरियो में भरी, तो समझूँगा, मेरी मेहनत सफल हुई।

पात्र-पात्रियाँ

पात्र

कुणाल

सम्राट् अशोक का कनिष्ठ पुत्र

महेन्द्र

सम्राट् अशोक का ज्येष्ठ पुत्र

पात्रियाँ

संघमित्रा

सम्राट् अशोक की पुत्री

तिष्यरक्षिता

सिंहल-नरेश की पुत्री, अशोक की नई रानी

कंचनमाला

कुणाल की पत्नी

परिचारिका

पहला दृश्य

[सिंहल-द्वीप का एक संघाराम। रात काफी बीत चुकी है। भक्तों की भीड़ छँट गई है।

संघाराम के मध्य-भाग में स्थित भिक्षु महेन्द्र का विहार। महेन्द्र अपने आसन पर अर्द्धध्यानावस्थित अवस्था में बैठे हैं। उनसे थोड़ी दूर पर भिक्षुणी संघमित्रा बैठी हैं।

विहार के एक कोने में एक दीप-दंड पर शत-वर्तिका दीप जल रहा है। उसकी कुछ वर्तियाँ बुझ चुकी हैं। शेष की लौ भी धीरे-धीरे धीमी होती जा रही है।

महेन्द्र की पलकें जरा हिलती हैं। संघमित्रा उनसे पूछती है—]

संघमित्रा—कुछ सुना है भैया ?

महेन्द्र—(कुछ बोलते नहीं, आँखें कुछ खुलती-सी)

संघमित्रा—सुना है भैया, रक्षिता को

महेन्द्र—(आँखें खोलते हुए) क्या ?

संघमित्रा—राजकुमारी रक्षिता को सिंहल-नरेश पाटलिपुत्र भेज रहे हैं।

महेन्द्र—(जैसे चौंककर) रक्षिता को ? पाटलिपुत्र ?

संघमित्रा—हाँ, भैया ! सिंहल-नरेश महाराज तिष्य, अपनी एक मात्र प्यारी पुत्री रक्षिता को, पिताजी की सेवा में, पाटलिपुत्र भेज रहे हैं।

महेन्द्र—क्या कह रही हो, मित्रे ?

संघमित्रा—हाँ, हाँ भैया, रक्षिता पाटलिपुत्र जाने वाली है। अभी सन्ध्या समय उसकी एक परिचारिका संघाराम में आई थी—हमारी संध्या-अर्चना में सम्मिलत होने। अर्चना के बाद, उसने मुझे एकान्त में बताया—यद्यपि इसकी सूचना अभी जनसाधारण को नहीं दी गई है, किन्तु सिंहल-नरेश ने यह निश्चय कर लिया है और रक्षिता को यात्रा की तैयारी करने का आदेश भी दे दिया है।

महेन्द्र—(लम्बी साँस के साथ) हूँ!

संघमित्रा—(साश्चर्य) भैया, यह लम्बी साँस, यह हूँ! क्या आप को इस समाचार से प्रसन्नता नहीं हुई भैया! मैं तो, जब से यह खबर मिली, आनन्द-विह्वल हुई जा रही हूँ! अहा! रक्षिता पाटलिपुत्र जा रही है। पाटलिपुत्र—हमारी प्यारी राजधानी, जिसके चरणों को स्वयं गंगा-मैया, अपनी सारी सहायक नदियों से राजस्व लेने के बाद, दिन-रात पखारा करती है—जिसके नागरिक-नागरिकाओं के सारे शारीरिक और मानसिक कलुषों को धो-धोकर वह उन्हें शाश्वत जीवन और यौवन प्रदान करती है! अहा, हमारा पाटलिपुत्र! भैया, हमारे उस नगर में कितना जीवन है, यौवन है।

महेन्द्र—हाँ, जीवन है, यौवन है! (फिर उसाँस लेते हैं)

संघमित्रा—(कल्पना के उछाह में उसाँस पर ध्यान न देती हुई) और, भैया, उस जीवन और यौवन में जब रक्षिता की कला का समावेश होगा! अहा! सिंहल की कला से पाटलिपुत्र और भी सुन्दर, सुखद और मुखर हो उठेगा, भैया! आपने देखा है न? रक्षिता—कैसी नाचती है, कैसी गाती है, कैसी बजाती है! और वह सुन्दर भी कितनी है, भैया?

महेन्द्र—पगली! कभी सुन्दरतम वस्तु ही संसार में सर्वनाश का कारण बन जाती है!

संघमित्रा—(चौंकती हुई) सर्वनाश सुन्दरतम वस्तु भैया, आप यह क्या कह रहे हैं?

महेन्द्र—कोई विशेष बात नहीं— संसार का एक प्रकटतम तथ्य-मात्र! सोचो न—कहीं रक्षिता के ये गुण ही पाटलिपुत्र के लिए अमंगल सिद्ध हो गये तो?

संघमित्रा—(भयग्रस्त-सी) अमंगल! रक्षिता के ये गुण अमंगल! उफ़, मैं तो सोच रही थी कि अच्छा ही हुआ कि जब पिताजी

ने मुझे यहाँ भेजा, तो महाराज तिष्य अपनी पुत्री को पाटलिपुत्र भेजें ! शिष्टाचार का नियम भी तो . . .

महेन्द्र—(बीच में ही बात काटकर) शिष्टाचार का नियम। मित्रे, क्या तुम इतना भी नहीं देख पाती कि तुम्हारे यहाँ आने और रक्षिता के वहाँ भेजे जाने में क्या अन्तर है? तुम यहाँ आई थी तथागत के शान्ति-धर्म का प्रचार करने, भिक्षुणी बनकर ! किन्तु रक्षिता क्यों भेजी जा रही है, किस रूप में भेजी जा रही है? वह भिक्षुणी बनाकर नहीं भेजी जा रही, यह तो स्पष्ट ही है।

संघमित्रा—हाँ, यह बात तो है भैया ! तो भैया, क्या आपको इसकी खबर पहले से थी ?

महेन्द्र—थी ! महाराज तिष्य ने मुझसे इस बारे में राय ली थी। मैंने उदासीनता प्रकट की। इस उदासीनता को उन्होंने मेरा संकोच मान लिया। किन्तु, मित्रे, तब से मैंने जितना ही सोचा है, मुझे चिन्ता ही चिन्ता हो रही है। रक्षिता वहाँ भिक्षुणी बनाकर नहीं भेजी जा रही है। वह युवती है, सुन्दरी है, कला की आचार्या है। भले ही वह सम्राट् की सेविका कहकर भेजी जा रही हो, किन्तु, यदि उसमें महत्वकांक्षा जगे (रुक जाते हैं)

संघमित्रा—महत्त्वकांक्षा जगे ? (चौंकती-सी) और, वह सम्राज्ञी बनना चाहे ! क्यों भैया ? (साश्चर्य) ओहो, रक्षिता हमारी माताजी की सौत बनेगी ? सौत

महेन्द्र—हमारी माताजी की सौत ! ह-ह-ह (उपेक्षा की हँसी) मित्रे, रक्षिता क्या खाकर उनकी सौत बन सकेगी ? हाँ, सम्राज्ञी वह बन सकती है। जिस पद को पैरों से ठुकराकर माताजी विदिशा जा बैठी हैं, रक्षिता उस जूठी पत्तल को पाटलिपुत्र में चाट सकती है। इसके लिए माताजी को तनिक भी दुःख नहीं होगा, और न यह मेरे, तुम्हारे या किसी और के लिए चिन्ता का विषय है।

संघमित्रा—तो और किस बात की चिन्ता हो सकती है, भैया ?

महेन्द्र—पिताजी वृद्ध हैं,—दिन रात धर्म-कार्यों में रत, शासन-कार्यों में व्यस्त ! वह घरेलू मामलों में न ध्यान देते हैं, और न देंगे। इधर क्या रक्षिता सम्राज्ञी बनकर ही सन्तुष्ट हो जायगी ? वह युवती है, सुन्दरी है, कला की आचार्या है ! कला ! सौन्दर्य ! यौवन !—तीन-तीन अमोघ अस्त्र ! कुछ भी अनर्थ हो सकता है, मित्रे!

संघमित्रा—कला, सौन्दर्य, यौवन !—हाँ, कुछ भी अनर्थ हो सकता है, भैया ! (भयभीत-सी होती है)

महेन्द्र—किन्तु, इस प्रसग मे पिताजी को नही लाना, और न मै साम्राज्य के लिए ही कोई सकट देख रहा हूँ। पिताजी सासारिकता से बहुत ऊँचे उठ चुके हैं और मौर्य-साम्राज्य की नीव अब शेष-नाग की पीठ तक जा चुकी है। मुझे कुछ चिन्ता है, तो एक दूसरे ही कोमल, दुर्बल, असहाय प्राणी के लिए !

सघमित्रा—दुर्बल ? कोमल ? असहाय ? (आश्चर्य में) वह कौन प्राणी है, भैया ?

महेन्द्र—तुम भूल गईं उसे ?

सघमित्रा—(स्मरण की चेष्टा में) दुर्बल, कोमल

महेन्द्र——कुणाल !

सघमित्रा— (जैसे चिल्ला पडती हो) कुणाल भैया ! दुर्बल . कोमल असहाय ! हाँ कुणाल भैया कोमल हैं, दुर्बल हैं, असहाय हैं— उन्हें माताजी ने छोड दिया, हमने छोड दिया—हाँ, हाँ, दुर्बल, कोमल, असहाय ! क्या रक्षिता उनपर प्रहार करेगी भैया ?

महेन्द्र—सिंह के शिकार से लौटा हुआ शिकारी रास्ते मे हिरन पाकर उसे नही छोडता, मित्रे ! दुर्बल, कोमल, असहाय सदैव दया ही नही उत्पन्न करते, हिंस्र प्रवृति को भी उद्दीप्त करते हैं।

सघमित्रा—ओह, भैया, भैया, इसे रोकिये, रोकिये ! कुणाल भैया को बचाइये, बचाइये !

महेन्द्र—(गम्भीर होकर) मित्रे, हम एक अजीव युग से गुजर रहे हैं। बहुत-सी असम्भव घटनायें, हमारी-तुम्हारी आँखो के सामने, घट चुकी। क्या हम-तुम उन्हें रोक सके ? उलटे हमी उनके प्रवाह में बह गये। शायद घटनाओ का वही स्रोत बेचारी रक्षिता को घसीट कर पाटलिपुत्र ले जा रहा है ! रह-रहकर चिन्तायें आ घेरती हैं, किन्तु इन बातो में ज्यादा सिर खपाना क्या हमारे भिक्षु-जीवन के लिए उपयुक्त है ? हम अपने कर्तव्य-पथ पर बढते चले, देखें, युग-प्रवाह हमें क्या-क्या दिखाता है !

सघमित्रा—उफ्, कुणाल भैया ! दुर्बल, कोमल, असहाय
ओह ! ओह ! (मुँह ढँककर सिसकियाँ लेती है)

महेन्द्र—मित्रे, चिल्लाने से, रोने-धोने से कुछ नही होने-जाने

का। कलिंग में हमने जो हत्यायें की, रक्त बहाया, अभी शायद उस का पूरा प्रायश्चित नहीं हो पाया है! पिताजी चेष्टा में लगे हैं, हम-तुम अपने को तपा रहे हैं किन्तु! . किन्तु! किन्तु, छोडो इन बातो को। जाओ, अपने विहार में जाओ, सोओ। रात काफी बीत चुकी है। शतवर्त्तिका की सभी वतियां बुझ चुकी, सिर्फ एक बाकी है, उसे भी बुझाती जाओ .

[संघमित्रा आंसू पोंछती हुई उठती है। दीपक की ओर बढती है। उसकी आंखों से अचानक आंसुओं की धारा फूट पडती है। जब वह झुक कर दीपक बुझा रही है, आंसू की एक बूंद उसकी लौ पर गिरती है—दीपक बुझ जाता है— वह चीख उठती है— घोर अन्धकार!]

दूसरा दृश्य

[पाटलिपुत्र का राजप्रासाद। तिष्यरक्षिता का विलास-कक्ष। संगीत के साधन-उपसाधन इधर-उधर सजा कर रखे गये है। बीच में रक्षिता बैठी है—शृंगार-प्रसाधनो से मंडित। सामने कुणाल बैठा है। रक्षिता के मुख-मण्डल पर हार्दिक उथल-पुथल की छाया। कुणाल के चेहरे पर सादगी और सौम्यता खेल रही है]

कुणाल—तो, भैया वहां क्या करते है आर्ये?

रक्षिता—आपके भैया! कुमार, वह, वह क्या मनुष्य हैं? नही, नही वह तो देवता हैं। सारा सिंहल उन्हे देवता की तरह पूजता है। और क्यो न पूजे? क्या उनका व्यवहार साधारण भिक्षु-सा होता है? वह तो एक साथ ही भिक्षु, चिकित्सक, सेवक—क्या-क्या नही है? जहां कही अज्ञान है, पीडा है, दुःख है, शोक है, वहां भिक्षु महेन्द्र उपस्थित! अभी उस साल हमारे देश में महामारी फैली— अपने को अपना नही पूछता था! किन्तु, आपके भैया!—अहा! कही दवा दे रहे, कही परिचर्या कर रहे!—गन्दगियो को अपने हाथ से धोने और शवो को ढोकर उनका अन्तिम सत्कार करने में भी उन्हे संकोच नही होता था। आप जुटे थे, भिक्षुओं को जुटाया था। सारा सिंहल उनके धन्य-धन्य से गूंज उठा!

कुणाल—मेरे भैया ऐसे ही है आर्ये! वह जिस ओर मुडेंगे, कमाल कर दिखायेंगे। भैया! (भावनाविभोर होकर प्रणाम करता हुआ) प्रणाम भैया! और मेरी मित्रा—आपलोगो की सघमित्रा———वह क्या करती रहती है, आर्ये?

रक्षिता—देवी सघमित्रा, सारे सिंहल की आराध्या बन चुकी हैं। उनके शील और सेवा पर सारा सिंहल मुग्ध है। सव कहते हैं, कैसा होगा वह देश, जिसमें देवी सघमित्रा जैसी नारियाँ उत्पन्न होती है?

कुणाल—आह, मेरी नन्ही वहन! (लम्बी साँस लेता है)

रक्षिता—कुमार, सघमित्रा जैसी वहन पर क्या 'आह' करने की आवश्यकता है? ऐसी वहन तो ससार में सबको मिले———जो कुल को उज्ज्वल करे, देश को उज्ज्वल करे, विदेश को उज्ज्वलता दे! देवी सघमित्रा को देखकर ही तो मुझे आपके देश में आने की प्रेरणा मिली! उनकी स्मृति से ही मेरा सिर झुक जाता है, कुमार! (हाथ जोडकर प्रणाम करती है)

कुणाल—आह, मित्रा ने क्या-क्या नही छोडा? खिलौने-सा पुत्र, देवता-सा पति, स्वर्ग-सा घर! किन्तु, यह तो सव कोई जानते है। आर्ये, मेरी समझ में मित्रा का सबसे वडा त्याग था, अपनी कला का सदा के लिए परित्याग कर देना! घर छोडना, पति या पुत्र छोडना उतना कठिन नही है, जितना सच्चे कलाकार के लिए कला का त्याग करना। सच्चे कलाकार के लिए, उसकी कला जीवन की साँस होती है। आर्ये, सिंहल ने मेरी वहन का सिर्फ ढाँचा-मात्र पाया है, अपने प्राण को वह यही गगा-मैया को समर्पित कर गई! उफ्, उस दिन अपने सारे वाद्य-यन्त्रो और सगीत-साधनोको किस प्रकार उसने निर्ममता से गगा के जल में डाल दिया———एक-एक कर उन्हे उठाती, चूमती, सिर से लगाती और फिर काँपते हाथो से (आँखो में आँसू आ जाते है, गला रुँध जाता है)

रक्षिता—(उसकी आँखें भी छलछला आती है) हाँ, कुमार, कलाकार के लिए सबसे वडा त्याग है कला का परित्याग! इतना वडा त्याग कर ही तो देवी सघमित्रा ने अपने को इतिहास के लिए अमर वना लिया है! देवी सघमित्रा कभी गाती, वजाती और नाचती भी होंगी, इसका अनुमान तो वहाँ मुझे प्राय होता था। साधारणत चलते-फिरते समय भी, मैं उनके पदो में एक सूक्ष्म प्रकार

की समगति पाती थी, उनकी मामूली बातचीत में भी अद्भुत स्वर-सधान का अभ्यास मिलता था, और उनकी उँगलियाँ, जहाँ भी ताल और लय मिले, वहाँ सहज ही नृत्यशील हो उठती थी। सचमुच, कला सच्चे कलाकार के लिए जीवन की साँस होती है, कुमार!

कुणाल—आप ही इसे अच्छी तरह समझ सकेगी, क्योकि आप भी कलाकार है न? (सगीत-साधनो पर दृष्टि डालते हुए) आप अपना देश छोड आई, किन्तु, क्या इन्हे छोड सकी?

रक्षिता—आह, इन्हे छोड पाती! (उसाँस लेती है)

कुणाल—क्यो? इनमे तो कुछ मन ही बहलता होगा!

रक्षिता—कुमार, कला अपने लिए वातावरण चाहती है! यहाँ तो

कुणाल—हाँ, हाँ, भैया कहा करते थे, यह राजप्रासाद नहीं, बौद्ध-विहार हो चला है! जब से मित्रा गई, यह तो पूरा बौद्ध-विहार हो गया है! मैने भी गाना-बजाना छोड दिया है, आर्ये!

रक्षिता—छोड चुके होगे! देवी सघमित्रा ने छोड दिया आपने

कुणाल—नही, नही आर्ये! कहाँ मित्रा, कहाँ मै! वह महाप्राण थी और मै दुर्बल। आह, जब कभी बादल गरजते है, पिकी कूकती है, भौंरे गूंजते है, कलियाँ चटखती है—हृदय आकुल हो उठता है! कण्ठ में एक सुरसुरी, अँगुलियो में एक तरह की झिन-झिनी अनुभव करने लगता हूँ! कहाँ मित्रा, कहाँ मै! वह महाप्राण, मै दुर्बल

रक्षिता—सभी कलाकार दुर्बल और कोमल होते है, कुमार!

कुणाल—दुर्बल और कोमल! हाँ, हाँ, आपको यह वातावरण खलता होगा।

रक्षिता—इसे तो मैने स्वय अपनाया है, फिर मै क्या शिकायत करूँ? क्यो करूँ? किन्तु (आँखें भर आती है)

कुणाल—आपकी स्थिति का कुछ अनुभव कर सकता हूँ, देवी! देश से दूर—स्वजन-परिजन से दूर .

रक्षिता—(व्याकुल होती है) कुमार—कुमार! यह बात मत बढाइये। मै इसे भुलाने की कोशिश में हूँ कुमार! उफ्, कभी-कभी ऐसा लगता है, कलेजा मुँह को आ रहा हो! यह एकान्त,

यह गला दबोचनेवाला सन्नाटा आह! (आँखो की अश्रुधारा आँचल से पोछती है)

कुणाल—तो आर्ये, एक निवेदन ! क्यो न मै कभी-कभी आ जाया करूँ और संगीत-साधना में आपका कुछ साथ दूँ ? कला हमारी ढाल, हमारी रक्षक भी तो है !

रक्षिता—(कुछ प्रसन्न मुद्रा में) कुमार, कुमार ! हम कलाकार एक दूसरे के हृदय के कितने निकट होते है ! आपने तो जैसे मेरी बात ही छीन ली। किन्तु, कुमार छोडिये ! उसे भुलाने ही दीजिये ! जिस घाव को भरना है, उसे फिर कुरेदने से (अचानक रुक जाती और उर्ध्व में देखने लगती है)

कुणाल—देवि ! एक बात कहूँ। इसमें मेरा स्वार्थ भी है ! आपके निकट जब-जब आता हूँ, मालूम होता है, अपने भाई-बहन के निकट पहुँच गया ! लगता है, भैया ने, मित्रा ने आपको अपना प्रतीक बनाकर यहाँ भेजा है ! आर्ये, आप कल्पना नही कर सकती कि भैया मुझे कितना मानते थे ! और मित्रा वह मुझसे कभी दूर होती थी, आर्ये ! मालूम होता था, जैसे हम जुडवे भाई-बहन है—— बचपन में एक साथ खाया, सोये, जवानी में एक साथ गाया, रोये !

रक्षिता—रोये ?

कुणाल—(हँसकर) हाँ, हाँ आर्ये, हम कभी-कभी साथ-साथ रो भी लेते थे। हँसी और रुदन भी जुडवें भाई-बहन है न आर्ये ! क्यो ? (मुस्कुराता है)

रक्षिता—(उदास होकर) भगवान किसी को रुदन न दें।

कुणाल—(उसी तरह मस्ती में)किन्तु, उससे बचा कौन है आर्ये ! देख रहा हूँ, वह रह-रहकर आपकी आँखो में भी झाँक जाता है। वह वह वह ! (उँगली से रक्षिता की डबडबाई आँखो की ओर इंगित करता हुआ मुस्कुराता है)

रक्षिता—(गहरी साँस लेती हुई) ओह, कुमार ! इसकी चर्चा मत कीजिये कुमार ! (हाथो से आँखें ढाँप लेती है)

तीसरा दृश्य

[कंचनमाला का कक्ष। वह विषण्ण, विह्वल-सी बैठी है। रह-रहकर उसाँसे लेती है। परिचारिका आती है। धीरे-धीरे वह कंचनमाला के निकट पहुँचती है]

परिचारिका—देवि, इधर आप बहुत उदास . . .

कंचन—(बीच ही में बात काटकर) कुमार कहाँ है?

परिचारिका—छोटी सम्राज्ञी के कक्ष में होंगे भद्रे! हाँ, हाँ, वही हैं! सुनिये न, वह संगीत-ध्वनि . . . (संगीत की झंकार सुनाई पड़ती है)

कंचन—यह दिन-रात का संगीत!

परिचारिका—अच्छा है, भद्रे, अच्छा है! मंत्रों की बुद-बुदाहट से कान पक गये थे—अच्छा हुआ छोटी सम्राज्ञी ने फिर से इस घर में संगीत-नृत्य की प्रतिष्ठा की। आपको भी तो संगीत बहुत प्रिय था भद्रे! आप भी इनमें क्यों नहीं सम्मिलित होती? देवि! आपका और कुमार का सम्मिलित गीत-नृत्य देखे-सुने तो कितने दिन हो गये!

कंचन—परिचारिके, पिछली बातों को मत छेड़। गया हुआ आदमी लौट भी आये, जो दिन गये—गये!

परिचारिका—(गम्भीर होकर) अन्धी नहीं हूँ भद्रे! सब कुछ देख रही हूँ। हाँ, बात कुछ सीमा से बाहर जा रही है! तो आप कुमार से क्यों नहीं कहती कि मर्यादा का अतिक्रमण . . .

कंचन—क्योंकि मैं कुमार को जानती हूँ। कुमार कलाकार है, कलाकार बीच में रुक नहीं सकता! कलाकार को सबसे अधिक आनन्द मिलता है सीमा का अतिक्रमण करने से। कलाकार—सीमा का शत्रु! (कुछ रुक-रुककर, सोचकर) शायद यह उसके लिए आवश्यक भी हो! यदि वह ऐसा न करे, तो कला की अभिवृद्धि ही रुक जाय—वह जहाँ-की-तहाँ खड़ी रहे, या चक्कर काटे! एक नई धुन, एक नई गत, एक नई रेखा, एक नया रंग, एक नई उक्ति, एक नई उपमा—इनके लिए कलाकार की आत्मा छटपटाती रहती है। सिंहल की इस युवती ने कुमार के सामने कला का एक नया सागर लहरा

दिया है—रग नया, तरगे नई। कुमार उन तरगो से खेल रहे हैं—क्या उन्हे इससे रोका भी जा सकता है? (दीर्घ उच्छ्वास लेती है)

परिचारिका—किन्तु, राजभवन में तरह-तरह की बातें

कचन—वे सारी बातें झूठी होगी, परिचारिके! मैं कुमार को जानती हूँ। वह कला की उस सीमा तक पहुँच चुके हैं, जहाँ वासनाओ की छाया भी पहुँच नही सकती। उज्ज्वलता ही जहाँ का रग होता है, पवित्रता ही जहाँ की गन्ध होती है! कुमार नही, नही। कुमार की ओर से मुझे तनिक भी आशका नही है परिचारिके! तो भी, न जाने क्यो, मुझे बार-बार लगता है, जैसे यह कुछ अच्छा नही हो रहा। लगता है, क्षितिज के किसी अदृश्य छोर पर कही आँधी पल रही है! उफ्!

परिचारिका—देवि, क्षमा कीजिये तो मैं कहूँ।

कचन—बोल

परिचारिका—(कचनमाला की ओर देखती रह जाती है)

कचन—बोल, बोलती क्यो नही?

परिचारिका—भद्रे, नई सम्राज्ञी को जब-जब देखती हूँ, मुझे बार-बार उस काली सर्पिणी की याद आ जाती है, जो उस रात अचानक प्रासाद के प्रागण में निकल आई थी—वैसा ही रग, वैसी ही चमक, वैसा ही चपल सारा शरीर, जैसे भीतर के जहर से काँप रहा हो! वही गर्दन, वही दृष्टि—जैसे कही किसी का मर्म ढूँढा जा रहा हो। (व्याकुल होकर) देवि, देवि, कुमार को वहाँ जाने से रोकिये!

कचन—(गम्भीरता से) जानती हूँ, सखि, वह आग से खिलवाड कर रहे हैं। किन्तु, उस जिद्दी हठी बच्चे को रोक रखना क्या इतना आसान है? क्या करूँ, समझ में नही आता। चिन्ता खाये जा रही है। समझाती हूँ, तो कहते हैं,—तुम स्त्रियाँ बडी ईर्ष्यालु होती हो! स्त्रियाँ ईर्ष्यालु! किन्तु, भूल जाते हैं कि स्त्रियाँ ईर्ष्यालु होती हैं तो क्यो? क्योकि वह अपनी जाति के सबल तत्व को जानती हैं और जानती हैं पुरुष-हृदय के उस दुर्बल स्थान को, जहाँ प्रहार किये जाने पर, यह भारी भरकम जानवर औंधे मुँह गिर पडता है! सोचो न, स्त्रियो की आँखो के एक बूँद पानी ने ही क्या-क्या न किया-कराया है!

परिचारिका—बहुत सही कह गई भद्रे ! फिर जवानी की राह —फिसलन-भरी !

कंचन—(क्रोध की मुद्रा में) जवानी को बहुत बदनाम किया गया है परिचारिके ! जवानी की राह फिसलनभरी है, तो उसके पैरो में शक्ति और दृढता भी है ! मुझे तो बुढापे से डर लगता है !

परिचारिका—बुढापे से !

कंचन—हाँ, बुढापे से ! जो भोग नही सकता, किन्तु छोड भी नही सकता ! जिसकी अशक्तता जलन की धूनी रमाये रहती है ! जो अपने को भुलाने के लिए तरह-तरह का उपचार खोजता है, किन्तु पाता नही ! बुढापा जिन्दगी की लाश

परिचारिका—देवि, देवि, आप किधर लक्ष्य कर रही है ? क्या आपको सम्राट् से .

कंचन—हाँ, मुझे सम्राट् से भय है ! भय है, स्वय सम्राट् शायद यह पसन्द न करे कि कुमार और सिंहल-कुमारी इस प्रकार दिन-रात एक साथ रहा करे।

परिचारिका—ओह, आप यह क्या कह रही है ? सम्राट् को तो धर्म-चर्चा . .

कंचन—परिचारिके, इस प्रसग पर हमें कुछ कहने का अधिकार नही है ! लेकिन एक बात याद रख–जितना ही आदमी धर्म की ओर प्रेरित हो, समझ, उसके हृदय में कही उतनी ही अशान्ति है ! और, उस अशान्ति से जलते हृदय में, जिस दिन निराश किशोरी का भग्न हृदय, प्रतिहिंसा से उद्वेलित होकर, नया ईंधन डालेगा, उस दिन उसकी लपट से कौन किसकी रक्षा कर सकेगा ?

परिचारिका—निराश किशोरी—भग्न हृदय !

कंचन—हाँ, मेरा विश्वास है, एक-न-एक दिन सिंहल-कुमारी को अनुभव करना पडेगा कि मेरे कुमार उस धातु के नही है जिसकी कल्पना उन्होने कर रखी है। फिर क्या होगा ? उफ् ! मालूम होता है, अशोक-परिवार पर ही किसी कुग्रह की शनि-दृष्टि पड गई है ! माताजी कहाँ गई, जेठजी कहाँ गये, छोटी दीदी कहाँ गई ? सबके सब चले

गये और मेरे जिम्मे एक अजीब जीव सौंप गये—दुर्बल, कोमल (उसाँसे लेती है)

(दूर से किसी के आने की कुछ आहट)

परिचारिका—(उस ओर चकित दृष्टि से देखती, अचानक खिल पडती और कह उठती है) अहा! वह देखिये, कुमार आ रहे है (दूर से कुमार आते दिखाई पडते हैं) ओहो, हमारे कुमार कितने सुन्दर हैं, भद्रे! सुन्दर, सुडौल, छरहरा बदन और उसपर वे आँखें—सदा अधखुली, अधमुँदी! मानो एक नाल पर दो अधखिले कमल! हाँ, हाँ, एक नाल पर दो अधखिले कमल! वही आकार, वही रग, वही मादकता, वही मोहकता! क्या ससार में कोई ऐसा हृदय है, जो इन आँखो पर मुग्ध न हो!

(कुणाल का प्रवेश)

कुणाल—किन आँखो की वाते हो रही हैं? (परिचारिका को देखकर) ओ, तुम! अच्छा, परिचारिके, जाओ, जरा मेरे लिए थोडा पेय का तो प्रबन्ध करो! (अचानक कह उठता है) अह, छोटी माताजी थका डालती हैं! (परिचारिका घूरती है, उस ओर घूम-कर) अरी, तुम गई नही! (परिचारिका जाती है) हाँ, हाँ सच कह रहा हूँ, कचने, छोटी माताजी थका डालती हैं! यह गाइये, वह गाइये, यह बजाइये, वह बजाइये! एक दिन कहने लगी—शायद आप नृत्य भी जानते होगे! बोलो, मैं उनसे क्या कहता?

कचन—तो क्या आपको कोई जवाव नही सूझा?

कुणाल—अरे, किस-किस वात का जवाव सूझे! वह अजीव नारी हैं कचने! कव क्या वोल जायँगी, कुछ ठिकाना है? अभी उस दिन की वात है, वडी देर तक मेरा मुँह निहारती रही, फिर कह उठी—कुमार, आपकी ये आँखें कितनी सुन्दर है! यहाँ भी तो शायद इन आँखो की ही चर्चा हो रही थी! क्या मेरी आँखें सचमुच वडी सुन्दर हैं, कचने?

कचन—जब नई माताजी कह रही हैं

कुणाल—कहा न तुम्हे कचने, यह छोटी माताजी अजीव नारी है। जव उनमे यही पूछा—तो, उनकी आँखो में आँसू छलछला आये और वोली—कुमार, आपको मालूम नही, ये आँखें कैसी हैं, एक वार इन आँखो को देखकर इनमे अलग रहना

कंचन—(उसांसे लेती हुई) हूँ . . . . !

कुणाल—किन्तु, मैंने उन्हे बीच मे ही टोक दिया, कचने ! और कहा—आर्ये, इसका मतलब तो यह हुआ कि मैं आपके ही पास बैठा रहूँ । क्या यह सम्भव है ? आदमी सदा एक ही जगह कैसे बैठा रह सकता है ? और वह कचनमाला जो है ! जानती हो कचन, तुम्हारा नाम सुनते ही वह बोल उठी—देवी कचनमाला ! कितनी सौभाग्यशालिनी है वह !

कंचन—(व्यंग्य में) हाँ, मैं बडी सौभाग्यशालिनी हूँ !

कुणाल—और, कचने, उस समय मुझे एक दिल्लगी सूझ गई। मैंने कहा—आर्ये, यदि आप इन आँखो से दूर नही रह सकती, तो मै एक काम करूँ—आँखे निकालकर आपको समर्पित कर देता हूँ, शरीर कचन के पास रहेगा !

कचन—(व्याकुल होकर) कुमार, कुमार ! ओहो, यह क्या बोल रहे हैं आप ?

कुणाल—छोटी माताजी भी इसी तरह व्याकुल हो उठी थी, कचने ! झट उन्होने अपने हाथो से मेरा मुँह बन्द कर दिया और जानती हो, भावना-विभोर होकर बार-बार मेरी आँखो को चूमने लगी । सच कहता हूँ, जब वह आँखो को चूम रही थी, तो मुझे अपनी माताजी की याद आ गई ! आह ! वह भी यो ही मेरी आँखें चूमा करती थी, और कहा करती थी—कही मेरे बेटे की इन आँखो को किसी चुडैल की आँख न लग जाय !

कचन—मेरी ?

कुणाल—अरी पगली, तुम कभी भुलाई जा सकती हो! तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी भक्ति, तुम्हारा भोलापन! लेकिन एक वात। भोलेपन में छोटी माताजी तुम्हे भी मात दे सकती हैं। एकदम वच्ची, कुछ समझती नही। एक दिन कहने लगी—कुमार, आप मुझे 'आर्ये' नही कहा कीजिये, यह माता का सम्वोधन सचमुच उनका कहना सही था, कचने! उम्र में मुझसे भी छोटी, शायद तुमसे भी। उन्हें 'आर्ये' कहते मुझे भी जाने कैसा लगता है! मैंने कहा—बात तो जँचती है, किन्तु फिर क्या कह कर पुकारूँ आपको ?

कचन—और आप दोनो चेष्टा के वाद भी कोई नया सम्वोधन नही पा सके ?

कुणाल—अभी तक तो हम नही पा सके हैं कचने, तुम्ही बता दो न! और हाँ, हाँ, इसी सिलसिले में वह यह भी कहने लगी—मुझे जो आप 'आप-आप' कहकर पुकारते हैं, यह भी अच्छा नही लगता। और उसी साँस में यह भी पूछ वैठी—क्या देवी कचनमाला को आप 'आप' ही कहकर सम्वोधित करते हैं ? और, ज्योही मेरे मुँह से निकला—वह तो पत्नी है और आप माता! तो फिर क्या हुआ, जानती हो ? वह एकवारगी मेरी गोद में सिर धरकर रो उठी—उफ्, हिचकियाँ, आँसुओ की अविरल धारा! और सच कहूँ, तो मेरी आँखो में भी आँसू छलछला आये कचने! (कचनमाला काँप उठती है, उसकी आँखो में भी आँसू छलछला आते हैं) अरे, यह तुम्हारी आँखें भी

कचन—(रुँवे गले से) अव इस राजभवन को हम छोडें, कुमार! ओह, ओह

कुणाल—यो छोडना चाहो, तो सुयोग भी है। अभी उस दिन महामात्य से मालूम हुआ कि उत्तर-पश्चिम सीमा पर कुछ उपद्रव हो रहा है और पिताजी चाहते हैं कि यदि मैं कुछ दिनो तक उस ओर जाकर रहूँ, तो शायद मामला सुलझ जाय।

कचन—हाँ, मामला सुलझ जाय! (लम्बी उसाँसे लेती है)

कुणाल—क्यो कचने, तुम्हारे इस कहने में कुछ और भी मानी है क्या ?

कचन—मेरे कुमार, हर कहने में कुछ-न-कुछ मानी छिपा रहता ही है। किन्तु मेरे भोले, मेरे भावुक! अच्छा है, तुम इनसे परे हो। उपद्रव—सीमा पर! किस सीमा पर? सम्राट्! व्यर्थ में स्त्रियाँ बदनाम की जाती है कि उनमे ईर्ष्या की मात्रा अधिक होती है। हर कमजोर में ईर्ष्या होती है। हूँ! उपद्रव! सीमा पर! कैसा उपद्रव? किस सीमा पर? (कुणाल से लिपटती हुई) हाँ, हाँ, कुमार हम यहाँ से चले, रास्ते में ही विदिशा में माता जी के दर्शन भी कर लेगे! चले चले, (कचन-माला कुमार से लिपट जाती है)

चौथा दृश्य

[तिष्यरक्षिता अपने विलास-कक्ष में। उसके चारो ओर वाद्य, सगीत और नृत्य के साधन बिखरे पडे है। वह दर्पण के सामने बैठी है, उतरा हुआ चेहरा, बिखरे बाल, गीली आँखें, बडी देर तक दर्पण में अपने को देखती है, फिर अपने प्रतिबिम्ब से बोल उठती है—]

रक्षिते! यही है तू! यही गति होनी थी तेरी! कहाँ पैदा हुई, कहाँ रहने आई! अब मर, मर, रक्षिते!

(थोडी देर आँखें मूंद लेती है)

मरेगी रक्षिते? हाँ, हाँ, जीना चाहती है, किन्तु सिवा मृत्यु के कौन चारा है तेरे लिए? यह उपेक्षित जीवन, अपमानित जीवन, लाछित जीवन! क्या इस जीवन से मृत्यु अधिक दुखद, भयप्रद और वीभत्स होगी? तुझे मरना चाहिये, मरने को तैयार होना चाहिये, रक्षिते!

(गला सहसा रुँध जाता है)

पिताजी, पिताजी,, यह आपने क्या किया? मुझे कहाँ भेज दिया पिताजी! अजीब यह देश है, अजीब यहाँ के लोग है! समझ में नहीं आता, क्या कहते है, क्या चाहते है?

(क्रोध की मुद्रा में)

नहीं, जानबूझकर यहाँ मेरी उपेक्षा की गई है! रक्षिते, पगली,

अपने को धोखे में मत रख। जानबूझकर तेरी उपेक्षा की गई है। हाँ, जान-बूझकर उपेक्षा की गई है, किन्तु इस ढग से कि तू धोखे मे रहे! उँह, इस सारे भवन में ढोंग ही ढोग भरा है। धर्म का ढोग, प्रेम का ढोग, कला का ढोग!—ढोग! ढोग! ढोग!

(मुस्कुराती हुई)

बूढे सम्राट्! अह, क्या कहने हैं! दिन भर इस चिन्ता में कि इस देश में धर्मदूत भेजो, उस देश में धर्मदूत भेजो, यहाँ स्तूप खडा कराओ, वहाँ स्तूप खडा कराओ। स्तूप खडा कराओ, उनपर अच्छे-अच्छे उपदेश लिखवाओ। और उनका आरम्भ करो इस वाक्य से—'देवानाम् प्रिय, प्रियदर्शी अशोक!' 'देवानाम् प्रिय' तो समझी, किन्तु, यह 'प्रियदर्शी' क्या बला है बूढे सम्राट्? क्या आप अपने को सुन्दर भी समझते हैं! बूढा! (खिलखिला पडती है) नही, नही रक्षिते, हँस मत! सम्राट् कभी सुन्दर भी रहे होंगे, जरूर रहे होंगे—खडहर बताता है, इमारत बुलन्द रही होगी! किन्तु कैसा करुण! खडहर समझ रहा, वह इमारत है! बूढे सम्राट्! तुम पर क्रोध नही, करुणा ही आती है! किन्तु, किन्तु

(अचानक भौंहे चढ जाती हैं)

किन्तु कुमार, तुम! तुम!! सम्राट् दुर्बलताओ के साथ भी महान हैं, किन्तु तुम? ओह, कैसा नाटक दिखाया तुमने? जैसे भोले हो, जैसे बच्चे हो, जैसे कुछ समझते ही नही हो तुम!

नही, नही, तुम्हे घमड है कुमार, अपने रूप का, अपनी आँखो का, उन आँखो का! आँखो का?

(उत्तेजना कम हो जाती है, गला रुँध जाता है)

किन्तु, रक्षिते! सत्य से दूर मत भाग! वैसी आँखें ससार मे कही देखी नही गई होगी! वे आँखे, मादक आँखें! मोहक आँखें! कुमार, कुमार! वे आँखें तुम्हे कहाँ से मिली?

(फूटकर रो पडती है, फिर सम्हलती है)

नही, वह तो चला गया! कहाँ चला गया? क्यो चला गया? कचने! यह सारी खुराफात तुम्हारी है! तुम कुमार को ले भागी हो। मुझसे छीनकर तुम कुमार को ले भागी हो! तुम मुझसे डर गई। डर गई! जब-जब मैं तुम्हारे सामने हुई, देखा, तुम मुझे देखते ही कॉंप उठती रही! क्यो काँपती रही?

क्यों, क्यों ? (कुछ सोचती हुई) हाँ, हाँ, मैं सिंहल से आई हूँ न !
सिंहल में राक्षसी बसती हैं, तुम्हें डर था, तुम्हारे कुमार को . .

(दर्पण में घूरती हुई)

किन्तु रक्षिते ! तू क्या सचमुच राक्षसी है ? राक्षसी का चेहरा ऐसा ही होता है ? राक्षसी के बाल ऐसे ही होते हैं ? राक्षसी के अधर ऐसे ही होते हैं ? और, राक्षसी की आँखें ! ये आँखें ! (अचानक कुणाल की आँखों की याद आ जाती है) और, वे आँखें—
—कुमार, कुमार !

(फिर आँखें मूँद लेती है)

पिताजी, पिताजी! मुझे आपने कहाँ भेज दिया, पिताजी! किन लोगों के बीच में भेज दिया! यही भेजना था, तो किसी संघाराम में भेजा होता, भिक्षुणी बनाकर भेजा होता! इस राजभवन में क्या भेज दिया—किन लोगों के बीच में भेज दिया? सिंहल—अभिशापित देश! तुम्हें ये लोग राक्षसपुरी समझते हैं, तुम्हारी बेटियों को राक्षसी समझते हैं! राक्षसी! राक्षसी! कंचने, क्या मैं राक्षसी हूँ? कुमार, क्या मैं राक्षसी हूँ?

(अचानक उठकर खड़ी होती है)

राक्षसी हूँ, तो सम्हल, कंचने! कुमार को लेकर कहाँ भागी? कहाँ भागी, कहाँ जायगी?

यह राक्षसी जो तुम्हारे पीछे लगी है, कंचने! कुमार, कहाँ जाओगे, यह राक्षसी जो तुम्हारे पीछे पड़ी है! वे आँखें! वे आँखें! तुम्हें उन आँखों पर घमंड है कुमार! कंचने, तुम उन आँखों को बचाने के लिए भाग गई हो! और कुमार, उन आँखों के बल पर तुमने मुझे अपमानित किया, लांछित किया? उन आँखों के बल पर!

(मुट्ठी बाँधती हुई)

तो, तो . जिन आँखों के बल पर जिन आँखों के बल पर . .. हाँ, हाँ, जिन आँखों के बल पर

(अचानक मुट्ठी ढीली पड जाती है—बेचैन हो उठती है)

आह वे आँखें—आह, वे मादक, मोहक आँखें! वे आँखें, वे आँखें .

(फिर सम्हलती और मुट्ठी बाँधती हुई)

किन्तु, तुम उन्हें देख न सकोगी कंचने! तुम उन्हें बचा नहीं

सकोगी कचने! उनपर राक्षसी की नजर पड गई है! राक्षसी! राक्षसी! राक्षसी!!

(एक क्षण रुककर,)

कुमार याद है, तुमने कहा था, कहिये, तो ये आँखें निकालकर आपको दे दूँ! तुमने व्यग किया था कुमार! तुमने मेरी अभिलाषा का उपहास किया था, कुमार! तो, तो

(गम्भीर होकर दर्पण के सामने फुसफुसाती हुई)

चुप रक्षिते! चुप रह! चुप रह! कोई सुन न ले, कोई जान न ले। वे आँखें—वे आँखें! इन हथेलियो पर! आँखे हथेलियो पर . । चेहरे पर आँखें,—कितनी सुन्दर! (हँस पडती है) जव वे इन हथेलियो पर होगी—(अचानक विषण्ण होती हुई) उँह, उँह——उफ्, उफ्! (फिर सम्हलती सी) लेकिन, यह दुर्वलता कैसी? रक्षिते, तू राक्षसी है न! वे तुम्हे राक्षसी समझते हैं न? फिर क्यो यह कोमल भावना? मानवी रक्षिता का जिसने अपमान किया, वह रक्षिता की राक्षसी का प्रकोप सहे! जो मानव का अपमान करता है, वह राक्षस पाता ही है—सम्हलो, सम्हलो, कुणाल!

(उत्तेजना में दर्पण के सामने से हट कर टहलती हुई)

कचने! हाँ, हाँ, इन्हे अपने रग पर घमड है, सोने के ऐसे दमकते रग पर—तभी तो नाम रखा है—कचनमाला, कचनमाला! और रक्षिते! तुम काली हो न? तुम्हारे वाल काले है न? तुम्हारी आँख काली है न? आँखें! (कुणाल की आँखें याद आ जाती हैं) उफ्,! उफ्! नही, नही! (पूरी दृढता से) हाँ, हाँ, वे आँखें अव इन काली हथेलियो पर! इन काली हथेलियो पर! हाँ, हाँ, वे दोनो आँखें, इन दोनो हथेलियो पर! चेहरे पर आँखें—कितनी सुन्दर! किन्तु हथेलियो पर—काली हथेलियो पर! हा हा हा हा हा हा हा

(अट्टाहास करती हुई जाती है)

पाचवाँ दृश्य

[अंधा होकर कुणाल अपनी पत्नी के साथ भिखारी के रूप में चल पड़ता है।

आगे-आगे कंचनमाला, पीछे-पीछे उसका कंधा पकड़े, कुणाल। चलते-चलते, भूलते-भटकते वह पाटलिपुत्र के कहीं आसपास पहुँच जाता है;]

कुणाल—कंचने, हम कहाँ पर हैं कंचने?

कंचन—हमने नाम-धाम कहना और पूछना छोड़ दिया है न?

कुणाल—यह तो अच्छा ही किया है हमने। भिखारी के लिए नाम क्या, धाम क्या? चले चलो, बढ़े चलो—कुछ मिल जाय, खा लो, जहाँ थक जाओ, सो लो। किंतु कंचने, कुछ खास बात है कि पूछ रहा हूँ—हम कहाँ पर हैं?

कंचन—क्या खास बात अनुभव कर रहे हैं आप?

कुणाल—जानती है पगली, अन्धे की ज्ञानेन्द्रियाँ बड़ी तीव्र हो जाती हैं! अभी-अभी हवा का एक झोंका आया और शरीर ने स्पर्श किया, तो मालूम हुआ, जैसे कोई परिचित आकर गले मिल रहा हो! क्या निकट में कोई तालाब है? और उसमें कमल फूले हैं? पुरइन पर बूँदें किस तरह चमक रही होंगी कंचने? या—या बगल में कहीं नदी है? गंगा तो नहीं? कंचने, यों तो गंगा हर जगह की शीतल, पवित्र! किंतु, पाटलिपुत्र के निकट की गंगा

.. अहा! कंचने, कहीं हम पाटलिपुत्र के निकट .

कंचन—कुमार, कुमार, पाटलिपुत्र का नाम न लीजिये, पुरानी बातों की चर्चा मत कीजिये—यह अच्छी बात है कि हम उन्हें भूल गये!

कुणाल—भूल तो गये ही हैं और भूलकर अच्छा ही किया है हमने। किंतु, न जाने क्या बात है कंचने, कि आज इतनी उत्सुकता जगी है! मालूम होता है कि कहीं पुरानी जगह में आ गया हूँ! वही हवा, वही गंध, वही स्वर-लहरी—जरा ध्यान से तो सुन! वह कोयल किसी घनी अमराई में बोल रही है या नहीं? यों तो कोयल जिस डाल पर बोल लेती है, उसकी बोली

भली लगती है—किंतु, विस्तृत, सघन अमराई की बौराई कुंज में उसकी बोली कुछ और ही होती है— जैसे स्वर के साथ गंध घुल गई हो,—जैसे, काकली मलयानिल पर तैरती हुई आती हो।

कंचन—कुमार, छोड़िये उन बातों को। मेरा मन कैसा तो हो जाता है।

कुणाल—हाँ, हां, तुम्हारा मन बहुत कोमल है—मुझसे भी कोमल। जानती हो, कंचने, मैं यह जानता था, इसीलिए उस दिन जब पाटलिपुत्र से वह राजदूत आया और उसने सम्राट् का आज्ञा-पत्र दिया, तो मैंने झट निर्णय कर लिया कि मुझे यह काम तुरत कर लेना चाहिये—नहीं तो तुम्हे जरा भी पता चलता, तो क्या यह मेरे लिए सम्भव होता?

कंचन—उफ्, छोड़िये उन बातों को।

कुणाल—मेरी भोली। तुम्हारे इस भोलेपन के कारण ही तो उस दिन मुझे अधिक डर हुआ था। तुरत मैंने राजदूत से कहा—आँखें चाहिये? किस चीज में लोगे? क्या उन्हे लेने के लिए पात्र लाये हो? और कंचने, तुम्हे सुनकर आश्चर्य होगा, उसके पास पात्र भी था और अस्त्र भी। ओहो, जिसे ये आँखें चाहिये थी, उसकी आत्मा कितनी कोमल होगी, कंचने। हाँ, जो करना है, वह जल्द कर लिया जाय और अच्छी तरह कर लिया जाय। कैसा सुन्दर था वह पात्र और किस तरह चम-चम कर रही थी वह छुरी। छुरी।—उसे देखकर एक बार तो मैं काँप उठा—किंतु, फिर सम्हला और झट उसे दाहिनी आँख

कंचन—उफ्, उफ्, यह चर्चा बंद कीजिये, कुमार।

कुणाल—(हँसकर) पगली। जो होना था, हो चुका, फिर तुम व्याकुल क्यो होती हो? अच्छा, एक बात। कंचने, बताओ तो, मैंने पहले दाहिनी आँख ही क्यो निकाली?

कंचन—उफ्, उफ्,

कुणाल—उफ्, उफ्। लेकिन मैं तुमसे सोलह आने सच कह रहा हूँ, कंचने, मैंने जरा भी उफ् नही की। छुरी की नोक भौं के नीचे घुमेड़ दी—और उसे इस तरह घुमा दिया कि वह आँख एकबारगी निकलकर उस पात्र में आ रही। ओहो, सचमुच मेरी आँखें बड़ी खूबसूरत थी, कंचने। मैंने उसे देखा—खून से लथपथ,

फिर भी कितना साफ कोआ, और बीच की वह पुतली—मालूम होता था, जैसे वह मुझसे पूछ रही हो—कुमार, मेरा क्या कसूर था कि मुझे यों ...

कंचन—कुमार, कुमार!

कुणाल—और वह राजदूत भी चिल्ला उठा था, कुमार! कुमार! लेकिन, मैंने सोचा, तनिक भी विचलित होता हूँ, विलम्ब करता हूँ, तो फिर मुझसे यह काम पूरा नहीं होने का। मैंने छुरी की नोक बाईं आँख में भी उसी तरह घुसेड़ दी—लेकिन, आह! मैं उस बेचारी आँख को देख भी न सका! बेचारी बाईं आँख—न जाने वह कहाँ गिरी, पात्र में या पृथ्वी पर!

कंचन—ओह, ओह! (कुमार से लिपट जाती है)

कुणाल—(उसकी पीठ सहलाता हुआ) कंचने, कंचने! एक बात बता दो कंचने! कंचने, तुमने देखा था, वह कहाँ गिरी थी? कहीं जमीन पर न गिर गई हो! बेचारी बाईं आँख!

कंचन—ओह, ओह, कुमार, कुमार! (फूट-फूटकर रो पड़ती है)

कुणाल—हाँ, हाँ, वह राजदूत भी इतने जोरों से चीख उठा था कि राजभवन में हल्ला मच गया, और मैंने थोड़ी देर के बाद ही तो तुम्हें इसी तरह चिल्लाते सुना था—"कुमार, कुमार, ओह, ओह!" उफ्, तुम कितनी रोई थीं! (कंचन के सिर पर हाथ फेरते हुए) कंचने, कंचने, किंतु अब क्यों रो रही हो? पगली, वह स्वप्न था! सारा स्वप्न! संसार को दार्शनिकों ने जो स्वप्न कहा है, वह कितना सत्य है कंचने! किंतु, एक बात है मेरी रानी! बार-बार मन में प्रश्न उठा करता है—यह क्या हुआ? पिताजी ने यह क्या किया? एक बार मन में आया था, कोई षड्यंत्र तो नहीं—इसीलिए उस राजाज्ञा को कई बार अच्छी तरह देखा था! किंतु, नहीं, पिताजी की ही तो मुहर थी!

कंचन—पिताजी की ही मुहर थी, क्या इसका अर्थ सदा यह होगा कि आज्ञा भी पिताजी की होगी?

कुणाल—जरूर, जरूर। पिताजी के अतिरिक्त कौन दूसरा उसपर उनकी मुहर लगा सकता है? सम्राट् की मुहर—संसार में सबसे पवित्र धरोहर!

कंचन—पवित्र से पवित्र धरोहरों की भी चोरी होती आई है, कुमार!

कुणाल—अरे, तू क्या बोल गई कचने? चोरी!—किसने चोरी की होगी? नही, नही, ऐसा हो नही सकता। वह मुहर सदा पिताजी के पास ही रहती है!

कचन—जैसे पिताजी के पास कोई नही रहता
रहती।

कुणाल—रहता रहती तो क्या तुम्हे छोटी माताजी

कचन—उन्हे माता कहकर इस पवित्र शब्द का अपमान न कीजिये कुमार! सत्य नही छिपता। पहले मैं भी भ्रम में थी, पिताजी के बारे मे भी सदेह उग आया था। शायद, उसी का यह प्रायश्चित कर रही हूँ! किंतु, आज वह सत्य तो घाट-बाट की चर्चा बन चुका है। मैं यह बात आप से जान-बूझकर छिपाये हुई थी कुमार! सब की जिह्वा पर यह चर्चा है—साम्राज्य की एक-एक प्रजा यह सब जान गई है।

कुणाल—सच? क्या सचमुच ऐसी बात है, कचने?

कचन—जाने दीजिये कुमार! हम सब कुछ भूल गये, इसे भी भूल जायँ। जिसने भिखारी का जीवन वरण कर लिया है, वह अब साम्राज्य और सम्राज्ञी आदि की बातें भला क्यो सोचे?

कुणाल—(कहता जाता है) क्या सच? क्या सचमुच तुमने ऐसी चर्चा सुनी है? अरे, अरे, उफ्! (और सोचने लगता है)

कचन—आप यह क्या सोचने लगे?

कुणाल—कुछ नही, कुछ नही। (कुछ रुककर) कचने, मेरी कचने! मेरी दुलारी कचने! एक बात मस्तिष्क में कौंध गई! तुमने सुना है न कचने, प्रेम अन्धा होता है?

कचन—हूँ!

कुणाल—और, क्या कला भी अन्धी होती है? ह ह
ह (हँसता है)

छठा दृश्य

[सिंहल-द्वीप का संघाराम। दोपहर का सन्नाटा। भिक्षु महेन्द्र व्यग्रता से टहल रहे हैं। संघमित्रा आती है—वह खड़ी है; किंतु महेन्द्र टहलते जा रहे हैं। कुछ देर के बाद संघमित्रा पुकारती है—]

संघमित्रा—भैया!

(महेन्द्र टहलते जा रहे हैं)

संघमित्रा—भैया!

(महेन्द्र फिर भी टहल ही रहे हैं)

संघमित्रा—भैया, मैं!

महेन्द्र—(रुककर) ओ मित्रे!

संघमित्रा—भैया, यह

महेन्द्र—हां, यह उद्विग्नता! नहीं, नहीं, यह भिक्षु के उपयुक्त नहीं। कहीं पर कुछ हो, कुछ हो जाय, हमें तो हमेशा शांत रहना है! सम्यक् समाधि, सम्यक् समाधि!

संघमित्रा—इधर दो-तीन दिनों से आपको बहुत ही आकुल देख रही हूँ भैया! ज्योंही आप एकान्त में हुए कि व्याकुलता

महेन्द्र—ओहो, इतनी बारीकी से देखा करती हो तुम मुझे!

संघमित्रा—यहां और कौन है, जिसे अपने से बढ़कर देखूं? भैया ममता मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है न!

महेन्द्र—सही कह रही हो मित्रे! ममता मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है। नहीं तो रक्षिता कुछ करे, कुणाल का कुछ हो जाय हमें क्या लेना-देना है इन बातों से! (घूमने लगता है)

संघमित्रा—(आतुर होकर) रक्षिता? कुणाल? भैया क्या आखिर कुछ होकर ही रहा?

महेन्द्र—हां, मेरी आशंका सोलह आने सच साबित हुई मेरी बहन! आह कुणाल! कुणाल! (आंखों में आंसू आ जाते हैं)

संघमित्रा—भैया! आपकी आंखों में ये आंसू!

महेन्द्र—हां, जिन्दगी में शायद पहली बार ये आंसू निकले; मित्रे! लड़कपन जब से होश हुआ, याद नहीं, कभी रोया होऊँ

कुणाल—अरे, तू क्या बोल गई कचने? चोरी!—किसने चोरी की होगी? नही, नही, ऐसा हो नही सकता। वह मुहर सदा पिताजी के पास ही रहती है!

कचन—जैसे पिताजी के पास कोई नही रहता रहती।

कुणाल—रहता रहती तो क्या तुम्हे छोटी माताजी

कचन—उन्हे माता कहकर इस पवित्र शब्द का अपमान न कीजिये कुमार! सत्य नही छिपता। पहले मै भी भ्रम में थी, पिताजी के बारे मे भी सदेह उग आया था। शायद, उसी का यह प्रायश्चित कर रही हूँ! किंतु, आज वह सत्य तो घाट-बाट की चर्चा बन चुका है। मै यह बात आप से जान-बूझकर छिपाये हुई थी कुमार! सब की जिह्वा पर यह चर्चा है—साम्राज्य की एक-एक प्रजा यह सब जान गई है।

कुणाल—सच? क्या सचमुच ऐसी बात है, कचने?

कचन—जाने दीजिये कुमार! हम सब कुछ भूल गये, इसे भी भूल जायँ। जिसने भिखारी का जीवन वरण कर लिया है, वह अब साम्राज्य और सम्राज्ञी आदि की बातें भला क्यो सोचे?

कुणाल—(कहता जाता है) क्या सच? क्या सचमुच तुमने ऐसी चर्चा सुनी है? अरे, अरे, उफ्,! (और सोचने लगता है)

कचन—आप यह क्या सोचने लगे?

कुणाल—कुछ नही, कुछ नही। (कुछ रुककर) कचने, मेरी कचने! मेरी दुलारी कचने! एक बात मस्तिष्क में कौंध गई! तुमने सुना है न कचने, प्रेम अन्धा होता है?

कचन—हूँ!

कुणाल—और, क्या कला भी अन्धी होती है? ह ह ह (हँसता है)

संघमित्रा—ओह, ओह! (मूर्च्छित होकर गिर पडती है। महेन्द्र उसे सम्हालते हैं, बैठ जाते हैं, अपनी जांघो पर उसका सिर रखे, मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहते हैं)

महेन्द्र—अन्धा! नही नहीं, कहने मे भूल हो गई! कुणाल अन्धा नही,। कुणाल ने नेत्र-दान दिया है! नेत्र-दान! मित्रे, नेत्र-दान! प्राण-दान से भी बडा, महान्! सर्वोच्च दान—पवित्र दान! यह दान कुणाल ही दे सकता था मित्रे!

संघमित्रा—(महेन्द्र की गोद में सिर रखकर हिचकियो पर हिचकियाँ लेती है—रह-रहकर फूट पडती है)

महेन्द्र—(उसका सिर ऊपर उठाते हुए) जो होना था, सो हुआ मित्रे! सारी बातें बडे स्वाभाविक ढग से हुई। रक्षिता बेचारी अपने पर जब्त न रख सकी। कुणाल अपनी रक्षा न कर सका। कचन ने उसे बचाना चाहा, किंतु बात उलटी हो गई। आह, कुणाल——दुर्बल, कोमल, असहाय,

संघमित्रा—(जैसे अचानक चौंककर, गुस्से में आकर) और यह सब पिताजी के रहते !

महेन्द्र—पगली, तुम इन बडे लोगो को नही जानती। ये अपनी धुन में इतने मस्त रहते है कि इनको नाक की सीध में भी क्या हो रहा है, नही जानते। सब से बडी बात तो यह होती है कि इनके अपने लोगो को ही सब से अधिक कष्ट सहना और उठाना पडता है। शायद, यह भी उचित ही है। इतिहास के कोने में इन्हे जो अनायास थोडा-सा स्थान मिल जाता है, उसकी कीमत तो चुकानी ही चाहिये। हम-तुम, सब चुका रहे है। किन्तु, कुणाल ..

संघमित्रा—भैया, जरा विस्तार से कहिये भैया, ब्योरेवार बताइये भैया !

महेन्द्र—विस्तार से सुनोगी! सुन लोगी। घबराओ नहीं, तुम सुनोगी, ससार सुनेगा। कुणाल के इस नेत्रदान ने, महादान ने इतिहास मे एक ऐसी घटना की सृष्टि की है कि युग-युग तक लोग इसे सुनना चाहेगे, सुनेंगे। इस घटना पर आख्यान बनेंगे, काव्य बनेंगे, नाटक बनेंगे। मित्रे, आह्! सचमुच कितनी बडी बात हो गई! नेत्र-दान! .. .

संघमित्रा—हाय रे यह नेत्र-दान! नेत्र! और कुणाल भैया

करुणा का स्रोत न जाने कब से अवरुद्ध था, बहुत दिनो पर फूटा है! और, जब फूटा है ! आह, बहने दो, बहने दो! बहने दो मेरी नन्ही बहन! (आँसू झर-झरकर गिरने लगते हैं)

संघमित्रा—(व्याकुल होकर) भैया, क्या बात है भैया? कुणाल भैया को क्या हुआ? क्या हुआ कुणाल भैया को? (निकट जाकर) बोलते क्यो नही? कुणाल भैया को क्या हुआ? उफ्, ओह! (फूट पडती है)

महेन्द्र—(अपने आँसुओ को रोकते हुए) मित्रे, नही, नही। हम दोनो में से एक को तो होश में रहना ही है! हा कुणाल! (गला रुँध जाता है) कुणाल

संघमित्रा—कुणाल भैया! कुणाल भैया! उन्हे क्या हुआ भैया! वह कहाँ है भैया? भैया, भैया! (लिपट जाती है)

महेन्द्र—कुणाल भैया को क्या हुआ? हाय रे कुणाल! वज्र गिरा भी, तो कमल-नाल पर! हम, तुम, पिताजी, माताजी सब सस्ते निकल गये! सस्ते निकल गये, निकल गये, और सबसे बडा दान देना पडा उसे, जो हम सबमें सबसे दुर्बल था!

संघमित्रा—दान? क्या दान देना पडा कुणाल भैया को? बताइये भैया—बताइये, नही तो, मेरी छाती फट जायगी—ओह, ओह! (कलेजे को दोनो हाथो से पकडती है)

महेन्द्र—(संघमित्रा को सम्हालते हुए) मित्रे! मित्रे! ठीक नही, यह ठीक नही, हम सबको कुछ-न-कुछ देना पडा है—कुणाल जरा पीछे पड गया था, इसीलिए उसे सबसे बडा दान देना पडा!

संघमित्रा—(खीझकर) दान! दान! दान! क्या दान? बताइये, नही तो मैं पागल हो जाऊँगी भैया, पागल पागल पागल (विक्षिप्त-सी चिल्लाने लगती है)

महेन्द्र—शांत बहन, शांत! तुम इस तरह कर रही हो? सोचो, कंचन कैसे होगी! बेचारी उफ्—अन्धे की लाठी!

संघमित्रा—अन्धे की लाठी! कौन अन्धा हुआ भैया? कुणाल भैया अन्धा! अन्धा! कौन अन्धा?

महेन्द्र—(बात काटकर) हाँ, तुम्हारा कुणाल भैया अन्धा हो गया है!

संघमित्रा—ओह, ओह! (मूच्छित होकर गिर पड़ती है। महेन्द्र उसे सम्हालते हैं, बैठ जाते हैं, अपनी जांघो पर उसका सिर रखे, मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहते हैं)

महेन्द्र—अन्धा! नही नही, कहने मे भूल हो गई! कुणाल अन्धा नही,। कुणाल ने नेत्र-दान दिया है! नेत्र-दान! मित्रे, नेत्र-दान! प्राण-दान से भी बड़ा, महान्! सर्वोच्च दान—पवित्र दान! यह दान कुणाल ही दे सकता था मित्रे!

संघमित्रा—(महेन्द्र की गोद में सिर रखकर हिचकियो पर हिचकियाँ लेती है—रह-रहकर फूट पड़ती है)

महेन्द्र—(उसका सिर ऊपर उठाते हुए) जो होना था, सो हुआ मित्रे! सारी बातें बड़े स्वाभाविक ढग से हुई। रक्षिता बेचारी अपने पर जब्त न रख सकी। कुणाल अपनी रक्षा न कर सका। कंचन ने उसे बचाना चाहा, किंतु बात उलटी हो गई। आह, कुणाल——दुर्बल, कोमल, असहाय,

संघमित्रा—(जैसे अचानक चौंककर, गुस्से में आकर) और यह सब पिताजी के रहते!

महेन्द्र—पगली, तुम इन बड़े लोगो को नही जानती। ये अपनी धुन में इतने मस्त रहते है कि इनकी नाक की सीध में भी क्या हो रहा है, नही जानते। सब से बड़ी बात तो यह होती है कि इनके अपने लोगो को ही सब से अधिक कष्ट सहना और उठाना पड़ता है। शायद, यह भी उचित ही है। इतिहास के कोने में इन्हे जो अनायास थोड़ा-सा स्थान मिल जाता है, उसकी कीमत तो चुकानी ही चाहिये। हम-तुम, सब चुका रहे है। किन्तु, कुणाल . . .

संघमित्रा—भैया, जरा विस्तार से कहिये भैया, ब्योरेवार बता-

के नेत्र ! कुणाल भैया की आँखें—वे कितनी सुन्दर थी भैया ! क्या रक्षिता की कुदृष्टि उनपर पडी ?

महेन्द्र—'कु' या 'सु'———ये तो मानव अपनी मनोभावना के अनुसार विशेषण लगाता है, मेरी नन्ही वहन ! हम-तुम इसपर व्यर्थ क्यो सिर खपायें ? जानती हो, किसी भी महान यज्ञ में सुन्दरतम की वलि देकर ही पूर्णाहुति की जाती है ? पिताजी ने जो महानतम धर्म-यज्ञ प्रारम्भ किया था, इस वलि के वाद, वह अव पूर्ण हो गया !

सघमित्रा—हाय रे वह यज्ञ, आह री यह वलि !

महेन्द्र—मित्रे, यज्ञ और वलि दोनो में गठबन्धन है। जहाँ यज्ञ, वहाँ वलि। और निरीह मूक पशुओ की जगह, चेतन, उद्बुद्ध मानवो की वलि कही सुन्दर है, श्रेयस्कर है। और उसमें भी कुणाल ऐसे शुद्ध ओर शुभ्र मानव की सुन्दरतम आँखें पाकर तो वलि भी धन्य हो उठी होगी। मित्रे ! उठो मित्रे ! ऐसे भाई को पाकर हम भी अपने को धन्य-धन्य समझें।

सघमित्रा—भैया, भैया ! ओह ! कुणाल भैया

(फिर फूट पडती है)

महेन्द्र—मित्रे, कलिंग का प्रायश्चित अब पूरा हो गया। हमने जो असख्य गर्दनें काटकर रक्त वहाया उसका मूल्य हमें आँखो के रक्त से चुकाना पडा—सुन्दरतम आँखो के रक्त से ! शुद्ध, शुभ्र, कोमल, निर्मल मानव की सुन्दरतम आँखो के पवित्रतम रक्त से। इतिहास का यह सवसे वडा पाठ

सघमित्रा—हाय रे यह पाठ ! आह रे कलिंग ! कलिंग ! कलिंग !

(आँखें मूंद लेती है)

महेन्द्र—मित्रे, कलिंग पर नाराज मत हो। कलिंग स्थान नही, एक प्रतीक है,—कलिंग प्रतीक है युद्ध का, हत्या का, मानवता के सहार का ! युग-युग से कलिंग होते रहे है, और अभी शायद

सघमित्रा—क्या फिर कलिंग होगे भैया ? क्या फिर कोई कुणाल वनेगा भैया ? कुणाल भैया ! कुणाल भैया ! भैया, भैया, भगवान फिर कही कलिंग न वनायें

महेन्द्र—फिर कलिंग न बने, बहुत ठीक ! लेकिन कलिंग न बने, इसके लिए हमें एक नया संसार बनाना होगा, मित्रो ! उठो, चलो, हम एक ऐसा संसार बनायें, जहाँ कलिंग न हो, युद्ध न हो, हत्या न हो, संहार न हो। कलिंग, अशोक, संघमित्रा, रक्षिता, कुणाल,——ये सब एक ही घटना-शृंखला की कड़ियाँ हैं मित्रो ! कुणाल ने नेत्र-दान देकर हमारे, और संसार के नेत्र खोलने की चेष्टा की है। यदि इतने पर भी हम न चेते, तो संसार की रक्षा कोई भगवान भी नहीं कर सकता, मित्रो ! उठो, चलो——आँसू पोंछो, प्रयत्न में लगो। यदि एक-एक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को समझे, उस में जुट जाय, तो फिर नया संसार बसकर रहेगा——बसकर, बसकर, बसकर रहेगा !

[पटाक्षेप]

के नेत्र ! कुणाल भैया की आँखें—वे कितनी सुन्दर थी भैया ! क्या रक्षिता की कुदृष्टि उनपर पडी ?

महेन्द्र—'कु' या 'सु'———ये तो मानव अपनी मनोभावना के अनुसार विशेषण लगाता है, मेरी नन्ही बहन ! हम-तुम इसपर व्यर्थ क्यो सिर खपायें ? जानती हो, किसी भी महान यज्ञ में सुन्दर-तम की बलि देकर ही पूर्णाहुति की जाती है ? पिताजी ने जो महानतम धर्म-यज्ञ प्रारम्भ किया था, इस बलि के बाद, वह अब पूर्ण हो गया !

सघमित्रा—हाय रे वह यज्ञ, आह री यह बलि !

महेन्द्र—मित्रे, यज्ञ और बलि दोनो में गठबन्धन है। जहाँ यज्ञ, वहाँ बलि। और निरीह मूक पशुओ की जगह, चेतन, उद्बुद्ध मानवो की बलि कही सुन्दर है, श्रेयस्कर है। और उसमें भी कुणाल ऐसे शुद्ध ओर शुभ्र मानव की सुन्दरतम आँखें पाकर तो बलि भी धन्य हो उठी होगी मित्रे ! उठो मित्रे ! ऐसे भाई को पाकर हम भी अपने को धन्य-धन्य समझें।

सघमित्रा—भैया, भैया ! ओह ! कुणाल भैया

(फिर फूट पडती है)

महेन्द्र—मित्रे, कलिंग का प्रायश्चित्त अब पूरा हो गया। हमने जो असख्य गर्दनें काटकर रक्त बहाया उसका मूल्य हमें आँखो के रक्त से चुकाना पडा—सुन्दरतम आँखो के रक्त से ! शुद्ध, शुभ्र, कोमल, निर्मल मानव की सुन्दरतम आँखो के पवित्रतम रक्त से। इतिहास का यह सबसे बडा पाठ

सघमित्रा—हाय रे यह पाठ ! आह रे कलिंग ! कलिंग ! कलिंग !

(आँखें मूंद लेती है)

महेन्द्र—मित्रे, कलिंग पर नाराज मत हो। कलिंग स्थान नही, एक प्रतीक है,—कलिंग प्रतीक है युद्ध का, हत्या का, मानवता के सहार का ! युग-युग से कलिंग होते रहे हैं, और अभी शायद

सघमित्रा—क्या फिर कलिंग होगे भैया ? क्या फिर कोई कुणाल बनेगा भैया ? कुणाल भैया ! कुणाल भैया ! भैया, भैया, भग-वान फिर कही कलिंग न बनायें

महेन्द्र—फिर कलिंग न बने, बहुत ठीक ! लेकिन कलिंग न बने, इसके लिए हमें एक नया संसार बनाना होगा, मित्रे ! उठो, चलो, हम एक ऐसा संसार बनायें, जहाँ कलिंग न हो, युद्ध न हो, हत्या न हो, संहार न हो। कलिंग, अशोक, संघमित्रा, रक्षिता, कुणाल,——ये सब एक ही घटना-शृंखला की कड़ियाँ हैं मित्रे ! कुणाल ने नेत्र-दान देकर हमारे, और संसार के नेत्र खोलने की चेष्टा की है। यदि इतने पर भी हम न चेतें, तो संसार की रक्षा कोई भगवान भी नहीं कर सकता, मित्रे ! उठो, चलो——आँसू पोंछो, प्रयत्न में लगो। यदि एक-एक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को समझे, उस में जुट जाय, तो फिर नया संसार बसकर रहेगा——बनकर, बसकर, बसकर रहेगा !

[पटाक्षेप]

गाँव के देवता

[रेडियो रूपक]

गाँव के देवता

पोखन ठाकुर

(दूर से झाझ-करताल के शब्द सुनाई पडते है—शब्द धीरे-धीरे धीमे होते जाते है और पृष्ठभूमि मे बाते होती है)

गिरिजा—भैया, भैया, ब्रह्म-बाबा के गीत शुरु हो गये! चलो भैया, हम तमाशा देखें—चलो!

शकर—हाँ, हाँ, गौरु, अभी चला। लेकिन, खाली हाथ चलोगी ब्रह्मबाबा के स्थान में! जाओ, तुम माँ से अक्षत-सुपारी माँग लाओ, मैं अभी बाड़ी में से कुछ फूल तोड लाता हूँ!

गिरिजा—लेकिन देर न करना भैया! कहीं ऐसा न हो कि हम यहीं रहे और वहाँ ब्रह्मबाबा आवे और चले जावे!

शकर—आवे और चले जावे! तुम निरी पगली हो गौरू! अरी, ब्रह्मबाबा न आते है, न जाते है! वह तो हमेशा उस पीपल के पेड पर रहकर हमलोगों की रक्षा करते है! जब हमारे गाँव में हैजा-प्लेग आता है, वह दूर भगाते है उसे! जब वर्षा के अभाव में हमारा खेत सूखता है; वह पानी बरसा देते है .

गिरिजा—और, भैया, उस दिन जब तुम बीमार पड़े थे ब्रह्म-बाबा ने ही तो तुम्हे अच्छा किया—दीदी कह रही थी।

शंकर—और उस दिन जब तुम मेले में खो गई थीं, किसने तुम्हें माँ के पास ला दिया। वह जो बूढा साधू था न—दीदी कहती थी, ब्रह्मबाबा ही उस रूप में आये थे। हम पर जब कोई सकट आता है, ब्रह्मबाबा हमारी सहायता के लिए नाना रूप धर कर दौड पडते है।

गिरिजा—उस साधु ने मुझे मिठाइयाँ खिलाई थी भैया! उसका चेहरा कैसा दिप था!

शकर—देवता के चेहरे वैसे ही दिपते होते हैं, गीरू!

(झाझ-करताल के शब्द फिर तेज हो जाते हैं और ज़ोर से डाक देकर कोई बोल उठता है—"हे! हे! दुहाई पोखन ठाकुर ब्रह्म की!")

शकर—तो क्या हमारे ब्रह्म बाबा कोई आदमी थे चाचाजी?

माधोसिंह—हाँ आदमी ही थे! और हमी लोग के पुरखो में से थे। तभी तो हम पर इतनी कृपा रखते हैं वह!

शकर—आदमी थे?

गिरिजा—क्या सचमुच वह आदमी ही थे चाचाजी?

माधोसिंह—हाँ, हाँ वह आदमी थे! हाड-माँस के आदमी। हमी लोगो की तरह जमीन पर चलनेवाले आदमी—दो पैर के, दो हाथ के। किन्तु, आदमी होकर वह आदमी से कुछ पृथक थे, तभी वह देवता हो गये!

शकर—आदमी से देवता हो गये?

गिरिजा—अरे?

माधोसिंह—अचरज की बात है, किन्तु सही बात यही है बेटी! यह जो हमारा गाँव है, वह पहले जगल था। हमारे पुरखे पच्छिम से आये गायो का एक बडा झुड लिये! यहाँ अच्छी चरागाह थी, यह छोटी-सी नदी थी। बस गये यहीं। तब तक गाँव छोटा ही था—कि पोखन-ठाकुर का अवतार हुआ!

शंकर—अवतार ! ! अवतार तो भगवान के होते हैं चाचा जी।

माधोसिंह—हर बड़े आदमी में देवत्व का अंश होता है, बेटा। पोखन ठाकुर बचपन से ही कुछ अजब स्वभाव के थे। बड़े सूधे, बड़े सरल। गायों को ले जाकर दिन भर जंगल में चराया करते, गायें चरतीं और आप पेड़ पर चढ़कर बंशी बजाया करते।

गिरिजा—चाचाजी, तभी दीदी कहती थी; ब्रह्मबाबा अब भी कभी-कभी आधी रात को बंशी बजाया करते हैं, वह बंशी बजाते हैं।

(बंशी का स्वर सुनाई पड़ता है)

शंकर—(डर के स्वर में) चाचा जी यह बंशी . .

माधोसिंह—हाँ, हाँ, बड़ी रात हो गई न। किन्तु इस बंशी से डरो मत बच्चो। यह बंशी हमारी रक्षा की बंशी है। मालूम होता है, हमारी आज की पूजा से ब्रह्मबाबा बहुत प्रसन्न हुए हैं।

गिरिजा—चाचाजी। मुझे भी डर? . .

माधोसिंह—तू तो पूरी डरपोक है गिरिजा। नजदीक आ या माँ के पास जा। शंकर, तुम और सुनना चाहते हो?

शंकर—डर तो मैं भी गया था। चाचाजी। लेकिन, कि सुना ही दीजिये। बड़ी विचित्र कहानी

माधोसिंह—हाँ, हाँ देवताओं की कहानियाँ विचित्र होती हैं तो, हमारे पोखनबाबा धीरे-धीरे जवान हुए। देवताओं की त ही शरीर था उनका। पाँच-पाँच हाथ के गबरू जवान। ऊँची गरदन, भैंसे के पुट्ठे ऐसे। चौड़ी छाती, जामुन के धक्के दे देते, तो सारे पके जामुन जमीन पर पयार लग नहीं तो ब्रह्मबाबा

गिरिजा—आह, तब मैं नहीं हुई। गिरवा कर खूब खाती।

शंकर—तुझे तो हमेशा भूख लगी रहती है गिरि चाचाजी, . . .

माधोसिंह—पोखन बाबा बड़े हुए तो लोगों ने सलाई, लेकिन उन्होंने नाहीं कर दी। उन्हें अब कु दर भाँजने और तेल नापने से ही फुर्सत कहाँ थी ते इन सारे गुनों को उन्हीं ने ही पहले पहल प

बनाया था शकर। लेकिन, गाय से उनका प्रेम अन्त तक न छूटा। दोपहर तक ये सारे काम होते, दोपहर से शाम तक गायें चराते। एक दिन सध्या समय वह गायें लिये आ रहे थे कि एक अजीब गुर्राहट सुनाई दी .

(बाघ की गुर्राहट की आवाज़—फिर दूर पर हल्ला—आदमियो—और पशुओ के भागने के शब्द—लोग चिल्लाते हैं "बाघ—बाघ")

एक व्यक्ति—क्या कहा? पोखन ठाकुर बाघ से लड रहे है।

दूसरा व्यक्ति—पोखन ठाकुर बाघ से लड रहे है।

तीसरा व्यक्ति—बाघ से लड रहे हैं, पोखन ठाकुर

(बाघ की गुर्राहट धम-धम की आवाज़)

माधोसिह—और थोडी देर के बाद लोग वहाँ पहुँचे तो देखते है, बाघ का सिर भुर्ता-भुर्ता हो गया है और पोखन ठाकुर लहू-लुहान खडे मुस्कुरा रहे हैं।

शकर—अब तो सचमुच डर लग रहा है चाचाजी।

माधोसिह—लेकिन देवता की कहानी अधूरी नही छोडी जाती है, बच्चो। पोखन-बाबा का उससे भी बडा करतब तो तब देखा गया जब हमारे इस गाँव की सीमा को लेकर झगडा ठन गया।

शकर—गाँव की सीमा?

माधोसिह—हाँ जी। गाँव की सीमा। जब यह गाँव बस चुका, तो पीछे से बगल के जगल में एक और बस्ती बसी। उस बस्ती और हमारे गाँव के बीच में क्या सीमा रहे, इसको लेकर तकरार मची। पच ने फैसला दिया, तो भी उन लोगो ने नही माना। एक दिन वे लोग सीमा पर आ डटे—भाले, गँडासे और लाठियो से लैस होकर। उनकी तायदाद बडी थी। हम लोगो के पुरखे डर गए कि पोखन-बाबा का ब्रह्म जागा—उन्होने अपनी लाठी निकाली और

पोखन बाबा की माँ—बेटा, बेटा, अकेले मत जाओ, बेटा। सुना है, उन्होने कितने पहलवान बुलाए है।

पोखन बाबा—माँ, चुप रहो। यह हो नही सकता कि कोई सीमा पर चढ आवे और हम घर में बैठे रहे। और पहलवान! पहलवान ही अपनी माँ का दूध नही पीते है, अम्मा।

गांव का एक बुजुर्ग—रहने दो पोखन, अभी हम टाल जायें। हम भी तैयारी कर लेंगे, तो ....

पोखन बाबा—नही नही। जब दुश्मन ने चुनौती दे दी, तो रुकना कायरता है। आपलोग मेरे पीछे आवे, मैं चला . . .

मां—बेटा, बेटा। मैं तुम्हे नही जाने दूंगी, बेटा!

माधोसिंह—कहते हैं, मांने उनकी बांह पकड ली। मां को बांह से टांगे हुए पोखन बाबा आगे बढे। बेटे की इस रुद्रमूर्ति के सामने मां को हार माननी पडी।

(मां के रोने की आवाज)

पोखन—पहला वार तुम करो।

एक पहलवान—पोखन, आज नही बचोगे, लौट जाओ। मां को निपूती मत बनाओ।

पोखन—तुम अपनी जोरू को विधवा मत बनाओ। जाओ उसकी चूडी पहनकर उस बेचारी के सिन्दूर की रक्षा करो।

पहलवान—बड के बोल रहे हो पोखन।

पोखन—बढ के वार करो या भागो।

(लाठियो का खटाखट)

शंकर—उफ! बडी लडाई हुई होगी चाचाजी।

गिरिजा—हमारे पोखनबाबा क्या वही मारे गए चाचाजी?

माधोसिंह—नही। दुश्मनो के वारो को उन्होने बचा लिया और फिर वार-पर-वार करने लगे—एक गिरा, दूसरा गिरा, फिर तो भगदड मच गई। हमारी सीमा रह गई! हमारी इज्जत रह गई। हम उन्ही की दी हुई जमीन को आज तक भोग रहे है। प्रणाम है पोखन बाबा।

गिरिजा—प्रणाम है, ब्रह्मबाबा।

शंकर—प्रणाम है, पोखन बाबा।

माधोसिंह—किन्तु, जैसी शानदार थी हमारे पोखन बाबा की जिन्दगी, उससे भी शानदार तो हुई उनकी मृत्यु।

गिरिजा—किस तरह उनकी मृत्यु हुई चाचाजी।

माधोसिंह—उसे मृत्यु कहना भी अपराध होगा गोरू। वह मृत्यु नहीं शहादत थी—शहादत। एक दिन आधीरात को गाँव में आग लगी। जाड़े की रात थी। सभी गायें गोठो में बँधी थी। लोग तो भगे, किन्तु बेचारी गायें। वे खूँटो में बँधी छटपट कर रही थी, रँभा रही थी, चिल्ला रही थी।

एक स्वर—हाय, हाय, गायें जल रही है।

दूसरा स्वर—उफ, उफ, कौन भीतर जाकर उन्हें खोले।

तीसरा स्वर—इन लपटो में कौन कूद सकेगा ?

माधोसिंह—लपटो में कौन कूदेगा ? वह देखो पोखन बाबा। पोखनबाबा ने बदन से उतार कर कपडे फेंक दिए। कमर में सिर्फ लँगोट, और शरीर को कँबल से लपेट कर, एक हाथ में बंधन काटने का हँसुआ लिए हुए, लपटो में कूद पडे।

(हाय-हाय- -हा-हा- हा- हा-की आवाज़)

माधोसिंह—उसके बाद लोगो ने देखा, एक-एक गाय बंधन कट जाने पर गोठ मे निकल कर भागी आ रही है। एक-एक कर सारी गायें निकली-किंतु !

(हाय-हाय ! हाय-हाय की आवाज़)

शंकर—क्या पोखन बाबा जल मरे ?

गिरिजा——चाचाजी, चाचाजी ! पोखनदादा को क्या हुआ चाचाजी ?

माधोसिंह—वह शहीद हो गए—अमर शहीद। जब आगबुझी, लोगो ने देखा उनकी अधजली लाश एक खूँटे के निकट है। उनका यह बलिदान उनकी यह वीरता ! हमारे पुरखो ने उनकी स्मृति में यह पीपल का पेड रोपा। वह प्राय उन्हे दिखाई पड़ते थे। हमलोग पापी हो गए है, इसलिए हम उनके दर्शन नही कर पाते। किन्तु जब कभी संकट आता है

(झाझ और करताल के शब्द)

गिरिजा—भैया भैया, ब्रह्म बाबा के गीत शुरू हो गए। चलो भैया, हम तमाशा देखें।

शंकर—चाचाजी ने उस दिन जो कहानी कही थी उसके बाद भी इसे तमाशा समझती हो गोरू। चलो अपने गाँव के अमर शहीद

के नाम पर हम श्रद्धांजलि अर्पित करें। अमर शहीद के नाम पर। गांव के त्राता के नाम पर!

गिरिजा—ठीक भैया, ठीक। मैं अभी अक्षत-रोली, चंदन, आरती लाई। आप फुलवाड़ी से फूल लेते आवें।

(झांझ-करताल के शब्द फिर एकबार तेज होकर विलीन हो जाते हैं)



बिकू बाबू

(चार-पाँच आदमियो की एक ही साथ आवाज—"ॐ विष्णवे स्वाहा, नमोश्री विष्णवे, ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, नमो श्री ब्रह्मणे"—इस मत्र को पढकर जैसे वे आहुतियाँ दे रहे हो!)

शकर—उमा, उमा, जल्दी कर उमा! देख, देख, आहुति शुरू हो गई। क्या प्रसाद नही पायगी?

उमा—हाँ, हाँ, आज पूर्णिमा न है भैया? हर पूर्णिमा को यह अच्छा प्रसाद मिल जाया करता है हमें—खड़े दूध की खीर!

शंकर—खीर की कल्पना से ही तेरी जीभ पानी-पानी हो गई।

उमा—भैया, खीर है ही ऐसी चीज। उस पर भी बिकू-बाबू पर चढी हुई खीर!—नया-नया मिट्टी का बर्त्तन—बकैन-भैंस का गाढा-गाढा दूध। वासमती का चावल—जूही-सा उजला, चदन-सा महमह। फिर गोयठे की मीठी-मीठी आग में पकी यह खीर—कितनी मीठी, कैसी सुगन्ध-सनी, कितनी स्वाद-भरी। भैया, बिकू-बाबू के प्रसाद की यह खीर खाने को जीभ पर पानी न आए, तो समझिए, वह जीभ ही नही! क्या आप नही ललचते है भैया, इस खीर के लिए?

शकर—देख, देवता के प्रसाद पर यो लार न टपकाया कर! पहले उन्हे चढ़ा लेने दे—रस देवता पायेंगे, हम तो सीठी पाते है।

उमा—और सीठी जब इतनी मीठी है, तो

शकर—फिर कहता हूँ, देवता के प्रसाद पर यो मत लार टपकाया कर समझी?

उमा—आपने कहा तो मैंने मान लिया। दुहाई विकू-बाबू की, कसूर हुआ हो तो माफ करना। अच्छा, भैया एक बात। क्या विकू बाबू भी पोखन ठाकुर की तरह कोई आदमी ही थे ?

शंकर—अच्छी याद दिलाई तूने, आज शाम को चाचाजी से पूछेंगे। किन्तु, सुनो उमी, मालूम होता है, अब होम समाप्त हो रहा है, चलो जल्दी चलें।

(चार-पांच आदमियों की एक ही साथ आवाज—ॐ विष्णवे स्वाहा, नमोश्री विष्णवे आदि)

× × × ×

चाचा—हां, विकू-बाबू भी आदमी ही थे हमारे बाबा पोखन ठाकुर की तरह। पोखन ठाकुर तो हमारे गांव के थे, किन्तु विकू-बाबू तो हमारे खान्दान के—हमारे अपने खास पुरखे।

शंकर—वह कब हुए थे, चाचाजी ?

चाचा—हमलोगों की सातवीं पीढी में—वह हमारे बाबा के बाबा के बाबा के बाबूजी के बडे भाई थे।

उमा—उनकी अपनी औलाद में हममें से कौन है चाचाजी ?

चाचा—उनकी अपनी औलाद कोई थी ही नही। एक बात देखोगी बिटिया, हमारे गांव के जितने देवता हैं, वे, प्राय. सब-के-सब, ब्रह्मचारी रहे हैं—कोई अपना बाल-बच्चा बाबू कहनेवाला नही था, इसीलिए गांव-भर के बच्चे उन्हे बाबू कहते थे और कब न चल बसे, आज तक वह बाबू कहला रहे हैं—अब सारे गांव के बाबू हैं वह।

शंकर—शादी नही की थी ? क्यों नही की थी ? क्या वह साधु हो गए थे ?

चाचा—साधु का मतलब अगर घर छोडकर वैरागी या सन्यासी बन जाने से है, तो उन्होंने घर कभी नही छोड़ा। किन्तु घर रहकर भी वह साधु थे। बडे सूधे-सादे, बड़ा नेक स्वभाव। घर-गृहस्थी से जो समय बचता, उसे पूजा-पाठ में लगाते। कभी किसी को दुर्वचन न कहा, कभी किसी ने उन्हे क्रोध में नही देखा। शान्त, निरीह। तुम्हे सुनकर अचरज होगा, बडे-बडे बिगडैल भैंसे उनकी बोली सुनकर ही खडे हो जाते थे। अच्छा, कभी तुमने भैंस की लडाई देखी है शंकर।

उमा—भैंस की लडाई? बडी भयानक होती होगी चाचाजी! क्यो भैया, आपने कभी देखा है?

शकर—नही रे! कैसी लडाई होती है चाचाजी!

चाचा—सचमुच बडी भयानक, बडी भयानक! ये भैंसे पालतू तो हो गए हैं, लेकिन अभी इनके मन से जगलीपन नही गया। जगल में तो ये बाघो से भी भिड जाते हैं और उसे टुकडे-टुकडे कर देते हैं—जगली भैंसो से भयानक जानवर शायद ही कोई दूसरा हो!

शकर—अरे रे, चाचाजी, वे बाघ से भिड जाते है?

चाचा—हाँ, रे! भैंसो का यह भयानक रूप तब देखने को मिलता है जब दो भैंसे लड जाते हैं। एक दूसरे को कोसो तक खदेडता है और तबतक चैन नही लेता है जब तक एक दूसरे की अँतडियाँ न निकाल दे।

उमा—उफ, उफ, चाचाजी, चाचाजी, सुनकर ही डर लगता है!

चाचा—एक बार ऐसे ही दो भैंसो में लडाई हो रही थी। दोनो लड रहे थे—उनकी सीगो की ठक, ठक—उनके नथुनो से निकली राक्षस ऐसी साँसें—उनकी उठापटक—लोग दूर पर खडे देख रहे थे कि इतने मे लोगो ने देखा, एक भैंसा शायद हार कर भागा लोगो की तरफ—अपनी जान बचाने को लोगो में हाहाकार मच गया, भगदड मच गई! "भागो, भागो"—"बापरे, दैया रे" का शोर मचा था। सब भगे। किन्तु बिकू-बाबू खडे रहें!

उमा—खडे रहे!

शकर—खडे रह गये!

चाचा—हाँ, खडे रह गए। अगला भैंसा काफी आगे था, वह बिकू-बाबू को सामने देख कर कुछ कतरिया गया और उनके पीछे आकर खडा होगया—जैसे उसे शरणस्थली मिल गई हो। पिछला भैंसा बेतहाश आ रहा था। ज्यो ही निकट आया, लोगो में हाहाकार मच गया। किन्तु, बिकू-बाबू खडे है, मुस्कुराते हुए।

उनके मुँह से निकला—"रुको! रुको महेसर!!"

"रुको, रुको महेसर!" यह क्या, भैंसे के अगले पैर अचानक ऐसे रुके कि मालूम हुआ, पीछे से वह उलट जायगा। फिर वह सम्हल कर खडा हुआ। अब दोनो तरफ दो भैंसे है और बीच में बिकू-बाबू!

भैंसो की नाक से जोरो की साँसे चल रही है—जैसे दो भाथियाँ चल रही हो। दोनो भैंसे एक दूसरे को देख रहे है—एक मानो कह रहा हो, अब छिप कहाँ रहे हो? दूसरा कह रहा हो—अब तो मैं शरण में आ गया, तुम करोगे क्या?

अब बिकू-बाबू आगे बढे और चढाई करने वाले भैंस के निकट पहुँचकर उसकी गरदन सहलाते हुए कहने लगे—"महेसर, महेसर, यह क्या महेसर? भगे हुए पर वार कर रहे हो? छी, छी, छी! यह तो तुम्हारी आदत नही थी!" और वह भैंसे को यो ही सहलाते ए अपने घर ले आए। तब से वह भैंसा अपने ही गाँव में रहा। हाँ, जब बिकू-बाबू चल बसे, वह भी कहाँ चला गया, लोगो को पता न लगा!

शंकर—चाचाजी, चाचाजी; इस कहानी पर तो विश्वास नही होता!

चाचा—बडे आदमियो की ज़िन्दगी में ऐसी चीज़ें होती है, जो हम साधारण आदमियो के दिमाग़ में नही आती! सुना नही, एक बार गांधीजी की देह पर से एक मणिधर नाग ससर कर चला गया था!

उमा—शायद इसीलिए ऐसे बडे आदमियो को हम देवता कहने लगते है, चाचा?

चाचा—हाँ, हाँ, बहुत सही कह रही बेटी! अब तुम लोग जाओ, मुझे खेत में काम करने जाना है। फिर कभी उनकी बाते सुनाऊँगा।

शंकर—अच्छा चाचाजी!

उमा—हाँ, सुनाइयेगा जरूर चाचाजी!

× × × ×

उमा—चाचाजी, बिकू-बाबू के बारे में और कुछ बताइये न?

चाचा—अच्छा, लेकिन शंकर कहाँ है? उसे भी बुलाओ न?

उमा—भैया, भैया! चाचाजी बुला रहे है, भैया! बिकू-बाबू की कहानी सुनिए!

चाचा—अभी आया, उमा!

शंकर—हाँ, तो कहिए चाचाजी! हमारे बिकू-बाबू!

चाचा—कहा था न ? विकू-बाबू बडे सरल, बहुत सूधे आदमी; बिल्कुल ही निरीह थे। कभी किसी पर हाथ न उठाया—कभी किसी जीव की हत्या न की। उनके सामने कोई साँप को भी नही मार सकता था। और, बडे अचरज की बात—बडे-बडे विषधर उनके सामने फन झुका देते थे। कहते है, एक बार हमारे उस दलान से एक बडा पुराना गेहुँअन निकला—इतना पुराना कि वह काला पड गया था, उसकी दुम पूरी -की-पूरी झड गई थी।

"साँप, साँप"। "साँप, साँप"।

इस चिल्लाहट को सुन कर विकू-बाबू दालान से बाहर हुए। देखते है, वह साँप गडेली मारे, फन काढे बैठा है और लोग उसे घेरे हुए हैं। रह-रह कर वह फुफकारे मार रहा है। उसकी फुफकार से ही भगदड मच जाती। किन्तु वह निश्चित बैठा है, मानो वह खेल-वाड कर रहा हो। लेकिन, शायद वह भूल गया था कि उससे भी खेलवाड करनेवाला कोई इस दुनिया में है। बिकू-बाबू आए।

बोले—"ओहो, तुम ? नगेसर ! अरे, यह क्या नगेसर !"

विकू-बाबू कहते हुए उस विषधर के निकट ! वह जोरो से फुफकारा ! विकू-बाबू अट्टहास कर उठे—हा हा हा हा !

"नगेसर, अरे तू मुझसे दिल्लगी करने चला है। किन्तु तेरा रग-रग पहचानता हूँ नगेसर ! चल, चल, तुझे तेरी जगह पर पहुँचा आऊँ !"

अब नागराज का फग नत है और विकू-बाबू उसके निकट पहुँच-कर उसकी गरदन पकड लेते है ! वह लटक रहा है, जैसे वह काले लत्ते का बना गुडिया-साँप हो !

उमा—चाचाजी, चाचाजी ! यह तो अजीब बात मालूम पडती है—सचमुच वह अलौकिक पुरुष थे !

चाचा—उमा, वह खूँख्वार जीवो के बारे में, कहते थे—"ये लोग हमारे पूर्व जन्म के साथी है। वेचारो ने गलतियाँ की थी, इससे इन योनियों में इन्हे जन्म लेना पडा है। इसलिए हमें सदा सुकर्म ही करना चाहिए। बुरे करम इसी जन्म में ही नही, अगले जन्मो तक हमें रगेद मारते है, उमा।

× × × ×

(चार-पांच आदियों द्वारा किए गए फिर हवन और आहुतियों के मंत्र सुनाई पड़ते हैं—"ॐ विष्णवे स्वाहा, नमोश्री विष्णवे! ॐ श्री ब्रह्मणे स्वाहा, नमो श्री ब्रह्मणे!")

उमा—भैया, भैया, पूर्णिमा आई—फिर खड़े दूध की खीर!

शंकर—और फिर चाचाजी से विकू-बाबू की कहानी!

उमा—हां, हां! चाचाजी, विकू-बाबू के बारे में कुछ और बताइये चाचाजी!

चाचा—विकू-बाबू को डर तो छू नहीं गया था। दया और करुणा भी उनमें कूट-कूट भरी थी। गांव में कोई बीमार पड़े उनकी सेवा में हाजिर! उसके पास जाते, उसे दवा देते, उसकी शुश्रूषा करते—अरे, यदि कोई उसके घर में नहीं हुआ, तो उसकी गदगी साफ करने में नहीं हिचकते!

शंकर—अपने हाथों से ही उनकी गदगी साफ कर देते!

चाचा—हाँ, रे! और बीमार आदमी चमार ही क्यों न हो। एक बार विकू-बाबू रात में कहीं से आ रहे थे कि उन्होंने पुकार सुनी—

"आह! पानी! आह पानी! पानी! पानी!" वह झटपट घर के भीतर घुसे। देखा रघुआ चमार बीमार होकर पड़ा है।

"क्या है रघु? ओह, तुम्हें यह क्या हुआ है?"

"पानी! पानी! हाय, पानी!"

विकू-बाबू दौड़ते हुए घर पहुँचे, पानी लाए, उसे पिलाया। उसे हैजा हो गया था, लोगों ने मना किया, छूत लग जायगी, वहाँ मत रहो—

"विकू-बाबू, विकू-बाबू, हैजा है हैजा! भगवती माई से खेल-वाड़ मत कीजिए"

"भगवती माई से खेलवाड़! बच्चा माँ से न खेलवाड़ करेगा, तो करेगा किससे? किन्तु यह हैजा भगवती माई नहीं है, यह गदगी की चुड़ैल का करतब है! सफाई से रहो, फिर यह चुड़ैल पास न फटके!"

और वही हुआ। बिकू-बाबू ने रघुआ को चगा कर ही लिया—यद्यपि इसके लिए उन्हे कई रातो जागना पडा।

उमा—ओहो, कितने दयावान थे हमारे बिन्दू-बाबू!

चाचा—उनकी करुणा की हद तो तब हो गई, जब गाँव में एक आदमी को कुष्ठ हो गया, तो उसकी जिन्दगी भर-सेवा करते रहे।

शकर—कुष्ट, कोढ! चाचाजी, चाचाजी, कोढियो को तो देखते ही मेरी आत्मा काँप उठती है

चाचा—किसकी नही काँपती है, शकर! किन्तु बिकू-बाबू के नजदीक तो वह सब से प्यारा, जो दूसरो के लिए सबसे घिनावन! उस कोढी के घाव धोते, पीव पोछते, उस पर चदन लेप करते और जब वह मरा तो अपने कधो पर उसे नदी घाट तक ले आये।

उमा—ओह, ओह, चाचाजी! बिकू-बाबू सचमुच देवता थे!

शकर—चाचाजी, मै कहूँ! जब वह जीवित थे, तभी देवता हो गए थे—मरके तो देवता बहुत लोग होते है!

चाचा—बहुत सही कहा तुमने बेटा। और वह मरे भी देवता ही की तरह शकर! बूढे हो चले थे, किन्तु काफी चलते-फिरते! एक दिन घर में जाकर कहा—मेरे लिए खीर बनाओ। यही खडे दूध की खीर। खीर बनी। खूब सराह-सराह कर खाया। खाकर जरा लेटे, फिर खेतो की ओर गए और खलिहान में पहुँचते-पहुँचते लोगो से कहा—

मै जा रहा हूँ—आज पूर्णिमा है न?

लोग चिल्ला पडे—

'हाँ, हाँ, पूर्णिमा है—आसिन की पूर्णिमा! किन्तु यह क्या कह रहे है आप?"

"जो कह रहा हूँ, सही कह रहा हूँ! जरा पुआल डाल दो और उस पर कुश की चटाई! मैं चला।"

कुश की चटाई डाली गई। बिकू-बाबू उत्तर दिशा सिर करके लेट गए। उनकी आँखें झिपने लगी। लोग रोने लगे।

एक—बिकू-बाबू, बिकू-बाबू! आपके बिना यह गाँव सूना हो जायगा, बिकू-बाबू!

नया समाज

[एकाँकी]

नया समाज

पहला दृश्य

पर्दा उठते ही एक करुण दृश्यावली आँखों को नम कर देती है। मंच की एक ओर से एक बूढ़ा किसान दुबला-पतला, अस्थिकपाल, कमर में सिर्फ लँगोटी लगाये, कंधे पर कुदाल रखे, रंग-मंच पर आता है। उसकी बगल में नंगधड़ंग एक छोटा-सा बच्चा है। एक मुस्तंडा आदमी हाथ में लाठी लिये उसके पीछे है। वह किसान को धक्के देता है, घूँसों से पीटता है। बच्चा चीखता है। बच्चे को झटका देकर मंच की बगल में फेंक देता है। बच्चे का चिल्लाना सुनाई पड़ता है। बूढ़ा किसान उस मुस्तंडे की ओर चिनगारियाँ भरी आँखों से देखता है। मुस्तंडा आदमी उसके सिर पर एक लाठी जमाता है। सिर को हाथों से पकड़े आह! ओह! करता वह मंच की बगल से निकल जाता है। मुस्तंडा आदमी मूँछों पर ताव देता मंच की दूसरी ओर से बाहर होता है।

मंच की दूसरी ओर से एक फटी हाफकमीज पहने एक नौजवान मजदूर रूखा-सूखा चेहरा लिये मंच पर आता है। उसकी आँखें धँसी हैं, उसकी कमर झुकी है। उसके पीछे खाकी कोट-पैंट लगाये सिख-सा जमादार है। अपनी छड़ी से खोदता, ठेलता वह उस मजदूर को लिये जा रहा है। उसके पीछे मजदूर की नवयुवती पत्नी है, फटी-चिटी साड़ी पहने। उसके हाथ में टूटी टोकरी है। वह लड़खड़ाती, घबराती, उसाँसें लेती, उसके पीछे-पीछे जाती है। दोनों मंच की पहली ओर से निकल जाते हैं।

मच की पहली ओर से एक पढा-लिखा बेकार नौजवान आता है। कोट-पेंट-टाई सब है, किन्तु सब गदे, जगह-जगह पैवद। उसके पीछे उसकी पत्नी है—तीन बच्चो को साथ लिये। पत्नी और बच्चो के पहनावे भी गदे और अबतर। सबसे पीछे एक बुढिया और एक बुड्ढा। इन दोनो की आँखो से आँसू आ रहे है। पढ़ा-लिखा बेकार नौजवान करुण दृष्टि से कभी दर्शको की ओर कभी बाल-बच्चो की ओर, तो कभी अपने वृद्ध माँ-बाप की ओर देखता है। सबके सब धीरे-धीरे मच की दूसरी ओर से निकल जाते है।

मच की दूसरी ओर से जमीदार का एक नौजवान बेटा, एक बूढा मिल-मालिक, एक चोर-बाजार का व्यापारी और उनके पीछे उनके कारिंदे और कर्मचारी आते है। सब-के-सब बने-ठने। सबके हाथ मे शराब की बोतले। सभी पीते है, ठहाके लगाते है, गुनगुनाते है, शोर करते हैं और इसी प्रकार रग और मौज में शराबोर है कि पर्दा गिरता है।

दूसरा दृश्य

कैलाश का बँगला। एक सजा-सजाया कमरा। कैलाश और विनय बाते कर रहे हैं। कैलाश गाँव के ज़मीदार का पढा-लिखा बेटा विनय उसी गाँव के एक गरीब किसान का बेटा—शिक्षित, नये विचारो में पला, पगा।

विनय—यही है तुम्हारा समाज—आज का समाज। जिसमें अन्न-दाता किसान भूखो मरता है, जहाँ वैभवदाता मज़दूर धक्के खाते फिरते हैं, जहाँ पढे-लिखे लोग या तो परेशान है या सारे अनैतिक कार्य किया करते है, जहाँ माताएँ और बहनें अर्द्धनग्न घूमा करती है और जहाँ देश के भावी नेता वे सुकुमार बच्चे बिललाते चलते है। और एक मुट्ठी लोग उनके सीने पर बैठ कर मौज उडा रहे है! कैलाश, कैलाश, यह समाज चल नही सकता, चल नही सकता।

कैलाश—फिर तुम्हारा लेक्चर शुरू हुआ। अरे यार, छोडो इन झमेलों को। खाओ-पीओ, कुछ मीठी गप करो।

विनय—खाओ-पीओ, कुछ मीठी गप करो! कैलाश, तुम खाने-पीने की बात इसलिए करते हो कि तुम्हारे पास इसकी प्रचुरता है किन्तु देश में ऐसे कितने सौभाग्यशाली हैं, जो अच्छी तरह खा-पी सके। और, जिनके पेट में भूख का राक्षस खाँव-खाँव करता है, उनके दिमाग में मीठी गप आ नही सकती है, कैलाश।

कैलाश—फिर तुममें हीन भावना आई विनय। हमेशा यह क्या सोचा करते हो कि तुम गरीब हो? अरे यार, युनिवर्सिटी के सबसे अच्छे लडके हो तुम, एम० ए० हुए कि प्रोफेसर, अफसर जो चाहो बन जाओ। फिर तो मौज-ही-मौज!

विनय—मौज-ही-मौज! मालूम होता है जैसे दुनिया में मौज के सिवा कुछ है ही नही!

कैलाश—यार, है क्यो नही? किन्तु और चीजें छाँछ है, और मौज है मक्खन! अपना सिद्धान्त है—मक्खन खाओ, छाँछ को फेंको।

विनय—और मक्खन सबके सामने धरा पडा है न? कैलाश, जब-जब तुमसे बाते करता हूँ, इच्छा होती है, इतना बल पाऊँ कि इस समाज को जल्द-से-जल्द चूर-चूर कर डालूँ और उसकी जगह पर एक ऐसा समाज बनाऊँ जहाँ कैलाश की तरह के पढे-लिखे समझदार लडको को इस तरह बुद्धिहीन नही बन जाना पड़े। कैलाश, आज के समाज में कोई मौज कर नही सकता!

कैलाश—वाह यार, वाह! कैसी अनोखी सूझ है तुम्हारी। आज के समाज में कोई मौज कर नही सकता? तो हम लोग यह क्या कर रहे हैं?

विनय—जिसे तुम मक्खन समझते हो, वह प्राणनाशक कीटाणुओ का लोदा है—हाँ प्राणनाशक कीटाणुओ का लोदा जो तुम्हारी जीवनी शक्ति खाया करता है! तुम मौज नही करते मौज के नाम पर आत्मघात कर रहे हो! तुम देख नही रहे, सर्वनाश तुम्हारे सामने खडा है! (गभीर बन जाता है)

कैलाश—सर्वनाश! विनय, विनय, मै बार-बार कहता हूँ मुझे ऐसे शब्दो से मत डराया करो। सचमुच जब तुम भवो पर त्योरी डालकर, चेहरे को गम्भीर बनाकर, एक अजीब सजीदा आवाज में कहते हो—'सर्वनाश तुम्हारे सामने खडा है'; तो सच कहता हूँ मालूम होता है, कोई राक्षस सामने खडा हो गया! उफ!

विनय—हाँ, वह राक्षस ही। है कैलाश! राक्षस से भी भयानक! वह आ रहा है, वह आ रहा है हमारे समाज से उन सब को बीन लेने, चुन लेने को जो हमारे समाज में राक्षस है—

कैलाश—विनय, लेकिन मैं उनलोगो में नही। देखो, मैं किसी धड से भी राक्षस लगता हूँ?

विनय—(मुस्कुराते हुए) कैलाश, सवाल व्यक्ति का नही है, सवाल है प्रणाली का। जहाँ मेहनत करनेवाले, उत्पादन करनेवाले भूखो मरे, नगे रहे, और बैठे-ठाले लोग मौज उडावे, जहाँ जन्मते ही कोई अपने को परम पवित्र और अन्य लोगो को अछूत समझने की गुस्ताखी करे, जहाँ नारियो को अपना सौदर्य और यौवन बेचने को मजबूर होना पडे, जहाँ कुत्तो-बिल्लियो को दूध पिलाया जाय और आदमी के बच्चे दाने-दाने को बिललाते फिरे—कैलाश, जहा गरीबी, गुलामी, अनैतिकता और अत्याचार का बोलबाला हो, उस समाज की भित्ति में ही राक्षसता है और वह राक्षस का ही शिकार होगा!

कैलाश—उफ, उफ! फिर वही राक्षस। अरे यार, बारबार आरजू करता हूँ, छोडो इन बातो को। कुछ मीठी बात करो—आशा, आशा!

(भीतर से आवाज—"हाँ, भैया!")

जरा चाय भेजो आशा! (फिर विनय से) विनय, घबराओ मत, अब थोडे दिनो में तुम भी कोई अच्छी जगह पर पहुँच जाओगे, फिर तो

विनय—फिर तो मैं भी मौज किया करूँगा, क्यो?

कैलाश—और क्या?

विनय—कैलाश, फिर कहता हूँ, सवाल व्यक्तिगत सुखदुख का नही है और सच पूछो तो —यह युग ही नही है जिसमें कोई समझदार और ईमानदार आदमी सुख से रहने की बाते भी सोच सके। जब घर में आग लगी हो, क्या कोई चैन से खुर्राटे ले सकता है? आह! (उदास मुद्रा)

(चाय लेती हुई आशा आती है)

कैलाश—फिर बैताल पीपल की डाल से जा लटका! अरे यार, छोडो इन बातो को। पीओ चाय। आशा, जरा मन से चाय बनाना! हाँ!

(आशा चाय बनाकर देती है)

कैलाश—(चाय पीते हुए) कैसी अच्छी चीज है यह चाय! विनय, क्या चाय से भी कोई अच्छी चीज है दुनिया में? बताओ—

विनय—क्या सबसे अच्छी चीज तुम्हे यही मालूम पड़ती है, कैलाश!

कैलाश—नही, नही. गलती हो गई—इससे भी अच्छी चीज है!—(खीसे निपोड़ कर हँसता है)

विनय—जिन अच्छी चीजो को तुम देख रहे या कल्पना कर रहे हो, उससे भी अच्छी चीजे दुनिया में है, कैलाश! किन्तु, हमारा यह वर्त्तमान समाज उनकी ओर हमारा ध्यान कहाँ जाने देता है! अभी तो हम पत्तियो और फूलो पर, बाहरी रग और गध पर ही लट्टू है—अभी तो क्षणिक वस्तुओ के ही फेरे मे बँधे है! यह समाज बदलने दो, फिर ऐसी अच्छी से अच्छी चीजें ऊपर आयेंगी, जिनकी कल्पना भी हम नही कर पाते। वह समाज, नया समाज! काश, उसकी कल्पना तुम कर पाते कैलाश!

कैलाश—तुम्ही उस कल्पना की दुनिया के पीछे दौड़ते रहो, विनय, अपने को तो जो सामने है . . . .

विनय—उफ, उसकी कल्पना तुम कर पाते कैलाश! (कल्पना करते-करते खिल उठता है।)

आशा—कैसा होगा वह समाज विनय बाबू, जिसकी कल्पना ही आपको तन्मय कर रही है!

कैलाश—आशा, तुम इन बातो में न पड़ो। यह पागल है, पागल, तुम्हे भी पागल बना देगा। इसका पागलपन सक्रामक है, मुश्किल से अपने को मैं बचा पाता हूँ! चलो, जाओ यहा से, हटो . . . . .

(आशा करुण दृष्टि से विनय की ओर देखती है, किन्तु विनय जब तक कुछ बोले, कैलाश गुस्से में कहता जाता है)

आशा, हटो, जाओ!

(आशा जाती है)

विनय—तुमने उन्हे भगा दिया। तुम उन्हे भगाओ, या खुद भागो, इस राक्षस की चपेट से बच नही सकते। देखो, कैलाश, यह

से अन्न छीना जा रहा है। उद्योगधंधे बढाने के नाम पर मजदूरो का खून चूसा जा रहा है—हड्डियाँ पीसी जा रही हैं!

गरभू—विनय भैया, विनय भैया, यदि जमीन छिन गयी, फिर हम करेंगे क्या? जीयेंगे कैसे? यह हमारी पुश्तैनी जमीन—जिसमें हमारे पुरखो की हड्डियाँ गली है, जिसे जरखेज बनाने के लिए हमने खून को पसीना बना दिया, उसे ही वे हम से छीन रहे हैं! उफ़! हमें बचाओ—भैया। हम तुम्हारे पैर पडते है! (पैर पकडना चाहता है)

विनय—(मना करता हुआ) यह क्या कर रहे है गरभू बाबा! ओह, क्या आज तक आपने नही देखा कि आपकी दुर्गत इसीलिए होती रही कि आप अपने दुश्मनो को बाबू भैया कहते रहे, उनके पैर पडते रहे। झुके हुए सर पर पैर पडते ही है, गरभू बाबा। यदि आप इज्जत से जीना चाहते हैं, तो सीना तान कर खडा होइये और अकड कर कहिए, यह जमीन हमारी है—इसे हम जोतेगे! फिर देखिये, कौन आपके सामने आता है? हाँ, सीना तानकर, जरा इस तरह (बताता है)

किसान—भैया, हमारी तो कमर तोड दी गई है, भैया! हम कैसे खडे हो—

विनय—जिन्होने आपकी कमर तोडी है, उनकी कमर भी टूट चुकी है गरभू बाबा। उनके दिन भी लद गये हैं। जिन विदेशियो ने उन्हे बनाया, वे चले गये, फिर ये क्या खाकर बचेगे? हाँ, अपने को बचाने के लिए ये तरह-तरह के तिकडम कर रहे हैं। किन्तु कोई ताकत इन्हे बचा नही सकती! आप सब मिलजुलकर, सीना तान कर, खडे तो हो!

रहमान—इनका मायाजाल बडा लम्बा है विनय दादा! देखिए न, ये अब नये रूप धारण कर रहे है—!

विनय—हाँ, रहमान, देख रहा हूँ, ये एक ही छलाँग में सामतशाही से पूँजीवाद के दौरे में मौज मारना चाह रहे हैं। लेकिन ये भूल गये है कि गरीब हल्का-फुल्का होता है, उनसे भी लम्बी छलाँग ले सकता है! जब तक यह पूँजीवाद तक पहुँच भी न सकेंगे, ये गरीब समाजवाद तक पहुँच चुके होगे! जमीन किसानो की, कारखाने मजदूरो के—अब इस नारे को कोई रोक नही सकता! तुम अपना सगठन तो करो!

रहमान—हमने अपना संगठन शुरु कर दिया है भैया, जिस दिन आपका हुक्म होगा, कारखाने की चिमनी बुत के रहेगी।

विनय—हमें कारखाने की चिमनी बुतानी नहीं है, बल्कि उसे और जोरों से जलाना है, चलाना है। लेकिन यह नहीं हो सकता है कि जो उपजावे, वह मजदूर तो भूखों मरे और मुट्ठीभर पूँजी-पति संसार के सारे सुख-ऐश्वर्य का भोग करे। हमें इस समाज को ही बदल देना है, रहमान।

गरभू—समाज को बदलना है? विनय भैया, हमारे बाप-पुरखे

विनय—(मुस्कुराते हुए) समझा, समझा, गरभू बाबा! किन्तु सोचना यह है कि हमारे बाप-पुरखे भी हमारी ही तरह के आदमी थे। जिस तरह हम गलतियाँ किया करते हैं, उन्होंने भी गलतियाँ की होंगी। देखिए, उनकी गलतियों से ही तो विदेशी हमारे देश में आये थे, और आई थी उनके साथ ही यह जमीन्दारी। यह शोषण और लूट भी तो उन्हीं के सूधेपन के चलते जारी हुए। सपूत वह है जो बाप-दादों की गलतियाँ दुरुस्त करे। हमें इस समाज को हटाना है, नया समाज बनाना है।

[भीतर से आवाज—

इन्हें हमें हटाना है,
नया जगत बसाना है,
बसाना है,
बसाना है,
नया समाज लाना है,
बदल दो,
बदल दो इस समाज को
बदल दो।]

रहमान—अहा, कैसा सुन्दर, कैसा जोशीला! (मजदूर) हाँ, हाँ, जरा तुम भी गाओ बूढ़े बाबा, जरा तुम भी सुर मिलाओ। जानते हो, ये गाने तराने नहीं हैं, ये हमारे गोले-बारूद हैं, बाबा! इनके सुनते ही दुश्मनों के होश गुम हो जाते हैं। जरा गोले-बारूद चलाना सीखो बाबा!

गरभू—इस बुढ़ापे में?

विनय—कौन कहता है आप बूढ़े हैं? आप ही तो कहते थे, साठा, तो पाठा!

गरभू—अच्छा, तो एकबार हमारा करतब देख लेना विनय भैया! (तनकर खडा होता, मूँछ पर ताव देता)

विनय—क्यो रहमान!

रहमान—रहमान से कुछ मत पूछिये विनय दादा! उसने तो तय कर लिया है, इस समाज को वह बदलकर रहेगा, या इस कोशिश में अपनी जान दे देगा।

विनय—तो तुम दोनो मिलकर उस सुर में सुर मिलाओ। पुराना समाज तभी हटेगा, नया समाज तभी बनेगा, जब मजदूर और किसान एक हो जायेंगे, एक साथ लडेंगे, एक साथ गायेंगे।

मजदूर—और, जब आपके ऐसा नेता उन्हें मिलें, जिसने अपने सारे भविष्य पर लात मारकर गरीबो के उद्धार का ही बीडा उठाया हो! उफ, जब आपके साथी धन जोडने में, मौज उडाने में लगे हैं, आप दिन-रात भूखे-प्यासे गाँव-गाँव, गली-गली चक्कर काटा करते है!

गरभू—विनय भैया! भगवान तुम्हे मेरी आयु दे। (आखो में आँसू)

विनय—गरभू बाबा, मजा लम्बी जिन्दगी पाने में नही है, मजा है जिन्दगी को किसी अच्छे काम में मशाल की तरह जलाने में—वह जलती रहे, बलती रहे, रोशनी देती रहे, प्रकाश फैलाती रहे

पाँचवाँ दृश्य

कैलाश का बँगला। कैलाश अपनी बहन आशा से बाते कर रहा है—

कैलाश—आशा, आशा, सुना है तुमने आशा? उस विनय ने

आशा—विनय बाबू ने? कहाँ है विनय बाबू, भैया?

कैलाश—कहाँ है? वह आग लगाता फिर रहा है, आग!

आशा—आग ? विनय बाबू ?

कैलाश—हाँ, हाँ आग लगा रहा है ? शैतान की तरह आग लगा रहा है जिसमें मैं जलूँगा, तुम जलोगी, सारा समाज जलेगा, वह खुद भी जलेगा, आशा, खुद भी।

आशा—यह आप क्या कह रहे हैं भैया ?

कैलाश—जो अपनी आँखों से देख रहा हूँ। वह मेरी सारी जमीन्दारी में किसानों को भड़का रहा है, उनसे खुराफाते करवा रहा है। गाँव-गाँव में उसने किसान सभायें बनवाई हैं। बेगार, अबवाब की कौन सी बात, मालगुजारी भी नही मिल रही है, मालगुजारी। वह किसानों को ऐसा खूँखार बना रहा है कि मेरे ट्रैक्टर धरे रह जायेंगे। और तो और, मैंने जो चीनी मिल खोली है, उसे भी सत्यानाश में मिलाने पर तुला है वह शैतान .

आशा—वह तो बहुत ही सीधे-सूधे हैं भैया। आप उन्हें शैतान

कैलाश—ऐसे लोगों के चेहरे ऐसे ही धोखे देनेवाले होते हैं आशा! तमाशा तो यह है कि वह सारे देश में आग लगाता फिर रहा है, फिर भी अपने को देशभक्त

आशा—अगस्त क्रान्ति में तो उन्होंने बहुत कुछ किया था भैया!

कैलाश—तभी तो उसका दिमाग और फिर गया है। लेकिन आशा, थाने को लूटना, डाकघर में आग लगाना या कचहरी पर झंडे उड़ाना ही देशभक्ति नहीं है। मैं तो कहूँगा, घड़ी भर के जोश में आकर गोलियों के सामने छाती खोल देना भी देशभक्ति की कसौटी नहीं है। परिस्थिति के अनुसार देशभक्ति की कल्पना भी बदलती है।

आशा—देशभक्ति ? बदलती है ?

कैलाश—हाँ, बदलती है। आज की बदली हुई परिस्थिति में एकमात्र देशभक्ति है पैदावार बढ़ाना। सुना नही, प० नेहरू ने कहा है—(Produce or perish) पैदावार बढ़ाओ, नही तो नाश में मिल जाओगे। सरदार पटेल भी यही कहते फिर रहे थे। आशा, आज देश संकट काल से गुजर रहा है, इसलिए जो कोई भी पैदावार बढ़ाने में अड़चन डालता है, वह देशद्रोही है।

आशा—देशद्रोही ?

कैलाश—विनय, विनय ओह, आशा, आशा!

(आशा आती है)

आशा—भैया, भैया! विनय बाबू क्यों भाग गये भैया

कैलाश—वह मेरे मुह पर तमाचा मार कर चला गया है। उस पर इस समय लीडरी का भूत सवार है आशा! लीडरी का भूत!

(मैनेजर का प्रवेश)

मैनेजर—तो थोडी झाड-फूँक कर देने से सब ठीक हो जायगा। नमस्कार सरकार! बेटी, आशा बेटी, जरा मेरे लिए नाश्ते का तो कोई इन्तजाम करना बेटी! जा, भीतर जा। इन मामलो में तुम्हें नही पडना चाहिए बेटी! जा मेरी बिटिया!

(आशा जाती है)

तो सरकार ने देख न ली इनकी शोखी। इनकी सारी शोखी हवा हो जाय, यदि

कैलाश—यदि क्या मैनेजर साहब?

मैनेजर—यदि सरकार की आज्ञा हो और क्या?

कैलाश—क्या आज्ञा चाहिये?

(मैनेजर कान में कुछ कहता है)

कैलाश—नही, नही, यहाँ तक नही जाना चाहिये।

मैनेजर—यहाँ तक नही जाइये, तो जैसा विनयबाबू कहा करते है—सर्वनाश मुँह बाये खडा है, उसके मुँह में जाना होगा सरकार!

कैलाश—मैनेजर साहब, मैनेजर साहब, ओह, ओह! उसकी चर्चा मत कीजिये।

मैनेजर—हजूर, वह सामने खडा है! या तो आज्ञा दीजिए, या

कैलाश—उफ मैं क्या करूँ, क्या करूँ?

मैनेजर—आपको कुछ करना नही है, सरकार, कुछ करना नही है। आपकी आज्ञा, बस! बोलिए सरकार!

कैलाश—मैनेजर, मैनेजर, जो चाहो करो। हाँ, हाँ, जो चाहो करो—सब्र की हद होती है, इसने मुझे तग कर रखा है— अब चखे उसका फल।

मैनेजर—तो सलाम हुजूर।

(मैनेजर जाता है—आशा आती है)

आशा—भैया, भैया, मैनेजर यह क्या आज्ञा मांग रहे थे भैया? आपने क्या आज्ञा दी है भैया।

कैलाश—आशा, भीतर जाओ, भीतर जाओ—जाओ-

आशा—(गम्भीरता से जैसे कुछ निश्चय कर चुकी हो) हाँ, मैं जाती हूँ, भैया .

छठा दृश्य

एक खेत। घायल, लहूलुहान विनय पड़ा हुआ कराह रहा है।

नय—आह! आह! आह!

शा—कौन? विनय बाबू? विनय बाबू? आः

उन्हें सम्हाल कर बैठाती है) हाय, यह क्या

वनय—आह! (आँखें खोलते हुए) कौन? अ

आशा—ओह, मुझे देर हो गई विनय बाबू! देर

ने अपना काम कर लिया! कोई है, कोई है

(रहमान का प्रवेश)

रहमान—अरे, यह क्या हुआ? क्या हुआ?

विनय—पानी, पानी!

आशा—आप जल्द पानी लाइये, जाइये, जल्द

(रहमान जाता है)

आशा—ओह, यह क्या हुआ? मैनेजर, दु

ह क्या किया? भैया, भैया, आपने यह क्या करा

(फूट कर रोती है)

विनय—पानी! पानी!

(रहमान पानी लेकर आता है)

आशा—पानी है विनय बाबू, पानी।

(विनय के मुँह में पानी देती है—वह पीता है—उसके चेहरे पर पानी का छींटा)

आशा—ओह, यह क्या हुआ विनय बाबू।

रहमान—यह क्या हुआ, विनय दादा।

विनय—हुआ वही, जो होना था। संघर्ष के साथ यह सब लगा हुआ है, रहमान। कोई घायल होता है, कोई गिरता है, कोई जेल में मरता है, कोई खेत पर मरता है। संघर्ष के साथ यह सब लगा हुआ है——

आशा—दुष्ट मैनेजर। भैया–भैया। ओह।

विनय—आशा, बात व्यक्ति की नहीं है आशा। सवाल है प्रणाली का, प्रणाली का। आज के समाज में ही यह सब निहित है आशा–शोषण, उत्पीडन, अन्याय, अत्याचार, खून, हत्या। सिर्फ लाठी और हाथ नहीं देखो, देखो उस राक्षस को, जो उसके पीछे छिपा है। आह।

रहमान—(गुस्से में) हम इसका बदला लेंगे।

विनय—बदला लोगे? जरूर बदला लेना, रहमान, जरूर। जो बदला नहीं ले, वह आदमी नहीं है, रहमान। लेकिन आदमी का बदला आदमी की तरह का होना चाहिये शैतान या हैवान की तरह का नहीं। आह।

रहमान—आह! आप यह क्या कह रहे हैं मेरे सरदार।

विनय—बदला लो आदमी से नहीं, उस प्रणाली से, उस समाज से जिसके चलते आदमी इन्सान से हैवान, मनुष्य से पशु बन जाता है। उस प्रणाली को, उस समाज को बदलो, मेरे भाई। आह। जरा पानी।

(आशा पानी पिलाती है—देखती है, खून बंद नहीं हो रहा है)

आशा—ओह, यह खून बहा ही जा रहा है। (रहमान से) जाइये, किसी डाक्टर को बुलाइये—डाक्टर को

विनय—खून। उसे बंद मत करो आशा। उसे बंद करने की जरूरत नहीं है रहमान। उसे बहने दो, बहने दो। इसी खून में

स्नान कर नया समाज आयेगा। वह नया समाज—जहाँ सब आदमी बराबर होंगे, सब आदमी सुख-चैन से रहेंगे। जहाँ गरीबी नहीं होगी, मूर्खता नहीं होगी, अन्याय नहीं होगा, अत्याचार नहीं होगा। जहाँ सब हिलमिल कर रहेंगे, सब हिलमिल कर नाचेंगे, गायेंगे। ओह, वह ऐश्वर्य का समाज, आनन्द का समाज, सौंदर्य का समाज, संगीत का समाज। वह समाज! पृथ्वी पर स्वर्ग। आशा, आशा, देखो, वह स्वर्ग पृथ्वी पर उतर रहा है। देखो, देखो वह पृथ्वी पर बन रहा है, देखो, देखो . . (उठने की चेष्टा)

आशा—आह! आह!

विनय—तुम देख नहीं रही आशा—वह नया समाज! वह पृथ्वी पर स्वर्ग बस रहा है, आशा! पृथ्वी पर स्वर्ग—जहाँ ऐश्वर्य, आनन्द, सौन्दर्य, संगीत . . .

(आँखें मुँद जाती हैं)

मजदूर—ओह ओह! क्या हमें छोड़ कर .

विनय—रहमान! प्यारे रहमान! आदमी के खान्दान की तरह विचारों का भी खान्दान होता है, रहमान! एक आदमी जाता है, हजारों का कुनबा छोड़ कर। विचार का सुनहला धागा भी कभी नहीं टूटता—उसे जोड़नेवाले, उसे लम्बा करनेवाले आते ही रहते हैं, आते ही रहते हैं। उस धागे को—विचारों के धागे को, सिद्धान्तों के धागे को—उस सुनहले धागे को—देखो, उसे जोड़ो, उसे लम्बा करो—वह संसार को छाने जा रहा है—वह संसार पर छाते जा रहा है—वह सुनहला धागा—जिसके सामने आदमी तिनका है, तुच्छ तिनका! तिनके का मोह और इन्कलाब। करें? रहमान कहो—इन्कलाब—

रहमान—जिन्दाबाद!

(गरभू का प्रवेश)

गरभू—विनय भैया, विनय भैया! यह क्या हुआ विनय भैया!

विनय—गरभू दादा, गरभू दादा—कुछ नहीं गरभू दादा—कहिये, इन्कलाब! . . बोलिये, इन्कलाब——

किसान—(धीमे) जिन्दाबाद!

विनय—जोर से जरा जोर से दादा!

आशा—आह! ओह! (रोती है)

विनय—आशा, इन्कलाब! जब बिदा ले रहा हो, रोना नहीं चाहिये आशा! क्रान्ति अमर है, तो क्रान्तिकारी भी अमर है। बोलो तुम सब मिलकर बोलो—इन्कलाब—

सब—जिन्दाबाद!

विनय—इन्कलाब—

सब—जिन्दाबाद!

[पर्दा गिरता है—स्वर धीरे-धीरे धीमा होता जाता है]

विजेता

[नाटक]

भूमिका ?

(वि)

हाँ, इस नाटक के लिए एक भूमिका चाहिए, लम्बी भूमिका। किन्तु, इस प्रलोभन से मैं अपने को बचाऊँगा।

बारह वर्षों तक मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटते रहने के बाद कहीं यह सूर्य का प्रकाश देख पाया है। अब भी मेरे सामने वह कापी है, जिसमें मैंने इसकी रूप-रेखा तैयार की। उसपर हजारीबाग-सेन्ट्रल-जेल की सरकारी मुहर है और मैंने उसपर तारीख लिखी है, विजयादशमी १९४३।

'अम्बपाली' लिखने के बाद मैंने इसका शुभारम्भ जेल में ही किया था और जब दिल्ली के 'राष्ट्रीय नाटक महोत्सव' के लिए 'अम्बपाली' का रिहर्सल किया जा रहा था, मैंने इसे फिर से हाथ में लिया और पूरा किया।

किन्तु उस पुरानी रूपरेखा और इसके वर्त्तमान रूप में आकाश-पाताल का अन्तर है।

समूचा नाटक चार ही दृश्यों में समाप्त होता है, एक-एक अंक में सिर्फ एक-एक दृश्य। इसमें पात्र भी सिर्फ पाँच हैं। और बिना किसी प्रकार की काँट-छाँट किये इसे दो-ढाई घंटे में खेल लिया जा सकता है।

(जे)

चन्द्रगुप्त मौर्य पर कितने ही नाटक लिखे गये हैं। किन्तु मैंने आश्चर्य से पाया है, 'चन्द्रगुप्त' नाम देकर भी लोगों ने दरअसल 'चाणक्य' लिखा है। उनका मुख्यपात्र चाणक्य है, चन्द्रगुप्त तो उसके इशारे पर नाचता है।

विशाखदत्त ने अपने 'मुद्राराक्षस' में जो परम्परा चलाई, वह अब तक ढोई जा रही है, यद्यपि इतिहास के आधुनिक अनुसंधानों ने उसकी कितनी ही बातों का खंडन कर दिया है।

कितने आश्चर्य की बात है कि इतिहास जहाँ चाणक्य के बारे में थोड़ा-सा उल्लेख करके चुप है, वहाँ साहित्य उसकी कूटनीतिज्ञता की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाता।

यह प्रशंसा यहाँ तक बढ़ा दी गई कि चाणक्य एक धूर्त और नृशंस व्यक्ति-मात्र बन जाता है और चन्द्रगुप्त उसके हाथ की कठपुतली-मात्र।

कठपुतली भी कैसी ? शूद्र, वृषल आदि कह कर भारत के उस प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् को नीचे-से-नीचे गिराने की कोशिशें हुई है।

इस महान पुरुष को उस गड्ढे से निकालना चाहिये, ऐतिहासिक तथ्य और महत्व के अनुरूप ही उसे साहित्यिक रूप देना चाहिये, बारह वर्षो से मेरे मस्तिष्क में यह विचार चक्कर काट रहा था। उसी का फल यह नाटक है।

मैंने जो कुछ लिखा है, उसके आधार के लिए ऐतिहासिक प्रमाण देने लगूँ, तो वह इस नाटक से भी विशाल रूप धारण कर ले सकता है।

किन्तु, मैं इस प्रपच से अपने को रोकूँगा। इतना ही कहूँगा, चन्द्रगुप्त का यह साहित्यिक रूप आधुनिकतम ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित है। हाँ, उनके प्रकटीकरण और विश्लेषण में मैंने थोडी स्वाधीनता ली है, जो हम साहित्यिको का अधिकार है।

(ता)

अब हिन्दी के रगमच की ओर लोगो का ध्यान गया है। चारो ओर नाटक खेलने के लिए एक नया उत्साह पैदा हुआ है।

दो-दो तीन-तीन दर्जन दृश्यो का नाटक लिखने और खेलने का समय वीत चुका। आधुनिक रगमच पर अब इसके लिए गुजायश कहाँ ? यो ही पाँच-पाँच घटो तक नाट्गृह में बैठने की फुर्सत भी लोगो में नही रही।

पात्र-पात्रियो की बहुलता भी नाटक के खेलने में बाधक बन जाती है।

नाटक छोटे हो, जो दो-ढाई घटे में खेल लिये जा सकें। उतने ही दृश्य हो, कि इन्टरवल के समय फिट कर लिये जायँ। पात्र-पत्रियो की सख्या ऐसी हो कि कुछेक प्रतिभाशील व्यक्तियो को ही लेकर अभिनय करा लिया जा सके।

युग की माँग यह है!

इस नाटक की जो रूपरेखा मैंने पहले तैयार की थी, युग की इस माँग को ध्यान में रख कर उसमें मुझे आमूल परिवर्तन करना पडा है। किन्तु युग की इस माँग की पूर्त्ति करना कितना कठिन है, पग-पग पर अनुभव करता रहा हूँ।

चाहे जैसा भी बन पडा हो, अपने ऐतिहासिक नाटको की माला में यह अन्तिम मनका जोड कर अब सामाजिक नाटको की ओर प्रवृत्त होने जा रहा हूँ।

युग की एक माँग यह भी है, जिसकी अवहेला नही की जा सकती।

पटना, ६
वसतपचमी, १९५५

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

पात्र

चन्द्रगुप्त

चाणक्य

श्वेतकेतु



पात्रियाँ

मां

चन्द्रा

विजेता

पहला अंक

स्थान : तक्षशिला के निकट का एक पहाड़ी प्रदेश

समय : प्रात काल

छोटी-सी पहाड़ी नीचे घनघोर जंगल। इस घनघोर जंगल में एक छोटा-सा खुला स्थान।

उस खुले स्थान में एक युवक खड़ा है। सामने की पहाड़ी के पार्श्वभाग पर एक गोल चिह्न बना हुआ है जिसके इधर-उधर कितने भाले लटकते दीख पड़ते हैं। उसके दाहिनी ओर, पहाड़ी के सहारे, कई भाले खड़े किये गये हैं। वहीं एक धनुष और तीरों से भरा हुआ एक तरकस लटक रहे हैं।

युवक के हाथ में एक भाला है। वह उस भाले को लक्ष्य की ओर फेंकने जा रहा है।

कितना सुपुष्ट है उसका शरीर। कमर से घुटनों तक का कटि-पट। इस संक्षिप्त परिधान में उसका शरीर-वैभव कैसा निखरा पड़ता है!

गौर मुखमंडल। उन्नत ललाट। दोनों सघन भवें जैसे एक-दूसरी से मिलने को आतुर। होंठों पर दृढ़ता। वृषभस्कंध। प्रशस्त वक्षस्थल। बाहों की, जाँघों की मांसपेशियाँ उभड़ी पड़ती हैं। सुदृढ़ अडिग चरण।

उसके ललाट पर स्वेद-बिन्दु चमक रहे हैं। सारा बदन पसीना-पसीना हो रहा है।

लगता है, वह बहुत देर से लक्ष्य साध रहा है। पहाड़ी पर उस गोल-चिह्न के इर्द-गिर्द अटके-लटके कई भाले इसके प्रमाण हैं।

हाथ के भाले को वह फेंकता है। खट-सा शब्द होता है। फिर बगल में पहाड़ी से उठँगाये दो भालों को क्रमश फेंकता है। तीसरा भाला लक्ष्य-वेध कर लेता है। वह अट्टहास कर उठता है!

उसी समय पहाड़ी की दूसरी ओर मे शब्द सुनाई पडता है—"धन्य बेटे धन्य "

इस शब्द के साथ एक वृद्ध पुरुष सामने आता दिखाई पडता है। काला है उसका वर्ण। लम्बी है उसकी शिखा। आँखें लाल-लाल—जो उसके काले चेहरे पर दो जलते कोयले के अगारो के समान दीखती हैं!

कटि मे एक लटपटा वस्त्र और कधे पर एक धूसर उत्तरीय। मोटी उजली जनेऊ काले शरीर पर स्पष्ट दीख रही है।

यह वृद्ध है चाणक्य और वह युवक है चन्द्रगुप्त। यह घटना तब की है, जब यवन-अधिपति ससार-विजेता सिकन्दर—अलक्षेन्द्र—भारत के एक भाग पर विजय प्राप्त कर लौट चुका है।

अनुश्रुति है, जब सिकन्दर—अलक्षेन्द्र—भारत आया था, उसका युद्ध-कौशल देखने को चन्द्रगुप्त उसके शिविर में जाया करता था और एक बार वह वहाँ गिरफ्तार भी किया जा चुका था।

भाला यवनो का सबसे प्रमुख अस्त्र था। घोडो पर चढकर, उन्हें दौडाते हुए, शत्रुओ पर जब वे क्षिप्र वेग से चढ दौडते, तो उन भालो के प्रहार को शत्रु सम्हाल नही पाते।

चन्द्रगुप्त उन्ही के इस अस्त्र का कुछ दिनो से अभ्यास कर रहा है। चाणक्य को सामने देख चन्द्रगुप्त सिर नवाता है, चाणक्य धीरे धीरे उसके निकट आता है और प्रसन्न मुद्रा में कहता है—

चाणक्य—धन्य बेटे धन्य! यवनो के इस अस्त्र पर भी तुमने निपुणता प्राप्त ही कर ली!

चन्द्रगुप्त—यवनो के नही, विजेताओं के अस्त्र पर कहिये गुरुदेव! अह, वे किस तरह झझा के वेग से आये, जीर्णशीर्ण वृक्षो की तरह हमें धराशायी किया और फिर किस प्रकार हमें रौंदते, कुचलते झझा की गति से ही वापस गये!

चाणक्य—तुम उन्हे भूल नही सके, बेटे!

चन्द्रगुप्त—न भूल सका और न भूल सकूँगा गुरुदेव! अब भी उनके मासल पुट्ठे, उनके पैने भाले, उनका क्षिप्र वेग और उनके भीषण जयनाद मस्तिष्क में साँय-माँय मचाये रहते हैं। शक्ति, साहस और गति के अवतार से दीखते थे वे। और, सबसे बढकर उनका

वह सेना—अलक्षेन्द्र! गुरुदेव, उसकी आँखों में वह क्या था? जो उसके सामने गया, क्या बिना झुके रह सकता था?

चाणक्य—किन्तु, एक ऐसा भी था जो झुक नहीं सका!

चन्द्रगुप्त—आप राजा पुरु की बात कहते हैं?

चाणक्य—नहीं, एक ऐसे पुरुष की जो अपने को बार-बार भूल जाया करता है। जो दूसरों के पुट्ठे देखता है, किन्तु जो न अपनी विशाल भुजाओं को देखता है, न प्रशस्त वक्षस्थल को, जिन्हें देख कर अलक्षेन्द्र भी मोहित हो गया था।

(चन्द्रगुप्त समझ लेता है उसी की ओर लक्ष्य किया गया है, अत व्यग्य में बोलता है—)

चन्द्रगुप्त—कदाचित इसलिए उसे बंदी बना कर वह अपने देश ले जाना चाहता था—यह दिखाने को कि देखो, एक देश ऐसा भी है, जहाँ के लोग ऐसे हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी पराजय स्वीकार करते हुए नहीं लजाते।

चाणक्य—किन्तु, क्या वह उसे बंदी रख सका?

चन्द्रगुप्त—एक व्यक्ति बंदीघर से निकल आया तो क्या हुआ गुरु-देव! सारे देश के हाथों में तो वह हथकड़ियाँ डाल ही गया है।

चाणक्य—तुम्हें अपमान बोध हो रहा है, चन्द्र!

चन्द्रगुप्त—जो अनुभव करता हूँ, वह केवल अपमान ही नहीं है गुरुदेव!

चाणक्य—आह! यदि सारे देश के युवक भी तुम्हारी ही तरह सोच पाते!

चन्द्रगुप्त—जो नहीं सोच सकते, उन्हें सोचने को बाध्य करना पड़ेगा गुरुदेव। मुझी में यह भावना कहाँ से आई? किसी ने दी ही तो है!

चाणक्य—मुझ पर यह यश मत थोपो, चन्द्र! मुझे उस दिन का स्मरण है, जब एक दीन ब्राह्मण अपने सपनों में पागल बना आर्यावर्त के कोने-कोने में घूम रहा था—गाँवों में ढूँढता था, नगरों में ढूँढता था, पगडंडियों पर ढूँढता था, राजपथों पर ढूँढता था—ढूँढता था एक ऐसा नायक—सेनानायक—जो उसके सपनों को सत्य का आधार दे सके, उन्हें रूप दे सके, उनमें प्राण-प्रतिष्ठा कर सके! कि, अनायास उसे एक दिन एक बच्चा दिखाई पड़ा। हाँ, वह बच्चा ही था! वह एक बच्चा, अनेक बच्चों के बीच। अनेक नरवाहे बच्चों के बीच एक ऊँचे टीले पर खड़ा वह उन्हें आदेश

दे रहा था—देखो, वहाँ वह शत्रु का दुर्ग है, हमें उसपर चढाई करनी है, उसपर अधिकार करना है! तुमलोग चार टुकडियो मे बँटो—

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, गुरुदेव! वे तो बचपने की बातें थी। उनकी याद दिला कर

चाणक्य—हाँ, वे बचपने की बाते थी! किन्तु बेटे, चन्द्र, बचपने की उन बातो में ही उस स्वप्नदर्शी ब्राह्मण ने जैसे उसी दिन अपने सपनो के लिए सत्य का आधार पा लिया। उसने देखा, उसका नायक, उसका भावी विजेता, उसके सामने खडा है। वह बडी देर तक एकटक उसे निहारता रहा—उसकी आँखें देखी, जिनसे निर्भीकता झाँक रही थी, उसकी भुजायें देखी, जिनसे वीरता उबली पडती थी, उसकी छाती देखी, जिसमें धडकन की जगह साहस स्फुरित हो रहा था। वह ब्राह्मण भाव-विभोर हुआ! (भाव-विभोर होकर आँखें मूँद लेता है)

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव! गुरुदेव!

चाणक्य—हाँ, उस दिन भी उस ब्राह्मण ने इसी तरह भाव-विह्वल होकर आँखें मूँद ली थी, और वह बच्चा आदेश दिये जा रहा था—एक टुकडी सामने से चढाई करेगी, जब युद्ध घमासान हो जाय, दो टुकडियाँ एक ही साथ दायें-बायें से चढ दौडेंगी और चौथी टुकडी ! अब भी क्या वह ब्राह्मण वहाँ खडा रह सकता था? वह आगे बढा, उस बच्चे के समक्ष उपस्थित हुआ—राजन्, एक दीन ब्राह्मण आपकी सेवा में उपस्थित है!

चन्द्रगुप्त—छोडिये उन भूली-बिसरी बातो को गुरुदेव!

चाणक्य—नही, मुझे कहने दो बेटे! आज आवश्यकता है कि फिर उन बातो का स्मरण किया जाय। उस ब्राह्मण ने कहा—राजन्, एक दीन ब्राह्मण आपकी सेवा मे उपस्थित है। बच्चे ने कहा—ब्राह्मण हो, तो तुम्हे गायें चाहिये न? सामने गायें चर रही है, उनमें से जितनी चाहो, हँकालो! ब्राह्मण मुस्कुराया—यदि कोई मना करे, तो? बच्चा तमक उठा—चन्द्रगुप्त के राज्य में कौन ऐसा है, जो उसकी आज्ञा की ओर उँगली उठा सके!

(चन्द्रगुप्त लज्जावश दोनों हाथो से मुँह ढँक लेता है। चाणक्य उसके हाथ हटाता हुआ)

चाणक्य—चन्द्र! वही बच्चा तुम हो न? और, वही ब्राह्मण न मैं हूँ। कितने दिन बीत गये, सिंधु का कितना जल समुद्र में जा गिरा। किन्तु आह! बच्चा अब भी मिट्टी के उस टीले पर ही है

चन्द्रगुप्त—और, उस ब्राह्मण की शिखा आज तक नहीं बँध सकी गुरुदेव! (उसाँसें लेता है)

चाणक्य—शिखा! शिखा! (अपनी लम्बी शिखा पर हाथ फेरता हुआ) यह अब शिखा ही नहीं है, चन्द्र! अब यह प्रतिहिंसा की ज्योतिशिखा है! देख नहीं रहे हो, यह बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है। अब यह इतनी बढ़ चुकी है कि यदि इसे शत्रु-शिविर में नहीं छुलाई गई, तो यह मुझे ही भस्मसात् कर देगी। बेटे, अब मगध चलो। अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो चुकी है और जो कमी थी, उसे यवनों की इस विजय के अनुभव ने पूरा कर दिया है।

चन्द्रगुप्त—मगध चलें! और, यहाँ यवनों का साम्राज्य बना रहे? गुरुदेव, मैं तो पहले इनका ही उच्छेद करना चाहता हूँ। अपने देश के शीर्ष भाग पर लगा यह काला धब्बा मुझे असह्य लगता है गुरुदेव! और इनकी विजय का रहस्य भी मुझे मालूम हो चुका है। मैं इन्हीं के अस्त्र से इनको पराजित करूँगा। पहले हम बाहरी शत्रु को हटायें, फिर भीतरी शत्रु को देख लेंगे!

चाणक्य—नहीं बेटे, नहीं। जब तक भीतर शत्रु है, तब तक तुम बाहर के शत्रु को हरा नहीं सकते, हटा नहीं सकते। उस दिन उस झोपड़ी में वह बुढ़िया जो कह रही थी, उस बात की यथार्थता अब समझ में आ रही है।

चन्द्रगुप्त—किस बुढ़िया की बात, गुरुदेव?

चाणक्य—हो सकता है, तुमने ध्यान नहीं दिया हो। हमलोग बहुत रात बीते लौट रहे थे। एक झोपड़ी के निकट पहुँचे, तो सुना, एक बुढ़िया कह रही थी—बेटा, तुम भी क्या चाणक्य-चन्द्रगुप्त हो कि रोटी के चारों ओर तोड़-तोड़ कर खा रहे हो, किन्तु बीच में हाथ नहीं डालते! बीच में हाथ नहीं डालते! चलो चन्द्र, बीच में हाथ डालो! हमारे दूतों ने जो समाचार दिया है, पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करने का सुनहला अवसर आ गया है।

चन्द्रगुप्त—आह, पाटलिपुत्र! वह किन राक्षसों के पंजे में फँसा है! (उसके चेहरे पर विषाद की रेखायें खिंच आती हैं)

चाणक्य—पाटलिपुत्र का स्मरण ही तुम्हें अधीर बना डालता है चन्द्र!

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, जिसकी गलियों में बचपन बीता, जिसकी धूल में घुटनों के बल चल कर खड़ा होना सीखा, जिसकी छाया में आतप और शीत से समान रूप से रक्षा पाई, जिसके साथ जितनी

ही बाल-सुलभ कल्पनायें बँधी थी, आज भी बँधी हैं, यदि उस नगरी की याद विह्वल बना दे, तो आश्चर्य की क्या बात है गुरुदेव ?

चाणक्य—तो उसका उद्धार करो बेटे! और, सचमुच उसके लिए स्वर्ण-अवसर आ गया है। नन्द-वंश के अत्याचारो से प्रजा में हाहाकार मचा है। न किसी की सम्पत्ति सुरक्षित है, न किसी की प्रतिष्ठा। बहूबेटियो का सतीत्व तक सुरक्षित नही! राजभवन केलि-भवन बना है। जहाँ वीरो और विद्वानो का जमावडा था, वहाँ भाँटो और भाँडो का अखाडा है। बस, एक धक्के की आवश्यकता है चन्द्र, नन्दकुल का राज्य कटे वृक्ष की तरह आप ही अररा कर गिर पडेगा।

(इसी समय नेपथ्य से स्त्री-कंठ में पुकार सुनाई पडती है)

नेपथ्य से—चन्द्र, ओ चन्द्र!

चाणक्य—अरे, वह तुम्हारी माताजी आ गई। मैं चलता हूँ, देखना, अभी इसकी चर्चा उनसे मत करना! हम फिर मिल कर एक पूरी योजना बना लेंगे। विश्वास रखो, हम अवश्य विजयी बनेंगे!

(चाणक्य जाता है)

चन्द्रगुप्त—हाँ, माँ! क्या है माँ! (कह कर टहलने लगता है और आप ही आप कहता है) कितना सन्देह! किसी पर विश्वास नही! माँ पर भी नही! उँह!

(माँ आती है उसके मुख पर क्रोध की छाया स्पष्ट परिलक्षित होती है)

माँ—गुरुदेव क्या तेरे पास आये थे? अभी जाते हुए दीख पडे, यद्यपि उन्होने अपने को मुझसे छिपाना चाहा था।

चन्द्रगुप्त—हाँ, वही थे, यही आये थे माँ!

माँ—क्यो आये थे? फिर कोई नया मंत्र देने क्या? बेटे, मैं इस ब्राह्मण को देखते ही काँप उठती हूँ। यदि यह जानती, तो उस दिन इसके हाथ तुझे नही सौंपती। यह जादूगर है, जादूगर!

चन्द्रगुप्त—जादूगर! हाँ, लोग कहते है, सुनता हूँ, वह जादूगर हैं! किन्तु वह किसी के लिए जादूगर हो सकते हैं माँ, जो स्वयं किसी बडे जादू से अभिभूत हो, उसपर उनका जादू क्या खाकर चलेगा?

माँ—तू यह क्या बोल रहा है, रे!

चन्द्रगुप्त—हाँ, हाँ, माँ! आज मै तुमसे पूछ कर रहूँगा कि वह कौन-सा जादू है जिसमे मै अभिभूत हूँ? तुम उस जादू के बारे में जानती हो माँ, और मुझसे छिपाती आई हो, छिपा रही हो।

माँ—जादू! मैं छिपा रही?

चन्द्रगुप्त—हाँ जादू, और मुझ में छिपा रही हो! यह जादू नहीं तो क्या है माँ, जो न मुझे सोने देता है न बैठने देता है। सोता हूँ, तो कानों में कोई कहता होता है—उठ, तुझे बहुत कुछ करना है। जब बैठा रहता हूँ, वह झटका-सा देकर खड़ा कर देता है—बढ़, तुझे बड़ी यात्रा पूरी करनी है। और, जब खड़ा होता हूँ, तो जैसे पैरों में वह पंख बाँध देता है! पैरों में पंख—माँ, तुम नहीं मानोगी, किन्तु, प्रायः ही मैं अपने को आकाश में उड़ता हुआ पाता हूँ और उड़ते-उड़ते इतना ऊँचा चला जाता हूँ, जब पृथ्वी गेंद-सी लगती है और उसके जीव-जन्तु कीड़े-मकोड़े की तरह। इच्छा होती है, इन सारे तुच्छ जीवों को पैरों तले मसल दूँ और इस गेंद को ऐसी ठोकर लगाऊँ कि यह नभमंडल, खमंडल से परे जाकर गिरे—गिरे और चूर-चूर हो जाय। माँ, यह क्या है? क्या यह जादू नहीं है? (उसकी मुखमुद्रा अद्भुत हो जाती है, वह व्याकुल होकर टहलने लगता है)

माँ—बेटे, बेटे! यों नहीं बेटे, यों नहीं . . .

चन्द्रगुप्त—यों नहीं बेटे, यों नहीं। किन्तु यों कब तक जीया जा सकता है, माँ! तुम समझती हो, क्या मेरी शिराओं में यह रक्त दौड़ रहा है। नहीं माँ, नहीं। (हाथ बढ़ाता है) इनमें रक्त नहीं है, नहीं है। यह ऊष्णता, यह उत्तेजना, यह प्रवाह, यह गति—क्या ये रक्त के हो सकते हैं? देखो, अच्छी तरह देखो माँ, या कहो, तो मैं चीर कर दिखला दूँ (इधर-उधर देखता, तरकस से एक तीर उतारता और उसे नस में घुसेड़ने की चेष्टा करता हुआ) देख ले, देख ले, यह रक्त नहीं है।

माँ—(व्याकुल होती हुई) चन्द्र, चन्द्र!—यह तू क्या कर रहा हो बेटा? (तीर उसके हाथ से खींच कर फेंक देती है) आह!

चन्द्रगुप्त—आह! यह कैसा इन्द्रजाल है!—लगता है, इसमें लिपटा हुआ हूँ, घिरा हुआ हूँ। न इसे तोड़ पाता हूँ, न इससे निकल पाता हूँ! तुम मुझे इससे निकाल सकती थीं, माँ, किन्तु जब-जब पूछता हूँ, तुम

माँ—पूछने की कोई बात नहीं है, बेटे!

चन्द्रगुप्त—पूछने की कोई बात नहीं है? क्या गुरुदेव की तरह तुम भी समझती हो कि मैं अभी बच्चा ही हूँ, कुछ समझता नहीं? मैं क्या यह नहीं अनुभव कर पाता कि कोई कारण है, जिसने तुम्हारा मुँह बंद कर रखा है? यों तुम नहीं बोलती, किन्तु कभी-कभी जब सोती रहती हो, अचानक बड़बड़ा उठती हो, चौंक पड़ती हो, घब-

थर काँपने लगती हो, जैसे कोई अघट घटना घट गई हो, या घटने ही वाली हो! यों ही प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान कर जब तुम सूर्य भगवान की ओर मुँह किये खड़ी होती हो, उनका ध्यान करते-करते, तुम्हारे होंठ क्या केवल मंत्र ही बुदबुदाते हैं—वे अचानक फड़कने क्यों लगते हैं माँ?

माँ—बेटे, बेटे! ये सब कुछ नहीं है बेटे! ये बुढ़ापे के चिन्ह हैं। नींद ठीक से नहीं आती, इन्द्रियाँ दुर्बल हो रही हैं, उनपर अधिकार नहीं रख पाती!

चन्द्रगुप्त—आह रे इन्द्रजाल! लोग समझते हैं, यह ब्राह्मण मुझे नचा रहा है। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता भी है, किन्तु भीतर कौन-सी शक्ति मुझे नचा रही है, मैं कैसे बताऊँ? तुम बता सकती थी माँ, किन्तु जब-जब चर्चा चलाई, तुम कुछ ऐसी विह्वल हो उठती हो

माँ—जानेगा बेटे, जानेगा। समय आयगा, सब जान जायगा तू। माँ की जिह्वा बंद भी रहे, एक दिन तेरी शिराओं का यह रक्त बोल उठेगा और जब वह बोलेगा, तू अपने पर गद्गद हो उठेगा। चन्द्र, घटनाओं का एक चक्र होता है जिसे पूरा करना ही पड़ता है। यही देख न, हम कहाँ थे, कहाँ आ गये हैं? लगता है, हम एक अंधकार में भटक रहे हैं! वह ब्राह्मण कहता है, यह अंधकार कटेगा—किन्तु, वह तो न जाने कब से कह रहा है? और, इसी भूलभुलैया में वह हमें कहाँ-से-कहाँ ले आया? अब तो मैं उससे डरने लगी हूँ, बेटे! (उदास हो उठती है)

चन्द्रगुप्त—डरने की बात नहीं है माँ। अब क्यों उस ब्राह्मण की ओर देखती हो, देखो, अपने इस चन्द्र की ओर—अंधकार कटेगा, कट कर रहेगा, माँ। मेरी माँ, मेरी पूजनीया माँ!

(सहसा माँ को अँकवार में भर लेता है। माँ उसके कंधे पर सर रख कर आँसू गिराने लगती है। इसी समय चन्द्रा पहुँचती है, माँ-बेटे को इस स्थिति में देख कर सहम जाती है। चन्द्रगुप्त की दृष्टि उसपर पड़ती है, वह अँकवार ढीला कर बोल उठता है)

चन्द्रगुप्त—अरे, चन्द्रा!

(चन्द्रा लपकती हुई आती है और माँ से लिपट जाती है)

चन्द्रा—माँ, माँ, यह क्या माँ!?

माँ—(सम्हलती हुई) कुछ नहीं बेटी, कुछ नहीं। देख न इस चन्द्र को, इस निर्जन में, यहाँ, इस धूप में

चन्द्रा—मैं किस-किस को देखूं मां? इन्हे देखूं, तुम्हे देखूं या अपने को देखूं। सबको देखती हूं, पहले कुछ समझती नहीं थी, दुर्भाग्यवश, वह सुखद अज्ञान भी दूर हो चुका है! अब देखती हूं और समझती भी हूं। क्षमा करो मां, तुम सदा भूत से अभिभूत हो, यह भविष्य मे लीन है, किन्तु, मेरा तो सिर्फ वर्तमान है—चचल, क्षणिक, नश्वरमान, वर्तमान। मेरी रसोई ठंडी हो रही है और इधर भाले चल रहे है—(लटकते हुए भालो की ओर देखती है)

मां—हां, रे, बहुत देर हो गई! चन्द्र, तू जा, भोजन कर। मैं नदी से स्नान करके आ रही हूं, आज मेरा व्रत है न?

चन्द्रगुप्त—मां, तुम इसमे व्रत क्यो नही कराती मां?

मां—सुनती है चन्द्रे! सदा तुझी पर यह धौस जमाता रहता है। तू इसपर शासन क्यो नही रखती है प्यारी बेटी?

चन्द्रा—इसपर और शासन? मां, गरुड को कभी पालतू बनाया जा सका!

मां—गरुड! बहुत ही सही कहा मेरी बेटी ने। आ, आ, ओ मेरे गरुड, मै तेरे डैने चूमूं, तेरी चोच चूमूं। (उसके ललाट और भुजाओ पर चुम्बन देती है) जानें कब मेरा गरुड घोसला बनाता है?

चन्द्रा—(मुंह बनाती हुई) गरुड घोसला नही बनाता, मां!

चन्द्र—वह क्यो घोसला बनाये? क्या घोसलो की ससार में कमी है?

चन्द्रा—हां, किसी दीन पछी के झोपडे पर अगत्या अधिकार जमाता है!

चन्द्रगुप्त—दीन नहीं, अशक्त कहो। शक्तिहीन के लिए यह पृथ्वी नही है, चन्द्रे!

चन्द्रा—देख रही हूं, उसीसे शक्तिशाली रन-वन की धूल फांकते फिर रहे है!

चन्द्रगुप्त—रण, वन! चन्द्रे, शक्तिशाली के लिए, बलवान के लिए, वीर के लिए दो ही प्रिय स्थान होते है, रण या वन। रण—जहां भुजाये फडकती है, तलवारें चमकती है। जहां पौरुष रक्त की होली खेलता है, सहार की विजया मनाता है बलिदान की दीपावली सजाता है! भालो की उछाल, ढालो की सम्हाल। वीरो का जयनाद—कायरो की आर्तपुकार! रण ही बनाता है, दो पैर और दो हाथ पाने से ही कोई मानव मानव नही बन जाता। और वन!—जहां हिंस्र पशुओ से पजा लडाया जाता है, मणिधर नागो के

फणो से खिलवाड किया जाता है, जहाँ पर्वत के उत्तुग श्रृगो को पैरो से रौंदा जाता है, प्रकृति के उल्लग वक्षस्थल से जीवन-रस चूसा जाता है! हाँ, हाँ—रण या वन ? (आवेश मे उसकी भुजायें फडकने लगती हैं)

चन्द्रा—देखो, देखो माँ, तुम्हारा गरुड पख फडफडाने लगा, अरे यह कही उड न जाय! (मुस्कुराती है)

माँ—देख, यो आपस में नही लडा जाता बेटी। आई थी कहने, रसोई ठडी हो रही है और लगी लडने। जा, इसे ले जा, मै आई, अभी आई।

(वह जाती है चन्द्रगुप्त कुछ देर तक चन्द्रा की ओर आँखें गुरेडता है, चन्द्रा भी उसकी आँखो में आँखें डाल निस्पन्द खडी रहती है फिर वह हँस देती है चन्द्रगुप्त झुँझला कर अस्त्र-शस्त्र सम्हालने लगता है)

चन्द्रा—लाइये, मै भी आपकी सहायता कर दूँ। (वह भी अस्त्र-शस्त्र सम्हालने लगती है)

चन्द्र—चन्द्रे, अलग रहो, मत छूना इन अस्त्रो को।

चन्द्रा—क्यो ? क्या मेरे छूने से तुम्हारे अस्त्र अपवित्र हो जायँगे ? मै छूऊँगी, सम्हालूँगी। एक लक्ष्य का वेध नही कर लिया कि अपने को अलक्षेन्द्र ही मान लिया है!

चन्द्र—ऐसा लगता है, तूने अलक्षेन्द्र को देखा ही था!

चन्द्रा—क्या उसे देखने के लिए वदी बनना ही आवश्यक था ? मुझे तो वह ढोगी और कायर जँचा!

चन्द्रगुप्त—ढोगी! कायर!

चन्द्रा—जो मूँछें मुडा कर अपने को सदा किशोर सिद्ध करना चाहे, सर पर मेढे के सीग बाँध कर अपनी युद्ध-प्रियता की घोषणा करता फिरे— वह ढोगी नही, कायर नही, तो क्या हो सकता है ?

चन्द्रगुप्त—ओहो! इतनी तह तक जाती हो!

चन्द्रा—ये पुरुष होते हैं, जो ऊपर-ऊपर तैरते फिरते हैं! (हँसती है)

चन्द्रगुप्त—क्या बोली ? माताजी ने तुझे सर-चढ़ी बना रखा है।

चन्द्रा—सर-चढी नही, सर-मढी। मै उनकी दुलारी बेटी हूँ। गुरुदेव ने जो आपके लिए किया है, माँ ने मेरे लिए किया है। आप समझते है, आप सीख रहे है, मै कुछ नही सीख रही। हाँ, गुरुदेव ने आपके लिए ढोल पीटे है, माँ ने मुझे गुप्तरूप से सिखलाया है। (लक्ष्य से लटके हुए भाले की ओर दिखलाती हुई) कहो, ऐसा लक्ष्य मै भी वेध दूँ! (वह दौड कर एक भाला उठाती है)

चन्द्र—क्या कहा? तू लक्ष्य-वेध करेगी?

चन्द्रा—करूँगी नहीं, करती हूँ। जिस दिन से तुमने यह अभ्यास प्रारम्भ किया, माताजी ने मुझे भी इसका अभ्यास प्रारम्भ कराया है। कहती है, बेटी, चन्द्र के आधे भाग का तू अधिकारिणी है, तू वह सब जान ले, जो चन्द्र जानता है। निर्बल को भाग नहीं मिला करता!

चन्द्रगुप्त—ओहो, तो आप मेरे आधे भाग की अधिकारिणी है!

चन्द्रा—जी! हां! (मुस्कुराती है)

(श्वेतकेतु का प्रवेश)

श्वेतकेतु—अरे, आप दोनो ने कैसा आधा-आधा बाँट लिया, जैसे मेरे भाग्य में कोई भाग ही नहीं है!

चन्द्रगुप्त—श्वेतकेतु! अच्छे आये तुम!

श्वेतकेतु—अच्छे आये और, बुरे भी आये! अच्छे आये, क्योंकि आप दोनो की जोडी देख कर प्रसन्नता हुई और बुरे आये, क्योंकि अस्त्र-शस्त्र देखते ही मुझे ज्वर लग जाता है!

चन्द्रगुप्त—देखो, देखो चन्द्रे! कविजी को पकडो, बेचारे ज्वारावेग से कही गिर न पडें! (निकट जाकर) अरे, तुम्हारा शरीर सचमुच कांप रहा है, श्वेत!

श्वेतकेतु—तुम व्यंग्य-विद्रूप कर लो, किन्तु बार-बार कहता आया हूँ, फिर कहता हूँ, चन्द्र, कि ससार में केवल युद्ध, मारकाट, रक्तपात, विजय, आदि ही नहीं है। यहां ऐसे पदार्थ भी है, जो दर्शनीय है, स्पर्शनीय है, उपभोगनीय है! वह सामने पहाड है न? तनिक ध्यान से देखो, मेरे मित्र! क्या उसमे सिर्फ पत्थर ही पत्थर है? नहीं! ऊपर देखो, उसके शिखर पर वह सुहावना बादल उमड रहा है, नीचे देखो, वहाँ उसके पद-तल पर झरना झरझर झर रहा है। ऊपर बादल, नीचे जल और पत्थर पर भी कैसी हरियाली उग आई है। पत्तियां सर हिला रही है, फूल मुस्कुरा रहे है! जीवन यह है!! किन्तु, तुम क्या समझो? तुम तो दो चट्टानो के बीच में पडे हो।

चन्द्रा—दो चट्टानो?

श्वेतकेतु—हां, एक ओर वह ब्राह्मण और दूसरी ओर. . . (रुक जाता है)

चन्द्रा—और दूसरी ओर?

श्वेतकेतु—घबराइये मत, और नहीं, माताजी!

चन्द्रा—(आश्चर्य से) माताजी?

श्वेतकेतु—हाँ, माताजी ! आप को आश्चर्य हो रहा है ? देवीजी, मिट्टी और पत्थर एक ही तत्व से हैं, किन्तु किसी प्रबल भीषण दवाव से सिमट, सिकुड कर, मिट्टी का ही तत्व पत्थर बन जाता है। लगता है, माताजी के जीवन में भी कोई, नही नही, कितने दबाव आये हैं, जिन्होने उन्हे पत्थर ही नही, चट्टान बना दिया है। नही तो आप ही बताइये, कोई समझबूझ वाली स्त्री, जैसी कि अपनी माताजी हैं, अपने एकलौते बेटे को ऐसे सनकी ब्राह्मण के हाथ सौंप सकती है ?

चन्द्रा—(क्रोध से) गुरुदेव को आप जो कुछ कह लीजिये, किन्तु माताजी पर

श्वेतकेतु—चन्द्रे, तुम पगली मत बनो। मैं माताजी को दोप कहाँ देता हूँ, किन्तु, तुम्हे देखना चाहिये, माताजी जो बाहर से दीखती हैं, वह वह नही है। उनमें करुणा की कमी नही। बल्कि उन्हे देख कर तो मुझे उस चट्टान की याद आती है, जिसपर झरना अनवरत झरा करता हो। *कठोरता और आर्द्रता का अद्भुत सम्मिश्रण* ! इसके विपरीत वह ब्राह्मण मुझे वैसी चट्टान लगता है जिसके भीतर अब भी ज्वालामुखी शान्त नही हुई है, वह न-जाने फिर कब आग उगलने लगे। किन्तु चट्टान फिर भी चट्टान है, चाहे उसके भीतर ज्वालामुखी धधक रही हो, या उसके ऊपर झरना झर रहा हो !

चन्द्रगुप्त—अरे, छोडो इन चट्टानो की बात, देखो, यह चन्द्रा मुझसे झगड पडी है, इसे मना दो !

श्वेतकेतु—तुम चन्द्रा को धोखे में रख लो, चन्द्र ! मुझे धोखा नही दे सकते। यह भी समझती है, तुम इसे प्यार कर रहे हो। किन्तु, तुम्हारे ऐसे लोगो के निकट प्यार का क्या मूल्य है—यदि यह बेचारी जान पाती !

चन्द्रा—कविजी, मैं न प्यार जानती हूँ, न चाहती हूँ। माताजी का स्नेह ही मेरे लिए बहुत है।

श्वेतकेतु—इस विश्वास में मत रह चन्द्रे कि माताजी तुझे वह दिला सकेंगी, जो वह चाहती हैं। नही, नही। वह ब्राह्मण कब क्या रचना कर देगा, कोई कह नही सकता ?

चन्द्रगुप्त—क्यो, क्या बात है कि गुरुदेव पर आज बहुत बिगड पडे हो, श्वेत।

श्वेतकेतु—तुम गुरुदेव कह लो, मेरे लिए तो वह निछछ ब्राह्मण है और ब्राह्मण भी कैसा, काला ? वह जाति से ब्राह्मण हो सकते हैं, वर्ण से नहीं। और यह भी एक अद्भुत बात हो रही है

कि लोग जिस वर्ग को खो रहे है, उसीमे अधिकाधिक चिपटते दिखाई पड़ते है! (व्यंग्यपूर्वक मुस्कराता है)

चन्द्रगुप्त—(आवेश में) श्वेत, अब तुम सीमा का उल्लघन कर रहे हो! कह दिया, गुरुदेव की निन्दा मेरे सामने मत किया करो! समझे?

चन्द्रा—अरे, तो आज आप दोनो लड़ेगे भी। लेकिन मै जो लड़ने दूँ। श्वेतजी, मेरी रसोई ठडी हो रही है, चलिये! (चन्द्रगुप्त से) आप भी इस खटराग को जल्दी सम्हालिये, चलिये।

चन्द्र—चलो, चन्द्रे, परोसो, मै अभी आया।

चन्द्रा—मै आपलोगो को साथ लिये विना नही जाती। कही फिर आपको लक्ष्य-वेध की धुन समाये और कविजी ही को कोई कविता सूझ पड़े!

चन्द्र—(अस्त्रो को सम्हालते हुए) श्वेत, मै तुम्हे जानता हूँ—भगवान ने तुम्हारी रचना फूलो से की है। तुम्हारे भीतर-बाहर सब जगह फूल-ही-फूल है। लेकिन, ऐसा सौभाग्य कितनो को मिल पाता है मेरे कवि? विधाता के भडार मे भी इतने फूल कहाँ है कि तुम्हारे ऐसे अधिक आदमी रचे जा सके। यहाँ वहाँ सब जगह तो काँटे-ही-काँटे है!

श्वेतकेतु—तभी तो हम सबै काँटो के चक्कर मे फँसे है। कहाँ से उन दिन वे कुश-काटे उस काले खुरदरे तलवे मे गड़ गये!

चन्द्रगुप्त—तुम फिर गुरुदेव की बात ले आये!

श्वेत—लाऊँगा और बार-बार लाऊँगा, चन्द्र। मै ब्राह्मण हूँ। देखो, यह शुद्ध रक्त, देखो, यह विशुद्ध वर्ण। तुमने कहा, मै फूलो से बनाया गया हूँ, मै कहता हूँ, ब्राह्मण वर्ण को ही फूलो से बना होना चाहिये। कोमलता, दया, क्षमा ये हमारे आभूषण है। काँटे अपना स्वभाव न छोडे, तो क्या हम काँटे बन जायेंगे? क्या बन भी सकते है? पैर में काँटे गड़े, तो गड़ा करे? हम काँटे बन कर उनकी जड़ें खोदें और उनमें मट्ठा डाले! कहता हूँ चन्द्र, यह ब्राह्मणत्व नही है, नही है।

चन्द्र—गुरुदेव असाधारण पुरुष है, उन्हे साधारण मापदड से मत नापो, श्वेत।

श्वेतकेतु—असाधारण पुरुष! (मुस्कुराता हुआ) समझता हूँ चन्द्र, समझता हूँ। और दो असाधारण पुरुष सयोग से एक केन्द्रबिन्दु पर आ मिले है! कुछ होकर रहेगा, कुछ घट कर रहेगा। और यह भी कोई

कम सौभाग्य की बात नहीं कि जब इतिहास रचा जा रहा हो, तो उसके निकट से देखने का किसी को सुअवसर मिल जाय। किन्तु, सच कहता हूँ, मुझे चन्द्रा के भाग्य पर बार-बार तरस आती है। तुम पाओगे, गुरुदेव पायेंगे, माताजी पायेंगी—सब अपने-अपने मनोरथ पूरे करेंगे, किन्तु यह बेचारी!

चन्द्रा—(झपट कर) मेरे लिए मत दुबले होइये कविजी। चलिये, (चन्द्रगुप्त की ओर) चलते हो चन्द्र! चलो!

(चन्द्रा झपट कर आगे बढ़ती है, दोनों उसका अनुगमन करते हैं)

दूसरा अंक

स्थान : पाटलिपुत्र का राजप्रासाद
समय : मध्याह्न

राजप्रासाद के एक कक्ष में विजेता चन्द्रगुप्त का प्रसाधन उसकी माँ और उसकी प्रेयसी चन्द्रा कर रही है।

अत्याचारी नंद पराजित हो चुका है। अब पाटलिपुत्र पर चन्द्रगुप्त का अधिकार है। आज संध्या को उसका विधिवत् राज्याभिषेक होगा।

राजप्रासाद का यह कक्ष सभी राजकीय उपकरणों से सुसज्जित है।

एक रत्न-खचित मंच पर चन्द्रगुप्त बैठा है। उसकी कटि में रेशमी पीली धोती है, जिसकी लाल किनारी पर सोने के काम हैं। कंधे पर रेशमी लाल उत्तरीय है जो सोने-पन्नों के कामों से जगमग हो रहा है।

कलाइयों पर, भुजाओं पर रत्नजटित आभूषण हैं। गले में रत्नजटित तिलड़ी चमचमा रही है और छाती पर मोतियों और रत्नों की कई मालायें झूल रही हैं।

उसके मुखमंडल को बिन्दियों से चित्रित कर दिया गया है।

माँ उसके सर पर फूल सजा रही है और चन्द्रा उसके पैर में महावर लगा रही है।

माँ आनन्द-पुलकित है, अन्ततः उसके मुख से वाणी फूट पड़ती है—

माँ—अहा! यह दिन भी देखने को मिला। (उसकी आँखों में आनन्द के आँसू उमड़ आते हैं)

चन्द्रगुप्त—यह सब तुम्हारा आशीर्वाद है, माँ। कहाँ मै पाटलिपुत्र की धूल में पड़ा था, कहाँ देश के कोने-कोने में भटकता-फिरता था, और कहाँ आज पाटलिपुत्र का यह राजभवन

माँ—और, कुछ देर में उसका स्वर्ण-सिंहासन भी तुझसे सुशोभित होगा बेटे। बेटे, बेटे, आज मै फूली नही समा रही हूँ (आनन्दाश्रु को आँचल से पोछती है)

चन्द्रगुप्त—फिर कहता हूँ माँ, यह सब तुम्हारा आशीर्वाद है।

चन्द्रा—तुम्हारा, तुम्हारा, तुम्हारा! जैसे मेरा इसमें कुछ है ही नही।

माँ—है क्यो नही बेटी? यह तेरा सौभाग्य ही तो है। तू भी तो पाटलिपुत्र की धूल पर ही मुझे मिली थी। और जिस दिन तुझे वहाँ से उठा कर अपने घर लाई, उस दिन से मेरी कुटिया आनन्द-निकेतन बन गई। और, अब तो तेरे लिए यह राजभवन

चन्द्रगुप्त—माँ, तुमने चन्द्रा का सर फिरा दिया है!

चन्द्रा—अरे, इस सर पर मुकुट तो पड़ने दो, तब पाओगे, किसका सर अधिक फिरा हुआ है?

माँ—चन्द्रे! आज झगड़ने का अवसर नही है बेटी! तू चन्द्र का प्रसाधन तो पूरा कर दे। पाटलिपुत्र के सिंहासन के अनुरूप ही तो प्रसाधन भी चाहिये न? गुरुदेव आते ही होगे। कहेगे—मैंने उतना कर लिया, तुमलोगो से इतना भी पार नही लगा।

चन्द्रा—गुरुदेव ने क्या कर लिया है, माँ! तिगड़म, तिगड़म, तिगड़म! क्या यही सबकुछ है?

चन्द्रगुप्त—उहूँ, सबकुछ तो है बात, बात, बात! तुम्हारी जीभ कतरनी नही बनी होती, तो कुछ हो पाता भला?

चन्द्रा—आप भी यह न समझिये कि आपकी भुजाओ के बल ने ही सारा किया-कराया है। बड़े-बड़े बलवानो और युद्धविशारदो की वीरता और चतुरता घास चरती रह जाती है! जिसके पुण्य-प्रताप से यह सब हुआ है, वह बेचारी तो उसे जीभ पर भी कभी नही लाती। (माँ की ओर देखती है)

माँ—लेकिन उसे तू जो चुप रहने दे! बेटी, इस पुण्य-वेला में उन पुरानी बातो की याद मत दिला। जो कुछ हुआ, सब गुरुदेव की कृपा से हुआ, वह ब्राह्मण है

(श्वेतकेतु का प्रवेश)

श्वेतकेतु—माँ, कौन ब्राह्मण है? ब्राह्मण तो तुम्हारे सामने खड़ा है। वर्ण देखले, रूप देख ले, आचरण देख ले। ब्राह्मण कहीं काला होता है? और भीतर तो और भी कालाघुप्प!

(चन्द्रगुप्त की भवों पर तेवर चढ़ जाते हैं)

चन्द्रा—बहुत सही कह रहे हो श्वेत! भीतर तो और भी काला-घुप्प! (चन्द्रगुप्त की ओर देख कर मुंह बनाती है)

चन्द्रगुप्त—लेकिन चन्द्रे! तू इस तरह मत बोल। अभी तेरी चोटी उसी काले ब्राह्मण के हाथ में है।

चन्द्रा—हट, वह अपनी चुटिया की कुशल मनावे!

श्वेतकेतु—उसकी वह चुटिया नहीं है, नागिन है नागिन! नन्द-वंश को वह सूंघ गई और न जाने किस-किस को वह सूंघ कर रहेगी, वह काली नागिन! बाप रे!

चन्द्रगुप्त—श्वेत, तुम फिर सीमा का उल्लंघन कर रहे हो!

माँ—ओहो! तुम सब फिर उलझ गये। इस मंगल-वेला में यह सब नहीं कहते-सुनते। चन्द्रे! बातों में मत फँस, तू शीघ्र प्रसा-धन पूरा कर दे, बेटी!

श्वेतकेतु—यह भी क्यों नहीं कह देती माँ कि चन्द्र का प्रसाधन पूरा कर तू भी शीघ्र प्रसाधन कर ले। चन्द्र के आधे भाग की अधि-कारिणी न इसे बना रखा है तुमने?

चन्द्रा—माँ ने बना रखा है, तो मैं हूँ भी! आप समझते क्या हैं?

श्वेतकेतु—तो आज आधे सिंहासन को भी तू सुशोभित करेगी! क्यों?

माँ—श्वेत, चन्द्रा भी उस सिंहासन पर बैठेगी, बैठेगी। जो भग-वान चन्द्र को उस सिंहासन पर बिठलाने जा रहे हैं, वह एक दिन चन्द्रा को भी उसपर बिठला कर रहेंगे, बेटे।

श्वेतकेतु—तो मैं कहूँ, शुभस्य शीघ्रम् क्यों नहीं किया जाता है माताजी?

माँ—अरे, लग्न तो आने दो। मैं अपनी बेटी का ब्याह रचाऊँगी, अग्निदेव को साक्षी रख कर चन्द्र की अर्द्धांगिनी बनाऊँगी फिर आधा सिंहासन तो इसे आप ही मिल जायगा। क्यों बेटी? (चन्द्रा की ठुड्डी पकड़ कर स्नेह से हुलसती है)

चन्द्रगुप्त—चक्रवर्त्तित्व की कल्पना ?

चाणक्य—हाँ, हाँ, चक्रवर्त्तित्व की कल्पना। तुम्हे उसे साकार करना है, जिसकी स्थापना के लिए राम ने वनवास का दुख उठाया, लकाकाड रचाया, जिसके लिए कृष्ण ने महाभारत का वह लोम-हर्षक युद्ध कराया, अपने सम्पूर्ण गोत्र को वलि चढाया! किन्तु, तो भी, जो कल्पना अधूरी ही रही। आसेतु हिमाचल के एकछत्र राज्य की वह कल्पना—जब देश की सम्पूर्ण इकाई एक तरह से सोचे, काम करे! ऋषियो की वह कल्पना आज भी कल्पना ही बनी पडी है बेटे।

चन्द्रगुप्त—यह असाध्य साधन और मुझ से? गुरुदेव! (झुक कर चाणक्य का चरण छूता है)

चाणक्य—हाँ, हाँ, तुमसे। यह साध्य है, इसे प्राप्त करना है, तुम करके रहोगे। किन्तु, एक बात है, बेटे। कहते हुए सकोच होता है, किन्तु कहना ही है और उसपर आवश्यकता होने पर सोचना भी है।

चन्द्रगुप्त—वैसी कौन-सी बात है, गुरुदेव, जिसपर आपको भी सोचना पडे!

चाणक्य—सुनो, बेटे। मेरी दृष्टि एक बार सदा एक ही लक्ष्य की ओर जाती है। जब उस दिन सयोगवश तुम्हे वह खेल रचाता हुआ पाया, मैने निश्चय कर लिया, तुम्ही को लेकर अपने स्वप्न को साकार करूँगा। तुम्हारे शरीर में वैसे लक्षण थे कि मैने आव-श्यकता भी नही समझी कि तुम्हारा कुल-गोत्र पूछूं। पीछे जब माताजी ने बताया, तुम अनाथ हो, मैने इसे सौभाग्य ही समझा, क्योकि तुम्हारे ऊपर कोई बोझ नही, अत तुम्हारा विकास मनमाने ढग से किया जा सकता था। किन्तु, चन्द्र, आज जब तुम सिंहासन पर बैठने जा रहे हो, यह आवश्यक है कि तुम्हारे कुल-गोत्र की घोषणा की जाय।

चन्द्रगुप्त—कुल-गोत्र की? क्या सिंहासन पर बैठने के लिए किसी विशेष कुछ-गोत्र का होना आवश्यक है, गुरुदेव?

चाणक्य—यदि हो, तो और अच्छा।

चन्द्रगुप्त—और यदि नही हो! (गर्व से) गुरुदेव, राज-सिंहासन विजेता को खोजता और वरण करता है!

चाणक्य—(मुस्कुराता हुआ) हाँ बेटे, सिंहासन विजेता को खोजता और वरण करता है। किन्तु वरण करने के बाद वह भी

चाहता है कि वह, जो उन पर बैठने जा रहा है, घोषणा करे, वह किसी उच्चकुल से है। जो स्वयं ऊँचा है, वह ऊँचाई की ओर ध्यान रखे, तो आश्चर्य क्या ?

चन्द्रगुप्त—किन्तु ऐसी घोषणा

चाणक्य—ऐसी घोषणायें की गई हैं और राजसिंहासन की महिमा देखो, उन घोषणाओं को लोगों ने सर-आँखों पर लिया है। सूर्य और चन्द्र तो आकाश के देवता हैं न ? कहीं उनका वंश पृथ्वी पर हो सकता है ? किन्तु घोषणायें की गईं, हम सूर्यवंशी हैं, हम चन्द्र-वंशी हैं, और लोगों ने सर झुका कर उन्हें स्वीकार किया ?

चन्द्रगुप्त—जैसे पृथ्वी-पुत्र में शासन की क्षमता नहीं !

चाणक्य—शासन पृथ्वी-पुत्र ही करता है, किन्तु यदि वह ऊँचे से, ऊपर से, प्रेरणा ले, तो कोई बुराई होगी ?

चन्द्रगुप्त—यह झूठी महत्ता

चाणक्य—(फिर मुस्कुराता) तो लगता है, तुमने सत्य को ही संसार मान लिया है। संसार मिथ्या है और महत्ता तो मिथ्या-ही-मिथ्या है। किन्तु यदि संसार में रहना है तो मिथ्याओं की सृष्टि करनी पड़ती है, करनी पड़ी है, चन्द्र !

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, यह क्या कह रहे हैं आप ?

चाणक्य—(गम्भीरता से) हाँ, हाँ चन्द्र ! तुम वीर हो, पुरुष-पुंगव हो, नर-केसरी हो। तुम्हें अपनी भुजाओं पर भरोसा है और उन भुजाओं पर विजय की देवी ने अपने हाथों विजय-कंकण बाँध दिया है। तुम्हें गर्वित होने, घमंड करने का अधिकार भी प्राप्त हो चुका है, चन्द्र ! किन्तु, तुम जान पाते, विजय की इस देवी को प्रसन्न करने के लिए इस काले ब्राह्मण को क्या-क्या काले कृत्य . (आवेश में उनका कंठ अवरुद्ध हो जाता है, उनकी आँखों से चिनगारियाँ फूटने लगती हैं)

चन्द्रगुप्त—(आश्चर्य मिश्रित विनम्रता से हाथ जोड़ता हुआ) गुरुदेव !

चाणक्य—हाँ, काले कृत्य ! काले, काले कृत्य ! दूसरा कोई चारा भी तो नहीं था और जब तक उनमें लगा था, उनके स्वरूप देखने का अवकाश भी कहाँ था ? उन्हें देखा है तब, जब यह शिखा बँध चुकी है, जब लक्ष्य-प्राप्ति हो चुकी है। और जब देखा है, तब काँप उठा हूँ। किन्तु मैं काँप कर, डर कर रह जाने वाला, डर जाने-वाला मनुष्य नहीं हूँ, चन्द्र। जिसे प्रारंभ किया जाय उसे उसके नाति

परिणाम तक पहुँचाना ही पड़ता है, पहुँचाना पड़ेगा—मुझे भी और तुम्हे भी। (आवेग में वह टहलने लगता है)

चन्द्रगुप्त—(झुक कर उसका चरण छूता हुआ) किन्तु गुरुदेव, आप सोचिये

चाणक्य—मैं सोच चुका हूँ। मुझे आश्चर्य हो रहा है, जो युद्ध-भूमि में इतना वीर है, वह राजनीति में इतना कातर

(माँ का प्रवेश)

माँ—गुरुदेव, सूर्यवशी कभी, कही भी, कातरता या कायरता नही दिखा सकता!

चन्द्रगुप्त—
चाणक्य— } एँ, सूर्यवशी!!

माँ—हाँ, गुरुदेव! अब तक मै अपनी जीभ पर ताला जडे रही। किन्तु इस मगलमय दिवस को उस रहस्य का उद्घाटन करने से मै अपने को रोक नही सकती। चन्द्र, बेटे, तू सूर्यवशी है, शाक्यवशी है। जिस वश से राम आये, बुद्ध आये, तू उसी का आभूषण है, बेटे!

चन्द्रगुप्त—(माँ से लिपटता हुआ) माँ, माँ!

माँ—लो, इन्द्रजाल टूटा न बेटे?

चाणक्य—(साश्चर्य) इन्द्रजाल?

माँ—गुरुदेव, एक इन्द्रजाल ही गुरुदेव, जिससे हमारा आज तक का जीवन आवृत रहा—कहाँ कपिलवस्तु! कहाँ पिप्पली कानन! कहाँ पाटलिपुत्र!

चाणक्य—कपिलवस्तु! पिप्पली कानन! यह क्या सुन रहा हूँ? आपने कभी ऐसी चर्चा नही की।

माँ—कैसे करती गुरुदेव! आपको राजवश से ही घृणा हो गई थी। कही कोप की वह शिखा कभी कदाचित हमारी ओर बढ जाती! और यदि किसी तरह कोशल-नरेश को यह समाचार मिल जाता

चाणक्य—कोशल-नरेश! अरे, यह जाल इतना विस्तृत है?

माँ—(करुण मुद्रा में) हाँ, गुरुदेव, हम कोशल-नरेश विडुरथ के मारे हुए हैं! विडुरथ, जिसे ससार शाक्यकुल का नाती मानता रहा है! किन्तु, एक दिन उसे इसकी यथार्थता मालूम पडी और उसने गुरुदेव की ही तरह एक भीषण प्रतिज्ञा कर ली!

चन्द्रगुप्त—कैसी प्रतिज्ञा माँ?

माँ—"मै शाक्यकुल का मूलोच्छेद कर दूँगा।"

चन्द्रगुप्त—ओह! (व्याकुल हो जाता है)

चाणक्य—सचमुच भीषण! 'शाक्यकुल का मूलोच्छेद कर दूँगा!' किन्तु वह कौन-सी बात थी माताजी, कि उसे ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करनी पड़ी? अवश्य ही उसके भीतर कहीं अपमान रहा होगा!

माँ—(कातर स्वर में) हाँ, अपमान ही था गुरुदेव! जब विडुरथ के पिता ने कपिलवस्तु पर विजय प्राप्त की, उसने एक शर्त रखी, शाक्य राजकुल अपनी कन्या उससे ब्याह दे। शाक्यों को यह कैसे स्वीकृत हो सकता था? किन्तु, कोई उपाय तो करना ही था! विजयी क्या तर्क सुन सकता है? अतः छल की शरण ली गई। एक दासी-पुत्री को राजकन्या कहकर अर्पित कर दिया गया। विडुरथ उसी से उत्पन्न हुआ।

चाणक्य—दासी-पुत्री से राजकन्या, उससे उत्पन्न राजकुमार। फिर तो कुछ होना ही था। बताइये, आगे क्या हुआ?

माँ—विडुरथ जब किशोर हो गया, एक बार वह अपने ननिहाल आया। उसका सम्मान नाती की ही तरह होता रहा, किन्तु जब भोजन का समय होता, वह पाता, सबलोग किसी-न-किसी बहाने से हट गये हैं। उसे अकेले ही भोजन करना पड़ता। धीरे-धीरे उसका सदेह बढ़ा और उसने अपनी मामियों से पूछना प्रारम्भ किया।

चाणक्य—और किसी मामी ने भंडाफोड़ कर दिया? (चन्द्रगुप्त की ओर देख कर मुस्कुराता है, मानो कह रहा हो, नारियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता)

माँ—हाँ, छोटी मामी उसे बहुत प्यार करती थी। उसे उद्विग्न देख, बेचारी ने बता दिया कि क्यों वे लोग उसके साथ भोजन नहीं करते? बेचारी मामी! वह क्या जानती थी, उसका प्यार कौन-सी आग लगाने वाला सिद्ध होगा! विडुरथ यह सुनते ही क्रोध में पागल बन गया। भीषण प्रतिज्ञा कर बैठा—"जिसने मेरे कुल में कलंक लगाया है, उस शाक्यकुल का मूलोच्छेद करके ही मैं दम लूँगा।"

चाणक्य—ओहो, प्रगट इतिहास के पीछे क्या-क्या छिपा रहता है? कोशल और कपिलवस्तु के उस सर्वनाशी युद्ध का रहस्य आज सुना। किन्तु आप लोग कैसे बच निकले?

माँ—आप लोग कहाँ? तब चन्द्र का जन्म भी कहाँ हुआ था गुरुदेव? वह गर्भ में था। न-जाने क्यों, मेरे मन में यह सकल्प उठा, कम-से-कम इस बच्चे को मैं बचाऊँगी। मैं कपिलवस्तु से भागी और मारी-मारी पिप्पली कानन पहुँची। वहाँ के मोरियों को जब सारी बातें

मालूम हुई, उन्होने मुझे अपनी शरण में ले ली। किन्तु, उनसे एक भूल हो गई—शान में आकर उन्होने इसकी घोषणा कर दी! फिर क्या था, विडुरथ वहाँ भी चढ दौडा और पिप्पली-कानन को भी उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

चाणक्य—प्रतिहिंसा वडी क्रूर होती है, माताजी!

माँ—देखती आई हूँ गुरुदेव, और, देख रही हूँ। किन्तु, मातृत्व की भावना भी तो कुछ कम प्रवल नही होती? मैं वहाँ से भी भगी और गगा पार कर पाटलिपुत्र पहुँची। यही चन्द्र का जन्म हुआ, किन्तु मैंने कभी यह प्रगट नही होने दिया कि शाक्यकुल या किसी भी राजकुल से हमारा कोई सम्वन्व है। जितना वन पडता, परिश्रम करती, दासी के आस्पद को भी अर्घ्य की तरह सर चढाती रही, अपमान सहती रही। यह नटखट चन्द्र! प्राय पूछ वैठता, मैं कौन हूँ, मेरे पिताजी कौन हे, कहाँ हे? किन्तु मैं क्या कहती भला? (आँसू पोछती है)

चाणक्य—आपने अपने चन्द्र को गुप्त ही रखना चाहा! (चन्द्र-गुप्त की ओर देख कर मुस्कुराता है) किन्तु क्या आप ऐसा कर सकी!

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, गुरुदेव! वहुत दिनो से मैं अपनी शिराओ में एक अद्‌भुत ध्वनि सुना करता था, जो मानो कहता था, तुम वह नही हो, जो ससार समझ रहा है, या तुम स्वय समझते हो। वार-वार पूछे जाने पर माताजी ने एक दिन कहा था, वेटे, माता का मुँह वन्द रहे, एक दिन तुम्हारी शिराओ का यह रक्त स्वय वोलेगा और जिस दिन तुम उसे सुन लोगे, अपने पर अभिमान करोगे! सचमुच आज मैं फूला नही समाता। (माँ से) माँ, माँ, तुमने मेरे लिए कितने कष्ट सहे माँ! (वह माँ से लिपट जाता है उसकी आँखो से आँसू झरने लगते है)

माँ—वेटे, मुझे अपने दुख की चिन्ता नही। किन्तु वार-वार सोचता हूँ, हमारे लिए ही मोरियो ने अपना सर्वनाश कराया। उनके ऋण से कैसे उद्धार पा सकूँगी?

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव! तो घोपणा कराइये, मैं मोरिय-कुल से हूँ। आज से मैं अपने को मौर्य कहूँगा—उस कुल को अमर कर दूँगा, जिसने हमारी रक्षा में अपने को वलि चढा दिया।

चाणक्य—सावु वेटे, सावु! यह तुम्हारे ही अनुरूप निर्णय है वेटे। ध्यान दिया है न, यह पाटलिपुत्र सगम पर वसा हुआ है। तीन-

तीन महानदियों का संगम-स्थल है यह। उत्तर, दक्षिण और पश्चिम से गंडकी, शोनभद्र, गंगा ये तीन महान नदियाँ आकर यहाँ मिली हैं और तीनों एक होकर पूर्व दिशा को प्रवाहित हुई हैं। इसके सिंहासन को संगम का ही प्रतिनिधित्व करना चाहिये! एक और बात—और बहुत महत्वपूर्ण बात! अपने महान देश के मान-चित्र पर तुमने पाटलिपुत्र के स्थान पर कभी दृष्टि डाली है?

चन्द्रगुप्त—कभी ऐसा अवसर नहीं मिला है, गुरुदेव! मैं तो अस्त्र-शस्त्रों में ही व्यस्त रहा!

चाणक्य—इस दिव्य मातृ-मूर्ति की कल्पना तो बहुत दिनों से होती आई है—हिमालय मस्तक, जिसपर कश्मीर की किरीट जगमग कर रही। सिन्धु, ब्रह्मपुत्र—माता के आँचल के दो छोर दोनों ओर अजस्र लहरा रहे। विन्ध्य मेखला। सह्याद्रि, मलयाद्रि माता की दो जानुयें। और, कन्याकुमारी पदतल—जिसे निरंतर रत्नाकर प्रच्छालित करता है! अब इस मातृ-मूर्ति में पाटलिपुत्र को ढूंढो। गंगा-कछार के विस्तृत वक्षस्थल में, किंचित बायीं हट कर, छोटा-सा बिन्दु यह पाटलिपुत्र। किन्तु, यही हृदय है। इस हृदय को आनन्दित उच्छ्वसित होने दो, सारा देश, सम्पूर्ण भारत, पुलकित-प्रफुल्लित हो उठेगा! मैंने तक्षशिला को छोड़ कर पाटलिपुत्र को अपना कर्मस्थल बनाया है, यह कोई अचानक निर्णय नहीं है, बेटे!

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव का कोई निर्णय क्या अकारण होता है?

(भीतर से संगीत के स्वर सुनाई पड़ते हैं चौंक कर चाणक्य सुनने लगता है)

मां—यह चन्द्रा बजा रही है गुरुदेव। उसकी वीणा—एक विचित्र झंकार निकालती है उस वाद्ययंत्र से मेरी बेटी!

चाणक्य—वीणा! वीणा! (थोड़ी देर के लिए वह स्तब्ध हो रहता है, उसकी आँखें पसीज उठती हैं दोनों उसके मुखमंडल को ओर देखते रहते हैं—फिर झट वह जैसे आत्मबोध प्राप्त करता है और बोल उठता है) नहीं, नहीं, मुझे इन कोमल भावनाओं में नहीं उलझना चाहिये! बेटे, मैं चला!

चन्द्रगुप्त—यह क्या गुरुदेव? चन्द्रा अब आई ही—उसके उत्साह के लिए भी तो थोड़ा सुन लीजिये। फिर स्वेत भी आ ही रहा होगा।

चाणक्य—नहीं चन्द्र, नहीं! मेरे भाग्य में यह गीत-संगीत नहीं बदा है। जो छिन जाता है, सदा के लिए छिन जाता है! और अब तो जो काम मुझे करना पड़ रहा है, उसके लिए भी आवश्यक है

कि कोमल भावनाओ को जागृत करने वाले इन सारे उपकरणो से मैं दूर हूँ। रहूँ ! नही, नही—मुझे जाने दो। मेरी ओर से बेटी चन्द्रा और कविजी से क्षमा माँग लेना, मैं चला। (चादर की खूंट से आँखें पोछता वह जाता है)

चन्द्रगुप्त—यह क्या माँ ? गुरुदेव सहसा इतने विचलित क्यो हो गये ?

(वीणा लिये चन्द्रा आती है)

चन्द्रा—माँ, माँ ! गुरुदेव को क्या हुआ ? वह आँखें पोछते जा रहे हैं !

चन्द्रगप्त—आज अचानक चट्टान पिघल गई है, चन्द्रे। गुरुदेव की आँखो में यह पहली बार आँसू देखे है मैंने। और, सुनोगी, विश्वास करोगी, तुम्हारी वीणा की झकार सुनकर ही ऐसा

चन्द्रा—मेरी वीणा की झकार सुन कर !

चन्द्रगुप्त—हाँ, हाँ, तेरी वीणा को झकार सुन कर। कुछ देर ध्यानस्थ होकर सुनते रहे, फिर 'वीणा! वीणा!' बडबडा उठे और अन्त में यह कह चलते बने—जो छिन जाता है, सदा के लिए छिन जाता है! (माँ से) माँ, माँ, लगता है, गुरुदेव के जीवन में कोई दर्दीला पहलू भी है।

माँ—हाँ, कोई बात है कि बेटी, तुम्हारी वीणा की झकार सुनते ही उनकी आँखें पसीज आई, वह इस तरह भाव-विकल हो उठे !

(श्वेत का प्रवेश)

श्वेतकेतु—नही माँ, नही। इसमें भी कोई ढोंग होगा, ढोंग ! उस चट्टान से ज्वालामुखी ही फूट सकती है—केवल ज्वालामुखी !

माँ—गुरुदेव चट्टान है, उनके भीतर ज्वालामुखी धधका करती है, यह तो प्रत्यक्ष है। क्या इसे देखने के लिए कवि-दृष्टि की अपेक्षा है श्वेत ! आश्चर्य है हमारा कवि यह देख नही पाता कि हर ज्वालामुखी के निकट कहीं कोई रस का सोता होगा, नही तो वह दिन-रात आग ही उगला करती, ससार में केवल ज्वाला-ही-ज्वाला फेंकती होती !

श्वेतकेतु—नही माँ, वहाँ रस का सोता कहाँ ? रस और उस काले ब्राह्मण के हृदय मे। नही, नही, नही !

चन्द्रगुप्त—(क्रोध में) श्वेत !

माँ—क्रोध मत करो बेटे। (श्वेतकेतु से) प्यारे बेटे ! तुम कवि हो, तुम्हें भीतर तक देखना चाहिये न ? ऊपर-ऊपर तो सब देखते

है! बेटे, आदमी क्या वही होता है, जैसा हम बाहर से देखते हैं? यदि आदमी उतना सरल होता, तो जगत में इतना कोलाहल नहीं दिखाई पड़ता श्वेत! मुझे लगता है, गुरुदेव के जीवन में कुछ अद्भुत ग्रंथियां उलझी पड़ी हैं। तक्षशिला से पाटलिपुत्र तक कोई यों ही नहीं आ सकता, किसी कोरे आदर्शवाद से प्रेरित होकर भी नहीं! निश्चय जानो, उस दिन नन्द की राजसभा में जो शिखा खुली, वह मन के भीतर कब से न खुली-खुली रही होगी। और क्या कुश-कंटकों ने कुछ इतना बड़ा अपराध किया था कि उन्हें जड़ से खोदा जाय, और मट्ठा पटाया जाय! ये सब सूचित करते हैं, गुरुदेव वही नहीं हैं, जैसा हम ऊपर से देखते हैं—एक क्रोधी, दृढ़निश्चयी, आत्मनिष्ठ, सतत चौकस, और संदेहशील चतुर ब्राह्मण-मात्र! न जानें इन सब बाहरी लक्षणों का मूल-स्रोत कहाँ है? ऊपर से जो यों भयानक लगता है, उसके भीतर क्या है—उसे अन्तर्यामी ही जानता है, बेटे!

(माँ गम्भीर बन जाती हैं। सब के मुखमंडल पर गम्भीरता छा जाती है—उस गम्भीरता को कम करती है चन्द्रा—)

चन्द्रा—किन्तु सच पूछो तो, माँ, मैं उन्हें देख कर ही डर जाती हूँ। उनके आँसुओं ने तो मुझे और डरा दिया है!

माँ—डरती तो मैं भी हूँ बेटी। नारियों को वह कभी स्नेह या वत्सलता की दृष्टि से नहीं देख पाते, यह तो स्पष्ट है। और मुझसे तो न जानें क्यों एक विचित्र तनाव रखते हैं, मेरी समझ में नहीं आता, बात क्या है?

श्वेतकेतु—मैं कहूँ, क्या बात है? वह आपसे ईर्षा करते हैं कि यह चन्द्र आपकी कोख से क्यों पैदा हुआ—वह नारी क्यों न हुए कि चन्द्र को उत्पन्न करने का सौभाग्य भी उन्हें ही मिल जाता! और चन्द्रे, तुम्हें देख कर तो उनके मन में आधे सिंहासन का ही लोभ उदय हो जाता है!

(सब हँस पड़ते हैं)

चन्द्रगुप्त—क्या अच्छा कहा तुमने श्वेत! फिर तुम्हारी कविता संकृत हुई। श्वेत, तुम्हारे मुँह से ऐसे ही फूल झड़ने चाहियें। और हाँ, हाँ, वह तुम्हारा गीत। गुरुदेव ने कहा है, मैं उनकी ओर से क्षमा माँग लूँ . .

श्वेतकेतु—क्षमा की आवश्यकता नहीं है चन्द्र! मैं गुरुदेव को जानता हूँ, उन्हें पहचानता हूँ—वह मुझे हटा कर तुमसे बातें करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने वह बहाना किया था। नहीं तो कहाँ गीत-

सगीत और कहाँ गुरुदेव ? किन्तु, गुरुदेव ऐसे लोगो के होते हुए भी गीत-सगीत के चाहक रहे हैं और रहेगे चन्द्र ! गीत-सगीत ! अहा ! हमारे ही हृदय में निहित, उदात्त, अस्पष्ट भावनायें जब सहसा स्वर के रूप में साकार हो उठती हैं और इस जगत में गुमसुम पडी वैसी ही अनेक भावनाओ को झकृत कर उन्हें सपक्ष होकर उडने को बाध्य कर देती हैं ! गीत-सगीत—ससार की सबसे मधुर, कोमल अभिव्यक्ति ! किन्तु उसी तरह सुकुमार तुनुक। जहाँ वातावरण में थोडी-सी खटक पडी, वह लुप्त हुआ। गुरुदेव ने यहाँ के वातावरण को सगीत के योग्य नही रहने दिया—चलो, माताजी के कक्ष में। हम वही गायँगे, बजायेंगे और यदि चन्द्रा चाहे, तो नाचेगे भी। हाँ, हाँ, चन्द्रे चलो, हम नाचे। आज हमारे ही जीवन का नही, देश के, राष्ट्र के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हो रहा है। आज हमारी कला किस प्रकार मौन-अचल रह सकती है ? चलो चन्द्रे, चलिये माताजी, चलो चन्द्र, हम चले। आज माताजी के कक्ष को हम गीत-नृत्य-वाद्य से भर दें, भर दें !

(भावावेश में चन्द्रा का हाथ पकड कर वह खीचता हुआ जाता है। चन्द्रा हँस रही है। चन्द्रगुप्त मुस्कुरा रहा है। माँ के मुखमडल पर भी उल्लास की झलक स्पष्ट दिखाई पडती है। चारो आनन्द-उल्लास के बीच जाते हैं)

तीसरा अंक

स्थान : सिन्धु-तट के निकट का युद्ध-शिविर

समय : निशीथ

सम्राट चन्द्रगुप्त की सेना ने यवनों के सेनापति सेल्यूकस की सेना को आज पराजित कर दिया है।

सेल्युकस ने अपनी कन्या चन्द्रगुप्त को अर्पित कर दी है। और यौतुक में भारत के अधिकृत अचलों के अतिरिक्त यवन-सेनापति ने सीमाप्रदेश के कई अचल भी अर्पित कर दिये हैं।

भारतीय शिविर में आनन्द और उत्साह का समुद्र आज सध्या से ही हिलोरे ले रहा था। किन्तु अब चारो ओर शांति है।

आज पूर्णिमा है। चमचमाता चन्द्रमा आकाश के आधे भाग को पार कर चुका है। चारो ओर शीतल चन्द्रिका छिटक रही है।

सामने चन्द्रगुप्त का राजकीय शिविर है।

नील वर्ण का वह सोने-चांदी के तारो से मढा शिविर चांदनी पडने से तारा-मडित आकाश की तरह चमचम कर रहा है।

शिविर के आगे एक युवक टहल रहा है।

गम्भीर है मुख-मडल उसका। टहलता-टहलता रह-रह कर वह ठहर जाता है, उसांसे लेता है, अचानक उसके होठ हिलने लगते हैं।

वह युवक कौन है?

वह है भारत का सम्राट्, महान विजेता, चन्द्रगुप्त! क्या बात है कि इस विजय की रात्रि में, जब यवन-राज की कन्या उसे अर्पित की जा चुकी है, वह यवन-कन्या उसके शिविर में है, वह इस प्रकार व्याकुल बना बाहर टहल रहा है?

देखिये, फिर वह रुका, उसाँसें ली और उसके होठ फिर हिल उठे। वह आप ही आप क्या बोले जा रहा है—

चन्द्रगुप्त—विजय! विजय! विजय! यहाँ लडो, वहाँ लडो—ऐसे लडो, वैसे लडो,—इसे जीतो, उसे जीतो। किन्तु सारे किये-कराये का, लडाई-झगडे का जो निष्कर्ष आता है, उसका नमूना आज सामने है। सिन्धु के उस पार हाय-हाय मची रही, इस पार रगरलियाँ मनती रही! हम विजेता हैं—आमोद-प्रमोद हमारा अधिकार है। आनन्द मनाओ, आनन्द मनाओ—खाओ, पीओ, नाचो, गाओ। फिर, फिर थकथका कर सो जाओ! सभी सो गये है, कैसा सन्नाटा! सिन्धु के दोनो ओर सन्नाटा है इस समय। जो रोये, वे भी सो गये, जो हँसते-हँसते लोटपोट हो रहे थे, वे भी सो गये। किन्तु, चन्द्र, चन्द्र! तुम्हारे भाग्य में सोना भी नही बदा है। क्योकि तुम विजेताओ के विजेता हो। विजेता! विजेता! (आकाश की ओर देखता हुआ) तारो की पलको पर भी नींद छा रही है, किन्तु तुम्हारी पलको पर! अरे, कोई कैसे सो सकता है, जब

(माँ का प्रवेश)

माँ—अरे! बेटे! तू, यहाँ? अब तक जगा है?

चन्द्रगुप्त—ओहो, माँ! तुम भी नही सो सकी माँ! आज उत्सव का दिन है, सब सो गये है—

माँ—जब बेटा जगा हो, क्या माँ को नीद आ सकती है? जा बेटे, सो जा, सो जा! वह बेचारी क्या सोचती होगी?

चन्द्रगुप्त—हाँ, बेचारी? बेचारी ही तो! कितना बडा सत्य निकल गया तुम्हारे मुख से माँ!

माँ—तू यह क्या बोल रहा है बेटे? वह बेचारी है?—यवनराज की कन्या आज आर्यावर्त्त की राजरानी है! उससे बढकर कौन-सी लडकी इस धराधाम पर सौभाग्यशालिनी होगी रे?

चन्द्रगुप्त—और वह भी सौभाग्यशाली ही है, जिसकी बगल में उस सौभाग्यशालिनी को सुला दिया गया है। क्यो माँ? क्या राजाओ का विवाह ऐसा ही होता है? कभी किसी की बगल में कोई दासी-कन्या सुला दी गई, कभी किसी की बगल में किसी राजकन्या को लिटा दिया गया!

माँ—लिटा दिया गया है! (आश्चर्य से उसे नीचे से ऊपर तक देखती है)

चन्द्रगुप्त—तो क्या वह स्वयं आई है माँ?

माँ—उसके पिता ने उसे अर्पित किया है, बेटे।

चन्द्रगुप्त—क्योंकि वह पराजित हो चुका था! और उसमें इतनी समझ थी कि वह जाने, इस स्थिति में उसे क्या करना चाहिये? अर्थात अपनी पराजय को जय में बदल देने की बुद्धिमानी उसमें थी।

माँ—ये सब क्या सोच रहा है तू बेटे! जा, सो जा। वह बेचारी . . . हाँ, फिर कहती हूँ, वह बेचारी क्या सोचती होगी?

चन्द्रगुप्त—कुछ नहीं सोच रही होगी माँ, वह तो खुर्राटे लेकर सो रही है, जैसे कोई विजेता सोता हो!

माँ—विजेता? यह क्या-क्या सूझ रहा है तुझे?

चन्द्रगुप्त—माँ! बड़ा तमाशा रहा! वह आई, मुस्कुराई, कुछ बोलने की चेष्टा की! किन्तु क्या बोलती? थोड़ी देर आश्चर्य-चकित इधर-उधर देखती रही। फिर शय्या पर इस तरह लुढ़क गई, जैसे कोई रुई का गट्ठर लुढ़क जाय! और कुछ क्षणों में ही वह खुर्राटे लेने लगी। उसकी वह लापरवाही की नींद ही मेरी इस रत-जगी में परिणत हो गई है, माँ। बार-बार सोचता हूँ, यह क्या हो गया? एक ऐसी लड़की, जिससे न जान, न पहचान, जो न हमारी भाषा जानती है और न हम जिसकी भाषा जानते हैं, एक दिन अचानक जीवन-भर के लिए गले में बाँध दी गई और संसार में घोषणा यह की गई कि यह विजय की भेंट है—वाह री विजय, वाह री भेंट!

माँ—गुरुदेव ने जो कुछ किया है, सोच-समझ कर ही किया होगा, बेटे!

चन्द्रगुप्त—माँ, इधर पा रहा हूँ, तुम्हारा भाव गुरुदेव के प्रति बदल रहा है। याद है, तुम्हीं ने कहा था—वह जादूगर हैं, मैं उनसे डरती हूँ, वह हमें भटका रहे हैं। और, वही तुम हो, जो अब गुरुदेव की प्रशंसा करती हुई नहीं अघाती। यह अद्भुत परिवर्तन है, माँ।

माँ—हाँ, परिवर्तन है, किन्तु तू इसे अद्भुत क्यों कहता है? यह स्वाभाविक है। गुरुदेव की नीति सफल हुई है!

चन्द्रगुप्त—सफल! मानो जीवन के लिए सफलता ही सबसे बड़ी वस्तु हो।

माँ—ओहो, बहस छोड़। जा, सो।

चन्द्रगुप्त—मैं सो नहीं सकता माँ, सो नहीं सकता!

(सहसा चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य—सोना तो खोना है! आदमी जितना जगता है, उतना ही अधिक पाता है। कोई बात नही चन्द्र, यदि तुम सो नही पाते! ज्यो-ज्यो उत्तरदायित्व बढता है, निद्रा दूर भागती जाती है। सुख चैन, भोग विलास—ये सब छोटे लोगो के लिए हैं। ये पाशविक वृत्तियाँ हैं, जो मानव मे अभी तक वर्तमान है!

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, (व्यग्य से) आप भी अबतक नही सोये गुरुदेव!

चाणक्य—मेरे लिए यह पहली रात नही है चन्द्र, जब सारी-सारी रात अनिद्रा में ही बीत गई हो! थोडे दिनो के बाद तुम्हे भी इसका अभ्यास हो जायगा, बेटे!

माँ—गुरुदेव, यह क्या कह रहे हैं, गुरुदेव! ऐसा अभिशाप मेरे बेटे को

चाणक्य—माताजी, अब यह चन्द्र तुम्हारा ही बेटा नही है। देखो, क्या यह वही चन्द्र है, जिसे तुमने मुझे सौंपा था? वह चन्द्र तो अब भी पाटलिपुत्र के निकट गायें चरा रहा होगा! यह तो सारे देश का चन्द्र है, जो सिंधु-तट पर ससार के विजेताओ के विजेता के रूप में खडा है। जो मातृभूमि का त्राता है, जिसने माता के सर के कलक के टीका को दूर किया है! एक ही देश, टुकडो-टुकडो में बँटा! कही स्वतत्रता, कही परतत्रता! और सब जगह छिन्नभिन्नता! ऋषियो की कल्पना साकार की है इसने! यह ऋषिपुत्र है, देवपुत्र है। तुम्हारे सामने भारत का प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् खडा है माताजी! देखो, अच्छी तरह देखो, क्या यह तुम्हारा चन्द्र है?

माँ—गुरुदेव, मुझसे मेरा बेटा मत छीनिये, गुरुदेव!

चाणक्य—(मुस्कुराता हुआ) कौन किससे छीनता है? हाँ, जो जिसके लिए होता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है। कहाँ जन्म लिया होगा उस यवन-कन्या ने? आज वह आपकी पुतोहू के रूप में आपके घर मे सोई है।

माँ—गुरुदेव, उसी के कारण तो मेरे बेटे को नीद नही आ रही है।

चाणक्य—(मुस्कुराते हुए) सच बेटे?

चन्द्रगुप्त—इसलिए ही नही, गुरुदेव! मुझे लगता है, उस यवन-सेनापति ने आपको पराजित कर दिया! सिन्धु-तट पर जहाँ मेरी सेना ने अभूतपूर्व विजय प्राप्त की, आपकी बुद्धि ने घुटने टेक दिये!

आज वह पराजित होकर विजयी बना है। जो कभी इस देश के एक छोटे से अंश का अधिपति था, वह अपनी कन्या भेज कर आपके चक्रवर्तित्व के स्वर्णसिंहासन के आधे भाग पर अधिकार पा गया है। उसकी वह कन्या विजय की नींद ले रही है, मैं आपकी पराजय पर छटपटाता फिर रहा हूँ।

चाणक्य—ओहो, बड़ी दूर की बात सोची है तुमने चन्द्र। लेकिन दूरी कुछ इतनी बड़ी है कि इस बात से भी अधिक दूर की बात सोची जा सकती है बेटे।

चन्द्रगुप्त—दूसरी कौन-सी बात हो सकती है, गुरुदेव?

चाणक्य—बेटे, बात तो सचमुच इतनी दूर की है कि कदाचित वहाँ तक किसी की कल्पना तक नहीं जाय। हो सकता है, समय के पहले ही उसका शुभारम्भ हमने किया हो। प्रत्येक देश में चक्रवर्ती शासन—किन्तु उसके बाद? जगन्नाथ का रथ क्या वहीं रुक जायगा? मुझे लग रहा है आज सिन्धुतट पर हमने जिस सम्बन्ध की नींव डाली है यदि वह सफल हुआ तो फिर पूरब-पश्चिम, श्याम-श्वेत—वर्ण-भाषा, सीमा-दिशा आदि के सारे भेदभाव नष्ट हो जायेंगे। यवन सेनापति ने चाहे जिस उद्देश्य से अपनी कन्या को उपहार रूप में भेजा हो, मैंने स्वीकार करने के पहले भलीभाँति सोच लिया है, चन्द्र!

चन्द्रगुप्त—तो आप अपने चक्रवर्तित्व की सीमा को स्वयं तोड़ रहे हैं।

चाणक्य—सीमायें टूटती ही हैं। पखेरू अंडे में पलते हैं, किन्तु एक दिन अंडा टूटता है, तभी पखेरू के परों की सार्थकता सिद्ध होती है। पिंड, अंड, ब्रह्माण्ड—हमारे ऋषियों ने सभी कल्पनायें कर रखी हैं बेटे।

चन्द्रगुप्त—किन्तु इसकी नींव में पराजय है, इससे मुझे डर है, आपका प्रयत्न सफल नहीं हो सकेगा, गुरुदेव!

माँ—(व्याकुलता और कातरता से) ऐसा मत कहो बेटे!

चाणक्य—चन्द्र, दो डालें कभी अचानक आ मिली हों, किन्तु सदा यह देखा गया है, कलम बाँधी जाती है—दो ओर से दो डालें लेकर उन्हें मिलाया जाता है। और जहाँ दो मिलाये जाते हैं, वहाँ थोड़ा बल का प्रयोग करना ही पड़ता है।

चन्द्रगुप्त—मानव को स्वयं मिलना चाहिये गुरुदेव, जहाँ मिलाने की चेष्टा हुई, मानवत्व समान होकर रहेगा। और एक सयोग की बात है, किन्तु आज मैं उसे छिपा कर नहीं रख सकता गुरुदेव!

आप ही कहिये, क्या मिली हुई दो डालो को हटा कर तीसरी को मिलाने की चेष्टा एक महान अन्याय नही है गुरुदेव ?

चाणक्य—तुम चन्द्रा की बात सोच रहे हो ?

माँ—हाँ, गुरुदेव, उस बेचारी पर यह महान अन्याय हुआ है। हाय ! उसके जीवन भर की साधना और साध की जैसे हत्या हो गई ! आज इस सिंधु-तट पर सैनिक ही नही मरे हैं, एक भोली बालिका की क्रूर हत्या हुई है, मुझे ऐसा लग रहा है ! मैं चेष्टा करके भी सो नही पाई हूँ, गुरुदेव ! गुरुदेव, यह आपने क्या कर दिया ? (करुणा से विह्वल आँखें पोछने लगती है)

चाणक्य—(दृढ़ता भरे शब्दो में) हत्या हुई है! हाँ, हुई है! मानता हूँ, स्वीकार करता हूँ ! किन्तु याद रखिये माताजी, किसी की हत्या होती है, तभी कोई जीवन पाता है। जहाँ राष्ट्र का प्रश्न है, वहाँ व्यक्तियो के प्रश्न को नही घुसेडा जा सकता। और सुन लो चन्द्र, महान उद्देश्य और कोमल भावना साथ नही चल सकते। कही कठोर होना पड़ता है, और वही यह स्थल है।

चन्द्रगुप्त—किन्तु गुरुदेव, यह कोमल भावना है, जो मानव को मानव बनाता है, बनाये रखता है, क्या कोमल भावना ऐसी तुच्छ वस्तु है कि उसे सदा यो ठुकराया जाय ?

चाणक्य—(पूरी गम्भीरता से) चन्द्र, बेटे, जिसे मैं सुला पाया हूँ, उसे खोद कर मत जगाओ। मुझे बहुत कुछ कहना है—और उनमें से कुछ का साक्षी यह सिन्धु है ! (व्याकुल होकर टहलने लगता है! फिर रुक कर कहता है)—चन्द्र, कही तुमने देखा है, ब्राह्मण काला हो। मेरे माता-पिता ने यह रग मुझे नही दिया था बेटे ! मैं भी कभी सुन्दर था, मेरा वर्ण भी तपाये सोने-सा दपदप करता था ! किन्तु जिसके भीतर दिनरात धुआँ-धुआँ हो, वह स्वर्ण-कलश कब तक अपने रग को सुरक्षित रख सकता है ? आह रे वह धुआँ, धुआँ ! जिसकी घुटन ने इस शरीर को, इस मन को इतना विकृत कर दिया ! ओहो ! ओहो !! (चेहरे पर उन्माद की-सी भावना)

चन्द्रगुप्त—(आश्चर्यमय भय के साथ) गुरुदेव, गुरुदेव !

माँ—(झुक कर चरण छूती है) गुरुदेव !

चाणक्य—(विकलता की वाणी में) हाँ, यह सिंधु ही साक्षी है ! इसी सिन्धु के किनारे वह घटना घटी थी। मेरा घर सिधु-तट पर ही था । इसी तरह उन दिनो भी पूनम का चाँद उगता था और

चाँदनी ऐसी ही खिलती थी। दो हृदय दो झोपड़ों से निकलते थे, सिंधु-तट पर आते थे, मिलते थे, हँसते थे, गाते थे, नाचते थे! किन्तु इस सिंधु से यह सब नहीं देखा गया। ये नदियाँ क्या हैं? जानते हो? सदा निम्नगामिनी होती हैं ये। पतन ही इनकी दिशा है! ये गिराती हैं, उठाती नहीं! और जो गिरा, उसे बहा ले जाती हैं! एक को यह सिन्धु बहा ले गई और दूसरे ने निश्चय किया, वह सारे सिन्धुओं को सुखा देगा—पृथ्वी में कहीं तरलता का, सरसता का, फिसलन का, पतन का नाम नहीं रहने देगा! किन्तु, कैसा चक्र! यह सिन्धु आज भी बह रहा है, और उस ब्राह्मण ने अपनी ही ज्वाला में अपने को काला कर लिया। और, उस कालेपन पर पर्दा डालने को आदर्श का एक आवरण तो उसने ओढ़ लिया, किन्तु, जब वह आदर्श पूरा होने जा रहा है, अपनी नग्नता से वह घबरा रहा है! (व्याकुल हो टहलने लगता है)

चन्द्रगुप्त—नग्नता! यह क्या कह रहे हैं गुरुदेव?

चाणक्य—जो कह रहा हूँ, वही सत्य है! आज तक तुमने जो देखा, समझा, सब असत्य! आदर्शवाद! हाँ, यह एक आवरण है! किन्तु यह आवरण उतना ही आवश्यक है, जितना मनुष्य के लिए वस्त्रों की, परिधानों की आवश्यकता है। कोई वस्त्र के साथ जन्म नहीं लेता, किन्तु नंगा रहना कौन पसंद करेगा? मनुष्य में इतने छिद्र हैं कि उन्हें ढाँकना ही पड़ता है। मानव-मन भी उसके तन के ही अनुरूप होते हैं। वहाँ भी छिद्र-ही-छिद्र हैं। आदर्श से ही उन्हें ढँकना होता है। वस्त्र जितने ही शुभ्र हों, सुन्दर हों, उतने ही अच्छे—आदर्श भी जितना ही उज्वल हो, प्रोज्वल हो, दिव्य हो, दिप्त हो, उद्दीप्त हो, उतना ही शुभकर! (अचानक रुक जाता है: ऊपर की ओर टकटकी लगा कर देखता रहता है: सौ और चन्द्रगुप्त भय-कातर दृष्टि से उसकी ओर देखते रहते हैं फिर वह आप ही बोल उठता है) अपने छोटे-से संसार को अपने हाथों उजाड़ कर उस युवक ब्राह्मण ने एक नये संसार की सृष्टि करनी चाही और उसे वह नया संसार मिली थी उस चक्रवर्तित्व की कल्पना में मिली। किन्तु, उसने आज इस सिन्धु-तट पर उससे भी बड़ी एक कल्पना पाई है चन्द्र! "वसुधैव कुटुम्बकम्"—सारा संसार एक कुटुम्ब में परिणत हो, ऋषियों ने कहा तो, किन्तु उसका आरम्भ कैसे होगा, वह भी नहीं सोच सके थे! जब यवन-सेनापति ने यह संदेश भेजा, मुझे उसमें उस कल्पना की झलक मिली, मैंने झट स्वीकार कर लिया। और, अब इस कल्पना से मैं ऐसा

विभोर हूँ कि इच्छा होती है, एक बार फिर इस सिन्धु-तट पर गाऊँ, नाचूँ। (भावना-मग्न हो उठता है)

(श्वेतकेतु का प्रवेश)

श्वेतकेतु—हाँ, हाँ, चलिये गुरुदेव, चलिये, हम-आप दोनो ही नाचें। यह विमल धवल चन्द्रिका, यह शुभ्र सलिला सिन्धु, उसकी रजतमयी बालुका-राशि। चलिये, हम नाचे, नाचे गुरुदेव!

चन्द्रगुप्त—श्वेत, यह क्या बोल रहे हो श्वेत! सोचो, कहाँ हो? किसके सामने हो?

श्वेतकेतु—गुरुदेव आधुनिक दुर्वासा है, मुझे शाप दे ले, तुम अब सम्राट् हो, मुझे फाँसी दे दो! किन्तु आज मेरे आनन्द की सीमा नही है चन्द्र, जब गुरुदेव के मुँह से मैंने गाने और नाचने की बात सुनी है! गुरुदेव, गुरुदेव!—चलिये गुरुदेव! अपनी-अपनी कल्पनाओ में विभोर दो ब्राह्मण आज सिन्धु-तट पर नाचे और आकाश के देवता,—यह चन्द्र, ये तारे, यह ध्रुव—इस विस्मयकारी दृश्य को देखें और वे भी नाच उठें, नाच उठें! (नाचने लगता है)

चन्द्रगुप्त—(उसे पकडता हुआ) श्वेत, श्वेत! तुम होश में नही हो श्वेत! यह तुम्हे क्या हो गया है? गुरुदेव, गुरुदेव, क्षमा कीजिये!

चाणक्य—आज सबको क्षमा है चन्द्र! तुम सब का मगल हो, कल्याण हो, मैं चला।

(चाणक्य जाता है श्वेत की मुद्रा बदल जाती है घृणा के स्वर में वह कहने लगता है)

श्वेतकेतु—ढोंगी ब्राह्मण! एक अबला की हत्या कर यहाँ माया पसारने आया था। इस सिन्धु-तट पर उसे क्या मिला? इतने लोगो को लडा मारा और पाया क्या? एक लडकी! और एक लडकी की हत्या कर उसके शव पर इस दूसरी लडकी को अधिष्ठित किया! बेचारी चन्द्रा! (उसकी आँखें सजल हो उठती हैं)

माँ—हाँ, बेचारी चन्द्रा! आह, जीवन-भर जिसकी आस लगाये रही, वह उससे अचानक छीन लिया गया! ओह!

श्वेतकेतु—अचानक नही छीन लिया गया माँ। यह सब उस काले ब्राह्मण का जानबूझ कर रचा गया षड्यन्त्र है। जब पाटलिपुत्र में चन्द्र के राज्याभिषेक दिन उसने लग्न-मुहूर्त की बात कह कर आपको बहला दिया और उस बेचारी को स्वर्ण-सिंहासन पर नही बैठने दिया,

उसी दिन मैंने समझ लिया, उसकी टेढ़ी खोपड़ी में अवश्य कोई खुराफात है! और बात साफ है, वह नहीं चाहता होगा कि जब चन्द्र भारत का सम्राट् बनने जा रहा है, तो किसी साधारण कन्या से उसका विवाह हो। मुझे तो सन्देह है कि यदि उसे अन्त में यह पता नहीं चल जाता कि आपलोग किसी राजकुल से हैं, तो, उस बारे में भी वह सोचता कि चन्द्र को सिंहासन पर बैठने दे या नहीं।

चन्द्रगुप्त—तो तुम समझते हो, मैं गुरुदेव की कृपा से सिंहासन पर बैठा हूँ?

श्वेतकेतु—प्रश्न यह नहीं है, चन्द्र कि तुम क्या समझते हो? मूल बात यह है कि वह काला ब्राह्मण क्या समझता है? वह अपने को ऋषियों का प्रतिनिधि मानता है। जो कुछ करता है, सोचता है, वह उनके आदर्शों को ही मूर्त रूप दे रहा है। और इन आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए वह चाहे जो कुछ भी कर सकता है। तुम्हें शायद पता नहीं हो, एक नया शास्त्र ही बना रहा है वह। कहता है, ऋषियों ने धर्मशास्त्र बनाये, मोक्ष-शास्त्र बनाये। किन्तु वह भूल गये, मानव जीवन की चतुर्विध प्राप्ति का प्रथम चरण है अर्थ। पहले अर्थ पर शास्त्र बनना चाहिये। कुशल यह हुई कि वह गृहस्थ नहीं रहा, नहीं तो एक कामशास्त्र भी बना डालता!

चन्द्रगुप्त—तुम कैसे समझते हो, गुरुदेव कभी गृहस्थ नहीं रहे?

श्वेतकेतु—तो मान लो, वह कामशास्त्र पर भी लिख कर रहेंगे। हाँ, यहाँ भी चालाकी से काम लेंगे। तुम्हें मालूम है, उनके कितने नाम हैं? और किस नाम से क्या काम करते हैं?

(चन्द्रा का प्रवेश)

चन्द्रा—इस ढलती रात में किसके नामों और कामों की गिनती हो रही है? अरे, यहाँ आज तो जैसे मेला लगा है! माँ, आप अब तक जगी हैं—चन्द्र, तुम यहाँ? इसे अकेली

(माँ चन्द्रा की उपस्थिति से ही उद्विग्न हो उठती है, चन्द्रगुप्त की सारी सुप्त स्नेह-भावना जैसे जग जाती है, वह अपनी अश्रुसिक्त आँखों को पोंछने लगता है। श्वेत कहता है)

श्वेतकेतु—चन्द्रे! सब का अपना भाग्य होता है।

चन्द्रा—उसका भाग्य? भारत की सम्राज्ञी! विजेता की अर्द्धांगिनी! आज उससे बढ़कर कौन ललना सौभाग्यशालिनी होगी इस धराधाम में रविजी?

चन्द्रगुप्त—क्षमा करो चन्द्रे!

माँ—बेटी, बेटी! तू अधीर मत हो बेटी! आह! यह क्या हो गया?

चन्द्रा—क्या हुआ माँ? कुछ भी तो अप्रत्याशित या अनुपयुक्त नही हुआ। चन्द्र अब राजाधिराज है, उनकी पत्नी किसी अधिराजा की राजकुमारी ही तो हो सकती है। हम दुख के साथी थे। क्या सुख में भी हमें भाग मिलना ही चाहिये? आपलोग राम के वंश से हैं न? इस कुल की सीता तो सदा से जंगल-जंगल मारी फिरती रही है! मेरा बडा सौभाग्य यही हो कि मुझे वनवास नही मिले, अपने राम के चरणो के निकट पडे रहने के लिए दो बित्ता जगह मिल जाय। राज्य का स्वर्ण-सिंहासन! राज-प्रासाद का केलि-भवन! यह तो राजकुमारियो के लिए ही सुरक्षित रहने चाहिये न माँ!

(अब श्वेत और भी विचलित हो उठता है उसकी आँखें डबडबा आती हैं)

माँ—बेटी, तू क्या बोले जा रही है, बेटी!

चन्द्रा—कुछ नही, माँ, कुछ नही। (चन्द्रगुप्त की ओर) चन्द्र, समझ रही हूँ, तुम्हारे हृदय में कौन-सा द्वन्द्व उठ रहा होगा इस समय। तुम सो नही सके। हाँ सो नही सकते थे तुम। किन्तु धीरे-धीरे बाते भूल जाया करती है, नही तो भुला देनी पडती हैं। तुम भी भूल जाओगे, या भुला देना पडेगा तुम्हे। माँ ने उस दिन बताया था न, उन्होने मुझे धूल पर पाया था। मैं जहाँ थी, वहाँ रहूँगी! धूल उतनी उपेक्षनीय भी नही!

श्वेतकेतु—किन्तु धूल पर ही तो फूल खिलते है, चन्द्रे!

(उसके इस कथन से माँ की आँखें एकाएक चमक पडती हैं)

माँ—तुम्हारे मुँह में घी-खाँड पडे बेटे। (चन्द्रा से) बेटी, गुरुदेव की बात, गुरुदेव जानें। मैं भी जहाँ थी, वही खडी हूँ। बेटे, चन्द्र, अब मैं चुप नही रह सकती। माँ का भी कोई अधिकार होता है! मैं आज उस अधिकार का उपयोग करूँगी—कभी नही की, आज करूँगी, अवश्य करूँगी। हाथ बढा बेटे! विजय बडी चीज है, तो प्रणय की महिमा उससे भी बडी है और जिस प्रणय के साथ सेवा जुडी हो, वह तो अलौकिक, स्वर्गिक हो जाता है। वह अजेय है, अपरिमेय है। उसे कोई रोक नही सकता, उसे कोई बाँध नही सकता। बेटी, अपना हाथ दे। आज ही वह लग्न आ गई है बेटी! इस पूर्णचन्द्र के नीचे, उस ध्रुव को साक्षी देकर, मैं तुम दोनो को

परिणय-सूत्र में बांधती हूं। बेटे श्वेत, मंगल-मंत्र पढो बेटे! इस निर्मल, विशुद्ध, पवित्र मंगल-पर्व के लिए तुम्हारे ऐसे निर्मल हृदय, विशुद्ध हृदय, पवित्र हृदय पुरोहित भी दूसरा कौन मिलेगा? पढो, मंगल-मंत्र पढो बेटे!

(श्वेतकेतु मंत्र पढने लगता है मां चन्द्रा और चन्द्रगुप्त के हाथों को लेकर एक साथ जोडती है चारों की आंखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे हैं चन्द्रा कुछ देर आत्मविभोर रहती है· फिर चन्द्रगुप्त से कहती है)

चन्द्रा—चन्द्र, तुम अब उस शिविर में जाओ। वह अकेली

चन्द्रगुप्त—मैं वहां जा नहीं सकता चन्द्रे! नहीं, नहीं . .

चन्द्रा—भावना में मत बहो चन्द्र! जो जिसे प्राप्य है, उसे प्राप्त होना चाहिये। तुम उस यवन-कन्या को वह सबकुछ दो, जो सिंहासन दे सकता है। उसे सिंहासन चाहिये, वह इसी के लिए भेजी गई है। वह उसी से सन्तुष्ट होगी। मुझे जो मिलना था, मां ने मुझे दे दिया है। मुझे उसीसे सन्तोष है। वह विदेशिनी बालिका है, ऐसा न समझे कि हमारे देश के लोग कोई अशिष्टता भी कर सकते हैं। यह हमारी परम्परा भी नहीं है। तुम अब हमारे देश के सारे धर्मों और कर्तव्यों के प्रतीक हो। प्रणय या परिणय उसमें उलझन क्यों आने दें? जाओ, शिविर में जाओ . .

मां—धन्य बेटी धन्य! आर्य-ललना के अनुकूल ही तुम्हारी वाणी है।

श्वेतकेतु—शूल पर फूल खिले, फूल में फल लगे! जय हो! जय हो!

(चन्द्रा मुस्कुरा पड़ती है मां पुलकित हो उठती है चन्द्र भी मुस्कुरा पड़ता है)

चौथा अंक

स्थान : नीलगिरि की तलहटी में एक कुटिया
समय : सध्या

भारत माता के पद-भाग में स्थित नीलगिरि-पर्वत की तलहटी में बनी घास-फूस की इस कुटिया में, कुश की साथरी बिछा कर, उस पर अर्द्ध ध्यान-मग्न मुद्रा में वह कौन बैठा है?

शरीर पर केवल श्वेत वस्त्र! श्वेत वस्त्र से ही आच्छादित घास-फूस की एक तकिया उसके पृष्ठ भाग में है।

भारत-सम्राट्, महान विजेता चन्द्रगुप्त—यहां इस वेश में इस मुद्रा में? कोई पहचाने तो कैसे?

बात क्या है?

सम्राट् की विजय की आकाक्षा परितृप्त हो चुकी है। भारत में एक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना की उनकी गुरु की कल्पना भी साकार हो चुकी है।

विजेता की आत्मा व्याकुलता में एक नये सन्देश की पुकार सुन पाती है। वह सन्देश, पाटलिपुत्र के पडोस में ही स्थित, वैशाली से निसृत हुआ है और सारे भारत को छा रहा है!

वह सन्देश है अहिंसा का। ज्ञाति-पुत्र भगवान महावीर ने पहले-पहल यह सन्देश ससार को दिया था!

जीवन भर हिंसा में ही जो लीन रही, वह आत्मा ऊब कर, इस सन्देश की ओर आकृष्ट हो, तो आश्चर्य क्या?

कि इसी समय भारत के कई भागों में घोर अकाल पड़ता है। सम्राट् चन्द्रगुप्त सोचते हैं, इस अकाल का उत्तरदायित्व किसपर ? और उसका क्या प्रायश्चित्त ?

एक निर्णय · गम्भीर निर्णय ! जैन-धर्म के विधान के अनुसार साठ दिनों तक निर्जल निराहार व्रत रख कर वह प्राण त्याग देंगे !

यह शुभ यज्ञ कहाँ हो ? उत्तर भारत में उत्पन्न यह सम्राट् अपनी अन्तिम समाधि के लिए दक्षिण भारत को चुनता है।

यहाँ, इस नीलगिरि की तलहटी में, इस कुटिया में, वह अपने से ही रचाई मृत्यु-शैया पर आ बैठे हैं !

चन्द्रा आती है। उनके चरणों में झुक कर बोलती है—

चन्द्रा—सम्राट्, सम्राट् ! यह क्या निर्णय कर लिया आपने ? इस निर्णय को छोड़िये, सम्राट् ! छोड़िये इस निर्णय को और चलिये, चलिये, पाटलिपुत्र ! मैं पैरों पड़ती हूँ सम्राट् ! (वह पैरों में लिपट जाती है)

चन्द्रगुप्त—मैं भी किसी के पैरों पर ही पड़ा हूँ, सम्राज्ञी ! गुरुदेव ने उस दिन देश-माता की एक कल्पना-मूर्ति मेरे सामने रखी थी। जीवन-भर उसकी आराधना करता हुआ अब अन्त में उसके चरणों पर आ गिरा हूँ ! यह नीलगिरि, इसके बाद ही तो माता का वह पद-नख—कन्याकुमारी है ! हहर-हहर कर महासागर की उत्ताल तरंगें उस पद-नख को धो रही हैं ! मैं उन लहरों की ध्वनि यहाँ से ही सुन रहा हूँ। आप क्या नहीं सुन रही हैं, सम्राज्ञी ?

चन्द्रा—मैं कुछ नहीं सुनती सम्राट् और न सुनना चाहती हूँ ! मैं आपके श्रीमुख से केवल एक ही वाणी सुनना चाहती हूँ—इस निर्णय के छोड़ने की घोषणा कीजिये !

चन्द्रगुप्त—सम्राज्ञी, आप क्या बोल रही हैं ? चन्द्रा यह बोल सकती थी, किन्तु भारत की सम्राज्ञी की यह वाणी ! जिस सम्राट् के निर्णय बदलने लगे, वह भी कोई सम्राट् होगा, सम्राज्ञी ?

चन्द्रा—सम्राज्ञी कह कर मुझ पर व्यंग्य मत कीजिये, सम्राट्। मैं सदा आपकी दासी रही और हूँ ! मैंने सिंहासन की कामना कभी नहीं की। गुरुदेव ने तो यह सिंहासन उस यवन-कन्या को अर्पित किया था .

चन्द्रगुप्त—वह यवन-कन्या ! सोचता हूँ, यदि आज वह यवन-कन्या यहाँ होती, तो देखती, सिंहासन का क्या मूल्य है इस विचित्र देश में !

चन्द्रा—आह ! मैंने उस दिन व्यंग में कहा था, उससे बढ कर सौभाग्यशालिनी नारी इस धराधाम पर कौन होगी ? सचमुच वह परम सौभाग्यशालिनी सिद्ध हुई और परम अभागिनी सिद्ध होने जा रही है यह दीना-हीना चन्द्रा ! यदि आपको यही करना था, तो मुझे वही छोड दिये होते, सम्राट्, जहाँ मैं खडी थी ! (ऊपर ओर देखती हुई) माताजी, माताजी, आप भी चल बसी माताजी ! देखिये, माताजी, आपकी चन्द्रा आज फिर वही खडी होने जा रही है जहाँ से आपकी कृपा की बाहो ने उसे उठाया और सिंहासन पर बिठाया था। आज तुम कहाँ हो माँ ! माँ ! माँ ! (हाथो से चेहरा ढँक कर फूट-फूट कर रोने लगती है)

चन्द्रगुप्त—सम्राज्ञी ! यह कातरता की वाणी नही ! इस शय्या के निकट कातरता की कोई वाणी नही निकलनी चाहिये ! इस शय्या की एक पवित्रता है ! आपको इस पवित्रता की रक्षा करनी चाहिये ! भगवान अर्हत के विधान में कोई व्यवधान क्या उचित है ?

चन्द्रा—आह रे यह विधान ! भारत का सम्राट् आज इस कुटिया में पडा

चन्द्रगुप्त—हाँ, इस कुटिया में पडा भारत का सम्राट् मृत्यु का आह्वान कर रहा है ! कैसा दिव्य विधान है यह। जो कल तक पृथ्वी की विजय के लिए व्याकुल था, उसी व्याकुलता से, आतुरता से वह मृत्यु पर विजय करने को आगे बढा है ! सम्राज्ञी, आप नही देख रही है, कि यह कितनी बडी बात होने जा रही है ? आप शायद देख नही पाती, हाँ, हममें केवल श्वेत ही यह देख सकता है—उसी की दृष्टि उतनी निर्मल है ! श्वेत कहाँ है सम्राज्ञी ?

चन्द्रा—सम्राट् ! आपके इस निर्णय ने क्या किसी की बुद्धि को, चेतना को ठिकाने रहने दिया है ! जिन्हे सूचना मिली है, सब पूछते है, क्या हुआ ? सम्राट् ने ऐसा निर्णय क्यो किया ? कहाँ, किससे, क्या त्रुटि हुई ? सभी कारण ढूंढ रहे है, पूछ रहे है ?

(श्वेतकेतु का प्रवेश)

श्वेतकेतु—मैं न ढूंढ रहा या पूछ रहा, सम्राज्ञी ! मै तो जानता था, यही होकर रहेगा ! गुरुदेव ने जो पथ पकडा और हमसे पकडवाया, उसकी परिणति यही होनी थी। उन्हे एक नेता चाहिये था, विजेता चाहिये था। सम्राट् उन्हे मिल गये। उन्होने उनसे वह सब कराये, जो वह चाहते थे। सम्राट् क्षमा करे, वह भी क्या एक महत्वाकाक्षा

से अभिभूत नहीं थे ? उन्होंने भी सब मानन्द किया ! माताजी रोक सकती थीं, तो वह खोये वैभव को पुन सम्स्थापित देखने के लिए अधी बन गई थीं। जीवन एकाकी बनकर बहता रहा, बहता रहा। कबतक वह इस तरह बहता रह सकता था सम्राज्ञी ?

चन्द्रा—श्वेतजी, श्वेतजी, आप क्या बोल रहे हैं यह ? सम्राट् को समझाइये श्वेतजी !

श्वेतकेतु—कौन किसको समझा सकता है ! जो जीवन-भर नहीं कर सका, क्या अन्त में वह मैं कर लूँगा ? मेरी वाणी तो सदा विद्रोह में उठती रही है, सम्राज्ञी, किन्तु किसी ने उस पर ध्यान दिया ? मुझे तो कवि मान लिया गया है न ? यह विचित्र प्राणी है सम्राज्ञी ! इसे सब लोग चाहते हैं, सब लोग प्यार देते हैं, इसकी वाणी सुनने को भी लोग उत्कंठित रहते हैं। किन्तु न इसे, न इसकी वाणी को कोई गम्भीरता से लेता है। कभी कहा गया हो, कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू—किन्तु जिस आस्पद से पहले भगवान को भी सम्बोधित किया जाता था, वह पुण्य-पवित्र आस्पद, आह, अपनी सारी गरिमा खो चुका ! (उसाँसे लेता है)

चन्द्रगुप्त—श्वेत ! श्वेत ! तुम ऐसे उदास मत हो मेरे कवि-मित्र ! तनिक इधर आओ ! (उनकी पीठ पर हाथ सहलाते हुए) हाँ, तुम्हारी वाणी पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। किन्तु तुम्हें आनन्दित होना चाहिये कि आज तुम्हारी ही वाणी चरितार्थ होने जा रही है, श्वेत !

श्वेतकेतु—आनन्दित होना चाहिये ! पाटलिपुत्र के सम्राट् आज इस नीलगिरि की तलहटी में, घास-फूस से बनी इस कुटिया में, कुश की साथरी बिछा कर, यह प्रतिज्ञा करके उसपर आ बैठे हैं कि साठ दिनों का निराहार-निर्जल व्रत रख कर प्राण त्याग कर दूँगा और उनका यह कवि-मित्र इसी पर आनन्द मनाये कि अन्तत उसकी वाणी सफल तो हुई ! कवि ! कवि ! तुम्हें क्या समझ रखा है लोगों ने ! न तुम्हें आदि में समझते हैं, न अन्त में .. . आह !

चन्द्रगुप्त—ओह ! तुम भी मेरा पक्ष नहीं ले रहे हो, श्वेत ! तुम भी नहीं देख रहे हो ! तुम्हारी दृष्टि तो .

श्वेतकेतु—मेरी दृष्टि भी आज कुंठित हो रही है, यह स्वीकार करते हुए मैं लज्जा का बोध कर रहा हूँ, किन्तु सत्य बात यही है सम्राट् ! आह ! आज माताजी होतीं ! (विह्वल हो जाता है, आँसू पोंछने लगता है)

चन्द्रगुप्त—कैसा आश्चर्य ! आज कवि भी मोहित हो रहा है ! यह क्या कर रहे हो, श्वेत ? शरीर से यह मोह ! और आदर्श से ?

श्वेतकेतु—आदर्श या तो आपके गुरुदेव जानें, या आप जानें ! मैं इसकी भूलभुलैया में कभी नही पडा सम्राट् और न अब आज उसका कोई पाठ सुनना चाहता हूँ ! मैं आज एक क्रूर सत्य देख रहा हूँ और जीवन-भर जिस सत्य की उपासना करता रहा, वही जब अपनी सारी विभीषिका के साथ सामने खडा है, मेरा रोम-रोम काँप रहा है ! देखिये, यह देखिये ! (अपने रोमाचित हाथ बढाता है)

चन्द्रगुप्त—श्वेत ! श्वेत !

चन्द्रा—सम्राट्, सम्राट् ! अपना निर्णय बदलिये सम्राट् ! (फिर चरणो से लिपट जाती है)

चन्द्रगुप्त—सम्राज्ञी ! सम्राज्ञी !

चन्द्रा—क्या सम्राज्ञी बना कर आप मुझसे दड भुगतवाना चाहते है ? मुझसे कौन-सा अपराव हुआ है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त—ओह ! तुम लोग नही मानोगे ! तो सुनो, अपराव तुम से या किसी से नही हुआ है, अपराध सम्राट् ने किया है। और यह क्या अन्याय नही होगा कि अपराध प्रजा करे तो उसे दड भुगतना पडे किन्तु सम्राट् बेलाग छूट जाय ! और, हत्याकारी के लिए प्राण-दड की ही व्यवस्था है सम्राज्ञी !

चन्द्रा—हत्याकारी ! प्राणदड !

चन्द्रगुप्त—हाँ, सम्राट् ने हत्या की है—हत्या ही क्यो, हत्यायें की है !

श्वेतकेतु—तो क्या युद्ध बिना हत्या के किया जा सकता है ? और विजय के साथ ही क्या हत्यायें सलग्न नही हैं ? यदि यही बात हो, तो सभी सम्राटो और सामन्तो को सूली पर लटकना पडेगा ! तब मुझे भी दुख नही होगा, यदि सभी सम्राटो और सामतो के साथ एक हमारा सम्राट् भी सूली पर चढाया जाय या चाडाल के हाथ से खाँडे की धार उतारा जाय ! सम्राट्, सम्राट्—यह नियम आज ही घोषित किया जाय, सम्राट् ! तब यह आपका कवि-मित्र सचमुच आनन्द से नाच उठेगा !

चन्द्रगुप्त—मै युद्ध में की गई हत्याओ के सम्बन्ध में नही कह रहा हूँ, श्वेत, वे क्षम्य भी मान ली जायें किन्तु जो शासक अपनी निरीह प्रजा को तडपा-तडपा कर मारे, उसके लिए दड का क्या कोई विधान नही होना चाहिये ?

चन्द्रा—(साश्चर्य) प्रजा को तडपा-तडपा कर!

चन्द्रगुप्त—हां, प्रजा को तडपा-तडपा कर! सम्राज्ञी, क्या आपको यह भी ज्ञात नही कि आपके राज्य में कई वर्षों से अकाल पडा है, अन्न के अभाव से प्रजा में हाहाकार मचा है, प्रतिदिन कितने ही बच्चे, बूढे, जवान तडप-तडप कर प्राण दे रहे हैं। चारो ओर रुदन-रुदन है, क्रदन-क्रदन है! सम्राज्ञी प्रजा की मां होती है। वह कैसी मां समझी जायगी जो अपने तडपते-मरते बच्चों का रुदन-क्रदन तक सुन नही पाये!

चन्द्रा—सम्राट्, सम्राट्! जले पर नमक मत छिडकिये सम्राट्!

चन्द्रगुप्त—यह जले पर नमक नहीं छिडकना है, यह तो कर्तव्य की याद दिलाना है, सम्राज्ञी! आप मां है, तनिक कल्पना तो कीजिये, यदि आपके बच्चे को इसी तरह तडप-तडप कर मरना पडे, तब आपको कैसा लगे? नही, अपराधी को दड मिलना ही चाहिये, चाहे वह साधारणजन हो या सम्राट्! और साधारणजन की अपेक्षा सम्राट् को कठिनतर दड चाहिये, कठिनतम, कठोरतम हो, तो और अच्छा!

चन्द्रा—क्या इससे भी कोई कठोरतम दड हो सकता है? साठ दिनो तक निर्जल-निराहार .. आह!

चन्द्रगुप्त—(दृढतापूर्वक) निर्जल-निराहार! हां हां, निर्जल-निराहार! जब प्यास से गला सूखने लगेगा, भूख से अंतडियां ऐंठने लगेंगी। जब शिरा-शिरा में आग की लपटें दौडेंगी। जब मस्तिष्क में सांय-सांय मचता रहेगा। कभी चेतना लुप्त होगी, कभी वह स्फुलिंग-सी चमक उठेगी! कवि, क्या सोच रहे हो, कवि? क्यों उदास मुख खडे हो कवि? कल्पना करो कवि, जब विजेता मृत्यु से पग-पग पर क्षण-क्षण लडेगा। लडेगा, लडेगा और अन्त में——

चन्द्रा—सम्राट्, सम्राट्! ओ हो .हो (व्याकुल होकर चरणों से लिपट जाती है) श्वेतजी, श्वेतजी, सम्राट् क्या कहे जा रहे हैं श्वेतजी! हायरे अभागी चन्द्रा, इससे तो अच्छा था कि तू धूल पर ही मरी होती!

श्वेतकेतु—धूल! धूल! धन्य हो तुम धूल! फूलो की सेज पर सोने वाली सम्राज्ञी भी तुम्हें सर्वथा भूल नहीं पाती! भूले भी कैसे, जब सबको एक दिन तुम्ही मे जा मिलना है! किन्तु कैसी छलना! जिस तरह हवा का एक हल्का झोंका धूल को उडा देता है, सुख की झलक पाते ही इसकी याद भी क्षण में विलीन हो जाती है! फिर बाद में रह जाती है, अट्टहास . . . .

चन्द्रा—अट्टालिका ! अट्टालिका ! चन्द्रा अट्टालिका पर कभी नही भूली कविजी ! उसने तो किसी के चरणो पर आरम्भ में ही अपने को न्योछावर कर दिया था, वे चरण जहाँ रहे, वही चन्द्रा रही—चाहे फूल पर या शूल पर ! आह रे आदमी ! पैरो के नीचे के फूल तो वह देख पाता है, किन्तु हृदय में चुभे शूल कौन देखे, कौन परखे ! दुर्भाग्य कि कवि की दृष्टि भी उसे नही देख पाती !

श्वेत—शूल ! फूल ! शूल ! सचमुच हर नारी कवि होती है !

चन्द्रा—यह आपको क्या हुआ है कविजी ! आप स्थिति की गभीरता भी नही समझ पाते ! यहाँ मेरे जीवन का, सम्राट् के जीवन का, राष्ट्र के जीवन का फैसला होने जा रहा है—और आप ऐसे बोले जा रहे हैं जैसे कोई दार्शनिक श्मशान में प्रवचन करने जा रहा हो ! ओह ! (व्याकुल होती है)

श्वेत—श्मशान में प्रवचन नही चन्द्रे, नही ! वहाँ प्रवचन मेरा नही, गुरुदेव का होगा सम्राज्ञी ! वह शायद उस प्रवचन की ही तैयारी में हैं ! वह आते ही होंगे—प्रवचन उनसे सुन लीजियेगा, मैं चला। सम्राट् मुझे आज्ञा दीजिये—मैं यह सब देख-सुन नही सकता ! (चलने का उपक्रम करता है)

चन्द्रगुप्त—ठहरो श्वेत। तुम्हे साक्षी रहना है। प्रारम्भ से ही मेरे कर्मो के साक्षी रहे हो, अन्त में क्या मुझे दूसरा साक्षी ढूंढना पडेगा ? और किसी दूसरे की छाती में यह दम है कि इस निष्ठुर अभियान का साक्ष्य कर सके !

(चाणक्य का प्रवेश चन्द्रा दौड कर उसके चरणो से लिपट जाती है श्वेतकेतु रुक्षभाव से खडे-खडे सिर नवाता है चन्द्रगुप्त अपने आसन पर खडे हो जाते हैं—)

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, क्षमा करे, इस आसन से

चाणक्य—सम्राट् को नहीं हटना है ! यह उनका निश्चय जो है ! सम्राट् का निश्चय या निर्णय कैसे टले ? यदि सम्राट् का निश्चय अटल नही हो, तो फिर इस चचल जगत में अटलता की टेक कहाँ टिके ! कविजी, आप भी तो इसमे सहमत होंगे !

श्वेतकेतु—मुझमे नही, सम्राट् से सहमति लीजिये गुरुदेव। अब अन्त समय में मेरी सहमति ?

चाणक्य—अन्त समय ! समय की कोई आदि है, जो अन्त होगा ! (चन्द्रगुप्त से) सम्राट्, बैठिये, लेटिये ! सब जान चुका हूँ, समझ चुका हूँ सम्राट्। एक नया धर्म चला है, जिसमें निषेध-ही-निषेध

है। यह निषेध, वह निषेध! जिसमें युद्ध निषेध है, विजय निषेध है! जिसमें हिंसा निषेध है, हत्या निषेध है। सब निषेध है, विधेय है केवल आत्महत्या! वैशाली! तू क्या-क्या देती रही है?—जहाँ का हर नागरिक अपने को राजा समझता रहा है, वहाँ से जब जो न पैदा हो जाय!

चन्द्रगुप्त—(किंचित आवेश में) गुरुदेव! आत्महत्या नहीं, आत्मबलिदान! अब तक लोग मारना सिखाते रहे या सीखते रहे, वैशाली ने मरना सिखाया है। मरना भी कैसा—पलपल, क्षणक्षण घुलघुल कर, गलगल कर! और, गुरुदेव क्या वह भूभाग धन्य नहीं, जहाँ प्रजा और राजा का भेदभाव नहीं। जहाँ का हर नागरिक अपने को राजा और हर बच्चा अपने को राजकुमार समझता है! जहाँ राजसिंहासन योग्यता खोजता है, कुलगोत्र नहीं!

चाणक्य—सम्राट्! इस आसन पर बैठने के बाद क्षोभ की झलक भी नहीं आनी चाहिये! किन्तु एक निवेदन सम्राट्, इसी पथ पर बढ़ना था, तो वैशाली में क्यों, अपनी कपिलवस्तु से ही आपको प्रेरणा मिल सकती थी!

चन्द्रगुप्त—यदि हम वैशाली या कपिलवस्तु के—भगवान् महावीर या तथागत के—सन्देश सुने होते, उनपर ध्यान दिये होते, तो आज संसार कुछ दूसरा ही होता, गुरुदेव! हमने, संसार ने, उनके अहिंसा धर्म का, शान्ति धर्म का सन्देश नहीं सुना, फल हमारी आँखों के सामने है। हमने शास्त्रों के आधार पर, शस्त्रों के बल पर चक्रवर्ती साम्राज्य की तो स्थापना कर ली, किन्तु उस चक्रवर्ती राज्य की प्रजा को भूखों मरने से नहीं बचा सके! आपके चक्रवर्तित्व की कल्पना पर यह कैसा क्रूर व्यंग देवता ने किया है गुरुदेव!

चाणक्य—क्या कोई किसी को मरने से बचा सकता है सम्राट्! मानव अपना कर्त्तव्यमात्र कर सकता है। क्या हमने कर्त्तव्य-पालन में कोई त्रुटि की है? हमने सारे देश को एक सुशासन में सम्बद्ध किया है, उसकी श्रीवृद्धि के लिए वे प्रयत्न किये हैं, जो सोचे भी नहीं जा सकते थे। आज सारा देश एक है। एक छोर से दूसरे छोर को जोड़ने वाले राजपथों का हमने निर्माण किया है। उन पथों को निरापद बनाया है—उनपर निरन्तर यात्रायें की जा रही हैं। लूट-पाट, छीना-झपटी का कहीं नाम नहीं है। कौन ऐसा राज्य है, जिसके नागरिक अपने घरों में बिना ताला लगाये, निश्चिन्त, उन्हें छोड़ जाते हैं, बाहर चले जाते हैं तो भी एक तिनका इधर-उधर न हो! हमने

नहरे बनाई हैं, सरोवर बनाये हैं। जहाँ मरुभूमि थी, वहाँ जल की लहरियाँ अठखेलियाँ करती हैं। देश के ही नही, विदेशो से होने वाले वाणिज्य-व्यापार में भी कितनी उन्नति हुई है—हमारे सार्थ-वह जल-पथ से, थल-पथ मे नाना प्रकार के पण्यो का आयात-निर्यात करते हैं। चारो ओर सुख है, समृद्धि है! इतने पर भी यदि अकाल पडा, तो क्या हमारा अपराध है? विधाता पर हमारा क्या वश है? पानी का बरसना हमने रोक दिया? देवताओ ने जो त्रुटियाँ की, उनके लिए हम कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं, सम्राट्?

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव! मैं आपसे तर्क-वितर्क नही करना चाहता, उसका अवसर नही है, उसका कोई फल भी नही होनेवाला है। तर्क से सब बातें सिद्ध भी नही की जा सकती। मैं इतना ही जानता हूँ, राजा जिस समय शासन-सूत्र हाथ में लेता है, प्रजा की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उसपर आ जाता है। किसी भी कारण से—वह कारण भौतिक हो या आधिभौतिक, लौकिक हो या दैवी—यदि वह प्रजा के प्राण या धन की रक्षा नही कर पाता, वह अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता है! और इस कर्तव्य-च्युति का दड उसे भुगतना ही चाहिये।

चाणक्य—और वह दड सदा प्राणदड होगा!

चन्द्रगुप्त—हाँ, प्राण-हरण का दड प्राण-दान के ही रूप में चुकाया जा सकता है! प्रजा यदि एक की हत्या करती है, तो उसे प्राणदड दिया जाता है, और अपनी कर्तव्य-च्युति से जिसने इतनी हत्यायें की, उसे प्राणदड से भी कोई कठोरतम दड हो, तो मिलना चाहिये और उस दड का विधान वैशाली के उस मत ने ही किया है! साठ दिनो तक निर्जल-निराहार रह कर प्राण त्याग दो—तिल तिल कर मरो, घुल-घुल कर मरो, तडप-तडप कर मरो! और तो भी मुँह पर उफ नही लाओ! तनिक भी उफ-आह आई कि प्रायश्चित भ्रष्ट हुआ! गुरुदेव, गुरुदेव, इस विधान से भी दिव्य, उदात्त क्या कोई विधान हो सकता है? मैं निश्चय कर चुका हूँ और आप भी कह चुके हैं, सम्राट् का निर्णय बदलना नही चाहिये! मुझे मरने दीजिये, गुरुदेव! आपने विजेता के रूप में मुझे गढा है, इस अतिम विजय से मुझे वचित नही कीजिये, गुरुदेव!

चाणक्य—विजय! विजय की लालसा! कैसी प्रबल होती है यह लालसा! पृथ्वी पर विजय, जीवन प— विजय फिर मृत्यु पर

विजय, स्वर्ग पर विजय! हाँ, विजेता सदा विजेता है! (शून्य की ओर एकटक देखने लगता है)

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव! गुरुदेव! (झुक कर चरण छूता है)

चाणक्य—किन्तु, बेटे, एक निवेदन है! तुम्हारे इस निर्णय की सूचना बाहर नहीं जानी चाहिये, नहीं तो देश में तुरत ही अराजकता फैल जा सकती है। और आज्ञा दो, हम पाटलिपुत्र जाकर शीघ्र कुमार का अभिषेक करें।

चन्द्रगुप्त—जो इच्छा हो गुरुदेव!

चाणक्य—सम्राज्ञी, चलिये, कुमार को हम पाटलिपुत्र ले चलें।

चन्द्रा—गुरुदेव, गुरुदेव! मैं इन चरणों को छोड़ कर जा नहीं सकती, जा नहीं सकती, गुरुदेव! (चरणों से चिपक जाती है)

चाणक्य—चन्द्रे! विह्वल मत बनो! इसमें सबसे बड़ी असफलता मेरी है! आज मुझसे दुखी इस संसार में कोई नहीं है। यह निर्मम, क्रूर ब्राह्मण एक ही व्यक्ति को प्रेम दे सका था, एक ही व्यक्ति के लिए इसने अपने हृदय में कोमल स्थान बनाया था। वह स्थान रिक्त हो रहा है। वहाँ हाहाकार ही हाहाकार है! छाती में दरारें पड़ रही हैं, वह फटना चाहती है! आह! जिसे टीले पर पाया, जिसे स्वर्ण-सिंहासन पर बिठलाया, उसे आज अपनी ही आँखों धूल में मिलने को छोड़े जा रहा हूँ! यह क्या होने जा रहा है? (भाव-विह्वल होकर) चाणक्य! चाणक्य! तुम्हारी नीति की यही परिणति थी! तुम्हारी सारी दौड़धूप, सारे संघर्ष-विमर्श का यही फल होना था! ओह! (आँसू पोंछता है) किन्तु, नहीं, नहीं। सम्राज्ञी, भावना एक अलग वस्तु है और राजधर्म दूसरी वस्तु। दोनों पृथक् हैं, दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं! हम राजधर्म छोड़ देंगे, तो सारा किया-कराया समाप्त हो जायगा—ऋषियों की कल्पना धूल में मिल जायगी! राजा आता है, राजा जाता है! राज्य को स्थायी होना चाहिये! सिंहासन को कभी सूना नहीं रहना है। हमें तुरत ही कुमार का अभिषेक कर देना है! मैं चलता हूँ, शिविर में पाटलिपुत्र चलने के लिए कूच की घोषणा करनी है! शीघ्र आइये! (द्रुतगति से जाता है)

चन्द्रा—श्वेतजी, श्वेतजी, अब आप ही बचाइये श्वेतजी!

श्वेतकेतु—सम्राज्ञी, व्याकुल मत बनिये! गुरुदेव कह गये हैं न, कोई किसी को बचा नहीं सकता!

चन्द्रा—गुरुदेव की बात मत कीजिये, उन्ही के चलते यह सब हुआ है। हाय।

श्वेतकेतु—क्या उन्होने यह स्वय स्वीकार नही किया है। सत्य एक दिन ऊपर आता है और वह उसी के मुँह से बोलता है, जो सदा उसका शत्रु रहा। सत्य का यही जादू है। गुरुदेव को स्वीकार करना पडा, उनकी नीति असफल रही। किन्तु यह उन्ही का मस्तिष्क है, जो आज भी अपने कर्तव्य को नही भूल सका। गुरुदेव, सचमुच अलौकिक पुरुष है। सम्राज्ञी, उनकी आज्ञा का अनुगमन होना चाहिये, आप विह्वल न हो। इस कवि की वाणी एक ही जगह पूर्णत सार्थक हुई है—आपसे वह फूल खिला, जो आज पाटलिपुत्र के राज्यसिंहासन को सुशोभित करने जा रहा है। अभी वह अर्द्धस्फुटित ही है, जाइये उसे पूर्ण स्फुटित कराइये।

चन्द्रा—कवि, कवि। तुम भी आज इतने निष्ठुर वन रहे हो कवि।

श्वेतकेतु—निष्ठुर। कवि निष्ठुर नही हो सकता। किन्तु प्रकृति की पुकार की अवहेलना कौन कर सकता है? जो वाटिका वसत में फूल-भरी, रग-भरी, सुगध भरी होती है, वही शिशिर में कैसी उजाड वन जाती है, झखाड वन जाती है। फूल झड गये, पत्ते झड गये, रग उड गये, सुगध उड गई। किन्तु ये ही फूल, यही पत्ते वहाँ गिर कर खाद वनाते है, जिसे पाकर पौधो में फिर प्राण आते हैं—फिर कोपले फूटती हैं, पत्तियाँ निकलती है, कलियाँ लगती है, फूल खिल है। फिर वाटिका हरी-भरी—फूल भरी, रगभरी, सुगधभरी वन जाती है। जो झड रहे है, झडने दीजिये, सम्राज्ञी। जाइये, नई पौध को, नये फूल को देखिये। सवका अपना-अपना कर्तव्य है। सम्राट् अपना कर्तव्य कर रहे है, आप अपना कर्तव्य कीजिये

चन्द्रगुप्त—हाँ, चन्द्रे। कवि सत्य कर रहा है और इस आसन से जैसे एक और सत्य का मूर्त आभास मुझे मिल रहा है—मुझे लग रहा है, तुमने जो इस वश को फूल दिया है, उसी से कभी एक फूल और निकलेगा, जो सव फूलो से विलक्षण होगा, अपूर्व होगा। उसका रग पृथक होगा, सुगंध पृथक होगी। पाटलिपुत्र के सिंहासन को सुशोभित करनेवाला वह फूल राज्य का, शासन का, विजय का—सवका एक नया आदर्श देगा, एक नई व्याख्या देगा। जाओ, चन्द्रे,

जाओ—तुम उस फूल का सिंचन-परिवर्द्धन करो, मैं धूल में मिल कर भी उसकी शुभकामना करता रहूँगा।

चन्द्रा—मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती चन्द्र! (लिपट जाती है)

चन्द्रगुप्त—(उसकी पीठ सहलाते) जाओ, जाओ, पगली! श्वेत, तुम भी जा सकते हो भाई!

श्वेतकेतु—मैं, जाऊँ! तो इस अलौकिक विजय का साक्ष्य कौन करेगा? अभी कह चुके हो न—भूल गये? नहीं, नहीं! जीवन-भर तुम्हारी पृथ्वी-विजय का साक्षी रहा, क्या स्वर्ग-विजय के साक्ष्य से मुझे वंचित करना चाहते हो—कर भी सकोगे—मेरे विजेता, मेरे सखा, मेरे चन्द्र! (वह उससे लिपट जाता है)

[पटाक्षेप]

हम इनके कृतज्ञ हैं !

इस ग्रंथावली के प्रकाशन की योजना के मूल में यह आशा रही कि हर भाग के प्रकाशन के पूर्व हमें कम-से-कम सौ ऐसे सज्जन मिल जायेंगे जो सौ-सौ रुपये देकर पूरी ग्रंथावली के स्थायी ग्राहक बन जायेंगे। दूसरे भाग के प्रकाशन के पूर्व इन सज्जनों ने स्थायी ग्राहक बनकर हमारे लिए पथ प्रशस्त किया : हम इनके कृतज्ञ हैं—

बम्बई

१—श्री बाबूलालजी मारवड़िया,
२—श्री सेठ ताराचन्द्र गुप्ता
३—श्री किशोरी लालजी ढांढनिया
४—मंत्री, मारवाड़ी हिन्दी पुस्तकालय
५—मंत्री, सीताराम पोद्दार बालिका विद्यालय
६—श्री विश्वम्भरलालजी माहेश्वरी
७—श्री शिवकुमारजी भुआलका
८—श्री सेठ गंगाधरजी माखड़िया
९—श्री नाथूराम रामनारायण लिमिटेड
१०—श्री रामकृष्ण जी बजाज
११—श्री सुशील कुमारजी रुइया
१२—श्री पुरुषोत्तम जी रूँगटा
१३— " " "
१४—प्रिन्सिपल मारवाड़ी कमर्शियल हाईस्कूल
१५—श्री भगवती प्रसाद महावीर प्रसाद
१६—श्री पुरुषोत्तमजी रूँगटा
१७—श्री ब्रजमोहनजी नेमानी
१८—श्री दामोदर लालजी जयपुरिया
१९—श्री " " "
२०—श्री सी० जे० शाह
२१—श्री मेनारामजी चौधुरी
२२—श्री जौहरीमल देवीप्रसाद
२३—मंत्री, बृजमोहन लक्ष्मीनारायण रुइया हिन्दी हाई स्कूल
२४—श्रीमती ललिता मालाड़िया
२५—श्री कोठारी जी
२६—श्री देवी प्रसाद गाडोदिया
२७—श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला कालेज

२८—श्री श्यामलाल खमका

२९—श्रीमती तेजनारायण खेतान

गुजरात

१—श्री गोवर्धन भाईजी पटेल, कैरा

पूना

१—मत्री, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा

पटना

१—श्री अनुग्रह नारायण सिंहजी, वित्त-मत्री, बिहार सकार

२—श्री महेश प्रसाद सिंह, उद्योग मत्री, बिहार सरकार

३—श्री दीप नारायण सिंह, सहयोग मत्री, बिहार सरकार

४—श्री कृष्णबल्लभ सहाय, राजस्व मत्री, बिहार सरकार

५—श्री वीरचन्द्र पटेल, उप-मत्री, बिहार सरकार

६—डाइरेक्टर, जन-सम्पर्क-विभाग, बिहार सरकार

७—श्री डी० पी० शर्मा, रिटायर्ड आई० सी० एस०

८—चेयरमैन, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पटना

९—श्री रामदयाल जोशी, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

१०—श्री सीताराम सिंहजी, नेशनल फारमेसी

११—श्री राम नारायण अरोडा, पटना सीटी

१२—श्री राम विनोद सिंह, एम० एल० ए०

१३—श्री किशोरी गुप्ता, पुस्तक भवन

१४—प्रधानाध्यापक, मिडूल स्कूल, अमरपुरा

१५— " " " वेढना

१६— " " " सदीसोपुर

१७— " " " हसाडीह

१८— " " " जलालपुर

१९— " आर० एम० मिडूल स्कूल, समयागढ़

२०—श्री बलदेव सहाय जी, ऐडवोकेट

२१—श्री महावीर प्रसाद, ऐडवोकेट जनरल

नई दिल्ली

१—श्री भरत रामजी

२—श्री रामनारायण सिंह एम० पी०

३—श्री जे० पी० श्रीवास्तव, एम० पी०

कलकत्ता

१—श्री वेणी शंकरजी शर्मा
२—श्री मातादीनजी खेतान
३—श्री प्रभुदयाल शिवचन्द्रराय दावड़ीवाला
४—श्री शिवभगवान गोयनका
५—श्री रामेश्वर प्रसाद पाटोदिया
६—श्री बी० पी० हिम्मतसिंहका
७—श्री कृष्णानन्दजी जालान

आसनसोल

१—श्री नन्दलालजी जालान
२—श्री रुंगेयाजी

राजस्थान

१—मंत्री, पब्लिक लाइब्रेरी, सरदार शहर

मध्यभारत

१—प्रबंधक, बनमोर सीमेन्ट वर्क्स, बनमोर

मानभूम

१—श्री यू० एन० साजी, धनबाद
२—श्री ठाकुरदयाल सिंह, कुटवाडीह

दरभंगा

१—चेयरमैन, म्युनिसिपैलिटी, दरभंगा
२—श्री के० डी० चूड़ीवाला, हसनपुर रोड
३—प्रिन्सपल, समस्तीपुर कालेज, समस्तीपुर

चम्पारण

१—मंत्री, श्री कृष्ण पुस्तकालय, बिशनपुर
२—श्री राधा पाण्डे, एम० एल० ए०, रानोड

सिंहभूम

१—प्रबंधक, एसोसियेटेड सीमेन्ट कम्पनी लिमिटेड, चाइबासा
२—श्री विश्वनाथजी मूंदड़ा, चाइबासा
३—मंत्री, एल० एम० मैगटा हाई स्कूल, चाइबासा
४—श्री हरनाथ बर्जन राठौर, चाइबासा

५—जनसम्पर्क विभाग टिस्को, जमशेदपुर
६— " " " "
७— " " " "
८— " " " "
९— " " " "
१०— " " " "

मुंगेर

१—श्री जितेन्द्र नारायण सिंह, चौथम
२—श्री कपिलदेव नारायण सिंह, 'सुहृद', सुहृद-नगर
३—श्री विष्णुदेव नारायणजी, एल० एल० बी०, बेगूसराय
४—श्री श्यामकृष्ण दासजी, बेगूसराय

पूर्णियाँ

१—श्री लक्ष्मी नारायणजी "सुधांशु", रूपसपुर

संथाल-परगना

१—प्रधानाध्यापक, हाई स्कूल, फतेपुर
२—प्रधानाध्यापक, माध्यमिक विद्यालय, हसडीहा
३— " माध्यमिक विद्यालय, वृन्दावन
४— " " " रोलाग्राम
५— " " " छोटाधमनी
६— " " " रघुनाथपुर

हजारीबाग

१—श्री रामगोपाल अग्रवाल, डोमचांच

पलामू

१—मंत्री, गांधी-मजदूर-यूनियन क्लब, जपला
२—मंत्री, स्टाफ एशोसियशन, जपला
३—मंत्री, वर्कर्स क्लब, बौलिया
४—मंत्री, स्टाफ क्लब, बौलिया
५—श्री केशव प्रसाद पाण्डेय, जपला
६—श्रीमती उमा सिन्हा, जपला
७—प्रधानाध्यापक, एच० एस० वी० हाई स्कूल, जपला
८—जेनेरल सेक्रेटरी एच० एस० वी० क्लब, जपला

शाहाबाद

१—प्रधानाध्यापक, हाई स्कूल, बौलिया
२— " क्वेरिज मिड्ल स्कूल, बौलिया
३—प्रधानाध्यापक, हाई स्कूल, नरहीचडी

भागलपुर

१—श्रीमती श्यामलाल खेमका, कहलगांव

मुजफ्फरपुर

१—श्री महथ रघुनाथ दास, जानकीस्थान, सीतामढ़ी
२—मंत्री, रघुनाथ प्रसाद नोपानी हाई स्कूल, बाजपट्टी
३—मंत्री शारदा सदन पुस्तकालय, लालगंज
४—श्रीदेवनन्दन प्रसाद सिंह, धनौर
५—श्रीमती रामज्योति कुअँरि, धनौर
६—श्री जगनाथ प्रसाद सिंह, धनौर

सारन

१—श्री विश्वनाथ मिश्र, वकील, छपरा
२—भारत सूगर मिल्स लिमिटेड, सिधवालिया,

नेपाल

१—श्री गुलाब नारायण झा, सलाहकार सभा, काठमांडू
२—श्री भगवती प्रसाद सिंह, न्यायाधीश, काठमांडू
३—श्री रामानन्द सिंह, कोइलाडी
४—जनरल कैसर शम्शेर, काठमांडू
५—श्रीमती कैसर शम्शेर, काठमांडू

५—जनसम्पर्क विभाग टिस्को, जमशेदपुर
६— " " " "
७— " " " "
८— " " " "
९— " " " "
१०— " " " "

मुंगेर

१—श्री जितेन्द्र नारायण सिंह, चौथम
२—श्री कपिलदेव नारायण सिंह, 'सुहृद'
३—श्री विष्णुदेव नारायणजी, एल० एल०
४—श्री श्यामकृष्ण दासजी, बेगूसराय

पूर्णियाँ

१—श्री लक्ष्मी नारायणजी "सुधांशु", रूपसपु

संथाल-परगना

१—प्रधानाध्यापक, हाई स्कूल, फतेपुर
२—प्रधानाध्यापक, माध्यमिक विद्यालय, हसडीहा
३— " माध्यमिक विद्यालय, वृन्दावन
४— " " " रोलाग्राम
५— " " " छोटाघमनी
६— " " " रघुनाथपुर

हजारीबाग

१—श्री रामगोपाल अग्रवाल, डोमचांच

पलामू

१—मत्री, गांधी-मजदूर-यूनियन क्लब, जपला
२—मत्री, स्टाफ एशोसियशन, जपला
३—मत्री, वर्कर्स क्लब, बौलिया
४—मत्री, स्टाफ क्लब, बौलिया
५—श्री केशव प्रसाद पाण्डेय, जपला
६—श्रीमती उमा सिन्हा, जपला
७—प्रधानाध्यापक, एच० एस० वी० हाई स्कूल, जपला
८—जेनेरल सेक्रेटरी एच० एस० वी० क्लब, जपला

शाहाबाद

१—प्रधानाध्यापक, हाई स्कूल, बौलिया
२— ” बवेरिज मिड्ल स्कूल, बौलिया
३—प्रधानाध्यापक, हाई स्कूल, नरहीचडी

भागलपुर

१—श्रीमती श्यामलाल खेमका, कहलगांव

मुजफ्फरपुर

१—श्री महंथ रघुनाथ दास, जानकीस्थान, सीतामढ़ी
२—मंत्री, रघुनाथ प्रसाद नोपानी हाई स्कूल, बाजपट्टी
३—मंत्री शारदा सदन पुस्तकालय, लालगंज
४—श्रीदेवनन्दन प्रसाद सिंह, धनौर
५—श्रीमती रामज्योति कुअँरि, धनौर
६—श्री जगन्नाथ प्रसाद सिंह, धनौर

सारन

१—श्री विश्वनाथ मिश्र, वकील, छपरा
२—भारत सूगर मिल्स लिमिटेड, सिधवालिया,

नेपाल

१—श्री गुलाब नारायण झा, सलाहकार सभा, काठमांडू
२—श्री भगवती प्रसाद सिंह, न्यायाधीश, काठमांडू
३—श्री रामानन्द सिंह, कोइलाढी
४—जनरल कैसर शम्शेर, काठमांडू
५—श्रीमती कैसर शम्शेर, काठमांडू
